पदपाठसहिता

अथर्ववेदसंहिता

सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता
सैव
हिन्दीभाषानुवादसमन्विता

व्याख्याकारः - सम्पादकश्च
पं॰ रामस्वरूपशर्मा गौडः

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१८

सायणभाष्यसहिता

अथर्ववेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलिता

भाग ३

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404
ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

पुनर्मुद्रित संस्करण २००७
१-८ भाग (सम्पूर्ण)
मूल्य : रू. ३०००.००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं: 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

THE
VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA
18

ATHARVA-VEDA-SAṀHITĀ

Along with

SĀYAṆABHĀṢYA

Volume 3

Edited with Hindi Translation

By

Pt. Ramswaroop Sharma Gaud

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI

Publishers :

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(Oriental Publishers & Distributors)
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. # 0542-2420404
e-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

All Rights Reserved

Reprint Edition 2007

Also can be had from :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002

Printed at Ratna Offsets Ltd.
Kamachha, Varanasi

श्रीहरिः

सभाष्य अथर्ववेदकी विषयसूची

विषय पृष्ठ

पञ्चम काण्ड

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसमें संग्राममें विजय दिलाने वाले कृत्यों का वर्णन है। विजेता योद्धाओंकी परीक्षा तथा पुष्टिकर्मों आदिका वर्णन है। मिश्र धान्य और रसकी व्याख्या। १

द्वितीय सूक्त। पहिले सूक्तमें कहे हुए सब कर्मोंमें भी इस सूक्तका विनियोग होता है, तथा सर्वफलोंकी कामना वाला इस सूक्तसे इन्द्र और अग्निका उपस्थान करे। १२

तृतीयसूक्त। दर्शपूर्णमासके समिदाधानमें वर्चस्यकर्ममें पुष्टिकर्ममें इसका विनियोग होता है। और विभागकर्ममें कलह न चाहने वाला पिता इस सूक्तसे तैलिककी रज्जु को अभिमन्त्रित करके हाथमें धारण करे। अभिचारकर्ममें इससे बृहस्पतिशिरस् ओदनको पृषातकसे सींचे। धनञ्जय में की जाने वाली कौबेरी महाशांतिमें इसको पढ़े, हस्त्यश्वदीक्षाकर्ममें इससे आहुति देय। १७

चतुर्थ सूक्त। इससे राजयक्ष्मा कुष्ठ आदि रोगोंकी शान्तिकेलिये कूष्ठ नामक औषधिमें मक्खनको मिलाकर पैर से ऊपरको आरम्भ करके रोगीके शरीर पर लेप करे। २५

पञ्चम सूक्त। शस्त्र आदिके अभिघातमें इससे दुग्धमें लाखका काढ़ा बना अभिमन्त्रित करके रोगीको पिला देवे। २९

विषय पृष्ठ

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इससे रोगी आरोग्य होगा वा नहीं इसका निश्चय किया जाता है, दो सेनाओंमेंसे किसको विजय होगी इसका इससे निश्चय होता है । प्रवास करता हुआ पुरुष इससे आहुति देय । इसका सलिलगणमें भी पाठ है. स्त्रीप्रसवदोष और सूतिका रोगमें भी इससे अभिमन्त्रित करके भात खिलावे सत्तू पिलावे और सूर्यका उपस्थान करे । ३३

द्वितीय सूक्त । इससे निर्ऋतिकर्ममें शर्करा मिले हुए भुने हुए जौंको होमे । अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्ममें भी इसका विनियोग होता है । अग्निचयनमें वनीवाहनके समय इस सूक्तको यजमानसे बँचवावे । ४२

तृतीय सूक्त । इससे अभिचारकर्ममें आहुति देय । ४७

चतुर्थ सूक्त । इससे सब रोगोंकी चिकित्साके लिये घृतकी आहुति देकर जौं पड़े वा जौंरहित जलपूर्ण पात्रमें चार सम्पातोंको लावे और पृथिवीमें दो सम्पातोंको लावे । उस सम्पातित अभिमन्त्रित मृत्तिका सहित जलसे रोगीको भिगोवे । ५१

पञ्चम सूक्त । नगर ग्राम और घरका स्वस्त्ययन करनेके लिये इससे छः पत्थरोंको सम्पातित करके रक्खा जाता है । ५४

तृतीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त । सर्वसम्पत्कर्मोंके काम इससे किये जाते हैं । ५७

द्वितीय सूक्त । इससे वशाशमनके कर्म होते हैं । दिव्य होताओंका वर्णन ६४

तृतीय सूक्त । इसका विषचिकित्साके कर्ममें और अभिचारिक कर्ममें विनियोग होता है । ७३

विषय — पृष्ठ

चतुर्थ सूक्त । इसका कृत्याप्रतिहरण गणमें विनियोग होता है । ८०

पञ्चम सूक्त । गौओंके रोगोंकी शांति, पुष्टि और प्रजनन-कर्म में इससे लवण पड़े हुए वा सादे जलको अभिमन्त्रित कर गौओंको पिला देय । दुष्ट वक्ताके मुखको स्तंभित करने के कर्म भी इससे करे जाते हैं । ८६

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथमसूक्त । इसका दुष्ट वक्ताके मुखको स्तंभित करने का कार्य किया जाता है । ८९

द्वितीय सूक्त । गोहरणके अभिचारकर्म में इसका प्रयोग होता है । ब्राह्मणकी गौ वा स्त्रीके निरोधका फल इस सूक्तमें वर्णित है । ९४

तृतीय चतुर्थ सूक्त । इनका गोहरण आदिका अधिक प्रचार होने पर उपयोग होता है इन सूक्तमें ब्राह्मणोंके धन आदिको न हरनेका उपदेश है । १०२

पञ्चम सूक्त । पुरोहित इस सूक्तसे त्रासन और परसेनाविद्वेषणकर्ममें नगाड़े आदि बाजोंको तगर और खशसे घो लेप कर तीन वार ताड़न करके वादकको देदे और महाव्रतमें इस सूक्तसे भूमिदुन्दुभिको ताड़ित करे ११५

छठा सूक्त । इससे भी परसेनात्रासन विद्वेषण कर्म किये जाते हैं । १२२

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम सूक्त । इससे ज्वरचिकित्सा कर्म में खीलें पिलाई जाती हैं । तथा दावाग्निको बना कर ताँवेके स्रुवेसे इससे शिर पर सम्पातोंको लावे । १२८

विषय पृष्ठ

द्वितीय सूक्त। इससे कृमिचिकित्साकी जाती है। १३४

तृतीय सूक्त। इससे पौरोहित्यको चाहने वाला शूद्रकी लाई हुई समिधाओंको रक्खे। विवाहके घृतहोममें भी इसका विनियोग होता है। चातुर्मास्यके वैश्वदेवपर्वमें ब्रह्मा इससे सावित्रयागका अनुमन्त्रण करे। १४१

चतुर्थ सूक्त। इसमें गर्भाधानमें करने योग्य कर्मोंका वर्णन है। १४७

पञ्चम सूक्त। नवीनशालामें पुष्टि चाहने वाला इससे शहद मिले हुए घृतकी आहुति देय और ज्योतिष्टोममें भी इस सूक्तसे घृतकी आहुति देय। १५२

छठा अनुवाक—

प्रथम सूक्त। पुष्टिकर्म और वशाशमनकर्म में इसका प्रयोग होता है. १५७

द्वितीय सूक्त। इसका सर्वसम्पत् कर्मोंमें आयुष्काम ब्रह्मचारीके हिरण्यमणिबंधनमें उपनयनकर्म में आयुष्काम ब्रह्मचारीके घृतहोममें और अन्नक्षयके अवसर पर अन्नकी कामना वालेकी वैष्णवीशांतिमें विनियोग होता है। १६२

तृतीय सूक्त। जहाँ २ चातनगणका विनियोग होता है, तहाँ इसका विनियोग किया जाता है। १७०

चतुर्थ सूक्त। इस सूक्तका अंहोलिंगगणमें पाठ होनेसे इस गणका जहाँ २ विनियोग होगा तहाँ ही इसका विनियोग होता है, पिष्टरात्रिकल्पमें सरसोंके अभिमन्त्रणके अनन्तर जप करनेमें भी विनियोग होता है। इत्यादि १७७

पञ्चम सूक्त। इसका कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ है। १८५

विषय पृष्ठ

❁ छठा काण्ड ❁

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसके पहिले तृचसे नवीन शालामें पुष्टिको चाहने वाला शब्द मिले हुए घृतकी आहुति देय । तथा स्वस्त्ययन चाहने वाला इससे घृत आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । तथा इससे सब लोकों पर अधिपतित्व जमाना चाहने वाला अथर्वाका यजन वा उपस्थान करे । तथा इसीसे समावर्तनके अनन्तर भातको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे । तथा सोमयागके प्रातःसवनमें वहिष्पवमान स्तोत्रके समय ब्रह्मा इसका जप करता हुआ उद्गाताको देखे ।

इन्द्राय सोमम्—इस तृचसे सोमयागमें द्रोणकलशमें स्थित सोमका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । यहाँ 'आ यं विशन्ति' इस ऋचासे राक्षसकी की हुई पीड़ाका परिहार करनेके लिये पक्षियोंके घोंसलेके काठसे पके हुए क्षीरौदनको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे । अथर्वा कौन हैं ? बृहत्साम क्या है ? स्तुत शस्त्र स्तोत्रका भेद, सविता देवता की श्रेष्ठता, आधावनकी व्याख्या १६१

द्वितीय सूक्त । इसके पहिले "पातं" तृचसे विजयस्वस्त्ययनकर्ममें घृतकी आहुति देकर खड्ग आदि शस्त्रोंको संपातित करके योधकको देदे । तथा स्वस्त्ययन चाहनेवाला रात्रिमें शयनके समय इसको जपता हुआ प्रादेशसे मुखको ढ़क कर सोजावे । तथा सोकर उठे हुएका स्वस्त्ययन चाहने वाला तीन पैर नापकर उठे । तथा स्वस्त्ययन चाहने वाला इससे घृत आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय ।

विषय पृष्ठ

“त्वष्टा मे” तृचसे दायाद्विभागकर्ममें पुष्टिके लिये सरूपवत्सा गौके दूधमें बने हुए भातको संपातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे। तथा तहाँ कर्ममें दण्डको संपातित और अभिमन्त्रित करके साफ करके भक्षण करे, तथा तहाँ ही कर्ममें इस तृचसे धनुषकी प्रत्यञ्चाको अभिमन्त्रित करके बाँधे। तथा पुष्ट्यर्थ चित्राकर्ममें इससे वृक्ष शाखा आदि संभारोंको एकत्रित करके संपातन करे। तथा कुमार वा कुमारीके मूर्धा पर दो भौंरे दीखने पर उसकी शांतिके लिये इससे घृतकी आहुति देय। अंश और भग अदितिके पुत्र हैं २०१

तृतीय सूक्त। ग्राम चाहने वाला इसके दोनों तृचोंसे इन्द्रका पूजन वा उपस्थान करे। तथा इन दोनोंसे गूलड़ पलाश और बेरोंकी बूरको रक्खे सभामें बिछानेके (पराल आदि) तिनकोंको रक्खे वा अभिमन्त्रित अन्नके आसवको देवे। तथा दर्शपूर्णमासके आग्नेय चरुकी ‘उदेनं उत्तरं नय’ इन तीन ऋचाओंसे आहुति देय। तथा अग्निचयनमें षोडशगृहीतवैश्वकर्मण होमके अनन्तर इनसे रक्खी हुई समिधाओंका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे “इंद्रेम” इस दूसरी ऋचासे दर्शपूर्णमासके ऐंद्र आधारका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे और इसीसे ऐन्द्र सानाययागका अनुमन्त्रण करे। तथा अद्भुत महाशान्तिके इन्द्रयजनमें भी इसका विनियोग है। २११

चतुर्थ सूक्त। इसके पहिले तृचसे यागविघ्नशमन और अयाज्ययाजदोषशमनके कार्य किये जाते हैं, इसके दूसरे तृचसे स्त्री वशीकरण किया जाता है। २१७

पञ्चमसूक्त। इसके पहिले तृचसे चतुर्थ सूक्तके दूसरे तृचका कार्य किया जाता है। इसके दूसरे तृचसे सर्वसम्पत्कर्मोंमें घृतकी आहुति दी जाती है। २२३

विषय पृष्ठ

द्वितीय अनुवाक-

प्रथमसूक्त । इसके पहिले तृचसे पुंसवनके कर्म और दूसरे तृचसे सर्वविषकी चिकित्सा की जाती है । अग्निका यज्ञिय शरीर । २२७

द्वितीय सूक्त । इसके पहिले तृचसे विजय चाहने वाला विजयके कार्य और साँप बीछू आदिके भयको दूर करना चाहने वाला अभिमन्त्रित रेता गिलोय आदि फेंकनेके कार्य करे । तथा ब्राह्मणका आयुध धारण कर लेना प्रतिमाओं का नाचना हँसना आदि अद्भुत होने पर उसकी शांतिके लिये घृत होम करे । और यज्ञमें पुरोडाश आदिको कौआ उल्लू कुत्ता आदि दूषित कर जावे तो इस तृचसे घृतकी आहुति देय ।

इसके दूसरे तृचसे कफचिकित्सा की जाती है । २३४

तृतीय सूक्त । इसके पहिले तृचसे पुष्टि चाहने वाला पालाशमणिको वासित अभिमन्त्रित और सम्पातित करके बाँधे इसके दूसरे चतुर्ऋचसे नेत्रचिकित्सा की जाती है, इसकी चौथी ऋचासे अन्नस्वस्त्ययन किया जाता है । २४१

चतुर्थसूक्त । इससे गर्भदृंहण और जंभ ग्रहणकी शांति की जाती है । इसके दूसरे तृचसे स्त्रीविषयक ईर्ष्याकी निवृत्तिके कर्म किये जाते हैं । २४८

पञ्चम सूक्त । इसके पहिले तृचका शान्त्युदकादि विनियोग होता है, धन उठानेके समय होने वाले विघ्नोंकी शांतिके कर्म करे जाते हैं, और सवयज्ञोंमें इससे अपने पुत्रोंका प्रोक्षण करे । और इससे होमी जाती हुई हविका अभिमर्षण आदि किया जाता है । इत्यादि

विषय पृष्ठ

इसके दूसरे भागसे पित्तज्वरकी चिकित्सा कीजाती है। ग्रह और रोगके चक्करमें कैसे मनुष्य पड़ते हैं। २५४

तृतीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसके पहिले भागसे केशोंको बढ़ानेके कार्य किये जाते हैं, दूसरे भागसे थोंदकी चिकित्सा की जाती है और आस्रावन आदिमें भी इसका विनियोग होता है। २६२

द्वितीय सूक्त। इसके दोनों भागोंका आस्रावन आदिमें विनियोग होता है। इसके पहिले भागसे थोंदकी चिकित्सा की जाती है और दर्शपूर्णमासकी प्रणीताका अनुमन्त्रण किया जाता है। इसके दूसरे भागसे हृदयदोष, जलोदर और कमलवायकी चिकित्सा कीजाती है। गङ्गा आदिकी प्रार्थना। २७१

तृतीयसूक्त। इसके पहिले भागसे गण्डमालाकी निवृत्तिके काम किये जाते हैं, दूसरे भागका सर्वरोगचिकित्सामें उपयोग होता है। २७७

चतुर्थ सूक्त। इसके दोनों भागोंका घरमें कबूतर और उल्लूके प्रवेशकी शान्तिमें उपयोग होता है।

पञ्चम सूक्त। इसके पहिले भागका भी पूर्वसूक्तके कामोंमें उपयोग होता है और दूसरे भागका शमीलवनपापलक्षण शांति आदि कर्मोंमें उपयोग होता है। तीसरे भागका गौके स्पर्श आदिमें उपयोग होता है। २८९

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथमसूक्त। इसके पहिले भागका पिशाच राक्षस आदिसे होने वाले भयको निवृत्त करने वाले कर्मोंमें उपयोग होता है। दूसरे भागसे कृषिके उपयोगी कर्म किये जाते हैं और लांगलसंश्लेषणात्मक उत्पातकी शांति की जाती है और सर्वफलकाम इससे इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे। २९९

विषय पृष्ठ

द्वितीय-तृतीय सूक्त। दूसरे सूक्तके पहिले भागसे राक्षस वा ग्रहसे उत्पन्न हुई पीड़ाको शांत करनेके लिए घृत आदि द्रव्योंकी आहुति देय। इसके दूसरे भागसे और तीसरे सूक्तके प्रथम भागसे सर्वभैषज्यकर्म में जल हल्दी घी आदि पिलाये जाते हैं, दूसरे भागसे अभिचारसे उत्पन्न हुए दोषोंकी निवृत्तिके कर्म किये जाते हैं। ३०४

चतुर्थ सूक्त। इसके दोनों भागोंका वर्चस्कामके लिये उपयोग होता है तथा उत्सर्जन कर्म में इन दोनोंसे घृतकी आहुति देनेके अनंतर रसोंमें संपातोंको लाया जाता है। मंत्रशक्ति ३१४

पञ्चम सूक्त। इसके पहिले भागसे ग्राम आदिमें अभय चाहने वाला सप्तर्षियोंके लिये याग वा उपस्थान करे और सेनाके भयको दूर करनेके लिये भी याग वा उपस्थान करे। सप्तर्षियोंकी गणना। ३२२

पञ्चम अनुवाक—

प्रथमसूक्त। इसके पहिले भागसे स्त्री वा पुरुषके पारस्परिक कलहको मिटाया जाता है। तथा दीक्षामें क्रोध आने पर यजमान इसको जपे। दूसरे भागका सब प्रकारके कोपोंको दूर करनेमें उपयोग होता है। ३३०

द्वितीयसूक्त। इसके प्रथमभागसे अपवादकी चिकित्सा की जाती है। दूसरे भागका दुःस्वप्न दर्शनके दोषोंकी निवृत्तिमें उपयोग होता है। ३३५

तृतीयसूक्त। इसके पहिले भागका दुःस्वप्नदर्शन दोषकी निवृत्तिमें उपयोग होता है। दूसरे भागसे सवनसमाप्ति होम होते हैं। ३४२

चतुर्थ सूक्त। आचार्य इसके पहिले भागसे दण्डको

विषय पृष्ठ

अभिमन्त्रित उपनीत बालकको देवे और बालक भी इस को जपता हुआ ग्रहण करे। अभय चाहने वाला इस भाग से सप्तर्षियोंका यजन वा उपस्थान करे। इससे सवनसमाप्ति होम होते हैं, इत्यादि इसके दूसरे भागसे श्रेय चाहने वाला ब्रह्मचारी मृताचार्यकी दहनाग्निमें सूत्रोक्तरीतिसे पुरोडाशकी आहुति देवे। ३५३

पञ्चमसूक्त। इसके पहिले भागसे धान्यभक्षक चूहे, पक्षी, टटीरी, हिरन छछूँदर आदिको भगानेके कार्य किये जाते हैं। दूसरे भागका शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है, सर्वरोगचिकित्सामें इससे घृतहोम, पलाश आदि शान्तवृक्षों की समिधाओंका आधान होता है, सोमवमनपानादि कारणों से उत्पन्न हुई व्याधिको दूर करनेमें उपयोग होता है, अर्थोत्थापनविघ्नशमनके कार्य होते हैं और आस्नावकर्ममें विनियोग होता है तथा सोमपूतकर्तृका सौत्रामणिमें दशापवित्र से पवित्र की हुई सुराका अनुमन्त्रण होता है। ३६३

छठा अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसके पहिले भागसे रक्षोग्रह चिकित्सा होती है। दूसरे भागसे दुष्टगण्डव्रणकी चिकित्सा होती है द्रव्यविनाशका अवसर आने पर द्यावापृथिवीका याग वा उपस्थान किया जाता है। सवयज्ञोंमें इन्द्रियोंका अनुमन्त्रण किया जाता है। मेधाजननके काम सूर्यदेवके उपस्थान आदि, गोदानकर्ममें छुरेको शोध कर नाईको देना, और उपनयनकर्ममें जलपूर्ण पात्रका अभिमन्त्रण आदि किये जाते हैं। ३७२

द्वितीय सूक्त। इसके पहिले भागसे अभिचारकर्ममें आहुति दी जाती है इसकी 'अस्मै क्षत्रम्' ऋचासे पौर्ण-

विषय — पृष्ठ

मासयागमें अग्नीषोमीय चरुकी आहुति दीजाती है। दूसरे भागसे देशान्तरको जाने वाले पुरुषका स्वस्त्ययन चाहने वाला घृत आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय। स्वस्त्ययन के लिये पन्थौदन देवे, इसकी 'ग्रीष्मो हेमन्तः' ऋचासे ब्रह्मा प्रयाजोंका अनुमन्त्रण करे। आभिचारिककर्ममें व्रत विसर्जनके लिये 'इदावत्सराय' ऋचासे घृतकी आहुति देय और समिधाओंको रक्खें। ३८१

तृतीय सूक्त। इसके पहिले भागका साँप वीछू आदिके भयको दूर करनेमें उपयोग किया जाता है और उपाकर्म में घृतकी आहुति देकर दही और सत्तुओंमें सम्पातोंको लाया जाता है। दूसरे भागसे मुखरहित फोड़ेकी चिकित्सा की जाती है और अर्थोत्थापन विघ्नशमनके क्षीरौदनहोम आदि कर्म किये जाते हैं। ३८८

चतुर्थ सूक्त। यशस्काम इसके प्रथम भागका इन्द्रके याग वा उपस्थानमें उपयोग करता है, और उत्सर्जनकर्ममें इससे घृतकी आहुति देकर रसोंमें सम्पातोंको लाया जाता है। इसके दूसरे भागका शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है। अर्थोत्थापनविघ्नशमनके क्षीरौदन होम आदि किये जाते हैं। और स्वस्त्ययन कर्ममें पुरोडाश आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति दी जाती है। ३९६

पञ्चम सूक्त। इसके पहिले भागसे पतिलाभकर्ममें काकसंचारसे पहिले घृतकी आहुति दीजाती है। इसका शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है अर्थोत्थापनविघ्नशमनके क्षीरौदनहवन आदि कर्म होते हैं, वापी कूप तालाव आदिमें जलागमनको चाहने वाला इससे इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे। ४०२

विषय पृष्ठ

सप्तम अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसके पहिले भागका शान्त्युदकाभिमंत्रण आदिमें विनियोग होता है। अर्थोत्थापनविघ्नशमनके क्षीरौदनहवन आदि कर्म किये जाते हैं। सवयज्ञोंके प्रोक्षणमें विनियोग होता है। दूसरे भागसे अवकीर्णीका प्रायश्चित्त होता है। ४०६

द्वितीय सूक्त। इसके पहिले भागका साम्मनस्यकर्मोंमें उपयोग होता है, दूसरे भागसे संग्रामजयके कर्म किये जाते हैं। ४१६

तृतीय सूक्त। इसके दोनों भागोंका संग्रामजयकर्मोंमें विनियोग किया जाता है। इसके दूसरे भागसे शत्रुसेनामें द्वेष फैलाना चाहने वाला वा त्रस्त करना चाहने वाला राजा सेनाकी तीन परिक्रमा करे। तथा इससे सम्पातित और अभिमन्त्रित सोममणि राजाके बाँधी जाती है। ४२७

चतुर्थ सूक्त। इसके पहिले भागका गोदान और चूड़ाकरणके क्षौरमें उपयोग होता है। दूसरे भागका मेधाजननमें, कुमारीवर्चस्यकर्ममें, क्षत्रियवर्चस्यकर्म में, वैश्यशूद्रादिवर्चस्यकर्ममें, उत्सर्जनकर्म में, अग्निचयनमें और अवसेकप्रायश्चित्तमें उपयोग होता है। ४३२

पञ्चमसूक्त। इसके प्रथमभागका गौ और बछड़ेके विरोधको दूर करनेमें उपयोग किया जाता है। दूसरे भागका दुष्टादुष्टप्रतिग्रहदोषशान्तिमें उपयोग होता है। इससे अग्निकार्यमें ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षान्नको होमता है। दर्शपूर्णमासके पुरोडाशभागका ब्रह्मा इसकी 'यद् अन्नम्' ऋचासे भक्षण करे। इसके तीसरे भागसे वाजीकरणके कर्म किये जाते हैं। ४४१

विषय पृष्ठ

अष्टम अनुवाक—

प्रथमसूक्त । इसके दोनों भागोंसे सांमनस्यकर्म किये जाते हैं । पहिले भागका शान्त्युदकाभिमन्त्रणमें विनियोग होता है ४५१

द्वितीयसूक्त । इसके पहिले भागसे आभिचारिक कर्म किये जाते हैं । दूसरे भागसे विजयस्वस्त्ययन रात्रिस्वस्त्ययन और परदेशमें स्वप्रयोजनको सिद्ध करने वाले कर्म किये जाते हैं । ४५९

तृतीयसूक्त । इसके पहिले भागसे भाग जानेके स्वभाव वाली स्त्रीके निरोधककार्य किये जाते हैं । दूसरे भागसे रसोंको और स्थालीपाकको संपातित और अभिमन्त्रित करके भोजनके समय दम्पतीको प्राशन करावे । विवाहमें घृतकी आहुति देकर वरवधूके मस्तक पर सम्पातोंको लावे । घृतप्लुत जौं की आहुति देय । जाया शब्दकी व्याख्या ४६५

चतुर्थ सूक्त । इसके पहिले भागसे धान्यवृद्धि चाहने वाला पत्थरको प्रोक्षित और अभिमंत्रित करके कोठी आदिमें रक्खे फिर प्रत्येक ऋचाको पढ़ता हुआ एक धान्यमुष्टिको छोड़े । इसके दूसरे भागसे काक कपोत बाज आदि पक्षियों से चुटीले अङ्ग पर कुत्तेके स्थानकी मट्टीको अभिमन्त्रित करके लगावे, कुत्तेके अङ्ग परकी मक्खियोंको इससे अभिमन्त्रित कर उनको अग्निमें डाल कर धूप करे । ४७२

पञ्चमसूक्त । इसके प्रथमभागसे गर्भाधानमें कंकण आदि को सम्पातित और अभिमन्त्रित करके स्त्रीके हाथमें बाँधा जाता है । दूसरे भागसे विवाहकी कामना वालेको इन्द्रका याग वा उपस्थान करना चाहिये । और इससे घृतकी आहुति देकर वर और वधूके शिर पर सम्पातोंको लावे । ४७९

विषय | पृष्ठ

नवम अनुवाक—

प्रथमसूक्त। इसके दोनों भागोंका गंडमालाकी चिकित्सा में उपयोग होता है। ४८५

द्वितीयसूक्त। इसके पहिले भागका राजयक्ष्मारोगकी चिकित्साके कर्ममें उपयोग होता है। दूसरे भागसे श्रेष्ठता को चाहने वाला इन्द्रका याग वा उपस्थान करे ४९४

तृतीय सूक्त। स्थिरताको चाहने वाला राजा इसके दोनों भागोंसे इन्द्रका याग वा उपस्थान करे। भूमिकम्परूप उत्पातके प्रायश्चित्तके लिये, जलपूर्ण कुम्भके टूटनेरूप उत्पातके प्रायश्चित्तके लिये और इन्द्रमहाख्य कर्ममें इनका उपयोग किया जाता है। इसके पहिले भागसे ब्रह्मा उख्याग्निका अनुमन्त्रण करता है। ४९६

चतुर्थ सूक्त। इसके पूर्वभागसे जायापतिके प्रीतिजनन कर्म किये जाते हैं। उत्तरभागका शरीरशूल दूर करनेके लिये प्रयोग किया जाता है। ५०६

पञ्चम सूक्त। इसके पूर्व भागका सर्वरोगभैषज्यमें उपयोग होता है। उत्तरभागसे अश्वशान्ति की जाती है। ५११

दशम अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसके प्रथमभागका वास्तोष्पत्या शांतिमें, शान्त्युदकाभिमंत्रण आदिमें और स्वस्त्ययनमें प्रयोग होता है। द्वितीयभागका सांमनस्यकर्ममें उपयोग होता है। तृतीयभागसे राजयक्ष्मा कोढ़ आदिकी शान्ति की जाती है। इसकी 'गर्भो असि' ऋचासे अग्निचयनमें जलमें फेंकी जाने वाली उख्य भस्मका ब्रह्मा अनुजप करे। इसके चतुर्थ भाग का जलोदर और ब्राह्मणशापकी शान्तिके लिये प्रयोग होता है। ५१७

विषय पृष्ठ

द्वितीय तृतीय सूक्त। द्वितीय सूक्तके दोनों भाग और तृतीय सूक्तके प्रथमभाग—इन तीनोंसे संग्रामजयके कर्म किये जाते हैं, इनका उपाकर्म आदिमें प्रयोग होता है, इन्द्रमहाख्यमें पूर्ण होम होता है, पशुओंका आलंभन होता है और इन्द्रका उपस्थान किया जाता है। दूसरे सूक्तके दूसरे भागका परसेनाविद्वेषणकर्ममें और महाव्रतमें उपयोग होता है। तृतीय सूक्तके प्रथमभागसे अग्निष्टोमके प्रातःसवनके स्तोत्रका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करता है। तृतीय सूक्तके अंतिमभागसे स्थावर जंगम विषकी चिकित्सा और आहिताग्निके अन्तिम संस्कारमें पुरोडाशको हृदय पर रख कर उसका अनुमन्त्रण ये कर्म किये जाते हैं। ५२९

चतुर्थ सूक्त। इसके पूर्वभागका वाजीकरणमें और उत्तरभागका स्त्रीवशीकरणमें प्रयोग होता है। ५४४

ग्यारहवाँ अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसके दोनों भागोंका संग्राम जयकर्मोंमें प्रयोग होता है। ५४९

द्वितीय सूक्त। इसके प्रथम भागसे खाँसी और कफरोगोंकी शान्तिकी जाती है। दूसरे भागसे घर आदिके अग्निदाहकी निवृत्ति की जाती है। इत्यादि ५५४

तृतीय सूक्त। इसके प्रथम भागका शान्त्युदककाभिमन्त्रणमें विनियोग होता है, स्वस्त्ययनकर्ममें घृत आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति दी जाती है। इसके दूसरे भागसे मेधाजननके कर्ममें आदित्यका उपस्थान आदि और उपनयनमें अग्निका उपस्थान किया जाता है। ५६०

चतुर्थसूक्त। इसके पूर्व भागसे वायुरोगोंकी चिकित्सा

विषय पृष्ठ

और उत्तरभागसे पापनक्षत्रमें उत्पन्न हुए बालकका आप्लावन आदि किया जाता है। ज्येष्ठाकी व्याख्या ५६८

पञ्चमसूक्त। इसके प्रथम भागका गंधर्व राक्षस अप्सरा भूत ग्रह आदिकी पीड़ाको शान्त करनेके कर्मोंमें प्रयोग किया जाता है। इसके दूसरे और तीसरे भागका परिवित्ति और परिवेत्ताके प्रायश्चित्तमें प्रयोग किया जाता है। ५७५

बारहवाँ अनुवाक—

इस पाँच सूक्त वाले अनुवाकका आचार्यमरणके घृत समिधा आदिके होममें विनियोग किया जाता है, खाट पर बैठ कर अन्न खाने वालोंके प्रायश्चित्तके कर्म किये जाते हैं। सवाग्निमें इससे घृतकी आहुति दीजाती है। अन्त्येष्टि में चिताके प्रदीप्त होने पर इस अनुवाकसे घृतकी आहुति देय वा समिधाओंके टुकड़े रक्खे। याम्या महाशांतिमें भी इसका पाठ होता है।

सवयज्ञोंकी ब्राह्मौदनिकाग्निमें इसके पहिले दूसरे और चौथे तृचोंसे पूर्णाहुति होमे। ब्रह्मा पहिले और दूसरे तृचों से अग्निष्टोमके तृतीयसवनके आदित्यग्रहहोमका अनुमन्त्रण करे। अग्निष्टोममें ही तृतीय सवनके अन्तमें इन दोनों तृचों से सर्वप्रायश्चित्तीय होमोंको करे। 'यद् विद्वांसः' इस तृचसे ब्रह्मा आग्रयणेष्टि वैश्वदेव चरुका अनुमन्त्रण करे। ५८८

द्वितीय तृतीय सूक्त। इसके 'यद् यामं चक्रुः' इस तृचसे परिमित घृत तैल मधुके घटने बढ़नेरूप अद्भुतके प्रायश्चित्त के लिये घृतकी आहुति देय। "अपमित्यम्" आदि तीन तृचोंसे उत्तमर्णका ऋण भुगताया जाता है। इन्हीं तीनों तृचोंका सवयज्ञके पूर्णहोममें विनियोग है। इत्यादि ५९६

विषय पृष्ठ

चतुर्थ सूक्त। इसका काठ और लोहेकी रस्सीके बंधनको खोलनेमें प्रयोग होता है। ६१३

पञ्चम सूक्त। इसके ‘एवं भागं’ और ‘एतं सधस्थाः’ इन दो भागोंसे सत्रयज्ञोंसे संस्थितहोमोंकी आहुति देय। और उनका अनुमन्त्रण करे। इनसे वैश्वकर्मण होमोंका अनुमन्त्रण होता है। “शुद्धाः पूताः” इस ऋचासे सत्रयज्ञोंमें हस्तप्रक्षालनार्थ जल देवे। ‘देवाः पितरः’ इन तीन ऋचाओंको यजमानके आर्षेयप्रवरणमें बँचवावे। ‘दिवो नु मां बृहतः’ इस तृचसे आकाशोदकस्रावनदोषकी शांतिके लिये जलको अभिमन्त्रित करके शरीरको प्रक्षालन करे। ६२१

त्रयोदश अनुवाक–

प्रथमसूक्त। इसके प्रथमभागका जयाभिलाषी राजाको रथ पर चढ़ानेमें प्रयोग होता है। इसके दूसरे भागसे परसेनात्रासनविद्वेषणकर्ममें नगाड़े आदि बाजोंको बजाना और महाव्रतमें भूमिदुन्दुभिका ताडन आदि कर्म करे ६३९

द्वितीयसूक्त। इसके पूर्वभागका जलोदर विसर्प आदि रोगोंमें प्रयोग होता है। उत्तरभागमें स्वस्त्ययनकामसे घृत आदिका होम, नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म शीघ्रता करना चाहने वालेसे ब्राह्मणकी संधियोंमें गोमय पिण्डोंका रखाना और चन्द्रग्रहणसे होने वाले अरिष्टकी शांतिके लिये होम ये कर्म होते हैं। ६४८

तृतीय चतुर्थ सूक्त। इसके पहिले भागसे सौभाग्यकामके शङ्खपुष्पिका मूलका बाँधना आदि कर्म और उत्तरभागसे तथा चतुर्थ सूक्तके दोनों भागोंसे दुष्टस्त्री वशीकरण किया जाता है। ६५५

विषय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ

पञ्चम सूक्त। इसके प्रथमभागसे अभिचारकर्मकी दीक्षा में मेखलाको सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधा जाता है। इसके उत्तरभागसे अभिचारकर्मकी दीक्षामें दण्डको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके ग्रहण करे और अन्न को अभिमन्त्रित करके खावे। ६६८

छठा और सातवाँ सूक्त। 'यद्गिरामि' और 'यद्अश्नामि' अभिचारकर्म में इन दो ऋचाओंसे अन्नको अभिमन्त्रित करके खावे। 'यत् पिबामि' ऋचासे जलको अभिमन्त्रित करके पिये। 'देवी देव्याम्' और 'यां जमदग्निः' इन दो तृचोंसे केश वृद्धिके कर्म किये जाते हैं। 'त्वं वीरुधाम्' इस पञ्चर्चसे अभिचारकर्म में मूत्रपुरीषस्थान पीटा जाता है। ६७६

अष्टमसूक्त। इसके प्रथमभागका स्त्रीवशीकरणमें प्रयोग होता है और उत्तरभाग–बालक वा बालिकाके ऊपरके दाँत पहिले निकल आवें तो उस दोषको हटानेके प्रयोगमें आता है।

नवम—सूक्त। इसके पूर्वभागसे पुष्ट्यर्थचित्राकर्म किया जाता है और उत्तरभागसे पुष्ट्यर्थबीजवापन कर्म किया जाता है। ६९५

—०—

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

पञ्चम-काण्ड

भाषानुवाद-सहित

पञ्चमे काण्डे षडनुवाकाः। तत्र प्रथमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "ऋधङ्मन्त्रः" "तदिद् आस" इति सूक्ताभ्यां हस्तिपृष्ठे पुरुषशिरसि वा निहितायाम् आश्वत्थ्यां पात्र्यां त्रिवृति गोमयपरिचये अग्निं प्रज्वाल्य आज्यम् जुह्वत् शत्रून् अभिक्रामति संग्रामजयकामः।

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि वराहखातमृत्तिकाम् आनीय राजानो वेदिं कुर्वन्ति। तथा पुरोधा आभ्यां सूक्ताभ्याम् आज्यं सक्तूंश्च जुहुयात्। धनुरिध्मे तन्त्रे धनुःसमिधः इष्विध्मे तन्त्रे इषुसमिधश्च आदधाति।अपि च धनुः संपातवद् विमृज्य अभिमंत्र्य राज्ञे प्रयच्छति

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि युद्धे एकबाणेन मृतस्य पुरुषस्य इध्मम् उपसमाधाय उपरि चक्रं धारयित्वा दीर्घदण्डेन स्रुवेण आभ्यां चक्रच्छिद्रे अग्नौ आज्यं जुहोति। उत्तिष्ठ संनह्य प्रहर युध्यस्वेत्यादिकां प्रोत्साहनवाचं श्रुत्वा युद्धे योजयेत्॥

"यदि चिन्नु त्वा" [५. २. ४] इति ऋचं परसैनिकान् अनुब्रूयात्॥

एतेषां कर्मणां विकल्पः।कृतैरवश्यं जयो भवति॥ राजा वैश्यश्चेद् उक्तानि कर्माणि "यदि चिन्नु त्वा"[५. २. ४] इति ऋचा कार्याणि। जयकामः सेनापतिश्चेद् उक्तान्येव कर्माणि "त्वया वयम्" [५. २. ५] इत्येकया ऋचा कार्याणि। युद्धयोग्यत्व-

परीक्षणकर्मणि "नि तद् दधिषे" [५. २. ६] इति ऋचा उदपात्रम् अभिमन्त्र्य तस्मिन् द्वौ द्वौ योद्धारौ राजा अवेक्षयेत् । तयोर्मध्ये यं यं न पश्येत् तं तं युधि न योजयेत् ॥ "नि तद् दधिषे" इति ऋचा नवे रथे ससारथिं राजानम् आस्थापयति ॥

सूत्रितं हि । "ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेत्याश्वत्थ्यां पात्र्यां त्रिवृति गोमयपरिचये हस्तिपृष्ठे पुरुषशिरसि वाऽमित्रान् जुह्वद् अभिक्रम्य निवपति । वराहविहिताद्ध राजानो वेदिं कुर्वन्ति । तस्यां प्रदानान्तानि । एकेष्वा हतस्यादहन उपसमाधाय दीर्घदण्डेन स्रुवेण रथचक्रस्य खेन समया जुहोति । योजनीयां श्रुत्वा योजयेत् । यदि चिन्नु त्वा [५. २. ४] नमो देववधेभ्यः [६. १३] इत्यन्वाह" इत्यादि [कौ० २. ६] ॥

तथा पुष्टिकर्मसु आभ्यां सूक्ताभ्यां मैश्रधान्यं भ्रष्टपिष्टं सक्तुम् अजालोहितमिश्रितं रस मिश्रितंच संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा तेष्वेव कर्मसु आभ्यां सूक्ताभ्यां त्रिषु उदुम्बरचमसेषु प्लक्षचमसेषु वा मैश्रधान्यं प्रक्षिप्य रसांश्च संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् । तत्र सूत्रोक्तमन्त्रैः पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णकाले एकैकचमसभक्षणम् ॥

तथा तत्रैव कर्मसु आभ्यां सूक्ताभ्यां ऋतुमत्याः स्त्रियाः लोहितं रसमिश्रितं कृत्वा संपात्याभिमन्त्र्य प्रादेशिनीमध्यमांगुलिभ्यां प्राश्नीयात् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेति मैश्रधान्यं भृष्टपिष्टं लोहितालंकृतं रसमिश्रम् अश्नाति । अभृष्टं प्लक्षोदुम्बरस्योत्तरतोग्नेस्त्रिषु चमसेषु पूर्वाह्णस्य तेजसाग्रम् अन्नस्य प्राशिषम् इति पूर्वाह्णे । मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्यम् अन्नस्य प्राशिषम् इति मध्यन्दिने । अपराह्णस्य तेजसा सर्वम् अन्नस्य प्राशिषम् इत्यपराह्णे । ऋतुमत्याः स्त्रियाः अंगुलिभ्यां लोहितम्" इति [कौ० ३. ५] ॥

१३१०

तथा क्षेत्रं कामयमानः काम्यमाने क्षेत्रे आभ्यां सूक्ताभ्यां भक्तं दधिमधुमिश्रं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् । तद् उक्तं कौशिकेन । “यत् क्षेत्रं कामयते तस्मिन् कीलालं दधिमधुमिश्रम्” [कौ॰ ३. ५] इति ॥

तथा सस्तग्रामलाभकर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः । तद्द उक्तं कौशिकेन । “संवत्सरं स्त्रियम् अनुपेत्य शुक्त्यां रेत आनीय तण्डुलमिश्रम्” इति [कौ॰ ३. ५] । संवत्सरं ब्रह्मचर्यं कृत्वा ततो मैथुनं कृत्वा रेतस्तण्डुलमिश्रं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नातीति तस्यार्थः ॥

तथा समृद्धिकर्मण्यपि विनियुज्यते सूक्तद्वयम् एतत् । “निशायाम् आग्रयणतण्डुलान् उदङ्क्यां मधुमिश्रान् निदधाति आ यवानां पक्तेः । एवं यवान् उभयान् समोप्य । त्रिवृति गोमयपरिचये श्रृतम् अश्नाति” इति [कौ॰ ३. ५] । शरदि व्रीहितण्डुलान् मधुमिश्रितांश्चर्मभाण्डे निधाय निखन्यात् आ यवपचनमासात् । तथैव यवपचनर्तौ यवानपि तादृश एव भाण्डे व्रीहिपचनकालपर्यन्तं निधाय निखन्यात् । अनन्तरं उभयान् मिश्रीकृत्य त्रिगुणिते गोमयपरिचये श्रपयित्वा संपात्याभिमन्त्र्य अश्नातीति तस्यार्थः ॥

तथा गर्भदृंहणकर्मणि “ऋधङ्मन्त्रः” इति सूक्तस्य प्रथमाया ऋचो विनियोगः । स च “यथेयं पृथिवी मही” [६. १७] इति सूक्तस्य प्रस्तावनायाम् अनुसन्धेयः ।

पञ्चम काण्डमें छः अनुवाक हैं । प्रथमकाण्डमें पाँच सूक्त हैं । संग्राममें विजय चाहनेवाला “ऋधङ्मन्त्रः” और “तदिद्द आस” इन दो सूक्तोंसे हाथीकी पीठ वा पुरुषके शिर पर रक्खी हुई पीपलकी पात्रीमें तीन गोलाईवाले गोबरके समूहमें अग्निको प्रज्वलित कर घृतकी आहुति देता हुआ शत्रुओं पर धावा करे ।

तथा राजे लोग इसी कर्ममें वराहकी खोदी हुई मृत्तिकाको लाकर

वेदी बनाते हैं। तदनन्तर पुरोहित इन दोनों सूक्तोंसे घृत और सत्तुओं की आहुति देय। जिसमें धनुषरूपी ईंधन प्रधान हो उसमें धनुषरूपी समिधाओंको और बाणरूपी ईंधन जिसमें प्रधान हो उसमें बाणरूपी समिधाओंको रक्खे। तथा पुरोहित सम्पातवाले धनुषका मार्जन कर अभिमन्त्रित कर राजाको देवे।

तथा इसी कर्ममें युद्धमें एक बाणसे मरे हुए पुरुषका ईंधन रख कर ऊपर चक्रको रक्खे फिर इन दोनों सूक्तोंको पढ़ता हुआ लम्बे दण्ड वाले स्रुवेसे चक्रके छिद्रमेंको अग्निमें घृतकी आहुति देय। और उठो, तयार हो, प्रहार करो और लड़ो आदि प्रोत्साहनके वचनोंको सुन कर युद्धमें लगा देय।

"यदि चिन्नु त्वा" इस पञ्चमकाण्डके प्रथम अनुवाकके द्वितीय सूक्तकी चतुर्थी ऋचाको शत्रुके सैनिकोंसे कहे।

इन कर्मोंमें विकल्प है। इनके करने पर विजय अवश्य ही होती है। यदि राजा वैश्य हो तो पूर्वोक्त कर्मोंको "यदि चिन्नु त्वा" इस ऋचासे कराना चाहिये। विजय चाहने वाला सेनापति हो तो पञ्चमकाण्डके द्वितीय सूक्तकी 'त्वया वयम्' इस एक पाँचवीं ऋचासे ही पूर्वोक्त कर्म करने चाहियें। यह युद्धके योग्य है अथवा नहीं इसकी परीक्षाके कर्ममें "नि तद् दधिषे" इस पञ्चमकाण्डके द्वितीय सूक्तकी छठी ऋचासे जलपूर्ण पात्रका अभिमन्त्रण कर उसमें दो दो योधाओंको राजा देखे। उनमेंसे जिस २ को न देखे उसको युद्धमें न लगावे। और 'नि तद् दधिषे' इस ऋचासे नवीन रथमें सारथिसहित राजाको बैठावे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेत्याश्वत्थ्यां पात्र्यां त्रिवृति गोमयपरिचये हस्तिपृष्ठे पुरुषशिरसि वाऽमित्रान् जुह्वद् अभिक्रम्य निवपति। वराहविहिताद् राजानो वेदिं कुर्वन्ति। तस्यां प्रदानान्तानि। एकेष्वा हतस्यादहन उप-

समाधाय दीर्घदण्डेन स्रुवेण रथचक्रस्य खेन समय जुहोति। योजनीयां श्रुत्वा योजयेत्। यदि चिन्नु त्वा (५ । २ । ४) नमो देववधेभ्यः (६ । १३) इत्यन्वाह" (कौशिकसूत्र २ । ६)।

तथा पुष्टिकर्ममें इन दोनों सूक्तोंसे मैश्रधान्य, पकी हुई पिट्ठी, और अजालोहितमिश्रित तथा रसमिश्रित सत्तुओंका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके खावे।

तथा इन्हीं कर्मोंमें इन दोनों सूक्तोंसे तीन (उदुम्बर) गूलड़के चमसों (खानेके पात्रों) में वा पिलखनके चमसोंमें †मैश्रधान्यको डाल रसों ‡ को सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे और तहाँ सूत्रमें + कहे हुए मन्त्रोंसे पूर्वाह्न मध्याह्न और अपराह्नकालमें एक २ चमसको खावे।

तथा तहाँ ही इन कर्मोंमें इन दोनों सूक्तोंसे ऋतुमती स्त्रीके रक्तको रसमिश्रित कर सम्पातन और अभिमन्त्रण करके प्रादेशिनी (अँगूठेके पासकी) अँगुली और मध्यमा (बीचकी) अँगुलियोंसे प्राशन करे।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेति मैश्रधान्यं भ्रष्टपिष्टं लोहितालंकृतं रसमिश्रं अश्नाति। अभृष्टं

---

† "व्रीहियवगोधूमोपवाकतिलप्रियंगुश्यामाका इति मिश्रधान्यानि—धान, जौ, गेहूँ, उपवाक, तिल और प्रियंगु (कङ्गनी) यह मिश्रधान्य कहलाते हैं"। (कौशिकसूत्र १ । ८)।

‡ कौशिकसूत्र १ । ८ में कहा है, कि—'दधि घृतं मधूदकमिति रसाः।—दही, घी, मधु और जल इनका नाम रस है" ॥

+ वे मन्त्र यह हैं, कि—'पूर्वाह्णस्य तेजसाग्रं अन्नस्य प्राशिषम्' यह पूर्वाह्णका मन्त्र है। "मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्यं अन्नस्य प्राशिषम्" यह मध्याह्नका मन्त्र है। और "अपराह्णस्य तेजसा सर्वं अन्नस्य प्राशिषम्" यह अपराह्णका मंत्र है। ये सत्र सूत्रोक्त मंत्र हैं

सत्त्रोदुम्बरस्योत्तरतोऽग्नेस्त्रिषु चमसेषु पूर्वाह्णस्य तेजसाग्रं अन्नस्य प्राशिषम् इति पूर्वराह्णे । मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्यं अन्नं प्राशिषं इति मध्यन्दिने अपराह्णस्य तेजसा सर्वं अन्नं प्राशिषं इत्यपराह्णे ऋतुमत्याः स्त्रिया अंगुलिभ्याम् लोहितम् ॥

तथा खेतको चाहने वाला अभिलषित क्षेत्रमें इन दोनों सूक्तों से दही और मधु मिले हुए भक्त (भात) को सम्पातन और अभिमन्त्रण करके खावे, इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि "यत् क्षेत्रं कामयते तस्मिन् कीलालं दधिमधुमिश्रं" (कौशिकसूत्र ३ । ५) ॥

तथा सप्तग्रामलाभकर्ममें इस सूक्तका विनियोग है। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-'सम्वत्सरं स्त्रियं अनुपेत्य शुक्त्यां रेत आनीय तण्डुलमिश्रम्' (कौशिकसूत्र ३ । ५)। इसका अर्थ यह है, संवत्सर तक ब्रह्मचर्य रख तदनन्तर मैथुन कर वीर्यको चावलों में मिला कर सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ।

तथा समृद्धिकर्ममें भी इन दोनों सूक्तोंका विनियोग होता है। 'निशायां आग्रयणतण्डुलान् उदङ्क्यां मधुमिश्रान् निदधाति आ यवानां पक्तेः । एवं यवान् उभयान् समोप्य । त्रिवृति गोमयपरिचये श्रृतं अश्नाति ।" (कौशिकसूत्र ३ । ५)। इसका अर्थ यह है, कि-मधुमिश्रित धान और चावलोंको चर्मके पात्रमें रख कर जौं पकने तक दाव देय। इसी प्रकार जौंके पकनेकी ऋतुमें जौंको भी वैसे ही पात्रमें धानोंके पकनेके समय तक खोद कर दावे रक्खे। तदनन्तर दोनोंको मिला कर तिगुने गोवरके ढेरमें औटा कर सम्पातन और अभिमन्त्रण करके प्राशन करे ।

तथागर्भको दृढ़ करनेके प्रयोगमें इस सूक्तकी प्रथम ऋचा "ऋधङ्मन्त्रः" का विनियोग होता है। उसको 'यथेयं पृथिवी' इस छठे काण्डके सत्रहवें सूक्तकी प्रस्तावनामें खोजना चाहिये ।

ऋधङ्मंत्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा
अदब्धासुर्भ्राजमानोहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि १

ऋधक्ऽमन्त्रः । योनिम् । यः । आऽबभूव । अमृतऽअसुः । वर्धमानः । सुऽजन्मा ।
अदब्धऽअसुः । भ्राजमानः । अहाऽइव । त्रितः । धर्ता । दाधार । त्रीणि ॥ १ ॥

जो दिनकी समान प्रकाशित रहता है, और तीनों लोकोंका पालक और रक्षक है, जिसने तीनों लोकों धारण किया है । वह अहिंसित प्राणवाला, अमरणशील प्राण वाला, सुन्दर जन्म लेकर (शरीररूपमें) बढ़नेवाला, समृद्धिसम्पन्न, मननशील (आत्मा) योनिमें प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत

आ । यः । धर्माणि । प्रथमः । ससाद । ततः । वपूंषि । कृणुषे । पुरूणि ।
धास्युः । योनिम् । प्रथमः । आ । विवेश । आ । यः । वाचम् । अनुदिताम् । चिकेत ॥ २ ॥

जो पहिला (जीवात्मा) धर्ममय कर्मोंको करता है तो बहुत से (श्रेष्ठ) शरीरोंको प्राप्त होता है । यह जो अस्पष्ट वाणीको

संज्ञाओंके द्वारा करता है, यह अन्नको चाहता हुआ (अन्नस्वरूप होकर) योनिको प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

यस्ते॒ शोका॑य त॒न्वं॑ रि॒रेच॒ क्षर॒द्धिर॑ण्यं॒ शुच॒योनु॒ स्वाः ।
अत्रा॑ दधेते अ॒मृता॑नि॒ नामा॒स्मे वस्त्रा॑णि॒ विश॒
एर॑यन्ताम् ॥ ३ ॥

यः । ते॒ । शोका॑य । त॒न्व॑म् । रि॒रेच॑ । क्षर॑त् । हिर॑ण्यम् ।
शुच॑यः । अनु॑ । स्वाः ।
अत्र॑ । द॒धे॒ते॒ इति॑ । अ॒मृता॑नि । नाम॑ । अ॒स्मे इति॑ । वस्त्रा॑णि ।
विशः॑ । आ । ई॒र॒य॒न्ता॒म् ॥ ३ ॥

जो आत्मा धर्मपालनसे कष्ट सहकर धर्मका प्रकाश फैलानेके लिये सुवर्ण (की समान) अपनी कान्तियोंको फैलाता हुआ तेरे शरीरमें प्रविष्ट हुआ है । (ऐसे धर्माचरण करने वालेके लिये द्यावापृथिवी) अमर नाम देते हैं (ऐसे पुरुषके लिये) प्रजाएँ वस्त्र देती हैं ॥ ३ ॥

प्र यदे॒ते प्र॑त॒रं पू॒र्व्यँ गुः सद॑ःसद आ॒तिष्ठ॑न्तो अजु॒र्यम् ।
क॒विः शु॒षस्य॑ मा॒तरा॑ रिहा॒णे जा॒म्यै धु॒र्यँ पति॒मेर॑येथाम् ४

प्र । यत् । ए॒ते । प्र॒ऽत॒रम् । पू॒र्व्यम् । गुः । सदः॑ऽसदः । आ॒ऽतिष्ठ॑न्तः ।
अ॒जु॒र्यम् ।
क॒विः । शु॒षस्य॑ । मा॒तरा॑ । रि॒हा॒णे इति॑ । जा॒म्यै । धुर्य॑म् । पति॑म् ।
आ । ई॒र॒ये॒था॒म् ॥ ४ ॥

जो प्रत्येक स्थानमें बैठ बैठ, अजर, वर्णोंमें पहिले ब्राह्मणोंके हितकारी ईश्वरका चिन्तवन कर ईश्वरको प्राप्त होगए हैं (उनकी समान ही) इस बुद्धिमान् और बली राजाके माता पितारूप द्यावापृथिवीके अभिमानी देवता परमात्माकी स्तुति कर भगिनी (की समान हितैषिणी इस प्रजा) के लिये भारवहन करनेमें समर्थ इस पालक राजाको ही प्राप्त करावें ॥ ४ ॥

तदू॒ षु ते॑ म॒हत् पृ॑थुज्म॒न् नम॑ः क॒विः काव्ये॑ना कृणोमि ।
यत् स॒म्यञ्चा॑व॒भि॒यन्ता॑व॒भि क्षाम॒त्रा॑ म॒ही रोध॑चक्रे
वावृ॒धेते॑ ॥ ५ ॥

तत् । ऊ॒ं इति॑ । सु । ते॒ । म॒हत् । पृ॒थु॒ऽज्म॒न् । नम॑ः । क॒विः ।
काव्ये॑न । कृ॒णो॒मि॒ ।
यत् । स॒म्यञ्चौ॑ । अ॒भि॒ऽयन्तौ॑ । अ॒भि । क्षाम् । अत्र॑ । म॒ही
इति॑ । रोध॑चक्रे॒ इति॒ रोध॑ऽचक्रे । व॒वृ॒धे॒ते॒ इति॑ ॥ ५ ॥

क्योंकि—परमपूजनीय पृथ्वीको स्थिर रखनेवाले दो राजे चक्रकी समान गतिसे इस पृथ्वी पर बढ़ रहे हैं, इसकारण हे विशाल पृथ्वीके अभिमानी देवता ! मैं अथर्ववेदकी विद्यामें चतुर पुरुष अपनी शास्त्रकुशलतासे आपके लिये बड़े भारी अन्न आदिकी हवि देता हूँ ॥ ५ ॥

स॒प्त म॒र्यादा॑ः क॒वय॑स्ततक्षु॒स्तासा॒मिदेका॑म॒भ्यं॑हु॒रो गा॑त् ।
आ॒योर्ह॑ स्क॒म्भ उ॑प॒मस्य॑ नी॒डे प॒थां वि॑स॒र्गे ध॒रुणे॑षु तस्थौ

स॒प्त । म॒र्या॑दाः । क॒वय॑ः । त॒त॒क्षु॒ः । तासा॑म् । इत् । एका॑म् ।
अ॒भि । अं॒हु॒रः । गा॒त् ।
आ॒योः । ह॒ । स्क॒म्भः । उप॑मस्य । नी॒डे । प॒थाम् । वि॒ऽस॒र्गे ।
ध॒रुणे॑षु । त॒स्थौ॒ ॥ ६ ॥

हिरण्यगर्भ मनु आदि महानुभाव चतुर ऋषि आदिने चोरी गुरुकी दारासे गमन, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या सुरापान, पापकर्मका बारम्वार सेवन करना और पातक बन जाने पर झूँठ बोलना इन सातोंकी निषेधरूप † सात मर्यादायें सूक्ष्मविचार करके बाँधी हैं, जो इन मर्यादाओंमेंसे एक मर्यादाका भी उल्लंघन करता है वह पापी होता है (और जो इनका कभी उल्लंघन न करता हुआ इनका सदा पालन करता है वह), सूर्यदेवके मण्डलमें सब भूतों का उपनिर्माण करने वाले आदित्यके भीतर विराजमान पुरुषके स्थानमें जो महाप्रलयपर्यन्त धारण करने वाले स्थान हैं उनमें विषयोंके प्रवेशकी मार्गरूप इन्द्रियोंके त्यागनेके समय (मृत्युके समय) स्थित होता है ॥ ६ ॥

उ॒तामृता॑सुर्व्रत॑ एमि कृ॒ण्वन्नसु॑रा॒त्मा त॒न्व॑१॒स्तत् सु॒मद्गु॑ः
उ॒त वा॑ श॒क्रो रत्न॒ं दधा॑त्यू॒र्जया॑ वा॒ यत् सचे॑ते हवि॒र्दाः ७

उ॒त । अ॒मृत॑ऽअसुः । व्रत॑ः । ए॒मि॒ । कृ॒ण्वन् । असु॑ः । आ॒त्मा ।
त॒न्व॑ः । तत् । सु॒मत्ऽगु॑ः ।
उ॒त । वा॒ । श॒क्रः । रत्न॑म् । दधा॑ति । ऊ॒र्जया॑ । वा॒ । यत् । सचते॑ ।
ह॒वि॒ःऽदाः ॥ ७ ॥

---

† इस मन्त्रके सम्बन्धमें निरुक्त ६ । २७ प्रमाण है ।

शरीरसे सम्बन्ध रखने वाला स्वयंप्रकाश, अमरणशील प्राण वाला व्रतधारी मैं प्राण (बल) को प्रकट करता हुआ (युद्ध में) आरहा हूँ । जो हविको देने वाला बलके साथ (युद्धका) सेवन करता है (उसको) इन्द्रदेव रत्न देते हैं ॥ ७ ॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि

उत । पुत्रः । पितरम् । क्षत्रम् । ईडे । ज्येष्ठम् । मर्यादम् । अह्वयन् ।
स्वस्तये ।
दर्शन् । नु । ताः । वरुण । याः । ते । विऽस्थाः । आऽवर्व्रततः ।
कृणवः । वपूंषि ॥ ८ ॥

पुत्र अपने क्षतसे रक्षा करने वाले क्षत्रिय पिताकी पूजा करे और कल्याण पानेके लिये ज्येष्ठ मर्यादामय धर्मका आह्वान करे, हे वरुणदेव ! आपके जो अनेक स्थान हैं, उनको दिखाते हुए आप इस वारम्बार घूमने वाले संसारके प्राणियोंके शरीरोंको रचते हैं ॥ ८ ॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ९

अर्धम् । अर्धेन । पयसा । पृणक्षि । अर्धेन । शुष्म । वर्धसे । असुर ।
अविम् । वृधाम । शग्मियम् । सखायम् । वरुणम् । पुत्रम् ।
अदित्याः । इषिरम् ।

क॒वि॒ऽश॒स्तानि॑ । अ॒स्मै॒ । वपूं॑षि । अ॒वो॒चा॒म॒ । रोद॑सी॒ इति॑ ।

स॒त्य॒ऽवाचा॑ ॥ ६ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अदितिके पुत्र गमनशील सुखके पात्र मित्र वरुणको हम (हवि के द्वारा) बढ़ाते हैं, हे किसीसे न घिरे हुए बलवान् वरुण ! आप इस बढ़े हुए सेनादलको आधे दुग्ध आदिसे बढ़ाते हैं और आधे (जल आदि भागसे) स्वयं बढ़ते रहते हैं हे द्यावापृथिवी के अभिमानी देवताओं ! चतुर ऋषियोंसे प्रशंसित (इन वरुण-देवके जल घृत दूध आदि) शरीरोंको हम इनसे (स्तुतिरूपमें) कहते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम काण्डके प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१४३) ॥

“तदिद् आस” इति सूक्तस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥ तथा सर्वफलकामोऽनेन सूक्तेन इन्द्राग्नी यजते उपतिष्ठते वा । तद् उक्तं कौशिकेन । “तदिद् आस [५. २] धीती वा [७. १] इतीन्द्राग्नी ’ इति [कौ० ७. १०] ॥

“तदिदास” सूक्तका विनियोग पहिले सूक्तके साथ कहदिया तथा सब फलोंको चाहने वाला इस सूक्तसे इन्द्र और अग्नि-देवका यजन वा उपस्थान करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि ‘तदिद् आस (५ । २) धीती वा (७ । १) इतीन्द्राग्नी इति (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यदे॑नं॒ मद॑न्ति॒
विश्व॒ ऊमाः॑ ॥ १ ॥

तत् । इत् । आस । भुवनेषु । ज्येष्ठम् । यतः । जज्ञे । उग्रः । त्वेषऽनृम्णः ।
सद्यः । जज्ञानः । नि । रिणाति । शत्रून् । अनु । यत् । एनम् ।
मदन्ति । विश्वे । ऊमाः ॥ १ ॥

क्योंकि–यह इन्द्रदेव धनवान् और बलवान् हैं, इस कारण भुवनोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं, यह प्रकट होते ही शत्रुओंको मारने लगते हैं, इसी लिये इनके ऊमा (रक्षक सैनिक) इनके प्रकट होनेके साथ ही आनन्दमें भर जाते हैं ॥ १ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु २

वावृधानः । शवसा । भूरिऽओजाः । शत्रुः । दासाय । भियसम् । दधाति ।
अविऽअनत् । च । विऽअनत् । च । सस्नि । सम् । ते । नवन्त । प्रऽभृता । मदेषु ॥ २ ॥

महाबलवान् बलसे बढ़ता हुआ शत्रु दासोंको भय देता है । स्थावर और जङ्गम सारा जगत् (परब्रह्ममें) शयन करता है, अर्थात् लीन होजाता है, अतः भली प्रकार वेतन आदि देकर रक्खे हुए (सैनिक) हर्षके अवसर युद्धोंमें उस परमात्माकी स्तुति कर (युद्धमें प्रवृत्त होजा) ते हैं ॥ २ ॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सुमधु मधु-

नाभि योधीः ॥ ३ ॥

त्वे इति । क्रतुम् । अपि । पृञ्चन्ति । भूरि । द्विः । यत् । एते ।
त्रिः । भवन्ति । ऊमाः ।
स्वादोः । स्वादीयः । स्वादुना । सृज । सम् । अदः । सु । मधु ।
मधुना । अभि । योधीः ॥ ३ ॥

जो यह जन्म और संस्कारसे दो वार उत्पन्न होते हैं और युद्धदीक्षा से तीन वार उत्पन्न होते हैं, ये बड़े भारी यज्ञको आप में संयुक्त करते हैं (ऐसे हे) स्वादिष्ट पदार्थोंको स्वादु बनाने वाले आप स्वादु पदार्थोंसे (इन योधाओंको) संयुक्त करिये। और हे सुन्दर जल वाले इन्द्र देव ! आप (योधाओंमें प्रविष्ट होकर) मधुर रीतिसे युद्ध करिये ॥ ३ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥

यदि । चित् । नु । त्वा । धना । जयन्तम् । रणेऽरणे । अनुऽमदन्ति । विप्राः ।
ओजीयः । शुष्मिन् । स्थिरम् । आ । तनुष्व । मा । त्वा । दभन् ।
दुःऽएवासः । कशोकाः ॥ ४ ॥

(पुरोहित राजाको लक्ष्य करके कहता है, कि—) प्रत्येक रण में धनोंको जीतने वाले आपकी ब्राह्मण यदि स्तुति करते हैं तो

हे बलवान् ! आप उनमें स्थिर (धन रूप) बल फैलाइये, सुख में दुःख करने वाले अत एव दुर्गति पाने वाले पुरुष आपको प्राप्त न हों ॥ ४ ॥

त्वया॑ व॒यं शा॑शद्महे॒ रणे॑षु प्र॒पश्य॑न्तो यु॒धेन्या॑नि॒ भूरि॑ ।
चो॒दया॑मि त॒ आयु॑धा॒ वचो॑भिः॒ सं ते॑ शिशामि॒ ब्रह्म॑णा॒
वयां॑सि ॥ ५ ॥

त्वया॑ । व॒यम् । शा॒श॒द्म॒हे॒ । रणे॑षु । प्र॒ऽपश्य॑न्तः । यु॒धेन्या॑नि । भूरि॑ ।
चो॒दया॑मि । ते॒ । आयु॑धा । वचः॑ऽभिः । सम् । ते॒ । शि॒शा॒मि॒ ।
ब्रह्म॑णा । वयां॑सि ॥ ५ ॥

हम देखते २ आपके द्वारा युद्धोंमें बहुतसे दूसरे पक्षवालोंका संहार कराये डालते हैं, मैं अपने तपःसिद्ध वचनोंसे आपके आयुधों को प्रेरित करता हूँ और मन्त्रके द्वारा आपके पक्षीकीसी गति वाले बाणोंको तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ५ ॥

नि तद् द॑धि॒षेव॑रे॒ परे॑ च॒ यस्मि॒न्नावि॒थाव॑सा दुरो॒णे ।
आ स्था॑पयत मा॒तरं॑ जिग॒त्नुमत॑ इन्वत॒ कर्व॑राणि॒ भूरि॑ ६

नि । तत् । द॒धि॒षे॒ । अव॑रे । परे॑ । च॒ । यस्मि॑न् । आवि॑थ ।
अव॑सा । दु॒रो॒णे ।
आ । स्था॒प॒य॒त॒ । मा॒तर॑म् । जि॒ग॒त्नुम् । अत॑ः । इ॒न्व॒त॒ । कर्व॑राणि । भूरि॑ ॥ ६ ॥

जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियोंने धारण किया है और

जिस घरमें अन्नसे रक्षा पाई है उसमें चलती फिरती कालिका माता शक्तिको स्थापित करो, तदनन्तर अनेक विचित्र पदार्थों को इसमें लाओ ॥ ६ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमा-
प्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं
पृथिव्याः ॥ ७ ॥

स्तुष्व । वर्ष्मन् । पुरुऽवर्त्मानम् । सम् । ऋभ्वाणम् । इनऽतमम् ।
आप्तम् । आप्त्यानाम् ।
आ । दर्शति । शवसा । भूरिऽओजाः । प्र । सक्षति । प्रतिऽमानम् ।
पृथिव्याः ॥ ७ ॥

हे शरीरधारिन्! अनेक मार्गों (में विचरण करने) वाले परमतेजस्वी, श्रेष्ठ स्वामी, आप्त पुरुषोंके गुणोंको प्राप्तहुए (राजा की) स्तुति कर। यह पृथिवीकी प्रतिमारूप महाबलवान् राजा (युद्धभूमिको) दिखाता हुआ (युद्धमें) संलग्न होरहा है ॥७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत्
तपस्वान् ॥ ८ ॥

इमा । ब्रह्म । बृहत्ऽदिवः । कृणवत् । इन्द्राय । शूषम् । अग्रियः ।
स्वःऽसाः ।

म॒हः । गो॒त्रस्य॑ । क्ष॒य॒ति॒ । स्व॒ऽराजा॑ । तुरः॑ । चि॒त् । वि॑श्व॑म् ।

अ॒र्ण॒व॒त् । तप॑स्वान् ॥ ८ ॥

स्वर्गका सेवन करनेकी इच्छावाला यह श्रेष्ठ राजा, महास्वर्ग के (अधिपति) इन्द्रके लिये इन बड़े २ स्तोत्रोंको करता हुआ (इन्द्रको) सुख (देता है) और स्वर्गका राजा शीघ्रता करने वाला तपस्वी इन्द्र मेघके जलका क्षय करता हुआ अर्थात् उसको बरसाता हुआ जगत्को जलपूर्ण (करता है) ॥ ८ ॥

ए॒वा म॒हान् बृ॒हद्दि॑वो॒ अथ॒र्वावो॑च॒त् स्वां त॒न्व॑१मि॒न्द्रमे॒व

स्वसा॑रौ मात॒रिभ्व॑री अरि॒प्रे हि॒न्वन्ति॑ चै॒ने शव॑सा

व॒र्धय॑न्ति च ॥ ९ ॥

ए॒व । म॒हान् । बृ॒हत्ऽदि॑वः । अथ॑र्वा । अवो॑चत् । स्वाम् ।

त॒न्व॑म् । इन्द्र॑म् । ए॒व ।

स्वसा॑रौ । मा॒त॒रिभ्व॑री॒ इति॑ । अ॒रि॒प्रे इति॑ । हि॒न्वन्ति॑ । च॒ । ए॒ने॒

इति॑ । शव॑सा । व॒र्धय॑न्ति । च॒ ॥ ९ ॥

इति प्रथमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

अपने शरीरको इन्द्र मानते हुए परमप्रकाशवान् महर्षि अथर्वा ने इस प्रकार कहा था, कि—निष्पाप मातरिभ्वरी बहिनें इसको प्रसन्न करती हैं और बलसे बढ़ाती हैं ॥ ९ ॥

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१४४) ॥

दर्शपूर्णमासयोः समिदाधाने "ममाग्ने वर्चः" इति सूक्तस्य विनियोगः । तदु उक्तं कौशिकेन । "ममाग्ने वर्च इति समिध आधाय" इति [कौ० १. १] ॥

तथा वर्चस्यकर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः । "पूर्वस्य ममाग्ने वर्च इति वर्चस्यानि" इत्यादि [कौ० २. ३] सूत्रम् । एतद्विस्तरः "ये त्रिषप्ताः" इति सूक्ते [१. १] द्रष्टव्यः ॥

तथा पुष्टिकर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः । तत्र "ममाग्ने वर्च इति सान्त्रिकान्" इत्यादि सूत्रम् [कौ० ३. ५] ॥

तथा विभागकर्मणि कलहाभावम् इच्छन् पिता अनेन सूक्तेन तैलिकस्य रज्जुम् अभिमन्त्र्य धारयति हस्तेन । "ममाग्ने वर्च इति विभुङ्क्ष्यमाणः प्रमत्तरज्जुं धारयति" [कौ० ५. २] इति सूत्रात् ॥ विभुङ्क्ष्यमाणः विभागं करिष्यन् । प्रमत्तरज्जुश्चाक्रिकाणाम् अवलम्बनरज्जुः ॥

तथा आभिचारिके कर्मणि अनेन सूक्तेन बृहस्पतिशिरसम् ओदनं पृषातकेनोपसिञ्चेत् । तद् उक्तं कौशिकेन । "ममाग्ने वर्च इति बृहस्पतिशिरसं पृषातकेनोपसिच्य" इति [कौ० ६. ३] ॥

तथा "कौबेरीं धनकामस्य धनक्षये च" इति [न० क० १७] विहितायां कौबेर्यां महाशान्तौ एतत् सूक्तम् योजयेत् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "ममाग्ने वर्च इति कौबेर्याम्" इति [न० क० १८]॥

तथा हस्त्यश्वदीक्षाख्ये कर्मणि अनेन सूक्तेन जुहुयात् । तद् उक्तं परिशिष्टे । "ममाग्ने वर्चः इति जुहुयात्" [प० १६] इति ॥ अन्यत्रापि व्रतग्रहणादौ अस्य सूक्तस्य विनियोगः ॥

दर्श और पूर्णमास यागकी समिधाओंके आधानमें इस सूक्त का विनियोग है । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि– "ममाग्ने वर्च इति समिध आधाय" (कौशिक सूत्र १ । १)

तथा वर्चस्यकर्ममें इस सूक्तका विनियोग है । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि--'पूर्वस्य ममाग्ने वर्चस्यानि' (कौशिक सूत्र २ । ३) इसका विस्तार "ये त्रिषप्ताः" इस प्रथमकाण्डके प्रथम सूक्तमें देखना चाहिये ।

तथा पुष्टिकर्ममें भी इस सूक्तका विनियोग है । कौशिकसूत्र ३ । ५ में कहा है, कि–'ममाग्ने वर्च इति सात्रिकान्' ।

तथा विभागकर्ममें कलहके अभावको चाहने वाला पिता इस सूक्तसे तैलिककी रस्सीका अभिमन्त्रण करके हाथसे धारण करे। इसी बातको कौशिकसूत्र ५ । २ में कहा, कि–'ममाग्ने वर्च इति विभुंक्षमाणः प्रमत्तरज्जुं धारयति' ।

तथा आभिचारिक कर्ममें बृहस्पतिशिरस ओदनको पृषातकसे सींचें । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'ममाग्ने वर्च इति बृहस्पतिशिरसं पृषातकेनोपसिच्य' (६ । ३) । तथा 'कौबेरीं धनकामस्य धनक्षये च ॥–धनकी कामना वालेके धनक्षयमें कौबेरी महाशान्तिको करे ।" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित कौबेरी महाशान्तिमें इस सूक्तको पढ़े । इसी बातको नक्षत्रकल्प अठारहमें कहा है, कि–ममाग्ने वर्च इति कौबेर्याम्" ।

तथा हस्त्यश्वदीक्षा नाम वाले कर्ममें इस सूक्तसे आहुति देय। इसी बातको परिशिष्टमें कहा है, कि–'ममाग्ने वर्च इति जुहुयात्' (परिशिष्ट १६) । अन्यत्र व्रतग्रहण आदिमें भी इस सूक्तका विनियोग है ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम १

मम । अग्ने । वर्चः । विऽहवेषु । अस्तु । वयम् । त्वा । इन्धानाः ।
तन्वम् । पुषेम ।
मह्यम् । नमन्ताम् । प्रऽदिशः । चतस्रः । त्वया । अधिऽअक्षेण ।
पृतनाः । जयेम ॥ १ ॥

हे अग्ने ! युद्धोंमें मेरा तेज प्रकट होवे, हम आपको प्रदीप्त करते हुए अर्थात् अग्निहोत्र आदि करते हुए अपने शरीरको पुष्ट करें। चारों दिशाएँ अर्थात् चारों दिशाओंमें रहने वाले प्राणी मुझसे नमें, आप अध्यक्ष (कृपापूर्ण दृष्टि रखने वाले) के द्वारा हम इस सेनाको जीतें ॥ १ ॥

अग्ने॑ म॒न्युं प्र॑ति॒नुद॒न् परे॑षां॒ त्वं नो॑ गो॒पा परि॑ पाहि
विश्वतः॑ ।
अपा॑ञ्चो यन्तु नि॒वता॑ दु॒र॒स्यवो॑मैषां॑ चि॒त्तं प्र॒बुधां॒ वि
नेशत् ॥ २ ॥

अग्ने॑ । म॒न्युम् । प्र॒ति॒ऽनु॒दन् । परे॑षाम् । त्वम् । न॒ः । गो॒पाः ।
परि॑ । पा॒हि॒ । वि॒श्वतः॑ ।

अपा॑ञ्चः । य॒न्तु॒ । नि॒ऽवता॑ । दु॒र॒स्यवः॑ । अ॒मा । ए॒षा॒म् । चि॒त्तम् ।
प्र॒ऽबुधा॑म् । वि । ने॒शा॒त् ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रुओंके क्रोधको दूर करते हुए हमारी चारों ओरसे भली प्रकार रक्षा करिये। दुःखदायकरीतिसे बाणों को छोड़ना चाहने वाले नम्र बनते हुए अलग निकल जावें। इन युद्ध चाहने वालोंके चित्तोंको अमावस्या नष्ट कर देय ॥२॥

मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्वे॒ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः ।
ममा॒न्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वातः॑ पवतां॒ कामा॑या॒स्मै

मम॑ । दे॒वाः । वि॒ऽह॒वे । स॒न्तु॒ । सर्वे॑ । इन्द्र॑ऽवन्तः । म॒रुतः॑ ।
विष्णुः॑ । अ॒ग्निः ।

मम । अन्तरिक्षम् । उरुऽलोकम् । अस्तु । मह्यम् । वातः । पवताम् । कामाय । अस्मै ॥ ३ ॥

इन्द्रसहित मरुत् विष्णु और अग्निदेव (आदि) सब देवता युद्धमें मेरे अनुकूल रहें अन्तरिक्ष मेरा उरुलोक हो अर्थात् अन्तरिक्षमें गन्धर्व अप्सरा आदि मेरा बड़ा यशोगान करें और इस कामनाके लिये वायु मेरे लिये (अनुकूल होकर) चले ॥ ३ ॥

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि
रक्षन्तु मेह ॥ ४ ॥

मह्यम् । यजन्ताम् । मम । यानि । इष्टा । आऽकूतिः । सत्या । मनसः । मे । अस्तु ।

एनः । मा । निः । गाम् । कतमत् । चन । अहम् । विश्वे । देवाः । अभि । रक्षन्तु । मा । इह ॥ ४ ॥

मेरे जो मानसिक अभिलषित संकल्प हैं वे सत्य हों, किसी भी पापको मैं प्राप्त न होऊँ, विश्वेदेवा इसमें कर्ममें मेरी रक्षा करें ४

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूति
दैवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीरा

मयि । देवाः । द्रविणम् । आ । यजन्ताम् । मयि । आऽशीः । अस्तु । मयि । देवऽहूतिः ।

दैवाः । होतारः । सनिषन् । नः । एतत् । अरिष्टाः । स्याम ।
तन्वा । सुऽवीराः ॥ ५ ॥

देवता मुझमें धनकी संगति करें, देवताओंका आह्वान करना और देवताओंका आशीर्वाद मुझमें हो, हमारे पास देवताओंके होता भली प्रकार बैठें, हम शरीरसे सुवीर और अरिष्ट रहें ५

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना
द्वेष्या या ॥ ६ ॥

दैवीः । षट् । उर्वीः । उरु । नः । कृणोत । विश्वे । देवासः ।
इह । मादयध्वम् ।
मा । नः । विदत् । अभिऽभाः । मो इति । अशस्तिः । मा ।
नः । विदत् । वृजिना । द्वेष्या । या ॥ ६ ॥

पृथिवी आकाश जल औषधि और दिन रात इन छः दिव्य उर्वियोंको हमारे लिये विस्तृतरूपमें करिये । हे विश्वेदेवा वा संपूर्ण देवताओं ! तुम इस कर्ममें प्रसन्न होओ, तिरस्कार हमें प्राप्त न हो अकीर्ति भी हमें न प्राप्त हो, और द्वेष करने योग्य पाप भी हमें प्राप्त न हो ॥ ६ ॥

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३
यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम
राजन् ॥ ७ ॥

तिस्रः । देवीः । महि । नः । शर्म । यच्छत । प्रऽजायै । नः ।
तन्वे । यत् । च । पुष्टम् ।

मा । ह्वास्महि । प्रऽजया । मा । तनूभिः । मा । रधाम । द्विषते ।
सोम । राजन् ॥ ७ ॥

ऋग्वेदसंहिता ८ । ६ । ९ । २ में वर्णित भारती (सूर्यकी कान्ति), पृथ्वी और सरस्वती तीनों देवियों ! आप हमें बड़ा भारी कल्याण दीजिये–प्राप्त कराइये । जो पुष्ट वस्तुएँ हैं उनको हमारे शरीर और प्रजाओंको दीजिये । हम प्रजा और पशुओंसे क्षीण न होवें, हे सोम राजन् ! हम शत्रुओंके लिये दुःखित न होवें ॥ ७ ॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः
पुरुक्षु ।

स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः

उरुऽव्यचाः । नः । महिषः । शर्म । यच्छतु । अस्मिन् । हवे ।
पुरुऽहूतः । पुरुऽक्षु ।

सः । नः । प्रऽजायै । हरिऽअश्व । मृड । इन्द्र । मा । नः । रीरिषः ।
मा । परा । दाः ॥ ८ ॥

नदीरूप गमन वाले, महत्व आदि गुणोंसे सम्पन्न, महान् अन्नभण्डारसंपन्न हरे अश्ववाले इन्द्र ! इस युद्धमें वा यज्ञमें आप हमको सुख देवें । वह इन्द्रदेव हमारे सन्तानको नष्ट न करें और त्याग भी न करें ॥ ८ ॥

धा॒ता वि॑धा॒ता भुव॑नस्य॒ यस्पति॑र्दे॒वः स॑वि॒ताभि॑माति॒षाहः॑
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा अ॒श्विनो॒भा दे॒वाः पा॑न्तु॒ यज॑मानं
निर्ऋ॒थात् ॥ ९ ॥

धा॒ता । वि॒ऽधा॒ता । भुव॑नस्य । यः । पतिः॑ । दे॒वः । स॒वि॒ता । अ॒भि॒ऽमा॒ति॒ऽसा॒हः ।

आ॒दि॒त्याः । रु॒द्राः । अ॒श्विना॑ । उ॒भा । दे॒वाः । पा॒न्तु॒ । यज॑मानम् । निः॒ऽऋ॒थात् ॥ ९ ॥

धाता विधाता, शत्रुओंको दबाने वाले भुवनपति सूर्यदेव, आदित्य, रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार यजमानको पापसे बचावें ९

ये नः॑ स॒पत्ना॒ अप॒ ते भ॑वन्त्विन्द्रा॒ग्निभ्या॒मव॑ बाधामह एनान् ।
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा उ॑परि॒स्पृशो॑ न उ॒ग्रं चे॒त्तार॑मधिरा॒जम॑क्रत

ये । नः॒ । स॒ऽप॒त्नाः । अप॑ । ते । भ॒व॒न्तु॒ । इ॒न्द्रा॒ग्निऽभ्या॑म् । अव॑ । बा॒धा॒म॒हे॒ । ए॒ना॒न् ।

आ॒दि॒त्याः रु॒द्राः । उ॒प॒रि॒ऽस्पृशः॑ । नः॒ । उ॒ग्रम् । चे॒त्तार॑म् । अ॒धि॒ऽरा॒जम् । अ॒क्र॒त ॥ १० ॥

जो हमारे शत्रु हैं वे नष्ट होजावें इन्द्र और अग्निके द्वारा हम इनको बाधित करते हैं, ऊपर (स्वर्ग) का स्पर्श करने वाले आदित्य और रुद्रोंने हमको उग्र चेतावनी देने वाला राजा दिया है

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ११

अर्वाञ्चम् । इन्द्रम् । अमुतः । हवामहे । यः । गोऽजित् । धनऽजित् । अश्वऽजित् । यः ।

इमम् । नः । यज्ञम् । विऽहवे । शृणोतु । अस्माकम् । अभूः । हरिऽअश्व । मेदी ॥ ११ ॥

इति प्रथमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

जो पृथ्वीको जीतने वाले हैं, धनको जीतने वाले हैं, घोड़ोंको जीतने वाले हैं उन शत्रुओंके सामने डटने वाले इन्द्रको हम परलोकसे बुलाते हैं, हमारे इस पूजनको वह युद्धमें सुनें, हे हर्यश्व इन्द्र ! आप हमारे स्नेही बनिये ॥ ११ ॥

प्रथम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (१४१) ।

"यो गिरिष्वजायथाः" इति सूक्तेन राजयक्ष्मकुष्ठादिरोगशान्त्यर्थं कुष्ठाख्यौषधिमिश्रितं नवनीतम् अभिमन्त्र्य प्रतिलोमं व्याधितशरीरं प्रलिम्पेत् । 'कुष्ठलिङ्गाभिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिम्पति' इति [कौ० ४. ४] सूत्रात् ॥

'यो गिरिष्वजायथाः' इस सूक्तसे राजयक्ष्मा कुष्ठ आदि रोगोंकी शांतिके लिये कूट नामक औषधिसे मिले हुए मक्खनको अभिमन्त्रित करके रोगीको प्रतिलोमरूपसे लेपे । इसी बातको कौशिकसूत्र ४ । ४ में कहा है, कि—"कुष्ठलिंगाभिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिम्पति" ।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१॥

यः । गिरिषु । अजायथाः । वीरुधाम् । बलवत्ऽतमः ।
कुष्ठ । आ । इहि । तक्मऽनाशन । तक्मानम् । नाशयन् । इतः ॥

जो औषधियोंमें बलबान् औषधि पर्वतोंमें उत्पन्न हुई है, हे जीवनको कठिनतासे वितानेकी अवस्था ला डालने वाले रोगों की नाशक कूट औषधि ! जीवनको कष्टमें विताने वाले रोगको नष्ट करती हुई तू यहाँ आ ॥ १ ॥

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥२॥

सुपर्णऽसुवने । गिरौ । जातम् । हिमऽवतः । परि ।
धनैः । अभि । श्रुत्वा । यन्ति । विदुः । हि । तक्मऽनाशनम् २

हिमाचलके ऊपर सुपर्णके उत्पत्तिस्थानमें उत्पन्न हुई इस औषधिको आरोग्यधन रूपसे सुन कर (प्राणी) गए और तब उन्होंने इसको कठिन रोगोंको नष्ट करने वाली जाना ॥ २ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३ ॥

अश्वत्थः । देवऽसदनः । तृतीयस्याम् । इतः । दिवि ।
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । देवाः । कुष्ठम् । अवन्वत ॥ ३ ॥

यहाँसे तीसरे द्युलोकमें देवताओंके बैठनेका अश्वत्थ है तहाँ देवताओंने अमृतका वर्णन करने वाले कूटको जाना था ॥ ३ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४ ॥

हिरण्ययी । नौः । अचरत् । हिरण्यऽबन्धना । दिवि ।
तत्र । अमृतस्य । पुष्पम् । देवाः । कुष्ठम् । अवन्वत ॥ ४ ॥

स्वर्गमें सुवर्णके बंधन वाली सुवर्णकी नौका चलती है तहाँ अमृतके पुष्प कूटको देवताओंने प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥

हिरण्ययाः । पन्थानः । आसन् । अरित्राणि । हिरण्यया ।
नावः । हिरण्ययीः । आसन् । याभिः । कुष्ठम् । निःआवहन् ५

सुवर्णमय मार्ग थे, और सुवर्णके अरित्र (डाँड) थे और सुवर्णकी ही नौकाएँ थीं, कि–जिनसे (प्राणी) कूटको लाये थे ५

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु ।
तमु मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥

इमम् । मे । कुष्ठ । पुरुषम् । तम् । आ । वह । तम् । निः । कुरु ।
तम् । ऊं इति । मे । अगदम् । कृधि ॥ ६ ॥

हे कूट ! मेरे इस (संसारके घृणाके पात्र) पुरुषको इस (लोक

में फिर प्रतिष्ठाके साथ)तू आ इसको रोग रहित कर, इस मेरे पुरुषको तू रोगरहित कर ॥ ६ ॥

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥ ७ ॥

देवेभ्यः । अधि । जातः । असि । सोमस्य । असि । सखा । हितः ।
सः । प्राणाय । विऽआनाय । चक्षुषे । मे । अस्मै । मृड ॥ ७ ॥

हे कूट ! तुम देवताओंके अधिकारमें उत्पन्न हुए हो और सोमके हितकारी मित्र हो, वह तुम मेरे इस (यजमान पुरुष) की प्राण व्यान और नेत्रके लिये सुखी हूजिये अर्थात् सुख दीजिये ७

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥ ८ ॥

उदङ् । जातः । हिमऽवतः । सः । प्राच्याम् । नीयसे । जनम् ।
तत्र । कुष्ठस्य । नामानि । उत्ऽतमानि । वि । भेजिरे ॥ ८ ॥

कूट हिमाचलके उत्तरमें उत्पन्न हुआ है और वह पूर्वदिशामें मनुष्योंके पास लाया गया है, तहाँ कूटके उत्तम नामोंका मनुष्यों ने विभाग किया है ॥ ८ ॥

उत्तमा नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥ ९ ॥

उत्ऽतमः । नाम । कुष्ठ । असि । उत्ऽतमः । नाम । ते । पिता ।
यक्ष्मम् । च । सर्वम् । नाशय । तक्मानम् । च । अरसम् । कृधि ९

हे कूट ! तेरा नाम उत्तम है और तेरे पिता (उत्पादक हिमाचल) भी उत्तम हैं, यह बात प्रसिद्ध है। तू सब प्रकारके यक्ष्मा रोगका नाश कर, जीवनको कष्टमय बना देने वाले रोगको रसरहित (निर्वीर्य) कर ॥ ९ ॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥ १० ॥

शीर्षऽआमयम् । उपऽहत्याम् । अक्ष्योः । तन्वः । रपः ।
कुष्ठः । तत् । सर्वम् । निः । करत् । दैवम् । समह । वृष्ण्यम् १०

इति प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

(पुरोहित कहता है, कि-)जो शिरका रोग है जो आँखोंको नष्ट करने वाली व्याधि है और जो शरीरके रोगकी उत्पत्तिका कारण पाप है, उस सबको कूटने प्रशंसनीय दैवबलको (प्राप्त कर) निकाल दिया है ॥ १० ॥

पञ्चमकाण्डके प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१५६) ॥

शस्त्राद्यभिघाते "रात्री माता" इति सूक्तेन दुग्धे लाक्षां क्वाथयित्वा अभिमन्त्र्य पाययति । तथा च सूत्रम् । "लाक्षालिङ्गाभिर्दुग्धे फाण्टान् पाययति" [कौ० ४. ४] इति ॥

शस्त्र आदिके अभिघातमें 'रात्री माता' इस सूक्तसे दूधमें लाखको क्वथित कर (काढ़ा कर) अभिमन्त्रण करके पिलावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि 'लाक्षालिंगाभिर्दुग्धे फाण्टान् पाययति' (कौशिकसूत्र ४ । ४) ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा

रात्री । माता । नभः । पिता । अर्यमा । ते । पितामहः ।
सिलाची । नाम । वै । असि । सा । देवानाम् । असि । स्वसा १

हे लाख ! चन्द्रकिरणोंके द्वारा पोषक होनेसे रात्रि तेरी माता है और वर्षाके द्वारा उत्पादक होनेसे नभ तेरा पिता है और सूर्यदेव आकाशमेंके मेघको भी लाने वाले होनेसे तेरे पितामह हैं, तेरा नाम सिलाची है और तू देवताओंकी (उपकारक होनेसे) बहिन है ॥ १ ॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी २

यः । त्वा । पिबति । जीवति । त्रायसे । पुरुषम् । त्वम् ।
भर्त्री । हि । शश्वताम् । असि । जनानाम् । च । निऽअञ्चनी

जो तुझको पीता है वह जीता है, तू पुरुषकी रक्षा करती है, तू श्वास लेने वाले प्राणियोंका भरण करने वाली है, और प्राणियों की न्यञ्चनी (घाव आदिके समय व्याप्त होकर रहने वाली) है २

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ३

वृक्षम्ऽवृक्षम् । आ । रोहसि । वृषण्यन्तीऽइव । कन्यला ।
जयन्ती । प्रतिऽआतिष्ठन्ती । स्परणी । नाम । वै । असि ३

तू वृषण्यन्ती कन्यलाकी समान प्रत्येक वृक्ष पर चढ़ती है, तू जीतती है, खड़ी होती है अतः तू स्परणी नाम वाली है ॥ ३ ॥

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ४

यत् । दण्डेन । यत् । इष्वा । यत् । वा । अरुः । हरसा । कृतम् ।
तस्य । त्वम् । असि । निःऽकृतिः । सा । इमम् । निः । कृधि । पुरुषम्

जो क्रोधपूर्वक बाणसे वा दण्डसे घाव किया जाता है हे लाख ! तू उस सबकी उपायरूप है, इस लिये तू इस पुरुषको चंगा कर ४

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥

भद्रात् । प्लक्षात् । निः । तिष्ठसि । अश्वत्थात् । खदिरात् । धवात्
भद्रात् । न्यग्रोधात् । पर्णात् । सा । नः । आ । इहि । अरुन्धति ५

तू कदमके वृक्षसे, पाकड़के वृक्षसे, पीपलके वृक्षसे, खैरके वृक्षसे, धवके वृक्षसे, भद्र, न्यग्रोध और पर्णसे निकलती है, ऐसी घावको शुद्ध करके भरने वाली ओषधे ! हमारे पास आ ॥ ५ ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ६

हिरण्यऽवर्णे । सुऽभगे । सूर्यऽवर्णे । वपुःऽतमे ।
रुतम् । गच्छासि । निःऽकृते । निःऽकृतिः । नाम । वै । असि ६

हे सुवर्णके समान वर्ण वाली हे सूर्य सरीखे वर्ण वाली हे परमकांतिमयी रोगको निकालने वाली ओषधे ! तू घाव पर जाती है, अत एव तेरा नाम निष्कृति है ॥ ६ ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥७॥

हिरण्यऽवर्णे । सुऽभगे । शुष्मे । लोमशऽवक्षणे ।
अपाम् । असि । स्वसा । लाक्षे । वातः । ह । आत्मा । बभूव । ते ७

हे सुवर्णकी समान वर्ण वाली बलकारिणी सौभाग्यवती रोम की नदीरूपा (अर्थात् जिसके भीतर बहुतसे रोम निकलते हैं ऐसी) ओषधे ! तू जलोंकी बहिनरूप है, हे लाक्षे ! वायु तेरा आत्मा है ॥ ७ ॥

सिलाची नाम कानीनोजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ८

सिलाची । नाम । कानीनः । अजऽबभ्रु । पिता । तव ।
अश्वः । यमस्य । यः । श्यावः । तस्य । ह । अस्ना । असि । उक्षिता ८

तेरा नाम सिलाची और कानीन है बकरियोंका पालन करने वाला तेरा पिता है । यमराजका जो पीले काले रंगका अश्व हैं उसके रक्तसे तुझको सींचा गया था ॥ ८ ॥

अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥ ९ ॥

अश्वस्य । अस्नः । सम्ऽपतिता । सा । वृक्षान् । अभि । सिस्यदे ।
सरा । पतत्रिणी । भूत्वा । सा । नः । आ । इहि । अरुन्धति ९

प्रथमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥ इति प्रथमोनुवाकः ॥

हे घावको भरने वाली! अश्वके रक्तसे तू मिलती जुलती है और वृक्षोंको सींचती है, ऐसी सरकने वाली औषधे तू पतत्रिणीसी होकर हमारे पास आ ॥ ९ ॥

प्रथम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१४७) ॥

रोगिण आरोग्यविज्ञानकर्मणि "ब्रह्म जज्ञानम्" इति सूक्तेन तिस्रः स्रावरज्जूरभिमन्त्र्य अङ्गारेषु निदधाति। यदि अंगारस्थास्ता ऊर्ध्वं गच्छन्ति ततो जीविष्यतीति ज्ञेयम्। तद् उक्तं कौशिकेन। "ब्रह्म जज्ञानम् इति जीवितविज्ञानम्। तिस्रः स्रावरज्जूरंगारेष्ववधायोत्कुचतीषु कल्याणम्" इति [कौ० २. ६]॥

तथा सांग्रामिकविज्ञानकर्मणि अनेन सूक्तेन तिस्रः स्रावरज्जूरभिमन्त्र्य एका आत्मसेना रज्जुः द्वितीया मध्ये मृत्युः तृतीया रज्जुः परसेनेति संकल्प्य अंगारेषु निदधाति। यस्या उपरि मृत्युर्गच्छति तस्याः पराजयो भवति। या मृत्योरुपरि पतति तस्या जयो भवति। या संमुखा याति तस्या अपि जयो भवति॥

तथा तत्रैव कर्मणि रज्जुम् एकाम् अभिमन्त्र्य अंगारेषु निदधाति। एवम् इषीकाः॥

तद् उक्तं कौशिकेन। "सांग्रामिकम्। एता व्यादिशति। मध्ये मृत्युरितरे सेने। पराजेष्यमाणां मृत्युरतिवर्तते। जेष्यन्ती मृत्युम् अग्रेषूत्कुचत्सु मुख्या हन्यन्ते मध्येषु मध्या अन्तेष्ववरे। एवम् इषीकाः" इति [कौ० २. ६]॥

सलिलगणे अस्य सूक्तस्य पाठः। तद् "आपो हि ष्ठा" इति सूक्ते [१. ५] द्रष्टव्यम्॥

तथा प्रवत्स्यन् अनेन सूक्तेन हवींषि जुहुयात्। आज्यपालाशादिसमित्पुरोडाशपयउदौदनपायसपशुव्रीहियवतिलधानाकरम्भशष्कुल्यः एतानि हवींषि विकल्पेन जुहुयाद् इत्यर्थः। तद् उक्तं कौशिकेन। "द्वितीयेन प्रवत्स्यन् हविषाम् उपदधीत" इति [कौ० ३. १]॥

१३४१ ७-११-२६

तथा स्त्रीप्रसवदोषे सूतिकारोगे च अनेन सूक्तेन भक्तम् अभिमन्त्र्य ददाति । तथा सक्तुमन्थम् अभिमन्त्र्य पाययति । अनेनैव सूक्तेन उपस्थानम् आदित्यस्य । तद् उक्तं कौशिकेन । "ब्रह्म जज्ञानम् इति सूतिकारिष्टकौ प्रपादयति । मन्थाचमनोपस्थानम् आदित्यस्य" इति [कौ० ४. ४] ॥

रोगीके आरोग्यको जाननेके कर्ममें 'ब्रह्म जज्ञानम्' इस सूक्त से तीन स्नावरज्जुओंको अभिमंत्रित कर अंगारों पर रक्खे । यदि अंगारों पर स्थित रज्जुएँ ऊपरको जावें तो समझे, कि-यह जीवित रहेगा । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-'ब्रह्म जज्ञानम् इति जीवितविज्ञानम् । तिस्रः स्नावररज्जूरंगारेष्ववधायोत्कुचतीषु कल्याणम्' (कौशिकसूत्र २ । ६) ॥

तथा सांग्रामिकविज्ञानकर्ममें इस सूक्तसे तीन स्नावरज्जुओंका अभिमन्त्रण करके एकको अपनी सेनाकी रज्जु समझे, मध्यमें रक्खी हुई दूसरीको मृत्यु समझे और तीसरीको शत्रुकी सेना समझे, इस प्रकार कल्पना करके उनको अंगारोंमें रख देय । उस समय जिसके ऊपर मृत्यु जाती है, उसका पराजय होता है जो मृत्युके ऊपर गिरती है उसका विजय होता है और जो सम्मुख जाती है उसका भी विजय होता है ।

तथा इसी कर्ममें एक रज्जुको अभिमंत्रित कर अंगारों पर रक्खा जाता है । इसी प्रकार इषीकाओंको रक्खा जाता है ।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि 'सांग्रामिकम् । एता व्यादिशति । मध्ये मृत्युरितरे सेने । पराजेष्यमाणां मृत्युरतिवर्तते । जेष्यन्ती मृत्युम् । अग्रेषूत्कुचत्सु मुख्या हन्यन्ते मध्येषु मध्या अन्तेष्ववरे । एवं इषीकाः" (कौशिकसूत्र २ । ६ ॥)

सलिलगणमें इस सूक्तका पाठ है । इसको आपो हि ष्ठा' इस १ । ५ सूक्तमें देखना चाहिये ।

तथा अधिकतर तहाँ ही निवास करना चाहने वाला इस सूक्त से हवियोंकी आहुति देय । अर्थात् घी, पलाश (ढ़ाक) आदिकी समिधायें, पुरोडाश उदोदन, पायसपशु, धान जौ, तिल, धाना (भुने हुए जौं), करंभ (दही मिले सत्तू), और शष्कुली (पूरी) इन हवियोंकी विकल्पसे आहुति देय । इसी बातको कौशिकसूत्र ३ । १ में कहा है, कि–'द्वितीयेन प्रवत्स्यन् हविषामुपदधीत' (कौशिकसूत्र ३ । १)

तथा स्त्रीप्रसवरोगमें और सूतिकारोगमें भी इस सूक्तसे भात का अनुमंत्रण करके देवे । तथा सक्तुमंथका अभिमंत्रण करके पिलावे । तथा इस सूक्तसे आदित्यका उपस्थान करावे इस विषय में कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि-“ब्रह्म जज्ञानं इति सूतिकारिष्टौ प्रपादयति मन्थाचमनोपस्थानम् आदित्यस्य” (कौशिकसूत्र ४।४)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च
वि वः ॥ १ ॥

ब्रह्म । जज्ञानम् । प्रथमम् । पुरस्तात् । वि । सीमतः । सुऽरुचः ।
वेनः । आवः ।

सः । बुध्न्याः । उपऽमाः । अस्य । विऽस्थाः । सतः । च । योनिम् ।
असतः । च । वि । वः ॥ १ ॥

“सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म” इस तैत्तिरीय आरण्यक ८ । १ में प्रसिद्ध सत्–चित्–सुखात्मक अपरिच्छिन्न तथा सब जगत्का कारण जो परब्रह्म है वह पहिले सृष्टिकी आदिमें प्रथमकार्य

१३४३

हिरण्यगर्भरूप सूर्यरूपमें उत्पन्न हुआ है † वह पूर्व दिशामें उदय हुआ हिरण्यगर्भका सूर्यात्मक परम तेज वेन है अर्थात् कांति फैलाने वाला है तथा प्रकाश और वर्षाका कारण मध्यमस्थानीय देवता है ‡ वह दमकता हुआ पर परब्रह्मात्मक वेन (आदित्य) लोकमर्यादाके लिये बाँधी हुई दिशाओंके कोनोंसे लेकर सुन्दर कांति वाले लोकों तकको व्याप्त कर देता है अर्थात् प्रभामण्डलसे अन्धकारको दूर कर सब जगत्को छा लेता है। वह केवल पार्थिव लोकोंको ही नहीं छा लेता है। किंतु वह सूर्यात्मक वेन कारणभूत ब्रह्मके तेजसे परिच्छिन्न अनेक प्रकारसे स्थित अन्तरिक्षके लोकोंको और इस प्रपञ्चकी स्थितिके कारण आकाश आदि भूत भौतिक स्थितियोंको व्याप्त कर लेता है। अधिक क्या कहें, सत् अर्थात् विद्यमान प्रकट नाम और रूपप्रपंचकी और असत् अर्थात् अप्रकट अवस्थामें स्थित नाम रूप वाले प्रपञ्चकी कारण सत्त्वरजस्तमोगुणरूपा मूल–प्रकृतिको भी व्याप्त कर लेता हैं। अथवा सत्–चक्षुसे ग्रहण करने योग्य पृथ्वी जल और तेजोरूप तीन भूतोंको तथा असत्–परोक्ष वायु आकाशरूप दो भूतोंको भी व्याप्त कर लेता है + । तात्पर्य यह है, कि–पूर्वोक्त लक्षण वाला परब्रह्म अपनी माया शक्तिके प्रभावसे आदित्य (वेन) बन कर अपने तेजसे भूतसमूह और भूतोंसे बने हुए कारण सहित पूर्णजगत्को व्याप्त कर लेता है ॥ ७ ॥

---

† "स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।–वही प्रथम शरीरधारी है और वही पुरुष कहलाते हैं"।

‡ इसका स्वरूप 'वेनस्तत् पश्यत्' इस द्वितीय काण्डके प्रथम सूक्तमें विस्तारपूर्वक दिखाया है।

+ प्रत्यक्ष और अपरोक्ष भूतोंके ये दो भेद अन्यत्र भी मिलते हैं, कि–"सच्च त्यच्चाभवत्" (तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६)।

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे २

अनाप्ताः । ये । वः । प्रथमाः । यानि । कर्माणि । चक्रिरे ।
वीरान् । नः । अत्र । मा । दभन् । तत् । वः । एतत् । पुरः । दधे २

हे पुरुषों ! तुम्हारे अनुकूल न चलने वाले जिन शत्रुओंने योग आदि मुख्य कर्मोंको किया है, उन कर्मोंसे वे हमारे वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्र पौत्र आदिको अथवा वीरोंको इस देशमें न मारें इस लिये इस आभिचारिक कर्मको मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ २

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥ ३ ॥

सहस्रऽधारे । एव । ते । सम् । अस्वरन् । दिवः । नाके ।
मधुऽजिह्वाः । असश्चतः ।
तस्य । स्पशः । न । नि । मिषन्ति । भूर्णयः । पदेऽपदे ।
पाशिनः । सन्ति । सेतवे ॥ ३ ॥

द्युलोकके अनेक मार्ग वाले स्वर्गमें स्थित मधुरभाषी पुरुष घोषणा कर चुके हैं, कि–युद्धमें न जाने वालोंको पकड़नेके लिये यमदेवके बाँधने वाले दूत पद पद पर पाश लिये हुए खड़े रहते हैं, कभी अपने नेत्रोंको बन्द नहीं रखते हैं ॥ ३ ॥

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो
मास इन्द्रस्य गृहः ॥ ४ ॥

परि । ऊ इति । सु । प्र । धन्व । वाजऽसातये । परि । वृत्राणि ।
सक्षणिः ।

द्विषः । तत् । अधि । अर्णवेन । ईयसे । सनिस्रसः । नाम ।
असि । त्रयःऽदशः । मासः । इन्द्रस्य । गृहः ॥ ४ ॥

अन्नप्राप्तिके लिये मेघोंके पास पहुँचने वाले तुम (सूर्यदेव) उनको भली प्रकार चारों ओरसे (किरणोंसे) ताड़ित कर उन शत्रुरूपसे भानित मेघोंको तुम समुद्र रूपमें प्राप्त कराने वाले हो तुम्हारा सनिस्रस अर्थात् टपकाने वाला नाम है तेरहवाँ मास भी इन्द्रका घर है अर्थात् उसमें भी वृष्टि कराओ । अथवा हे राजन्! आप घेरनेवाले शत्रुओंके सन्मुख जाने वाले सामने जाने वाले हैं, अन्न और बलकी प्राप्तिके लिये आप उनका भली प्रकार संहार करिये आप (रक्तको) बहाने वाले हैं शत्रुओंके (रक्तको) समुद्र बना दीजिये तेरहवाँ महीना भी इन्द्रका घर है (इन्द्र की समान आप भी तेरहों महीनोंमें शत्रुओंका रक्त बरसानेके लिये उद्यत रहिये) ॥ ४ ॥

न्वे३तेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं
नः ॥ ५ ॥

नु । एतेन । अरात्सीः । असौ । स्वाहा ।

तिग्मऽआयुधौ । तिग्महेती इति तिग्मऽहेती । सुऽशेवौ । सोमारुद्रौ ।

इह । सु । मृडतम् । नः ॥ ५ ॥

इस अभिचारिक कर्मसे ही इसने (पहिले) सिद्धि प्राप्तकी थी यह हवि स्वाहुत हो, परमसुखी तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्र वाले हे सोम और रुद्र देवता इस संग्राममें आप हमें भली प्रकार सुख दीजिये ॥ ५ ॥

अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मा० ॥ ६ ॥

अव । एतेन० ।० ॥ ६ ॥

इस अभिचारिक कर्मसे ही इस राजाने (पहिले) शत्रुओंका निग्रह करके सिद्धि पाई थी, यह हवि स्वाहुत हो परम सुखी तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्र वाले हे सोम और रुद्र देवताओं ! इस संग्राम में आप हमें भली प्रकार सुख दीजिये ॥ ६ ॥

अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु
मृडतं नः ॥ ७ ॥

अप । एतेन । अरात्सीः । असौ । स्वाहा ।

तिग्मऽआयुधौ । तिग्महेती इति तिग्मऽहेती । सुऽशेवौ । सोमारुद्रौ ।

इह । सु । मृडतम् । नः ॥ ७ ॥

इस आभिचारिक कर्मके द्वारा ही इस राजाने (पहिले) प्रतिलोमरीतिसे शत्रुओंका निग्रह करके सिद्धि पाई थी यह हवि स्वा-

हुत हो, परमसुखी तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्र वाले हे सोम और रुद्र देवताओं ! इस संग्राममें आप हमैं भली भाँति सुख दीजिये ॥ ७ ॥

मु॒मु॒क्तम॒स्मान्दु॑रि॒ताद॑व॒द्याज्जु॒षेथां॑ य॒ज्ञम॒मृत॑म॒स्मासु॑
धत्तम् ॥ ८ ॥

मु॒मु॒क्तम् । अ॒स्मान् । दुः॒ऽइ॒तात् । अ॒व॒द्यात् । जु॒षेथा॑म् । य॒ज्ञम् ।
अ॒मृ॑तम् । अ॒स्मासु॑ । ध॒त्त॒म् ॥ ८ ॥

हे सोम और रुद्र देवताओं ! आप हमको न कहने योग्य पाप से मुक्त करो । इस यज्ञका सेवन करो और हममें अमृत (अर्थात् इस कर्ममें न मरना) स्थापित करो ॥ ८ ॥

चक्षु॑षो हेते॒ मन॑सो हेते॒ ब्रह्म॑णो हेते॒ तप॑सश्च हेते ।
मे॒न्या मे॒निर॑स्यमे॒नय॒स्ते स॑न्तु॒ ये॒३॒स्माँ अ॑भ्यघा॒यन्ति ९

चक्षु॑षः । हे॒ते॒ । मन॑सः । हे॒ते॒ । ब्रह्म॑णः । हे॒ते॒ । तप॑सः । च॒ । हे॒ते॒ ।
मे॒न्याः । मे॒निः । अ॒सि॒ । अ॒मे॒नयः॑ । ते । स॒न्तु॒ । ये । अ॒स्मान् ।
अ॒भि॒ऽअ॒घा॒यन्ति॑ ॥ ९ ॥

हे चक्षुःसम्बन्धी संहारकशक्ति ! हे मनःसम्बन्धी संहारकशक्ति, हे मंत्रसम्बन्धी संहारकशक्ति ! तुम आयुधोंकी भी आयुध हो जो हमको मारना चाहते हैं वे आयुधरहित होजावें ॥ ९ ॥

यो॒३॒स्मांश्चक्षु॑षा॒ मन॑सा॒ चित्त्याकू॑त्या च॒ यो अ॑घा॒युर॑-
भि॒दासा॑त् ।
त्वं तान॑ग्ने मे॒न्यामे॒नीन् कृ॑णु॒ स्वाहा॑ ॥ १० ॥

यः । अस्मान् । चक्षुषा । मनसा । चित्त्या । आऽकूत्या । च ।
यः । अघऽयुः । अभिऽदासात् ।
त्वम् । तान् । अग्ने । मेन्या । अमेनीन् । कृणु । स्वाहा ॥ १० ॥

हमारे साथ वधरूप पाप करना चाहने वाला जो अघायु हमको क्रूरदृष्टिसे मनसे, चित्तकी वृत्तिसे वा संकल्पसे क्षीण करना चाहता है, उसको हे अग्ने ! आप (अपने भस्म करने रूप) शस्त्र से शस्त्ररहित करिये । यह आहुति आपके लिये स्वाहुत हो॥१०॥

इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि
सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन ११

इन्द्रस्य । गृहः । असि ॥ तम् । त्वा । प्र । पद्ये । तम् । त्वा ।
प्र । विशामि । सर्वऽगुः । सर्वऽपूरुषः । सर्वऽआत्मा । सर्वऽतनूः ।
सह । यत् । मे । अस्ति । तेन ॥ ११ ॥

हे (अग्ने वा सूर्य) आप इन्द्रके घररूप हैं, सर्वगामी, सर्वात्मा सर्वतनू सर्वपुरुषरूप हैं, जो मेरे साथ है उस सबके साथ मैं आप की शरण लेता हूँ, इस प्रकार आपमें प्रवेश करता हूँ ॥ ११ ॥

इन्द्रस्य शर्मासि ।० ॥ १२ ॥

इन्द्रस्य । शर्म । असि ॥० ॥ १२ ॥

हे (अग्ने वा सूर्य) आप इन्द्रके सुखरूप हैं और आप सर्वगामी सर्वात्मा सर्वतनू और सर्वपुरुषरूप हैं ऐसे आपकी जो कुछ मेरा है उसके साथ मैं शरण लेता हूँ ॥ १२ ॥

इन्द्रस्य वर्मासि ।० ॥ १३ ॥

इन्द्र॑स्य । वर्म॑ । अ॒सि॒ ॥० ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! आप इन्द्रके कवचरूप हैं आप सर्वगामी सर्वात्मा सर्वतनू और सर्वपुरुषरूप हैं ऐसे आपकी जो कुछ मेरा है उसके साथ मैं शरण लेता हूँ ॥ १३ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वरू॑थमसि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒
सर्व॑गुः सर्व॑पूरुष॒ः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मे॑स्ति॒
तेन॑ ॥ १४ ॥

इन्द्र॑स्य । वरू॑थम् । अ॒सि॒ ॥ तम् । त्वा॒ । प्र । प॒द्ये॒ । तम् । त्वा॒ । प्र । वि॒शा॒मि॒ । सर्व॑ऽगुः । सर्व॑ऽपूरुषः । सर्व॑ऽआत्मा । सर्व॑ऽतनूः । स॒ह । यत् । मे॒ । अस्ति॑ । तेन॑ ॥ १४ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! तुम इन्द्रके वरूथ हो तुम सर्वगामी सर्वात्मा (स्थूल सूक्ष्म आदि) सर्वशरीररूप और सर्वपुरुषरूप हो ऐसी आपकी मैं शरण लेता हूँ इस प्रकार आपमें प्रवेश करता हूँ १४

पञ्चमकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१४८) ॥

निर्ऋतिकर्मणि "आ नो भर" इति सूक्तेन शर्करामिश्रा धानाः सक्तूञ्जुहोति । "आ नो भरेति धानाः" [कौ० ३. १] इत्यादि सूत्रम् ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः । सूत्रादिकम् "अयं ते योनिः" इति सूक्ते [३. २०] द्रष्टव्यम् ॥

अग्निचयने वनीवाहने क्रियमाणे इदं सूक्तं यजमानं वाचयति । तद् उक्तं वैताने । "आ नो भरेति वनीवाहने वाचयति" इति [वै० ५. १] ॥ वनीवाहनम् ऋत्विजां भृत्यर्थं वचनम् ॥

१३५०

निर्ऋतिकर्ममें 'आ नो भर' इस सूक्तसे शर्करा मिले हुए भुने हुए जौंको एक वार होमे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है। "आ नो भरेति धानाः" (कौशिकसूत्र ३।१)॥

तथा धन उठाते समय होसकने वाले विघ्नोंको शांत करनेके कर्ममें इस सूक्तका विनियोग है। सूत्र आदिका प्रमाण 'अयं ते योनिः' इस तीसरे काण्डके बीसवें सूक्तमें देखने चाहियें।

अग्निचयनमें वनीवाहनके अवसर पर इस सूक्तको यजमानसे पढ़वावे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"आ नो भरेति वनीवाहने वाचयति" (वैतानसूत्र ५।१)। ऋत्विजोंके भृत्यर्थ जो वचन कहा जाता है उसको वनीवाहन कहते हैं।

आ नो॑ भर॒ मा परि॑ ष्ठा अराते॒ मा नो॑ रक्षी॒र्दक्षि॑णां नी॒यमा॑नाम् ।

नमो॑ वी॒र्त्सा॑या॒ अस॑मृद्धये॒ नमो॑ अस्त्वरा॑तये ॥१॥

आ । नः॒ । भ॒र॒ । मा । परि॑ । स्थाः॒ । अ॒रा॒ते॒ । मा । नः॒ । र॒क्षीः॒ ।
दक्षि॑णाम् । नी॒यमा॑नाम् ।

नमः॑ । वि॒ऽई॒र्त्सायै॑ । अस॑म्ऽऋद्धये । नमः॑ । अ॒स्तु॒ । अरा॑तये ॥१॥

हे अराते! अर्थात् न देनेकी अधिष्ठात्री देवते! हमैं धनसे पूर्ण कर, हमारे चारों ओर खड़ी मत हो। हमारी लाई हुई दक्षिणा की रक्षा न कर अर्थात् उसको अपने शक्तिके प्रभावमें न ला। अवृद्धिकी इच्छाके लिये अदानकी अधिष्ठात्री देवताके लिये यह अन्नरूप हवि प्राप्त हो॥ १॥

यम॑राते पुरोध॒त्से पुरु॑षं परिरा॒पिण॑म् ।

नमस्ते तस्मै कृणमो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २ ॥

यम् । अराते । पुरःऽधत्से । पुरुषम् । परिऽरापिणम् ।

नमः । ते । तस्मै । कृणमः । मा । वनिम् । व्यथयीः । मम २

हे अराते ! तू जिस केवल बोलने वाले पुरुषको अपने सामने रखती है उस तेरे पुरुषके लिये हम दूरसे ही नमस्कार करते हैं । तू हमारी इस संभक्तिको व्यथित न करना ॥ २ ॥

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।

अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३ ॥

प्र । नः । वनिः । देवऽकृता । दिवा । नक्तम् । च । कल्पताम् ।

अरातिम् । अनुऽप्रेमः । वयम् । नमः । अस्तु । अरातये ॥३॥

देवताओंमेंकी हुई हमारी भक्ति दिन और रात तक समर्थ होती रहे-बढ़ती रहे । हम अरातिकी शरणमें जाते हैं (अर्थात् वह हम पर प्रभाव न दिखावे) अरातिके लिये यह अन्नरूप हवि प्राप्त हो ॥ ३ ॥

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।

वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ४

सरस्वतीम् । अनुऽमतिम् । भगम् । यन्तः । हवामहे ।

वाचम् । जुष्टाम् । मधुऽमतीम् । अवादिषम् । देवानाम् । देवऽहूतिषु

मैं जिनमें देवता बुलाये जाते हैं, उन यज्ञोंमें देवताओंको प्रसन्न करने वाली मधुरता भरी वाणीका उच्चारण कर चुका हूँ, यज-

मान आदि हम सब अनुमति सरस्वती और भगदेवताकी शरण लेते हुए उनका आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५॥

यम् । याचामि । अहम् । वाचा । सरस्वत्या । मनःऽयुजा ।
श्रद्धा । तम् । अद्य । विन्दतु । दत्ता । सोमेन । बभ्रुणा ॥ ५ ॥

मैं मनसे निकली हुई सरस्वती देवता वाली वाणीसे जिस वस्तुकी प्रार्थना करता हूँ, पोषक सोमदेवकी दी हुई श्रद्धा उस वस्तुको प्राप्त हो अर्थात् श्रद्धापूर्वक उस वस्तुकी देवताओंसे प्रार्थना करूँ ॥ ५ ॥

मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ
भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोरातिं प्रति हर्यत ॥ ६ ॥

मा । वनिम् । मा । वाचम् । नः । वि । ईर्त्सीः । उभौ । इन्द्राग्नी
इति । आ । भरताम् । नः । वसूनि ।
सर्वे । नः । अद्य । दित्सन्तः । अरातिम् । प्रति । हर्यत ॥ ६ ॥

हे अराते ! तू हमारी भक्ति और वाणीको न रोक, इन्द्र और अग्नि ये दोनों देवता हमें चारों ओरसे धनसे भर दें, हमको सब देनेकी इच्छा करते रहें और हमारे शत्रुके प्रतिकूल चलें ॥ ६ ॥

परोपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।

वे॑द त्वा॒हं नि॒मीव॑न्तीं नितु॒दन्ती॑मराते ॥ ७ ॥

प॒रः । अप॑ । इ॒हि॒ । अ॒स॒म्ऽऋ॒द्धे॒ । वि । ते॒ । हे॒तिम् । न॒या॒म॒सि॒ ।
वे॑द । त्वा॒ । अ॒हम् । नि॒ऽमीव॑न्तीम् । नि॒ऽतु॒दन्तीम् । अ॒रा॒ते॒ ७

हे असमृद्धि करने वाली अराति देवते ! मैं तुझको कृश करने वाली और पीड़ित करती रहने वाली जानता हूँ अतः दूर सरक तेरी नाशकशक्तिको हम भगाते हैं ॥ ७ ॥

उत न॒ग्ना बोभु॑वती स्वप्न॒या स॑चसे॒ जन॑म् ।
अरा॑ते । चि॒त्तं वी॒र्त्स॑न्त्याकू॑ति॒ं पुरु॑षस्य च ॥ ८ ॥

उ॒त । न॒ग्ना॑ । बोभु॑वती । स्व॒प्न॒ऽया । स॒च॒से॒ । जन॑म् ।
अरा॑ते । चि॒त्तम् । वि॒ऽईर्त्स॑न्ती । आऽकू॑तिम् । पुरु॑षस्य । च॒ ८

हे अराते असमृद्धि ! तू मनुष्यके संकल्पोंको असमृद्ध करती हुई असफल करती हुई वारंवार नग्नस्वरूपमें आलस्यके रूपमें मनुष्यसे संगत होती है ॥ ८ ॥

या म॑ह॒ती म॒होन्मा॑ना॒ विश्वा॒ आशा॑ व्यान॒शे ।
तस्यै॑ हिरण्यके॒श्यै निर्ऋ॑त्या अकर॒ं नम॑ः ॥१०॥

या । म॑ह॒ती । म॒हाऽउ॑न्माना । विश्वा॑ः । आशा॑ः । वि॒ऽआ॒न॒शे ।
तस्यै॑ । हि॒र॒ण्य॒ऽके॒श्यै । निःऽऋ॑त्यै । अ॒क॒र॒म् । नम॑ः ॥ ९ ॥

जो अतिऊँची बड़ी असमृद्धि सम्पूर्ण आशाओंमें व्याप्त हो गई है अर्थात् हमारी सम्पूर्ण आशाओंको नष्ट कर चुकी है । उस हिरण्यकेशी असमृद्धिके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥९॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥

हिरण्यऽवर्णा । सुऽभगा । हिरण्यऽकशिपुः । मही ।
तस्यै । हिरण्यऽद्रापये । अरात्यै । अकरम् । नमः ॥ १० ॥

इति द्वितीयनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हित रमणीय वर्ण वाली सौभाग्यवती पृथ्वी जो हिरण्यकशिपुरूप होगई थी अर्थात् हिरण्यकशिपुके वशमें आकर असमृद्ध होगई थी तैसी हित और रमणीयताकी दुर्गति कराने वाली असमृद्धिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ।

अथर्ववेदके पंचमकाण्डके द्वितीय अनुवाकमें
द्वितीय सूक्त समाप्त (१४२) ॥

अभिचारकर्मणि "वैकङ्कतेन" इति सूक्तेन जुहोति । "वैकङ्कतेति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ६. २] सूत्रात् ॥

अभिचारकर्ममें "वैकंकतेन" इस सूक्तसे आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"वैकंकतेनेति मन्त्रोक्तम्" (कौशिकसूत्र ६ । २) ॥

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥

वैकङ्कतेन । इध्मेन । देवेभ्यः । आज्यम् । वह ।
अग्ने । तान् । इह । मादय । सर्वे । आ । यन्तु । मे । हवम् ॥१॥

हे अग्ने ! तुम परमव्रती औषधिके ईंधनसे देवताओंको घृत

अवश्य पहुँचाओ । हे अग्ने ! इस कर्ममें उन सबको तुम प्रसन्न करो, मेरे आह्वान पर यज्ञमें वा युद्धमें सब देवता यहाँ आवें॥१॥

इन्द्रा या॑हि मे॒ हव॑मि॒दं क॑रिष्या॑मि॒ तच्छृ॑णु ।
इ॒म ऐ॒न्द्रा अ॑तिस॒रा आकू॑तिं॒ सं न॑मन्तु मे ।
ते॑भिः शके॑म वी॒र्यं॑ १॒ जात॑वेद॒स्तनू॑वशिन् ॥ २ ॥

इन्द्र॑ । आ । या॒हि॒ । मे॒ । हव॑म् । इ॒दम् । क॒रि॒ष्या॒मि॒ । तत् । शृ॒णु॒ ।
इ॒मे । ऐ॒न्द्राः । अ॒ति॒ऽस॒राः । आऽकू॑तिम् । सम् । न॒म॒न्तु॒ । मे॒ ।
ते॑भिः । श॒के॒म॒ । वी॒र्य॑म् । जात॑ऽवेदः । तनू॑ऽवशिन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप मेरे इस यज्ञमें आइये । मैं जो आपके निमित्त स्तुति करूँगा उसको सुनिये । ये इन्द्रकी ओर प्रबलतासे चलने वाले अर्थात् इन्द्रकी बड़ी भक्ति करने वाले ऋत्विज मेरे संकल्पके अनुकूल रहें, हे प्रत्येक उत्पन्न हुओंको जानने वाले शरीरको वशमें रखने वाले इन्द्रदेव इन पूर्वोक्त ऋत्विजोंसे हम वीर्यको पा सकें ॥ २ ॥

यद॒साव॒मुतो॑ देवा अ॒दे॒वः सं॑श्चिकी॑र्षति ।
मा तस्या॒ग्निर्ह॒व्यं वा॑क्षी॒द्धवं॑ दे॒वा अ॑स्य॒ मोप॑ गु॒र्ममै॒व
ह॒वमेत॑न ॥ ३ ॥

यत् । अ॒सौ । अ॒मुतः॑ । दे॒वाः॒ । अ॒दे॒वः । सन् । चिकी॑र्षति ।
मा । तस्य॑ । अ॒ग्निः । ह॒व्यम् । वा॒क्षी॒त् । हव॑म् । दे॒वाः । अ॒स्य॒ ।
मा । उप॑ । गुः॒ । मम॑ । ए॒व । हव॑म् । आ । इ॒त॒न॒ ॥ ३ ॥

हे देवताओं ! देवताओंकी भक्ति न करने वाला जो पुरुष तहाँसे जो कुछ करना चाहता है, उसके हव्यको अग्नि न पहुँचावें, देवता उसके यज्ञमें वा युद्धमें न जावें और मेरे ही यज्ञमें आवें ३

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि
प्राणमस्यापि नह्यत ॥ ४ ॥

अति । धावत । अतिऽसराः । इन्द्रस्य । वचसा । हत ।
अविम् । वृकःऽइव । मथ्नीत । सः । वः । जीवन् । मा । मोचि ।
प्राणम् । अस्य । अपि । नह्यत ॥ ४ ॥

(हे योधाओं) तुम इन्द्रके (अभय) वचनसे दौड़ो बढ़ो और शत्रुओंको मारो, जैसे भेड़िया भेड़को मथ डालता है तैसे ही शत्रुको नष्ट करो वह तुमसे जीता हुआ न छूटे इसके प्राण तकको तुम बाँध लो—संकटमें डाल दो नष्ट कर दो ॥ ४ ॥

यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ५ ॥

यम् । अमी इति । पुरःऽदधिरे । ब्रह्माणम् । अपऽभूतये ।
इन्द्र । सः । ते । अधःऽपदम् । तम् । प्रति । अस्यामि । मृत्यवे ५

हे इन्द्रदेव ! इन शत्रुओंने हमारी अपभूति (दुर्गति) करनेके लिये जिस ब्राह्मणको अपने सामने रक्खा है अर्थात् पुरोहित बनाया है । वह आपके किये हुए अधःपतनका पात्र हो उसको मैं मृत्युके लिये फैंकता हूँ ॥ ५ ॥

यदि प्रयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि

यदि । प्रऽईयुः । देवऽपुराः । ब्रह्म । वर्माणि । चक्रिरे ।
तनूऽपानम् । परिऽपानम् । कृण्वानाः । यत् । उपऽऊचिरे । सर्वम् ।
तत् । अरसम् । कृधि ॥ ६ ॥

हे देव ! यदि पहिले उन्होंने तनूनपान और परिपाणको करते समय अपने मन्त्रमय कवच बना लिये हों तो उस समय उन्होंने जो कुछ कहा हो तो उस सबको आप नीरस करिये ६

यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन्प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां
जनम् ॥ ७ ॥

यान् । असौ । अतिऽसरान् । चकार । कृणवत् । च । यान् ।
त्वम् । तान् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । प्रतीचः । पुनः । आ । कृधि ।
यथा । अमुम् । तृणहाम् । जनम् ॥ ७ ॥

हमारे शत्रुने जिन योधाओंको अग्रगामी बनाया है और जिनको बना रहा है, हे वृत्रासुरके संहारक इन्द्रदेव ! आप उनको फिर पीछेको कर दीजिये जिससे मैं इस (शत्रुके) जनसमूहरूप सेनादलको मार सकूँ ॥ ७ ॥

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वे३हमधरांस्तथामूंछश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

यथा । इन्द्रः । उत्ऽवाचनम् । लब्ध्वा । चक्रे । अधःऽपदम् ।

कृण्वे । अहम् । अधरान् । तथा । अमून् । शश्वतीभ्यः । समाभ्यः

जैसे इन्द्रदेवने श्रेष्ठ स्तुतिरूप वचनको पाकर शत्रुको पैरोंके नीचे रौंद डाला था, इसी प्रकार मैं इन शत्रुओंको अनन्त वर्षोंके लिये तिरस्कृत करता हूँ ॥ ८ ॥

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्माणि विध्य ।
अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥ ९ ॥

अत्र । एनान् । इन्द्र । वृत्रऽहन् । उग्रः । मर्माणि । विध्य ।

अत्र । एव । एनान् । अभि । तिष्ठ । इन्द्र । मेदी । अहम् । तव ।

अनु । त्वा । इन्द्र । आ । रभामहे । स्याम । सुऽमतौ । तव ।९।

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्रदेव ! आप इस संग्राममें उग्र बन कर शत्रुओंके मर्मोंमें घात करिये । हे इन्द्र ! मैं आपसे स्नेह करने वाला हूँ, अतः आप यहाँ ही इन शत्रुओंके सामने डटिये हे इन्द्र ! हम (आपकी कृपा पानेके) पीछे ही कार्य का आरम्भ करते हैं हम आपकी सुमतिमें रहें अर्थात् आप हमारे ऊपर अनुग्रह बुद्धि रक्खें ॥ ९ ॥

पञ्चम काण्डके द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१५०) ॥

“दिवे स्वाहा” इति सूक्तेन सर्वरोगभैषज्यार्थम् आज्यं हुत्वा सयवे केवले वा उदपात्रे चतुरः संपातान् द्वौ पृथिव्याम् आनीय संपाि [illegible]सहि तोदकेन सूक्ताभिमन्त्रितेन व्याधितम् आप्लावयेत्।

सूत्रितं हि । "दिवे स्वाहा [५. ६] इमं यवम् [६. ९१] इति चतुर उदपात्रे संपातान् आनयति । द्वौ पृथिव्याम् । तौ प्रत्याहृत्यास्रावयति सयवे च" इति [कौ० ४. ४.] ॥

"दिवे स्वाहा" इस सूक्तसे सब रोगोंकी चिकित्साके लिये घृतकी आहुति देकर जौं पड़े हुए वा जौं रहित जलपूर्णपात्रमें चार सम्पातोंको और पृथिवीमें दो सम्पातोंको लाकर सूक्तसे अभिमन्त्रित सम्पातित मट्टीसहित जलसे रोगीको भिगोवे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"दिवे स्वाहा (५ । ६) इमं यवं (६ । ९१) इति चतुर उदपात्रे संपातान् आनयति । द्वौ पृथिव्याम् । तौ प्रत्याहृत्यास्रावयति सयवे च" (कौशिकसूत्र ४।४)॥

दिवे स्वाहा ॥ १ ॥

दिवे । स्वाहा ॥ १ ॥

द्युलोकके अधिष्ठात्री देवताके लिये यह आहुति स्वाहुत हो १

पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिव्यै । स्वाहा ॥ २ ॥

पृथिवीके अधिष्ठात्री देवताके लिये यह आहुति स्वाहुत हो २

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षाय । स्वाहा ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षके अधिष्ठात्री देवताके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ३

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षाय । स्वाहा ॥ ४ ॥

(हृदयके) अन्तरिक्ष (हार्दाकाश) में स्थित देवके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४ ॥

दि॒वे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

दि॒वे । स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

स्वर्ग (में जानेके) लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५ ॥

पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

पृ॒थि॒व्यै । स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

पृथिवी (पर सुखपूर्वक रहनेके) लिये यह आहुति स्वाहुत हो ६

सूर्यो॑ मे॒ चक्षु॒र्वात॑: प्रा॒णो॒३॒न्तरि॑क्षमा॒त्मा पृ॑थि॒वी शरी॑रम्

अ॒स्तृ॒तो ना॒मा॒हम॒यम॑स्मि॒ स आ॒त्मानं॒ नि द॑धे॒

द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ गो॒पी॒थाय॑ ॥ ७ ॥

सूर्य॑: । मे॒ । चक्षु॑ । वात॑: । प्रा॒ण: । अ॒न्तरि॑क्षम् । आ॒त्मा । पृ॒थि॒वी ।

शरी॑रम् ।

अ॒स्तृ॒त: । नाम॑ । अ॒हम् । अ॒यम् । अ॒स्मि॒ । स: । आ॒त्मान॑म् ।

नि । द॒धे॒ । द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् । गो॒पी॒थाय॑ ॥ ७ ॥

सूर्यदेव मेरे नेत्र हैं, वायु मेरे प्राण हैं, अन्तरिक्ष आत्मा, पृथिवी शरीर है, (अर्थात् ये देवता मेरे अंगोंको पुष्ट करें) अनाच्छादित नामवाला मैं यह हूँ वह मैं द्यावापृथिवीसे रक्षा पानेके लिये अपनी आत्माको उनकी शरणमें देता हूँ ॥ ७ ॥

उदायु॑रु॒द् बल॒मुत् कृ॒तमुत् कृ॒त्यामुन्म॑नी॒षामु॒दिन्द्रि॑यम्

आयु॑ष्कृ॒दायु॑ष्पत्नी॒ स्वधा॑वन्तौ गो॒पा मे॑ स्तं गो॒पाय॑तं म

आ॒त्म॒सदौ॑ मे स्तं॒ मा मा॑ हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥

उत् । आ॑युः । उत् । ब॑लम् । उत् । कृ॒तम् । उत् । कृ॒त्याम् ।
उत् । म॒नी॒षाम् । उत् । इ॒न्द्रि॒यम् ।
आ॑युःऽकृत् । आयु॑ष्पत्नी॒त्यायु॑ःऽपत्नी । स्वधा॑ऽवन्तौ । गो॒पा ।
मे॒ । स्त॒म् । गो॒पा॒य॑तम् । मा॒ ।
आ॒त्म॒ऽसदौ॑ । मे॒ । स्त॒म् । मा॒ । मा॒ । हिं॒सि॒ष्ट॒म् ॥ ८ ॥

इति द्वितीयेऽनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

(हे द्यावापृथिवीके अभिमानी देवताओं !) आप मेरी आयुको उत्कृष्ट करिये, मेरे बलको उत्कृष्ट करिये, मेरी कृत्याको उत्कृष्ट करिये, मेरी बुद्धिको उत्कृष्ट करिये और इन्द्रियोंको उत्कृष्ट करिये । हे आयुको करने वाले आयूरक्षक द्यावा पृथिवी स्वधा वाले आप मेरे रक्षक हैं ऐसे आप मुझमें विराजमान होकर मेरी रक्षा करिये, मुझे नष्ट न होने दीजिये ॥ ८ ॥

पञ्चम काण्डके द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१५१) ॥

"अश्मवर्म मेसि" इति सूक्तेन पत्तनग्रामगृहस्वस्त्ययनार्थं षड् अश्मनः संपातवतः कृत्वा अभिमन्त्र्य चतुर्षु पत्तनादिकोणेषु चतुरो निखनति एकं मध्ये निखनति एकं पत्तनाद्युपरि निदधाति । तदुक्तं कौशिकेन । "अश्मवर्म मेति षड् अश्मनः संपातवतः स्रक्तिषूपर्यधस्तान्निखनति" [कौ० ७. २] ॥ "०यो मा दिशाम्" इति सप्तमी ऋक् पूर्वासाम् ऋचां प्रत्येकं द्वितीया कार्या । एवं षड्भिः षट् संपाताः कार्या इत्यर्थः ॥

"अश्म वर्म मेऽसि" इस सूक्तसे नगर ग्राम और घरका स्वस्त्ययन करनेके लिये छः पत्थरोंको सम्पात वाले करके और अभिमंत्रित करके नगर आदिके चार कोनोंमें चारको रक्खे और एकको नगरके मध्यमें और एकको नगर आदि (की नीव) के ऊपर रक्खे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—'अश्म

वर्म मेति षड् अश्मनः सम्पातवतः स्रक्तिषु उपर्यधस्तान्निखनति' [कौशिकसूत्र ७ । २] ॥ और "० यो मा दिशां" यह सातवीं ऋचा प्रत्येक ऋचाकी दूसरी ऋचा करनी चाहिये । इस प्रकार छः से छः सम्पात करने चाहियें ॥

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मा॒ प्राच्या॑ दि॒शो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त्॒ ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ १ ॥

अ॒श्म॒ऽव॒र्म । मे॒ । अ॒सि॒ । यः । मा॒ । प्राच्याः॑ । दि॒शः । अ॒घ॒ऽयुः । अ॒भि॒ऽदासा॑त् ।
ए॒तत् । सः । ऋ॒च्छा॒त् ॥ १ ॥

हे पत्थरके वर्म (कवचरूप घर) तू मेरा है जो वधरूप पाप करना चाहने वाला पूर्वदिशासे (चढ़ाई कर वा कृत्या कर) हमको नष्ट करना चाहता है, वह इसको (प्राप्त होकर) नष्ट होजाय ॥ १ ॥

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मा॒ दक्षि॑णाया दि॒शः ०।० २

० मा॒ । दक्षि॑णायाः । दि॒शः ०।० ॥ २ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो हमारा वधरूप पाप करना चाहने वाला दक्षिण दिशासे हमको नष्ट करना चाहता है वह इसको (प्राप्त होते ही) नष्ट होजाय ॥ २ ॥

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मा॑ प्र॒तीच्या॑ दि॒शः ०।० ॥३॥

० मा॒ । प्र॒तीच्याः॑ । दि॒शः ०।० ॥ ३ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो हमारा वधरूप पाप चाहने वाला

पश्चिम दिशासे हमको नष्ट करना चाहता है वह इस (तुझ) को प्राप्त होकर नष्ट होजावे ॥ ३ ॥

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मोदी॑च्या दि॒शः ०।० ॥ ४ ॥

०मा॒ । उदी॑च्याः । दि॒शः ०।० ॥ ४ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो अघायु मुझको उत्तरकी दिशासे नष्ट करना चाहता है इसको (प्राप्त होकर) वह शत्रु नष्ट होजावे ४

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मां ध्रु॒वाया॑ दि॒शः ०।० ॥ ५ ॥

०मा॒ । ध्रु॒वाया॑ः । दि॒शः ०।० ॥ ५ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो अघायु मुझको ध्रुवदिशासे (पृथ्वीसे) नष्ट करना चाहता है, वह इसको प्राप्त होकर नष्ट होजाय ॥ ५ ॥

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मो॒र्ध्वाया॑ दि॒शो॒ऽघा॒युः ०।० ।६।

०मा॒ । ऊ॒र्ध्वाया॑ः । दि॒शः ०।० ॥ ६ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो अघायु शत्रु मुझको ऊपरकी दिशा से नष्ट करना चाहता है, वह इसको प्राप्त होकर नष्ट होजावे ६

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑सि॒ यो मां दि॒शाम॑न्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽघा॒युर॑भि॒-
दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ७ ॥

अ॒श्म॒ऽव॒र्म । मे॒ । अ॒सि॒ । यः । मा॒ । दि॒शाम् । अ॒न्तः॒ऽदे॒शेभ्य॑ः ।
अ॒घ॒ऽयुः । अ॒भि॒ऽदासा॑त् ।
ए॒तत् । सः । ऋ॒च्छात् ॥ ७ ॥

हे अश्मवर्म ! तू मेरा है जो अन्तर्दिशाओंसे हमारा वधरूप पाप करना चाहता है, वह इस अश्मवर्मको पाकर नष्ट होजाय ७

बृ॒ह॒ता मन॒ उप॑ ह्वये मात॒रिश्व॑ना प्राणापा॒नौ ।
सूर्या॒च्चक्षु॑र॒न्तरि॑क्षा॒च्छ्रोत्रं॑ पृथि॒व्याः शरी॑रम् ।
सर॑स्वत्या॒ वाच॒मुप॑ ह्वयामहे मनो॒युजा॑ ॥ ८ ॥

बृ॒हता । मनः॑ । उप॑ । ह्व॒ये॒ । मा॒त॒रिश्व॑ना । प्रा॒णा॒पा॒नौ ।
सूर्या॑त् । चक्षुः॑ । अ॒न्तरि॑क्षात् । श्रोत्र॑म् । पृ॒थि॒व्याः । शरी॑रम् ।
सर॑स्वत्या । वाच॑म् । उप॑ । ह्व॒या॒म॒हे॒ । म॒नः॒ऽयुजा॑ ॥ ८ ॥

द्वितीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

बड़े (प्रकाश वाले चन्द्रदेव)से मैं मनका आह्वान करता हूँ, मातरिश्वा (वायु) देवसे मैं प्राण और अपानकी प्रार्थना करता हूँ, सूर्यदेवसे चक्षुकी प्रार्थना करता हूँ अन्तरिक्षसे श्रोत्रकी पृथिवीसे शरीरकी और मनसे युक्त सरस्वतीसे वाणीकी प्रार्थना करता हूँ ॥ ८ ॥

पञ्चम काण्डके द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१५२) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

सर्वसंपत्कर्मसु "कथं महे" इति सूक्तेन मादानकक्काष्ठशृतं क्षीरौदनं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नाति ॥

तथा तत्रैव अनेन सूक्तेन चमसे सरूपवत्सायाा दुग्धे व्रीहियवाववधाय मूर्छयित्वा मध्वासिच्य संपात्याभिमन्त्र्य आशयति ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "कथं मह इति मादानकशृतं क्षीरौदनम् अश्नाति। चमसे सरूपवत्साया दुग्धे व्रीहियवाववधाय मूर्छयित्वा

मध्वासिच्याशयति" इति [कौ० २. ३] ॥ मूर्छयित्वा चूर्णीकृत्वा ॥

सर्वसम्पत्कर्मोंमें 'कथं महे' इस सूक्तसे मादानकके काष्ठसे औटाये हुए क्षीरौदनको सम्पातित और अभिमंत्रित करके खावे।

तथा तहाँ ही इस सूक्तसे चमसमें सरूपवत्सा गौके दूधमें धान और जौ को रख उनका चूरा कर शहद छिड़क सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे।

इसी बातको कौशिक सूत्रमें कहा है, कि-'कथं मह इति मादानकशृतं क्षीरौदनं अश्नाति। चमसे सरूपवत्साया दुग्धे व्रीहियवाववधाय मूर्छयित्वा मध्वासिच्याशयति ॥ (कौ० २ । ३)॥

क॒थं म॒हे असु॑राया॒ब्रवी॑रि॒ह क॒थं पि॒त्रे हर॑ये त्वे॒षनृ॑म्णः ।
पृश्निं॑ वरुण॒ दक्षि॑णां द॒दा॒वान् पुन॑र्मघ॒ त्वं मन॑सा-
चिकित्सीः ॥ १ ॥

क॒थम् । म॒हे । असु॑राय । अ॒ब्र॒वीः॒ । इ॒ह । क॒थम् । पि॒त्रे । हर॑ये ।
त्वे॒षऽनृ॑म्णः ।
पृश्नि॑म् । व॒रु॒ण॒ । दक्षि॑णाम् । द॒दा॒वान् । पुनः॑ऽमघ । त्वम् ।
मन॑सा । अ॒चि॒कि॒त्सीः॒ ॥ १

हे वरुण! परम बलवान् और धनवान् आपने प्राणदाता प्रशंसनीय पालक सूर्यदेवसे क्या २ कहा था, हे वारंवार धनका दान देने वाले! आप सूर्यको (जलरूप) दक्षिणा देते हैं और आप मनसे चिकित्सा करते हैं अर्थात् आपके द्वारा धन पाकर मनुष्य मन प्रसन्न रहनेसे नीरोग होजाते हैं ॥ १ ॥

न का॒मेन॒ पुन॑र्मघो भवामि॒ सं च॑क्षे॒ कं पृश्नि॑मे॒तामु॑पा॒जे।

केन॒ नु त्वम॑थर्व॒न् काव्ये॑न॒ केन॑ जा॒तेना॑सि जा॒तवे॑दाः॥२

न । काम॑न । पुनः॑ऽमघः । भ॒वामि॒ । सम् । चक्षे । कम् । पृश्नि॑म् ।
ए॒ताम् । उप॑ । अ॒जे ।
केन । नु । त्वम् । अ॒थ॒र्व॒न् । काव्ये॑न । केन । जा॒तेन॑ । अ॒सि॒ ।
जा॒तऽवे॑दाः ॥ २ ॥

मैं इच्छासे ही पुनः २ धन वाला नहीं होता हूँ, किंतु सुखकी सूर्यसे प्रार्थना करता हूँ, तब इस सुखमयी अवस्थाको पाता हूँ। हे अथर्ववेदी ऋत्विज! आप किस चतुराईके उत्पन्न होनेसे अग्नि (की समान तेजस्वी) होगए हैं ॥ २ ॥

स॒त्यम॒हं ग॑भी॒रः काव्ये॑न स॒त्यं जा॒तेना॑स्मि जा॒तवे॑दाः।
न मे॑ दा॒सो नार्यो॑ महि॒त्वा व्र॒तं मी॑माय॒ यद॒हं ध॑रि॒ष्ये ३

स॒त्यम् । अ॒हम् । ग॒भी॒रः । काव्ये॑न । स॒त्यम् । जा॒तेन॑ । अ॒स्मि॒ ।
जा॒त॒ऽवे॑दाः ।
न । मे॒ । दा॒सः । न॒ । आर्यः॑ । म॒हि॒ऽत्वा । व्र॒तम् । मी॒मा॒य॒ ।
यत् । अ॒हम् । ध॒रि॒ष्ये ॥ ३ ॥

(ऋत्विज कहता है, कि-) मैं गंभीर हूँ, अथर्ववेदके कृत्योंमें पाई हुई चतुराईसे मैं जातवेदा होगया हूँ, अग्निकी समान सबको सब कामोंमें मार्ग दिखाने वाला होगया हूँ, मैं जिस व्रतको धारण करूँगा, उसको महिमाके कारण कोई सज्जन या दास नहीं तोड़ सकता ॥ ३ ॥

न त्वद॒न्यः क॒वित॑रो॒ न मे॒धया॒ धीर॑तरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं॑ ता विश्वा॒ भुव॑नानि वेत्थ॒ स चि॒न्नु त्वज्जनो॑
मा॒यी बि॑भाय ॥ ४ ॥

न । त्वत् । अ॒न्यः । कविऽत॑रः । न । मेधया॑ । धीर॑ऽतरः ।
व॒रु॒ण॒ । स्व॒धा॒ऽव॒न् ।
त्वम् । ता । विश्वा॑ । भुव॑नानि । वे॒त्थ॒ । सः । चि॒त् । नु ।
त्वत् । जनः॑ । मा॒यी । बि॒भा॒य॒ ॥ ४ ॥

(ऋत्विज वरुणदेवको लक्ष्य करके कहता है, कि-) हे स्वधा वाले वरुणदेव ! आपके अतिरिक्त और कोई चतुर और बुद्धिसे अर्थात् विचार करके धैर्य धारण करनेवाला नहीं है, आप सकल भूतोंको जानते हैं, इसी लिये वह मायावी मनुष्य आपसे डरता है (वरुणदेव असत्य भाषण करने वालेको दण्ड देते हैं यह बात पीछे अनेक स्थलों पर कही जा चुकी हैं) ॥ ४ ॥

त्वं ह्य॑१॒ङ्ग व॑रुण स्वधाव॒न् विश्वा॒ वेत्थ॒ जनि॑मा
सुप्रणीते ।
किं रज॑स ए॒ना प॒रो अ॒न्यद॑स्त्ये॒ना किं प॒रेणाव॑रमसुर ५

त्वम् । हि । अ॒ङ्ग । व॒रु॒ण॒ । स्व॒धा॒ऽव॒न् । विश्वा॑ । वेत्थ॑ । जनि॑म ।
सु॒ऽप्र॒नी॒ते॒ ।
कि॑म् । रजसः । ए॒ना । प॒रः । अ॒न्यत् । अ॒स्ति॒ । ए॒ना । किम् ।
प॑रेण । अव॑रम् । असुर ॥ ५ ॥

१३६८

हे स्वधाके पात्र सुन्दरनीति वाले वरुणदेव ! आप प्राणियोंके सब जन्मोंको जानते हैं, हे मोहमें न पड़ने वाले वरुणदेव ! इस रजोगुणी धनसे श्रेष्ठ और क्या है और इस श्रेष्ठसे अवर क्या है ! ॥५॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं
चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥ ६ ॥

एकम् । रजसः । एना । परः । अन्यत् । अस्ति । एना । परः ।
एकेन । दुःऽनशम् । चित् । अर्वाक् ।
तत् । ते । विद्वान् । वरुण । प्र । ब्रवीमि । अधःऽवचसः । पणयः ।
भवन्तु । नीचैः । दासाः । उप । सर्पन्तु । भूमिम् ॥ ६ ॥

(अपने आप ही ज्ञानसे उत्तर देते हैं, कि–) इस रजोगुणसे परे और एक (सत्त्वगुण) है और उस सत्त्वगुणसे परे एक पीछे भी रहने वाला दुर्णश (कठिनतासे भी नष्ट (न) होने होने वाला ब्रह्म है । हे वरुणदेव ! इस विषयको जानने वाला मैं आपसे इस विषयको कहता हूँ, मेरे सामने व्यवहारी पुरुष निकृष्ट वाणी वाले होजावें, दास भूमिमें नीचे होकर चलें ॥६॥

त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणीरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं
जनासः ॥ ७ ॥

त्वम् । हि । अ॒ङ्ग । व॒रु॒ण॒ । ब्रवी॑षि । पुनः॑ऽमघेषु । अ॒व॒द्यानि॑ । भूरि॑ ।
मो इति॑ । सु । प॒णीन् । अ॒भि । ए॒ताव॑तः । भू॒त् । मा । त्वा॒ ।
वो॒च॒न् । अ॒रा॒धस॑म् । जना॑सः ॥ ७ ॥

हे वरुणदेव ! आप बारंवार प्राप्त होनेवाले धनके अवसरोंके प्रति बहुतसे अवद्यों (अकथनीय) वचनोंको कहते हैं। आप इन व्यवहारियोंके प्रति इतने (उदासीन न) हूजिये, जिससे ये आपको धनहीन कहने लगें ॥ ७ ॥

मा मा॑ वोचन्नरा॒धसं॒ जना॑सः॒ पुन॑स्ते॒ पृश्नि॑ं जरितर्ददामि
स्तो॒त्रं मे॒ विश्व॒मा या॑हि शची॑भिर॒न्तर्विश्वा॑सु॒ मानु॑षीषु
दि॒क्षु ॥ ८ ॥

मा । मा॒ । वो॒च॒न् । अ॒रा॒धस॑म् । जना॑सः । पुन॑ः । ते॒ । पृश्नि॑म् ।
ज॒रि॒तः॒ । द॒दा॒मि॒ ।
स्तो॒त्रम् । मे॒ । विश्व॑म् । आ । या॒हि॒ । शची॑भिः । अ॒न्तः ।
विश्वा॑सु । मानु॑षीषु । दि॒क्षु ॥ ८ ॥

हे स्तोतः ! मनुष्य मुझे धनहीन न कहें, मैं आपको यह स्वल्प (सी दक्षिणा) फिर देता हूँ, मनुष्यकी संपूर्ण अन्तर्दिशाओंमें स्थित बोलनेकी शक्तियोंके साथ मेरे पूर्ण स्तोत्रमें आप आइये अर्थात् वरुणविषयक मेरे पूर्ण स्तोत्रको अपनी पूर्ण शक्तिसे पढ़िये ॥ ८ ॥

आ ते॑ स्तो॒त्राण्युद्य॑तानि यन्त्व॒न्तर्विश्वा॑सु॒ मानु॑षीषु
दि॒क्षु ।

दे॒हि नु मे॒ यन्मे॒ अद॑त्तो॒ असि॒ युज्यो॑ मे स॒प्तप॑दः॒ सखा॑सि

आ । ते॒ । स्तो॒त्राणि॑ । उत्ऽय॑तानि । य॒न्तु॒ । अ॒न्तः । विश्वा॑सु । मानु॑षीषु । दि॒क्षु ।

दे॒हि । नु । मे॒ । यत् । मे॒ । अद॑त्तः । असि॑ । युज्यः॑ । मे॒ । स॒प्तऽप॑दः । सखा॑ । अ॒सि ॥ ९ ॥

मनुष्यसंबंधी सम्पूर्ण दिशाओंके भीतर हे वरुण ! आपके कहे हुए स्तोत्र व्याप्त होजावें । जो कुछ आप मुझे न देसके हैं उसको दीजिये । आप मेरे अनुरूप सप्तपदा सखा हैं ॥ ९ ॥

स॒मा नौ॒ बन्धु॑र्वरुण स॒मा जा वेदा॒हं तद्यन्ना॑वे॒षा स॒मा जा ।
ददा॑मि॒ तद् यत् ते॒ अद॑त्तो॒ अस्मि॒ युज्य॑स्ते स॒प्तप॑दः॒ सखा॑स्मि ॥ १० ॥

स॒मा । नौ॒ । बन्धुः॑ । व॒रु॒ण॒ । स॒मा । जा । वेद॑ । अ॒हम् । तत् । यत् । नौ॒ । ए॒षा । स॒मा । जा ।

ददा॑मि । तत् । यत् । ते॒ । अद॑त्तः । अस्मि॑ । युज्यः॑ । ते॒ । स॒प्तऽप॑दः । सखा॑ । अ॒स्मि॒ ॥ १० ॥

हे वरुण ! हम दोनों एकसे बन्धु हैं। हम दोनोंकी सन्तान भी एकसी है अर्थात् जो मेरी सन्तान है वह आपकी है और जो आपकी संतान है वह मेरी है। हम दोनोंकी संतान एकसी है

इस बातको मैं जानता हूँ। जो आपको नहीं दिया गया है, वह सब मैं आपको देता हूँ, मैं आपका योग्य सप्तपदा सखा हूँ ॥१०॥

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि
परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

देवः। देवाय। गृणते। वयःऽधाः। विप्रः। विप्राय। स्तुवते।
सुऽमेधाः।

अजीजनः। हि। वरुण। स्वधाऽवन्। अथर्वाणम्। पितरम्।
देवऽबन्धुम्।

तस्मै। ऊं इति। राधः। कृणुहि। सुऽप्रशस्तम्। सखा। नः।
असि। परमम्। च। बन्धुः ॥ ११ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अन्नधारण करने वाले देव, देवताकी स्तुति करते हैं, सुबुद्धि ब्राह्मण विप्रकी स्तुति करता है। हे स्वधावान् वरुणदेव! आपने देवताओंके बन्धु हमारे पितारूप इन अथर्ववेत्ताको प्रकट किया है। इस लिये आप हममें श्रेष्ठ धन स्थापित करिये, आप हमारे परम बन्धु और सखा हैं ॥ ११ ॥

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१५३) ॥

वशाशमनकर्मणि वपायाश्चत्वारि खण्डानि कृत्वा "समिद्धो अद्य" इति सूक्तेन एकं खण्डं जुहोति। "ऊर्ध्वा अस्य" [५

२७] इति सूक्तेन द्वितीयं खण्डं जुहोति । युक्ताभ्यां सूक्ताभ्यां तृतीयं खण्डम् । अनुमतये स्वाहेति चतुर्थं खण्डं जुहोति । तथा च सूत्रम् । “समिद्ध ऊर्ध्वा अस्येति जुहोति । युक्ताभ्यां तृतीयाम् । आनुमतीं चतुर्थीम्” इति [कौ० ५. ६] ॥

वशाशमनकर्ममें वपाके चार खण्ड करके ‘समिद्धो अद्य’ इस सूक्तसे एक खण्डका होम करे । ‘ऊर्ध्वा अस्य’ इस पञ्चमकाण्ड के सत्ताईसवें सूक्तसे द्वितीय खण्डकी आहुति देय । इन मिले हुए दोनों सूक्तोंसे तीसरे खण्डको होमे । ‘अनुमतये स्वाहा’ से चौथे खण्डका होम करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि “समिद्ध ऊर्ध्वा अस्येति जुहोति । युक्ताभ्यां तृतीयम् । आनुमतीं चतुर्थीम्” (कौशिकसूत्र ५ । ६) ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि
जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि
प्रचेताः ॥ १ ॥

सम्ऽइद्धः । अद्य । मनुषः । दुरोणे । देवः । देवान् । यजसि ।
जातऽवेदः ।

आ । च । वह । मित्रऽमहः । चिकित्वान् । त्वम् । दूतः । कविः ।
असि । प्रऽचेताः ॥ १ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप देव हैं आप मनुष्यके यज्ञगृहमें इस समय प्रदीप्त होकर देवताओंकी संगति कर रहे हैं । हे मित्रोंकी पूजा करने वाले अग्निदेव ! आप जानकार हैं अतः देवताओंको बुलाइये । आप देवताओंके दूत, क्रांतदर्शी और प्रकृष्टज्ञानी हैं ॥ १ ॥

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया
सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं
नः ॥ २ ॥

तनूऽनपात् । पथः । ऋतस्य । यानान् । मध्वा । सम्ऽअञ्जन् ।
स्वदय । सुऽजिह्व ।
मन्मानि । धीभिः । उत । यज्ञम् । ऋन्धन् । देवऽत्रा । च ।
कृणुहि । अध्वरम् । नः ॥ २ ॥

हे शरीरकी रक्षा करनेवाले सुन्दर जिह्वा वाले अग्निदेव ! आप सत्यलोकके प्रापक मार्गोंको मधुसे सिञ्चित कर (। कर) स्वाद लीजिये । आप बुद्धिपूर्वक मननीय विचारोंको और यज्ञको बढ़ाते हुए इस हमारे यज्ञको देवताओंमें करिये—देवताओंमें पहुँचाइये ॥ २ ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो
यजीयान् ॥ ३ ॥

आऽजुह्वानः । ईड्यः । वन्द्यः । च । आ । याहि । अग्ने । वसुऽभिः ।
सऽजोषाः ।
त्वम् । देवानाम् । असि । यह्व । होता । सः । एनान् । यक्षि ।
इषितः । यजीयान् ॥ ३ ॥

हे भगवन् अग्निदेव ! आप पूजनीय हैं और सब लोकोंके वन्दनीय हैं, वे आप इस कर्ममें हमारे आह्वान करने पर वसुओं के साथ समान प्रीति रखते हुए आइये (हम ऐसा क्यों कहते हैं, इसका कारण यह है, कि–) हे पूजनीय ! आप देवताओंका आह्वान करने वाले हैं अतः आप हमारे प्रेरणा करने पर देवताओं की पूजा करिये । क्योंकि–आप मनुष्योंके परम यजनीय हैं॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते
अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ४

प्राचीनम् । बर्हिः । प्रऽदिशा । पृथिव्याः । वस्तोः । अस्याः ।
वृज्यते । अग्रे । अह्नाम् ।

वि । ऊँ इति । प्रथते । विऽतरम् । वरीयः । देवेभ्यः । अदितये ।
स्योनम् ॥ ४ ॥

वेदिरूप पृथिवीको ढकनेके लिये पहिले प्रणयन किया जाने वाला आहवनीय नाम वाला अग्नि, सामिधेनी-प्रक्षेपसे घृतभाग आघार आदिमें पूर्वाह्णके समय अनेक प्रकारसे फैलता है । यह अन्य ज्योतियोंसे श्रेष्ठ है और महत्त्वमय है यह यजमानोंके लिये और पृथिवीके लिये सुख देने वाला है ‡ ॥ ४ ॥

---

‡ देवताओंकी समान गुणवान् बन जाने वाले यजमानरूप देवताओंको फल प्राप्ति करानेसे यह अग्निदेव सुख देने वाले हैं और आहुतियोंके द्वारा वृष्टि करानेसे यह अग्निदेव पृथ्वीको सुख देने वाले हैं ॥ इस मन्त्रकी व्याख्याके प्रमाणके लिये निरुक्त ८ । ६ । २ देखना चाहिये ।

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः
शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ५

व्यचस्वतीः । उर्विया । वि । श्रयन्ताम् । पतिऽभ्यः । न ।
जनयः । शुम्भमानाः ।
देवीः । द्वारः । बृहतीः । विश्वम्ऽइन्वाः । देवेभ्यः । भवत ।
सुऽप्रायनाः ॥ ५ ॥

अग्निकी लपट ही हविको पहुँचाने वालीं पिघलाने वालीं और राक्षस आदिको रोकने वालीं होनेसे द्वाररूप हैं ये अनेक प्रकारसे जाती हैं, ये अग्निकी लपटें अपने महत्वके कारण, मैथुन-धर्ममें शोभित करनेकी इच्छा वाली स्त्रियें जैसे पतिको विश्रय देती हैं तिसी प्रकार हे सब हविको प्रेरित करने वालीं प्रकाशमान विशाल लपटों ! तुम देवताओंके लिये सुप्रगमन वाली अत एव सुख देने वाली होओ † ॥ ५ ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां
नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं
दधाने ॥ ६ ॥

आ । सुस्वयन्ती इति । यजते इति । उपाके इति । उषसानक्ता ।
सदताम् । नि । योनौ ।

---

† इसके विषयमें ८ । १० । ३ निरुक्तका प्रमाण है ।

दिव्ये इति । योषणे इति । बृहती इति । सुरुक्मे इति सुऽरुक्मे । अधि । श्रियम् । शुक्रऽपिशम् । दधाने इति ॥ ६ ॥

अग्निकी दीप्ति (उषा) और आहुतिकी दीप्ति (नक्ता) ये दोनों यज्ञकी सम्पादिका हैं परस्पर मिली हुई हैं, ये दोनों मुस्कुराती हुईसी देवताओंको संगत करती हैं। ये दिव्य हैं, परस्पर मिल जाती हैं ये महत्त्वमयी हैं, और सुदीप्ति वाली हैं, यह यजमानमें शुक्लरूपा लक्ष्मीको स्थापित करें ‡ ॥ ६ ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥

दैव्या । होतारा । प्रथमा । सुऽवाचा । मिमाना । यज्ञम् । मनुषः । यजध्यै ।
प्रऽचोदयन्ता । विदथेषु । कारू इति । प्राचीनम् । ज्योतिः । प्रऽदिशा । दिशन्ता ॥ ७ ॥

ये वायु और अग्नि दिव्य होता हैं अर्थात् देवताओंका आह्वान करने वाले हैं, मनुष्य होताओंकी अपेक्षा मुख्य हैं, सुन्दर वाणी वाले हैं, मनुष्यको यज्ञ करनेके लिये प्रेरणा करने वाले हैं और यज्ञका निर्माण करने वाले हैं, +यज्ञोंमें (होता मनुष्य पर अनु-

---

‡ इस मन्त्रकी व्याख्याके लिये निरुक्त ८।११।२ प्रमाण है।

+ अनग्निक यज्ञ नहीं होता, इस प्रकार अग्निदेव यज्ञका

ग्रह) करनेवाले हैं और विधिवाक्य प्रदेशसे आहवनीय अग्निकी नित्य सेवा करनेकी आज्ञा देने वाले हैं, इस प्रकार ये यज्ञके उपकारमें लगे रहते हैं ये मेरे लिये भी उपकारक हों † ॥ ७ ॥

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स्यो॒नं सर॑स्वती॒ः स्वप॑सः सदन्ताम् ८

आ । नः॒ । य॒ज्ञम् । भार॑ती । तूय॑म् । ए॒तु॒ । इडा॑ । म॒नु॒ष्वत् ।
इ॒ह । चे॒तय॑न्ती ।

ति॒स्रः । दे॒वीः । ब॒र्हिः । आ । इ॒दम् । स्यो॒नम् । सर॑स्वतीः ।
सु॒ऽअप॑सः । स॒द॒न्ता॒म् ॥ ८ ॥

सब भूतोंका जलसे भरण करने वाले अग्निदेवकी कान्ति, पृथ्वी और सरस्वती देवी सचेत होती हुई मनुष्यके बुलाने पर जैसे मनुष्य विना विलम्ब खानेको आता है इस प्रकार, आवें। सुन्दर कर्म वालीं ये तीनों देवियें इस कर्ममें इस कुशा पर सुख पाकर बैठें ‡ ॥ ८ ॥

निर्माण करने वाले हैं और वायुसे फूँके विना अग्नि प्रज्वलित नहीं होते, इस प्रकार वायुदेव यज्ञका निर्माण करने वाले हैं।

† इस व्याख्याके प्रमाणके लिये निरुक्त ८। १२। २ देखना चाहिये।

‡ इस मन्त्रकी व्याख्या निरुक्त ८। १३। २ के अनुसार की गई है। प्रसंगवश केवल भारती शब्दका अर्थ सूर्यकी कांति के स्थानमें अग्निकी कान्ति किया है।

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपिं॑श॒द् भुव॑नानि॒
विश्वा॑ ।
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान् दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि
वि॒द्वान् ॥ ९ ॥

यः । इ॒मे इति॑ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । जनि॑त्री॒ इति॑ । रू॒पैः । अपिं॑शत् । भुव॑नानि । विश्वा॑ ।
तम् । अ॒द्य । हो॒त॒रिति॑ । इ॒षि॒तः । यजी॑यान् । दे॒वम् । त्वष्टा॑रम् । इ॒ह । य॒क्षि॒ । वि॒द्वान् ॥ ९ ॥

जो त्वष्टा देवता सब भूतोंकी उत्पादिका द्यावापृथिवीको और सब भूतोंको अनेक रूपों वाला करता हुआ, हे पूजनीय होता अग्ने ! आज हमसे प्रेरित होकर आप उन, त्वष्टा देवताकी यहाँ पूजा करिये† ॥ ९ ॥

उ॒पाव॑सृज॒ त्मन्या॑ सम॒ञ्जन् दे॒वानां॒ पाथ॑ ऋतु॒था
ह॒वींषि॑ ।
वन॒स्पति॑: शमि॒ता दे॒वो अ॒ग्निः स्वद॑न्तु ह॒व्यं मधु॑ना
घृ॒तेन॑ ॥ १० ॥

उ॒प॒ऽअव॑सृज । त्मन्या॑ । स॒म्ऽअ॒ञ्जन् । दे॒वाना॑म् । पाथ॑ः ।
ऋ॒तु॒ऽथा । ह॒वींषि॑ ।

---

† इसकी व्याख्या निरुक्त ८।१४।२ के अनुसार की गई है ।

वनस्पतिः । शमिता । देवः । अग्निः । स्वदन्तु । हव्यम् । मधुना ।
घृतेन ॥ १० ॥

हे देव ! अपनेसे अपने अधिकारको प्रकट करते हुए आप देवताओंके भाग इस पशुरूप अन्नको और हवियोंको प्रत्येक ऋतुमें (देवताओंको) दीजिये । वनस्पति शमिता और अग्निदेव ये तीनों जल और घृतसे इस हव्यको स्वादु बनावें ‡ ॥१०॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

सद्यः । जातः । वि । अमिमीत । यज्ञम् । अग्निः । देवानाम् । अभवत् । पुरःऽगाः ।
अस्य । होतुः । प्रऽशिषि । ऋतस्य । वाचि । स्वाहाऽकृतम् । हविः । अदन्तु । देवाः ॥ ११ ॥

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

यह अग्निदेव प्रकट होनेके अनन्तर ही यज्ञको चला देते हैं और अग्निदेव प्रकट होते ही प्रधान होनेसे देवताओंके अग्रगामी होते हैं । ऐसे इन देवताओंका आह्वान करने वाले पूर्वदिशामें उत्तरवेदी आदिके रूपमें प्रणीत अग्निदेवके मुखमें स्वाहाकारके बलसे प्रक्षिप्त हविको देवता भक्षण करें ॥ ११ ॥ +

पञ्चम काण्डके तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१५४) ॥

---

‡ इसकी व्याख्या निरुक्त ८।१७।१ के अनुसार की गई है ।

+ इस मंत्रकी व्याख्याके लिये ८ । २१ । २ निरुक्त देखिये ।

"ददिर्हि" इति सूक्तं विषभैषज्यकर्मणि विनियुज्यते। तत्र "ददिर्हि" इति प्रथमर्चः सर्वविषभैषज्यकर्मणि विनियोगः। तदु उक्तं कौशिकेन। 'ददिर्हीति तक्षकायेत्युक्तम्' इति [कौ० ४.५]॥ ददिर्हि इत्येतस्या विनियोगस्तक्षकाय [कौ० ४. ४] इति सूत्रे प्रोक्त इति तस्यार्थः। तद्विनियोगविस्तरस्तु "ब्राह्मणो जज्ञे" इति सूक्ते [४. ६] द्रष्टव्यः॥

द्वितीयादीनाम् ऋचां प्रत्यृचं विषापहरण एव विनियोगः। तथा च सूत्रम्। "द्वितीयया ग्रहणी। सव्यं परिक्रामति। शिखासिचि स्तम्बान् उद्ग्रथ्नाति। तृतीयया प्रसर्जनी। चतुर्थ्या दक्षिणम् अपेहीति दंशम तृणैः प्रकर्ष्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः। पञ्चम्या वलीकपललज्वालेन। षष्ठ्यार्त्नीज्यापाशेन। द्वाभ्यां मधूद्वापान् पाययति। नवम्या श्वावित्पुरीषम्। त्रिःशुक्लया मांसं प्राशयति। दशम्यालाबुनाचमयति। एकादश्या नाभिं बध्नाति" इति [कौ० ४. ५]॥ अस्यार्थः। ग्रहणी कटकबन्धः। मृदादितोऽप्रदक्षिणं रेषां करोति बन्धः। तद् विषस्तम्भनभैषज्यम्। शिखां दष्टस्य बध्नाति तदपि विषस्तम्भनम्। श्वेतवस्त्रे शणस्तम्बे वा ग्रन्थिं बध्नाति। विषं स्तभ्यते शरीरे न सर्पति। तृतीयया दष्टं स्थानं पीडयति। तेन विषम् अन्यत्र गच्छति। चतुर्थ्या आचार्यस्ततः प्रदक्षिणं परिक्रामति। "अपेहि" [७. ६३.] इत्यृचं जपित्वा तृणानि प्रज्वाल्य अहेरभिमुखं प्रक्षिपति दष्टस्थाने वा। वलीकेति गृहतृणावज्वालितम् उदकम् अभिमन्त्र्य दष्टं पाययति प्रोक्षति च। षष्ठ्या आर्त्नीज्यापाशम् अभिमन्त्र्य बध्नाति। सप्तम्यष्टमीभ्यां मधुमक्षिकां मधुवृक्षमृत्तिकां चाभिमन्त्र्य पाययति। पुरीषम् अभिमन्त्र्य पाययतीति शेषः। त्रिःशुक्लया श्वाविच्छलाकया। मांसं श्वावित्संबन्धि। अलाबुना अलाबुन्युदकं कृत्वा अभिमन्त्र्य आचामयति विषव्याधितम्। अलाबुवृन्तं संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति। इति॥

१३८१

तथा आभिचारिके कर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः। तदुक्तं कौशिकेन। "ददिर्हीति साग्नीनि। देशकपट्ठु प्रक्षिणाति" इति [कौ० ६, २]॥ देशकपट्ठु सर्पच्छत्रम् अहिच्छत्रम्॥

'ददिर्हि' इस सूक्तका विषकी चिकित्साके कर्ममें विनियोग किया जाता है। इनमें 'ददिर्हि' इस पहिली ऋचाका सब प्रकारके विषोंकी चिकित्साके कर्ममें विनियोग होता है। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–ददिर्हीति तक्षकायेत्युक्तम्–ददर्हि सूक्त तक्षकके लिये कहा है" (कौशिकसूत्र ४ । ५)। "ददिर्हि इत्येतस्या विनियोगस्तक्षकाय॥–ददिर्हि इस ऋचाका विनियोग तक्षकके लिये किया जाता है" (कौशिकसूत्र ४ । ४) इसके विनियोगका विस्तार 'ब्राह्मणो जज्ञे' इस चतुर्थ काण्डके छठे सूक्तमें देखना चाहिये।

दूसरी आदि प्रत्येक ऋचाओंका विषको दूर करनेमें ही विनियोग होता है। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"द्वितीयया ग्राहणी। सव्यं परिक्रामति। शिखासिचि स्तम्बान् उद्ग्रथ्नाति। तृतीयया प्रसर्जनी। चतुर्थ्या दक्षिणं अपेहीति दंशम तृणैः प्रकृष्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः। पञ्चम्या वल्मीकपललज्वालेन। षष्ठ्यार्त्नीज्यापाशेन। द्वाभ्यां मधूद्वापान् पाययति। नवम्या श्वावित्पुरीषम्। त्रिशुक्लया मांसं प्राशयति। दशम्यालाबुनाचामयति। एकादश्या नाभिं बध्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । ५) इसका अर्थ यह है, कि–दूसरी ऋचासे ग्रहणी (कटकबन्ध) करे अर्थात् चारों ओर लपेट कर बाँध देय। मट्टी आदिसे वाईं ओरसे रेखा करता हुआ बाँधे। यह विषस्तम्भनचिकित्सा है। जिसको काटा है उसकी शिखाको बाँधे यह भी विषको स्तंभित करने वाली चिकित्सा है। श्वेतवस्त्रमें वा शणस्तम्बमें ग्रन्थिको बाँधे। तो विष स्तम्भित होजाता है, शरीरमें नहीं फैलता है।

तीसरीसे प्रसर्जनी करे अर्थात् काटे हुए स्थानको दबावे, इससे विष अन्यत्र (बाहर) चला जाता है। चौथी ऋचासे आचार्य प्रदक्षिण परिक्रमा करे 'अपेहि' इस सातवें काण्डके तिरानवें सूक्तकी ऋचाको जप तृणोंको प्रज्वलित कर सर्पके सामने वा डसे हुए स्थानमें फैंके। पाँचवीं ऋचासे गृहतृणकी ज्वालासे अप्रज्वालित जलको अभिमन्त्रित करके डसे हुए पुरुषको पिलावे और प्रोक्षण करे। छठीसे आर्त्नीज्या (धनुषकी कोटिके प्रत्यञ्चा) के पाशको अभिमन्त्रित करके बाँधे। सातवीं आठवीं ऋचासे मधुमक्षिकाको और मधुवृक्षकी मृत्तिकाको भी अभिमन्त्रित करके पिलावे। नवमी ऋचासे सेहीके पुरीषको अभिमन्त्रित करके पिलावे। तीन स्थानमें शुक्ल सेहीकी शलाकासे सेहीके मांसका प्राशन करावे। और दशमी ऋचासे अलाबु (रामतुरई—लौकी—घिया) में जल भर उसको अभिमन्त्रित करके पिलावे ग्यारहवीं ऋचासे रामतुरईकी घुण्डीको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे॥

तथा आभिचारिक कर्ममें भी इस सूक्तका विनियोग होता है। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—'द॒दिर्हि इति साग्नीति ददिर्हिसे साग्निक आभिचारिक कर्मोंको करे, सर्पछत्र अहिच्छत्र को वि॒दारे" (कौशिकसूत्र ६ । २)।

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि
ते वि॒षम् ।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्र॒भमिरे॑व॒ धन्व॒न्नि ज॑जास ते
वि॒षम् ॥ १ ॥

तथा आभिचारिके कर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोगः । तदुक्तं कौशिकेन । "ददिर्हीति साग्नीनि । देशकपट्ठ प्रक्षिणाति" इति [कौ० ६. २] ।। देशकपट्ठ सर्पच्छत्रम् अहिच्छत्रम् ।।

'ददिर्हिं' इस सूक्तका विषकी चिकित्साके कर्ममें विनियोग किया जाता है । इनमें 'ददिर्हिं' इस पहिली ऋचाका सब प्रकार के विषोंकी चिकिन्साके कर्ममें विनियोग होता है । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-ददिर्हीति तक्षकायेत्युक्तम्-ददर्हिं सूक्त तक्षकके लिये कहा है" (कौशिकसूत्र ४ । ५) । "ददिर्हिं इत्येतस्या विनियोगस्तक्षकाय ।।-ददिर्हिं इस ऋचाका विनियोग तक्षकके लिये किया जाता है" (कौशिकसूत्र ४ । ४) इसके विनियोगका विस्तार 'ब्राह्मणो जज्ञे' इस चतुर्थ काण्डके छठे सूक्तमें देखना चाहिये ।

दूसरी आदि प्रत्येक ऋचाओंका विषको दूर करनेमें ही विनियोग होता है । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"द्वितीयया ग्राहणी । सव्यं परिक्रामति । शिखासिचि स्तम्बान् उद्ग्रथ्नाति । तृतीयया प्रसर्जनी । चतुर्थ्या दक्षिणं अपेहीति दंशम तृणैः प्रकृष्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः । पञ्चम्या वलीकपललज्वालेन । षष्ठ्यार्त्नीज्यापाशेन । द्वाभ्यां मधूद्वापान् पाययति । नवम्या श्वावित्पुरीषम् । त्रिशुक्लया मांसं प्राशयति । दशम्यालाबुनाचामयति । एकादश्या नाभिं बध्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । ५) इसका अर्थ यह है, कि-दूसरी ऋचासे ग्रहणी (कटकबन्ध) करे अर्थात् चारों ओर लपेट कर बाँध देय । मट्टी आदिसे वाईं ओरसे रेखा करता हुआ बाँधे । यह विषस्तम्भनचिकित्सा है । जिसको काटा है उसकी शिखाको बाँधे यह भी विषको स्तंभित करने वाली चिकित्सा है । श्वेतवस्त्रमें वा शणस्तम्बमें ग्रन्थिको बाँधे । तो विष स्तम्भित होजाता है, शरीरमें नहीं फैलता है ।

१३८२

तीसरीसे प्रसर्जनी करे अर्थात् काटे हुए स्थानको दबावे, इससे विष अन्यत्र (बाहर) चला जाता है। चौथी ऋचासे आचार्य प्रदक्षिण परिक्रमा करे 'अपेहि' इस सातवें काण्डके तिरानवें सूक्तकी ऋचाको जप तृणोंको प्रज्वलित कर सर्पके सामने वा डसे हुए स्थानमें फैंके। पाँचवीं ऋचासे गृहतृणकी ज्वालासे अप्रज्वालित जलको अभिमन्त्रित करके डसे हुए पुरुषको पिलावे और प्रोक्षण करे। छठीसे आर्त्नीज्या (धनुषकी कोटिके प्रत्यञ्चा) के पाशको अभिमन्त्रित करके बाँधे। सातवीं आठवीं ऋचासे मधुमक्षिकाको और मधुवृक्षकी मृत्तिकाको भी अभिमन्त्रित करके पिलावे। नवमी ऋचासे सेहीके पुरीषको अभिमन्त्रित करके पिलावे। तीन स्थानमें शुक्ल सेहीकी शलाकासे सेहीके मांसका प्राशन करावे। और दशमी ऋचासे अलाबु (रामतुरई-लौकी-घिया) में जल भर उसको अभिमन्त्रित करके पिलावे ग्यारहवीं ऋचासे रामतुरईकी घुण्डीको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे॥

तथा आभिचारिक कर्ममें भी इस सूक्तका विनियोग होता है। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-'ददिर्हि इति साग्नीति· ददिर्हिसे साग्निक आभिचारिक कर्मोंको करे, सर्पछत्र अहिच्छत्र को विदारे" (कौशिकसूत्र ६। २)।

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि
ते वि॒षम् ।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तमग्र॑भमि॒रेव॒ धन्व॒न्नि जं॑जास ते
वि॒षम् ॥ १ ॥

दुदिः । हि । मह्यम् । वरुणः । दिवः । कविः । वचःऽभिः । उग्रैः ।
नि । रिणामि । ते । विषम् ।
खातम् । अखातम् । उत । सक्तम् । अग्रभम् । इराऽइव । धन्वन् ।
नि । जजास । ते । विषम् ॥ १ ॥

स्वर्गके चतुर देवता वरुणदेवने मुझको उपदेश दिया है, (वरुणदेवके दिये हुए उन) उग्र वचनोंसे मैं तेरे विषको दूर करता हूँ । जो विष मांसमें गढ़ गया है वा न गढ़ा है किन्तु ऊपर ही लगा हुआ है उस सब विषको मैं ग्रहण करता हूँ, जिस प्रकार रेतेमें अन्न नष्ट होता है, इसी प्रकार अब तेरा विष नष्ट होगया है १

यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशादादु ते ॥ २ ॥

यत् । ते । अपऽउदकम् । विषम् । तत् । ते । एतासु । अग्रभम् ।
गृह्णामि । ते । मध्यमम् । उत्ऽतमम् । रसम् । उत । अवमम् । भियसा ।
नेशत् । आत् । ऊं इति । ते ॥ २ ॥

जो तेरा जलको दूर करने वाला विष है, उसको मैंने इन (नाड़ियों) के भीतर पकड़ लिया है । तेरे उत्तम मध्यम और अधम विषरसको मैं ग्रहण करता हूँ, वह (मन्त्रबलके) भयसे नष्ट होजावे ॥ २ ॥

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।

अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु
सूर्यः ॥ ३ ॥

वृषा । मे । रवः । नभसा । न । तन्यतुः । उग्रेण । ते । वचसा ।
बाधे । आत् । ऊं इति । ते ।

अहम् । तम् । अस्य । नृऽभिः । अग्रभम् । रसम् । तमसःऽइव ।
ज्योतिः । उत् । एतु । सूर्यः ॥ ३ ॥

मेरा शब्द (अमृतकी) वर्षा करने वाला है, और मेघकी समान गर्जना वाला है ऐसे उग्र वचनोंसे मैं तुझ (सर्प) को बाधित करता हूँ, मैंने इस सर्पके विषको मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया है, जैसे अन्धकारमेंसे ज्योति सूर्य उदय होता है, (इसी प्रकार विषसे मुक्त होकर यह पुरुष) उदयको प्राप्त हो–जीवित होजाय ॥ ३ ॥

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४॥

चक्षुषा । ते । चक्षुः । हन्मि । विषेण । हन्मि । ते । विषम् ।
अहे । म्रियस्व । मा । जीवीः । प्रत्यक् । अभि । एतु । त्वा ।
विषम् ॥ ४ ॥

हे सर्प ! मैं अपनी नेत्रशक्तिसे तेरी नेत्रशक्तिको नष्ट करता हूँ विषसे तेरे विषको नष्ट करता हूँ, हे सर्प ! तू मर जा ! जीवित मत रह ! तेरा विष तुझमें ही लौट आवे ॥ ४ ॥

कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्यु स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे
रमध्वम् ॥ ५ ॥

कैरात । पृश्ने । उपऽतृण्य । बभ्रो इति । आ । मे । शृणुत ।
असिताः । अलीकाः ।
मा । मे । सख्युः । स्तामानम् । अपि । स्थात । आऽश्रावयन्तः
नि । विषे । रमध्वम् ॥ ५ ॥

हे किरातोंके घूमनेके स्थल जंगलमें उत्पन्न हुए, तुच्छ, काले कृष्ण सर्पों ! अरे घासमें रहने वाले निन्दनीय सर्पों ! मेरा भाषण सुनो । मेरे मित्रके स्थानके पास भी मत ठहरो मेरे इस भाषणको (दूसरे सर्पोंको भी) सुनाते हुए अपने विषमें रमते रहो

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि
रथाँ इव ॥ ६ ॥

असितस्य । तैमातस्य । बभ्रोः । अपऽउदकस्य । च ।
सात्राऽसहस्य । अहम् । मन्योः । अव । ज्याम्ऽइव । धन्वनः ।
वि । मुञ्चामि । रथान्ऽइव ॥ ६ ॥

काले रंग वाले सर्पके, गीले स्थान पर रहनेवाले सर्पके, बभ्रु वर्ण वाले सर्पके, जलसे भिन्न सूखे स्थानमें रहने वाले सर्पके और सात्रासाह सर्पके क्रोधको मैं इस प्रकार उतारता हूँ जिस

प्रकार धनुषसे रोदेको उतारते हैं और मरुभूमिमें जैसे रथों (के जुओं) को उतार देते हैं ॥ ६ ॥

आलिंगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥

आऽलिगी । च । विऽलिगी । च । पिता । च । माता । च ।
विद्म । वः । सर्वतः । बन्धु । अरसाः । किम् । करिष्यथ ॥ ७ ॥

हे सर्पो! तुम्हारे माता और पिता आलिंगी प्राणमें आ दौड़ने वाले और विलिगी-विशेषरूपसे दौड़ने वाले हैं, तुम्हारे बंधुओं को हम भली भाँति जानते हैं तुम निर्वीर्य क्या कर सकते हो? ७

उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥

उरुऽगूलायाः । दुहिता । जाता । दासी । असिक्न्या ।
प्रऽतङ्कम् । दद्रुषीणाम् । सर्वासाम् । अरसम् । विषम् ॥ ८ ॥

बड़े भारी गूला वृक्षसे उत्पन्न हुई अतः उसकी पुत्री सर्पिणी काली साँपिन की दासी है, इन दाँतसे क्रोध करने वाली सब साँपनियोंका कष्टदायक विष नीरस-निष्प्रभाव होजाय ॥ ८ ॥

कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥ ९ ॥

कर्णा । श्वावित् । तत् । अब्रवीत् । गिरेः । अवऽचरन्तिका ।

यः । काः । च । इमाः । खनित्रिमा । तासाम् । अरसऽतमम् ।
विषम् ॥ ९ ॥

पर्वतके पास घूमने वाली कान वाली सेहीने यह कहा, कि-जो खुदे हुए स्थानमें रहने वालीं सर्पिणियें हैं उनका विष नीरस (होवे) ॥ ९ ॥

ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥

ताबुवम् । न । ताबुवम् । न । घ । इत् । त्वम् । असि । ताबुवम् ।
ताबुवेन । अरसम् । विषम् ॥ १० ॥

तू ताबुव नहीं है, ताबुव नहीं है, तू ताबुव नहीं है, क्योंकि-ताबुवसे विष नीरस होजाता है ॥ १० ॥

तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११ ॥

तस्तुवम् । न । तस्तुवम् । न । घ । इत् । त्वम् । असि । तस्तुवम् ।
तस्तुवेन । अरसम् । विषम् ॥ ११ ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

तू तस्तुव नहीं है, तस्तुव नहीं है, तू तस्तुव नहीं है, क्योंकि-तस्तुवसे विष नीरस होजाता है ॥ ११ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१५५) ॥

"सुपर्णस्त्वा" इति सूक्तस्य कृत्याप्रतिहरणगणे पाठाद् यत्रयत्र कृत्याप्रतिहरणगणो विनियुज्यते तत्रतत्रास्य सूक्तस्य विनियोगः । सूत्रादिकं "दूष्या दूषिरसि" इति [२. ११] सूक्ते द्रष्टव्यम् ॥

"सुपर्णस्त्वा" इस सूक्तका कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ है अत एव कृत्याप्रतिहरणगणका जहाँ विनियोग होता है तहाँ तहाँ इस सूक्तका विनियोग होता है। सूत्र आदि 'दूष्या दूषिरसि' इस द्वितीयकाण्डके ग्यारहवें सूक्तमें देखने चाहियें।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥

सुऽपर्णः । त्वा । अनु । अविन्दत् । सूकरः । त्वा । अखनत् । नसा ।
दिप्स । ओषधे । त्वम् । दिप्सन्तम् । अव । कृत्याऽकृतम् । जहि १

हे ओषधे ! सुन्दर पक्षवाले गरुडदेवने तुझको प्राप्त किया था, आदि बराह सूकरने तुझको नाकसे खोदा था, हे ओषधे ! तू कृत्या करके हमको मारना चाहने वालेको मार नष्ट कर ।१।

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२॥

अव । जहि । यातुऽधानान् । अव । कृत्याऽकृतम् । जहि ।
अथो इति । यः । अस्मान् । दिप्सति । तम् । ऊं इति । त्वम् ।
जहि । ओषधे ॥ २ ॥

तू पीड़ा देने वाले यातुधानोंको नष्ट कर कृत्याका प्रयोग करने वालेको मार, हे ओषधे ! जो हमको मारना चाहता है उसको तू मार ॥ २ ॥

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥

रिश्यस्यऽइव । परिऽशासम् । परिऽकृत्य । परि । त्वचः ।
कृत्याम् । कृत्याऽकृते । देवाः । निष्कम्ऽइव । प्रति । मुञ्चत ३

हे देवताओं ! हिंस्यके आयुधको उसकी त्वचासे काट कर—अलग कर—उस आयुधरूप कृत्याको कृत्या करने वालेके ऊपर ही निष्ककी समान ही छोड़ो अर्थात् जैसे पुरुष सुवर्णको परम-प्रेमसे ग्रहण करता है, इसी प्रकार वह कृत्याका प्रेरक कृत्याको मोहवश ग्रहण करे ॥ ३ ॥

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ४

पुनः । कृत्याम् । कृत्याऽकृते । हस्तऽगृह्य । परा । नय ।
सम्ऽअक्षम् । अस्मै । आ । धेहि । यथा । कृत्याऽकृतम् । हनत् ४

हे ओषधे ! तू कृत्याको कृत्या करने वालेके पास ही फिर हाथ पकड़ कर लेजा । और कृत्याके सामने उस कृत्या करने वालेको धर दे, जिससे वह कृत्या करने वालेको मार डाले॥४॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥

कृत्याः । सन्तु । कृत्याऽकृते । शपथः । शपथिऽयते ।
सुऽखः । रथःऽइव । वर्तताम् । कृत्या । कृत्याऽकृतम् । पुनः ॥५॥

कृत्या कृत्या करने वालेके लिये प्राप्त हों और जो शपथसा आचरण करता है अर्थात् शाप देता है, शपथ उसको ही प्राप्त

हों जैसे सुन्दर आकाशको प्राप्त हुआ अर्थात् खुले हुए समपथमें प्राप्त हुआ रथ घूमता है, तिसी प्रकार कृत्या कृत्या करने वालेके ऊपर फिर सुखपूर्वक घूमे ॥ ५ ॥

य॒दि स्त्री यदि॑ वा॒ पुमा॑न् कृ॒त्यां च॒कार॑ पा॒प्मने॑ ।
तामु॒ तस्मै॑ नयाम॒स्यश्व॑मिवाश्वाभि॒धान्या॑ ॥६॥

यदि॑ । स्त्री । यदि॑ । वा॒ । पुमा॑न् । कृ॒त्याम् । च॒कार॑ । पा॒प्मने॑ ।
ताम् । ऊं॒ इति॑ । तस्मै॑ । न॒या॒म॒सि॒ । अश्व॑म्ऽइव । अ॒श्व॒ऽअ॒भि॒धान्या॑

यदि स्त्रीने वा पुरुषने तुझको पापमय कृत्य करनेके लिये किया है, तो हम जैसे घोड़े पर घोड़े बाँधनेकी रस्सी पटकायी जाती है, तिस प्रकार कृत्याको कृत्या करने वाले पर ही पटकते हैं ॥ ६ ॥

य॒दि वासि॑ दे॒वकृ॑ता॒ यदि॑ वा॒ पुरु॑षैः कृ॒ता ।
तां त्वा॒ पुन॑र्णयाम॒सीन्द्रे॑ण स॒युजा॑ व॒यम् ॥ ७ ॥

यदि॑ । वा॒ । असि॑ । दे॒वऽकृ॑ता । यदि॑ । वा॒ । पुरु॑षैः । कृ॒ता ।
ताम् । त्वा॒ । पुन॑ः । न॒या॒म॒सि॒ । इन्द्रे॑ण । स॒ऽयुजा॑ । व॒यम् ॥७॥

हे कृत्ये ! यदि तुझको देवताओंने किया है अथवा तुझको पुरुषोंने किया है तो इन्द्रके साथ मित्रता रखने वाले हम तुझको फिर लौटाते हैं ॥ ७ ॥

अग्ने॑ पृतनाषा॒ट् पृत॑ना सहस्व ।
पुन॑ः कृ॒त्वां कृत्या॒कृते॑ प्रति॒हर॑णेन हरामसि ॥ ८ ॥

अग्ने॑ । पृ॒त॒ना॒षाट्॒ । पृत॑नाः । स॒ह॒स्व॒ ।

पुन॑ः । कृ॒त्याम् । कृ॒त्या॒ऽकृते॑ । प्र॒ति॒ऽहर॑णेन । ह॒रा॒म॒सि॒ ।। ८ ।।

हे असुरोंकी सेनाका सामना करने वाले अग्निदेव ! आप इन कृत्याओंकी सेनाओंका सामना करिये, इस प्रतिहरण (कृत्याको लौटाने) के कर्मसे हम कृत्याको कृत्याकारीके लिये लौटाते हैं ।। ८ ।।

कृत॑व्यधनि॒ विध्य॒ तं यश्च॒कार॒ तमिज्ज॑हि ।

न त्वाम॑चक्रुषे व॒यं व॒धाय॒ सं शिंशीमहि ।। ९ ।।

कृत॑ऽव्यधनि । विध्य॑ । तम् । यः । च॒कार॑ । तम् । इत् । ज॒हि॒ ।

न । त्वाम् । अच॑क्रुषे । व॒यम् । व॒धाय॑ । सम् । शि॒शी॒म॒हि॒ ।।९।।

हे संहारके साधनोंको उठाये हुए कृत्ये ! जिसने तुझको किया है उसको ही तू वींध, उसको ही तू मार, जिसने तुझको नहीं किया है उसका वध करनेके लिये हम तुझको तीक्ष्ण नहीं कर रहे हैं ।। ९ ।।

पु॒त्र इ॑व पि॒तरं॑ गच्छ स्व॒ज इ॑वा॒भिष्ठि॑तो दश ।

ब॒न्धामि॑वावक्रा॒मी ग॑च्छ॒ कृत्ये॑ कृ॒त्या॒कृतं॑ पुन॑ः १०

पु॒त्रःऽइ॑व । पि॒तर॑म् । ग॒च्छ॒ । स्व॒जःऽइ॑व । अ॒भिऽस्थि॑तः । द॒श॒ ।

ब॒न्धम्ऽइ॑व । अ॒व॒ऽक्रा॒मी । ग॒च्छ॒ । कृत्ये॑ । कृ॒त्या॒ऽकृत॑म् । पुन॑ः १०

कृत्ये ! पुत्र जैसे पिताके पास जाता है, इसी प्रकार तू अपने उत्पादकके पास जा और जैसे दबने पर लिपटने वाला सर्प लिपट कर काट लेता है इस प्रकार कृत्याकारीको डस ले । और जैसे

बंधन बीचमेंसे टूटने पर फिर अपने ही अङ्ग पर लगता है इस प्रकार हे कृत्ये ! तू कृत्याकारीके पास ही फिर जा ॥ १० ॥

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु

उत् । एणीऽइव । वारणी । अभिऽस्कन्दम् । मृगीऽइव ॥ कृत्या । कर्तारम् । ऋच्छतु ॥ ११ ॥

जैसे हथिनी मृगी और एणी जातिकी मृगी झपटती है इसी प्रकार कृत्या कृत्याका प्रयोग करने वाले पर झपटे ॥ ११ ॥

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२

इष्वाः । ऋजीयः । पततु । द्यावापृथिवी इति । तम् । प्रति ।
सा । तम् । मृगम्ऽइव । गृह्णातु । कृत्या । कृत्याऽकृतम् । पुनः ।

हे द्यावापृथिवी ! कृत्या कृत्या करने वाले पर बाणकी समान सरलरीतिसे पड़े वह कृत्या कृत्याकारीको लौटकर मृगकी समान पकड़ लेय ॥ १२ ॥

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ १३ ॥

अग्निःऽइव । एतु । प्रतिऽकूलम् । अनुकूलम्ऽइव । उदकम् ।
सुऽखः । रथःऽइव । वर्तताम् । कृत्या । कृत्याऽकृतम् । पुनः ॥ १३ ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थ सूक्तम् ॥

वह कृत्या अग्निकी समान कर्तासे प्रतिकूल व्यवहार करती

हुई प्राप्त होवे, और जैसें जल कूलको ढ़ाता हुआ प्राप्त होता है तैसे कृत्याकारीको अनुकूल होकर प्राप्त होवे, कृत्या कृत्याकारी पर सुखपूर्वक घूमने वाले रथकी समान घूमे ॥ १३ ॥

पञ्चम काण्डके तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१५६) ॥

गवां रोगोपशमनपुष्टिप्रजननकर्मसु “एका च मे” इति सूक्तेन अभिमन्त्रितं सलवणं केवलं वा उदकं गाः पाययेत् । तद् उक्तं कौशिकसूत्रे । “एका च म इति गा लवणं पाययति” इत्यादि [कौ० ३. २] ॥

दुष्टवक्तृमुखस्तम्भनकर्मणि “एका च मे” [५. १५] “यद्येकवृषोसि” [५. १६] इति सूक्ताभ्यां खलतुलपर्णीं मधुना लोडितेषु सक्तुषु जर्जरीकृत्वा अभिमन्त्र्य पाययति ॥ “यद्येकवृषोसि” इत्यभिमन्त्र्य अन्नं भुंक्ते शापभैषज्यार्थम् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि “यद्येकवृपोसि” इत्यनेन गृहद्वारम् अभिमन्त्र्य अपिंदधाति । तद् उक्तं कौशिकेन । “मधुलावृषलिङ्गाभिः खलतुलपर्णीं संक्षुद्य मधुमन्थे पापयति । उत्तराभिर्भुङ्क्ते । द्वारं सृजति” इति [कौ० ४. ५] ॥ “एका च मे” इति मधुलाशब्दवत्यः । “यद्येकवृषोसि” इति वृषलिङ्गाः ॥

गौओंकी रोगशांति पुष्टि और प्रजननके कर्मोंमें ‘एका च मे’ इस सूक्तसे अभिमंत्रित साधारण वा लवण पड़े हुए जलको अभिमंत्रित करके गौओंको पिलावे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है । “एका च मे इति गा लवणं पाययति” (कौशिकसूत्र ३ । २) ॥

दुष्ट वक्ताके मुखको स्तंभित करनेके कृत्यमें ‘एका च मे’ इस पञ्चमकाण्डके पन्द्रहवें सूक्तसे और ‘यद्येकवृषोऽसि’ इस पञ्चमकाण्डके सोलहवें सूक्तसे खलतुलपर्णीको मधुसे आलोडित सत्तुओंमें जर्जर करके अभिमंत्रित करके पिलावे । शापकी

चिकित्साके लिये 'यद्येकवृषोऽसि' इससे अभिमंत्रित करके अन्न को खावे ।

तथा इसी प्रकार इसी कर्ममें 'यद्येकवृषोऽसि' इससे गृहद्वारको अभिमंत्रित करके बन्द करे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'मधुलावृषलिंगाभिः खलतुलपर्णीं संक्षुद्य मधुमंथे पाययति । उत्तराभिर्भुंक्ते । द्वारं सृजति" (कौशिकसूत्र ४ । ५)। "एका च मे" इति मधुलाशब्दवत्यः । "यद्येकवृषोऽसि" इति वृषलिंगाः ।

एका॑ च मे॒ दश॑ च मेपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे म॒धुला क॑रः ॥ १ ॥

एका॑ । च॒ । मे॒ । दश॑ । च॒ । मे॒ । अ॒प॒ऽव॒क्तार॑ः । ओ॒ष॒धे॒ ।
ऋत॑ऽजाते । ऋत॑ऽवरि । मधु॑ । मे॒ । म॒धु॒ला । क॒र॒ः ॥ १ ॥

यज्ञार्थ उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी बुराई करने वाले एक हों दश हों वा ग्यारह हों, तू मधुर है अतः मेरे शब्दको मधुर कर ।

वा–हे जलमें उत्पन्न हुई औषधे ! मेरी निंदा करने वाले हों तब भी तू मेरे लिये ग्यारह मधुर गौओंको कर और उनका मधुर दूध मेरे निमित्त कर ॥ १ ॥

द्वे च॑ मे विंश॒तिश्च॑ ०।० ॥ २ ॥

द्वे । इति॑ । च॒ । मे॒ । वि॒श॒तिः । च॒ ॥०॥ २ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक दो हों वा बीस हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा–हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने

वाले, दो हों वा बीस हों तब भी तू मेरे लिये बाईस मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ २ ॥

ति॒स्रश्च॑ मे त्रि॒ंशच्च॑ ०।० ॥ ३ ॥

ति॒स्रः । च॒ । मे॒ त्रि॒ंशत् । च॒ ॥०॥३ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक तीन हों वा तीस हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा—हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, तीन हों वा तीस हों तब भी तू मेरे लिये तैंतीस मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ३ ॥

चत॑स्रश्च मे चत्वा॒रि॒ंशच्च॑ ।०। ॥ ४ ॥

चत॑स्रः । च॒ । मे॒ । च॒त्वा॒रि॒ंशत् । च॒ ॥०॥ ४ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक चार हों वा चालीस हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा—हे जलमें उत्पन्न हुई डालमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, चार हों वा चालीस हो तब भी तू मेरे लिये चौबालीस मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ४ ॥

प॒ञ्च च॑ मे पञ्चा॒शच्च॑ ०।०॥ ५ ॥

प॒ञ्च । च॒ । मे॒ । प॒ञ्चा॒शत् । च॒ ॥०॥ ५ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक पाँच हो वा पचास हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा—हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, पाँच हों वा पचास हों तब भी तू मेरे लिये पचपन मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ५ ॥

षट् च॑ मे ष॒ष्टिश्च॑ ०।० ॥ ६ ॥

षट् । च॒ । मे॒ । ष॒ष्टिः । च॒ ॥०॥ ६ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक छ हों वा साठ हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा–हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, छ हों वा साठ हों तब भी तू मेरे लिये छियासठ मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ६ ॥

स॒प्त च॑ मे स॒प्ततिश्च॑ ०।० ॥ ७॥

स॒प्त । च॒ । मे॒ । स॒प्त॒तिः । च॒ ॥०॥ ७ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक सात हों वा सत्तर हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा–हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, सात हों वा सत्तर हों तब भी तू मेरे लिये सतत्तर मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ७ ॥

अ॒ष्ट च॑ मेशी॒तिश्च॑ ०।० ॥ ८ ॥

अ॒ष्ट । च॒ । मे॒ । अ॒शी॒तिः । च॒ ॥०॥ ८ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक आठ हों वा अस्सी हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर ।

वा–हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी औषधे ! मेरी निंदा करने वाले, आठ हों वा अस्सी हों तव भी तू मेरे लिये अठासी मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ८ ॥

नव॑ च मे नव॒तिश्च॑ ०।० ॥ ९ ॥

नव॑ । च॒ । मे॒ । न॒व॒तिः । च॒ ॥०॥ ९ ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक नौ हों वा नब्भै हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर।

वा हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी ओषधे ! मेरी निंदा करने वाले, नौ हों वा नब्भै हों तब भी तू मेरे लिये निन्यानवे मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ९ ॥

दश॑ च मे श॒तं च॑ मेप॒वक्तार॑ः ०।०ः॥१० ॥

दश । च॒ । मे॒ । श॒तम् । च॒ । मे॒ । अ॒प॒ऽव॒क्तारः ॥०॥ १० ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक दस हों वा सौ हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर।

वा-हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी ओषधे ! मेरी निंदा करने वाले, दस हों वा सौ हों तब भी तू मेरे लिये एकसौ दश मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ १० ॥

श॒तं च॑ मे स॒हस्रं॑ चाप॒वक्तार॑ ओषधे ।

ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ॥ ११ ॥

श॒तम् । च॒ । मे॒ । स॒ह॑स्रम् । च॒ । अ॒प॒ऽव॒क्तार॑ः । ओ॒ष॒धे॒ ।

ऋत॑ऽजाते । ऋत॑ऽवरि । मधु॑ । मे॒ । म॒धु॒ला । क॒रः॒ ॥ ११ ॥

तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥ इति तृतीयोनुवाकः ॥

हे ऋतजाते ऋतावरि ओषधे ! मेरे निन्दक सौ हों वा हजार हों तू मधुर है अतः मेरे वचनको मधुर कर।

वा-हे जलमें उत्पन्न हुई जलमयी ओषधे ! मेरी निंदा करने वाले, सौ हों वा हजार हों तब भी तू मेरे लिये एक हजार सौ मधुर गौओंको कर, उनका मधुर दुग्ध मेरे लिये कर ॥ ११ ॥

पञ्चम काण्डके तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१५७) ॥

तीसरा अनुवाक समाप्त

"यद्येकवृषोसि" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रमपि पूर्वसूक्ते उदाहृतम् ॥

'यद्येकवृषोऽसि' इस सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है। सूत्र भी पहिले सूक्तमें कह दिया है।

यद्ये॑कवृ॒षोसि॑ सृ॒जार॒सोऽसि॑ ॥ १ ॥

यदि॑ । ए॒क॒ऽवृ॒षः । अ॒सि॑ । सृ॒ज । अ॒र॒सः । अ॒सि॒ ॥ १ ॥

हे लवण ! यदि तू एक वृषभकी समान शक्ति वाला है तो इस गौके संतानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा।

वा हे अन्न ! तू एक वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द करानेकी शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है १

यदि॑ द्विवृ॒षोसि॑० ॥ २ ॥

यदि॑ । द्वि॒ऽवृ॒षः । अ॒सि॑ ॥ ० ॥ २ ॥

हे लवण ! यदि तू दो वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा।

वा–हे अन्न ! तू दो वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द कराने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है २

यदि॑ त्रिवृ॒षोसि॑० ॥ ३ ॥

यदि॑ । त्रि॒ऽवृ॒षः । अ॒सि॑ ॥ ० ॥ ३ ॥

हे लवण ! यदि तू तीन वृषभकी समान शक्ति वाला है तो

इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा–हे अन्न ! तू तीन वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा करने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द करने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ३

यदि॑ चतुर्वृ॒षोसि॑० ॥ ४ ॥

यदि॑ । च॒तुः॒ऽवृ॒षः । असि॑ ॥ ० ॥ ४ ॥

हे लवण ! यदि तू चार वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा–हे अन्न ! तू चार वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द कराने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ४

यदि॑ पञ्चवृ॒षोसि॑० ॥ ५ ॥

यदि॑ । प॒ञ्च॒ऽवृ॒षः । असि॑ ॥ ० ॥ ५ ॥

हे लवण ! यदि तू पाँच वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा–हे अन्न ! तू पाँच वृषभ की समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द कराने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ५

यदि॑ षड्वृ॒षोसि॑० ॥ ६ ॥

यदि॑ । ष॒ट्ऽवृ॒षः । असि॑ ॥ ० ॥ ६ ॥

हे लवण ! यदि तू छः वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा—हे अन्न ! तू छः वृषभ की समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द कराने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ६

यदि सप्तवृषोसि० ॥ ७ ॥

यदि । सप्तऽवृषः । असि ॥ ० ॥ ७ ॥

हे लवण ! यदि तू सात वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा—हे अन्न ! तू सात वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द करानेकी शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ७

यद्यष्टवृषोसि० ॥ ८ ॥

यदि । अष्टऽवृषः । असि ॥ ० ॥ ८ ॥

हे लवण ! यदि तू आठ वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा—हे अन्न ! तू आठ वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द करानेकी शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ८

यदि नववृषोसि० ॥ ९ ॥

यदि । नवऽवृषः । असि ॥ ० ॥ ९ ॥

हे लवण ! यदि तू नौ वृषभ की समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा—हे अन्न ! तू नौ वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बन्द कराने की शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है ९

यदि दशवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥

यदि । दशऽवृषः । असि । सृजः । अरसः । असि ॥ १० ॥

हे लवण ! यदि तू दश वृषभकी समान शक्ति वाला है तो इस गौके सन्तानको उत्पन्न कर वा इसको पुष्ट करके इसको रच अन्यथा तू नीरस माना जावेगा ।

वा—हे अन्न ! तू दश वृषभकी समान शब्दरूपी वीर्यकी वर्षा कराने वाला है तो मुझमें उस वीर्यको प्रकट कर उससे शत्रुके मुखको बंद करानेकी शक्तिको मुझमें रच अन्यथा तू नीरस है १०

यद्येकादशोसि सोपोदकोसि ॥ ११ ॥

यदि । एकादशः । असि । सः । अपऽउदकः । असि ॥ ११ ॥

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

यदि (तू इन दश तककी शक्ति वाला नहीं है) एकादश है तो तू नीरस है ॥ ११ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१५८) ॥

गोहरणेभिचारकर्मणि "तेवदन्" इति सूक्तेन नेतृणां पदं वृश्चति। तथा अनेन सूक्तेन चौरान् अन्वाह ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "तेवदन्निति नेतॄणां पदं वृश्चति । अन्वाह" इति [कौ० ६. २] ॥

गोहरणके अभिचार कर्ममें 'तेऽवदन् इस सूक्तसे नेताओंके पदको काटे ।

तथा इस सूक्तको चोरोंके पीछे कहे । इसी बातको कौशिक सूत्रमें कहा है, कि—"तेऽवदन्निति नेतॄणां पदं वृश्चति" (कौशिक सूत्र ६ । २) ॥

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेकूपारः सलिलो मातरिश्वा
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य

ते । अवदन् । प्रथमाः । ब्रह्मऽकिल्बिषे । अकूपारः । सलिलः । मातरिश्वा ।

वीडुऽहरा । तपः । उग्रम् । मयःऽभूः । आपः । देवीः । प्रथमऽजाः । ऋतस्य ॥ १ ॥

ब्राह्मणका अपराध करनेके विषयमें सूर्यदेव, जलके अभिमानी देवता वरुण, वायुदेव, उग्र तपके अभिमानी देवता सुखदायक चन्द्रदेव, आपो देवी इन सत्यात्मक ब्रह्माजीसे पहिले प्रकट हुए बली प्रसिद्ध देवताओंने कहा है ॥ १ ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या
निनाय ॥ २ ॥

सोमः । राजा । प्रथमः । ब्रह्मऽजायाम् । पुनः । प्र । अयच्छत् ।

अहृणीयमानः ।

अनुऽअर्तिता । वरुणः । मित्रः । आसीत् । अग्निः । होता । हस्तऽ-

गृह्य । आ । निनाय ॥ २ ॥

प्रथम राजा सोमने क्रोध न करते हुए ब्रह्मजाया (जिससे ब्रह्म (यज्ञ) प्रकट होता है उस गौको वा ब्राह्मण शब्दसे उपलक्षित द्विजवर्ण की स्त्री) को देदिया था उस समय वरुण और सूर्य उसके साथ चलने वाले थे, अग्निदेव होता थे (उनके समक्ष वर) हाथ पकड़ कर उसको लेगया ॥ २ ॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।

न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य

हस्तेन । एव । ग्राह्यः । आऽधिः । अस्याः । ब्रह्मऽजाया । इति ।

च । इत् । अवोचत् ।

न । दूताय । प्रऽहेया । तस्थे । एषा । तथा । राष्ट्रम् । गुपितम् ।

क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥

यह ब्रह्मजाया है ऐसा कोई कहे तो उसका संकल्प हाथसे ही ग्रहण करना चाहिये, यह बात निश्चित हो चुकी है, कि-इसको दूतके द्वारा नहीं देना चाहिये । ऐसा करने पर क्षत्रियका राज्य रक्षित रहता है ॥ ३ ॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।

सा ब्र॑ह्मजा॒या वि दु॑नोति रा॒ष्ट्रं यत्र प्रापा॑दि शश॒
उ॑ल्कु॒षीमा॑न् ॥ ४ ॥

याम् । आ॒हुः । तार॑का । ए॒षा । त्रि॒ऽके॒शी । इति॑ । दु॒च्छुना॑म् ।
ग्रा॑मम् । अ॒व॒ऽपद्य॑मानाम् ।

सा । ब्र॒ह्म॒ऽजा॒या । वि । दु॒नो॒ति॒ । रा॒ष्ट्रम् । यत्र॑ । प्र॒ऽअपा॑दि ।
श॒शः । उ॒ल्कु॒षी॒ऽमान् ॥ ४ ॥

जिसको ग्रामको आती हुई दुर्गति कराने वाली प्रकाशमान् तारका (उल्का) कहते हैं वह उल्का वाला शश जहाँ गिरता है वह राष्ट्र नष्ट होजाता है। इसीप्रकार (हरण करने पर) ब्रह्मजाया (गौ वा ब्राह्मणकी स्त्री) उस राज्यको नष्ट कर देती है ॥४॥

ब्रह्मचारी च॑रति॒ वेवि॑ष॒द् विष॒ः स दे॒वानां॑ भव॒त्येक॒मङ्ग॑म्
तेन॑ जा॒याम॒न्व॑विन्द॒द् बृह॒स्पति॒ः सोमे॑न नी॒तां॑ जु॒ह्वं१॒
न दे॑वाः ॥ ५ ॥

ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । च॒र॒ति॒ । वेवि॑षत् । विष॑ः । सः । दे॒वाना॑म् । भ॒व॒ति॒ ।
एक॑म् । अङ्ग॑म् ।
तेन॑ । जा॒याम् । अनु॑ । अ॒वि॒न्द॒त् । बृ॒ह॒स्पति॑ः । सोमे॑न । नी॒ताम् ।
जु॒ह्वम् । न । दे॒वाः ॥ ५ ॥

ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्यमें) व्याप्त होता हुआ प्रजामें घूमता है, वह देवताओंका एक अंगरूप होता है, जैसे सोमके लाये हुए

चमसको देवताओंने पाया था। ऐसे ही ब्रह्मचारीके द्वारा बृहस्पतिने जायाको पाया था ॥ ५ ॥

दे॒वा वा ए॒तस्या॑मवदन्त॒ पूर्वे॑ सप्तऋ॒षय॒स्तप॑सा॒ ये नि॑षे॒दुः
भी॒मा जा॒या ब्रा॑ह्मण॒स्याप॑नीता दु॒र्धां द॑धाति प॒रमे
व्यो॑मन् ॥ ६ ॥

दे॒वाः । वै । ए॒तस्या॑म् । अ॒व॒द॒न्त॒ । पूर्वे॑ । स॒प्त॒ऽऋ॒षयः॑ । तप॑सा ।
ये । नि॒ऽसे॒दुः ।
भी॒मा । जा॒या । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । अप॑ऽनीता । दुः॒ऽधाम् । द॒धा॒ति॒ '
प॒र॒मे । विऽओ॑मन् ॥ ६ ॥

तपके द्वारा स्वर्गमें स्थित सप्त ऋषियोंने और देवताओंने ब्रह्मजाया (ब्राह्मणकी स्त्री) के विषयमें कहा था, कि—ब्राह्मणकी भगाई हुई स्त्री परम—व्योममें—स्वर्गमें भयंकर होजाती है और दुःस्थितिमें डाल देती है ॥ ६ ॥

ये गर्भा॑ अव॒पद्य॑न्ते॒ जग॒द् यच्चा॑पलु॒प्यते॑ ।
वी॒रा ये तृ॒ह्यन्ते॑ मि॒थो॑ ब्र॑ह्मजा॒या हि॑नस्ति॒ तान् ७

ये । गर्भाः॑ । अ॒व॒ऽपद्य॑न्ते । जग॑त् । यत् । च॒ । अ॒प॒ऽलु॒प्यते॑ ।
वी॒राः । ये । तृ॒ह्यन्ते॑ । मि॒थः । ब्र॒ह्म॒ऽजा॒या । हि॒न॒स्ति॒ । तान् ७

जो गर्भ गिरते हैं, जो जगत् उलट पलट होता है और जो वीर परस्पर मारे जाते हैं, इन सबको ब्रह्मजाया ही मारती है। अर्थात् ब्राह्मणकी स्त्रीसे दुर्व्यवहार करनेका यह फल होता है ॥ ७ ॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥

उत । यत् । पतयः । दश । स्त्रियाः । पूर्वे । अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा । च । इत् । हस्तम् । अग्रहीत् । सः । एव । पतिः । एकऽधा

चाहें स्त्रीके अब्राह्मण दश पालक हों परन्तु जो ब्राह्मण उसका विवाह विधिसे हाथ पकड़ता है, वही उसका एक पति है ८

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥

ब्राह्मणः । एव । पतिः । न । राजन्यः । न । वैश्यः ।
तत् । सूर्यः । प्रऽब्रुवन् । एति । पञ्चऽभ्यः । मानवेभ्यः ॥ ९ ॥

इस गौका ब्राह्मण ही पति है, राजा और वैश्य इसके पति नहीं हैं, इसी बातको पाँच मनुष्योंसे कहते हुए भगवान् सूर्य चलते हैं । ९ ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥

पुनः । वै । देवाः । अददुः । पुनः । मनुष्याः । अददुः ।
राजानः । सत्यम् । गृह्णानाः । ब्रह्मऽजायाम् । पुनः । ददुः १०

सत्यको ग्रहण करके राजाओंने मनुष्योंने और देवताओंने ब्रह्मजाया (गौ) को वारम्वार दिया है ॥ १० ॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।

ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥ ११ ॥

पुनःऽदाय । ब्रह्मऽजायाम् । कृत्वा । देवैः । निऽकिल्विषम् ।
ऊर्जम् । पृथिव्याः । भक्त्वा । उरुऽगायम् । उप । आसते ॥११॥

ब्रह्मजायाको फिर देकर, देवताओंके द्वारा निर्दोष किये हुए पृथिवीके बलकारक अन्नका विभाग कर (राजे) विशाल कीर्ति वाले परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १२ ॥

न । अस्य । जाया । शतऽवाही । कल्याणी । तल्पम् । आ । शये ।
यस्मिन् । राष्ट्रे । निऽरुध्यते । ब्रह्मऽजाया । अचित्त्या ॥ १२ ॥

जिस राष्ट्रमें ब्राह्मणकी स्त्री और गौ मोहमें डाल कर रोक ली जाती है, उस राष्ट्रकी सैंकड़ों कल्याणोंको धारण करने वाली स्त्री पलँग पर शयन न कर सके ॥ १२ ॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन्० ॥ १३ ॥

न । विऽकर्णः । पृथुऽशिराः । तस्मिन् । वेश्मनि । जायते ॥ ०॥ १३

जिस राष्ट्रमें ब्रह्मजाया (ब्राह्मण की स्त्री) मोहमें डाल कर रोक ली जाती है उस राष्ट्रके (किसी) घरमें विशाल कानों वाला और विशाल भाल वाला पुरुष उत्पन्न नहीं होता ॥१३॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन्० ॥ १४ ॥

न । अस्य । क्षत्ता । निष्कऽग्रीवः । सूनानाम् । एति । अग्रतः ॥०॥

जिस राष्ट्रमें ब्राह्मणकी स्त्री वेहोश करके रोक ली जाती है, उस राजाका क्षत्ता गलेमें निष्क धारण कर सूनाके आगे नहीं जाता है॥ १४ ॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन्० ॥ १५ ॥

न । अस्य । श्वेतः । कृष्णऽकर्णः । धुरि । युक्तः । महीयते ॥०॥१५

जिसके राज्यमें ब्राह्मणकी स्त्री मोहमें डाल कर रोक ली जाती है उसका काले कान वाला श्वेत (अश्व) धुरेमें जुत कर प्रशंसा नहीं पाता ॥ १५ ॥

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन्० ॥ १ ॥

न । अस्य । क्षेत्रे । पुष्करिणी । न । आण्डीकम् । जायते ।
बिसम् ॥ ० ॥ १६ ॥

जिसके राज्यमें ब्रह्मजायाको मोहमें डाल कर रोका जाता है, उसके क्षेत्रमें न पुष्करिणी रहती है और न अण्डेकी समान आकार वाले कन्दसे उत्पन्न हुआ कमल और पद्मकन्द होता है १६

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १७ ॥

न । अस्मै । पृश्निम् । वि । दुहन्ति । ये । अस्याः । दोहम् । उपऽआसते ।
यस्मिन् । राष्ट्रे । निऽरुध्यते । ब्रह्मऽजाया । अचित्त्या ॥१७॥

जिस राष्ट्रमें ब्रह्मजाया मोहमें डाल कर रोक ली जाती है उसके दुहनेके कामको जो पुरुष करते हैं, वे उसको थोड़ासा भी दुह कर नहीं देते ॥ १७ ॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ १८ ॥

न । अस्य । धेनुः । कल्याणी । न । अनड्वान् । सहते । धुरम् ।
विऽजानिः । यत्र । ब्राह्मणः । रात्रिम् । वसति । पापया १८

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

स्त्रीसे रहित हुआ ब्राह्मण जहाँ पापमय बुद्धिसे रात्रिमें निवास करता है उसके स्वामीके यहाँ कल्याणी गौ नहीं होती बैल बोझा नहीं ढोता ॥ १८ ॥

चौथे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१५९) ॥

गोहरणमारणविशसनाधिश्रयणपचनभक्षणादिषु क्रियमाणेषु अभिचारकामो ब्रह्मचारी "नैतां ते देवाः" "अतिमात्रम् अवर्धन्त" इति सूक्तद्वयं "श्रमेण तपसा" इत्यनुवाकं च [१२. ५] शत्रून् अन्वाह । द्वेष्यं मनसि कृत्वा जपतीत्यर्थः । तद्ध उक्तं कौशिकसूत्रे । "ब्रह्मगवीभ्याम् अन्वाह । चेष्टाम् । विचृतति । ऊबध्ये । श्मशाने । त्रिरमून् हनस्वेत्याह । द्वितीययाश्मानम् ऊवध्ये गूहयति । द्वादशरात्रं सर्वव्रत उपश्राम्यति । द्विरुदिते स्वृतः । अवागग्रेण निवर्तयति" इति [कौ० ६. २] ॥ "नैतां ते देवाः" "अतिमात्रम् अवर्धन्त" इति द्वे सूक्ते एका ब्रह्मगवी । "श्रमेण तपसा" इत्यनुवाकोऽन्या ॥ चेष्टाम् । अन्वाहेति शेषः । चेष्टा हरणमारणविशसनाद्याः ॥ विचृतति ऊवध्ये हविःकृतेत्यर्थः ॥ अमून् शत्रून् ॥ द्विरुदिते द्वादशरात्राद्ध ऊर्ध्वं द्विः सवितर्युद्गते नष्टः शत्रुरिति ज्ञेयम् ॥ अवागग्रेण दण्डेन अश्मानम् ऊबध्यग्रहाद् अपनयति ॥

गोहरण, मारण, विशसन (काटना), अधिश्रयणपचन और भक्षण आदिका प्रचार होनेपर अभिचारकी कामना वाला ब्रह्मचारी 'नैतां ते देवाः' इस पञ्चमकाण्डके अठारहवें सूक्तको और 'अतिमात्रं अवर्धन्त' इन दोनों सूक्तोंको और 'श्रमेण तपसा' इस बारहवें काण्डके पञ्चम अनुवाकको शत्रुओंसे कहे, अर्थात् शत्रुको मनमें रख कर जपे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"ब्रह्मगवीभ्यां अन्वाह । चेष्टाम् । विचृतति । ऊबध्ये । श्मशाने । त्रिरमून् हनस्वेत्याह । द्वितीययाश्मानं अबध्ये गूहयति । द्वादशरात्रं सर्वव्रत उपशाम्यति । द्विरुदिते स्तृतः । अवागग्रेण निर्वर्तयति कौशिकसूत्र ६ । २)॥

नैतां ते॑ दे॒वा अ॑द॒दुस्तुभ्यं॑ नृपते॒ अत्त॑वे ।
मा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य॒ गां जि॑घत्सो अना॒द्याम् ॥१॥

न । ए॒ताम् । ते॒ । दे॒वाः । अ॒द॒दुः । तुभ्य॑म् । नृ॒ऽप॒ते॒ । अत्त॑वे ।
मा । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । रा॒ज॒न्य॒ । गाम् । जि॒घ॒त्सः॒ । अ॒ना॒द्याम् ॥१॥

हे नृपते ! देवताओंने तुझको इस गौको खानेके लिये नहीं दिया है । हे राजन्य ! तू ब्राह्मणकी न खाने योग्य गौको खानेकी इच्छा न कर ॥ १ ॥

अ॒क्षद्रु॑ग्धो राज॒न्यः॑ पा॒प आ॑त्मपराजि॒तः ।
स ब्रा॑ह्म॒णस्य॒ गाम॑द्याद॒द्य जीवा॑नि॒ मा श्वः ॥२॥

अ॒क्षऽद्रु॑ग्धः । रा॒ज॒न्यः॑ । पा॒पः । आ॒त्म॒ऽप॒रा॒जि॒तः ।
सः । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । गाम् । अ॒द्या॒त् । अ॒द्य । जी॒वा॒नि॒ । मा । श्वः २

इन्द्रियोंसे द्रोह करने वाला आत्मपराजित पापी राजा ही

१४११

ब्राह्मणकी गौको खावे और वह राजा आज ही जीवे कलको जीवित न रहे ॥ २ ॥

आवि॑ष्टिता॒घवि॑षा पृदा॒कूरि॑व॒ चर्म॑णा ।
सा ब्रा॑ह्म॒णस्य॑ राजन्य तृ॒ष्टैषा गौर॑ना॒द्या ॥ ३ ॥

आऽविष्टिता । अ॒घऽवि॑षा । पृ॒दा॒कूःऽइ॑व । चर्म॑णा ।
सा । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । रा॒ज॒न्य॒ । तृ॒ष्टा । ए॒षा । गौः । अ॒ना॒द्या ॥३॥

वधरूप पाप विष वाली चर्म (केंचुलीसे) से घिरी हुई प्यासी साँपिनकी समान ब्राह्मणकी गौ होती है, हे राजन्य ! इसको न खाना चाहिये ॥ ३ ॥

निर्वै क्ष॒त्रं नय॑ति॒ हन्ति॒ वर्चो॑ग्निरि॒वार॑ब्धो॒ वि दु॑नोति॒ सर्व॑म् ।
यो ब्रा॑ह्म॒णं मन्य॑ते॒ अन्न॑मे॒व स वि॒षस्य॑ पिबति तैमा॒तस्य॑ ॥ ४ ॥

निः । वै । क्ष॒त्रम् । नय॑ति । हन्ति॑ । वर्चः॑ । अ॒ग्निःऽइ॑व । आऽर॑ब्धः ।
वि । दु॒नो॒ति॒ । सर्व॑म् ।
यः । ब्रा॒ह्म॒णम् । मन्य॑ते । अन्न॑म् । ए॒व । सः । वि॒षस्य॑ । पि॒ब॒ति॒ ।
तै॒मा॒तस्य॑ ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण (के पदार्थ) को खाने योग्य समझता है वह तैमातके विषका पान करता है, अपने क्षात्र तेजको बाहर फैंकता है और क्रोधमें भरे हुए अग्निकी समान अपने सर्वस्वको नष्ट कर डालता है, संतप्त कर देता है ॥ ४ ॥

य ए॒नं हन्ति॑ मृ॒दुं मन्य॑मानो देवपी॒युर्धन॑कामो॒ न
चि॒त्तात् ।
सं तस्येन्द्रो॒ हृद॑ये॒ग्निमि॑न्ध उ॒भे ए॑नं द्वि॒ष्टो नभ॑सी॒
चर॑न्तम् ॥ ५ ॥

यः । ए॒न॒म् । हन्ति॑ । मृ॒दुम् । मन्य॑मानः । दे॒व॒ऽपी॒युः । धन॑ऽकामः ।
न । चि॒त्तात् ।
सम् । तस्य॑ । इन्द्रः॑ । हृद॑ये । अ॒ग्निम् । इ॒न्धे॒ । उ॒भे इति॑ । ए॒न॒म् ।
द्वि॒ष्टः । नभ॑सी॒ इति॑ । चर॑न्तम् ॥ ५ ॥

धनकी कामना वाला जो पुरुष ब्राह्मणको मृदु समझ अज्ञानवश ब्राह्मणका नाश करना चाहता है, वह देवताओंका ही हिंसक है । इन्द्रदेव ऐसे (पापी) के हृदयमें अग्नि जलाते हैं और दोनों द्यावापृथिवी ऐसे विचरते हुए पुरुषसे द्वेष करते हैं ५

न ब्रा॒ह्म॒णो हिं॑सित॒व्यो॒३॒ग्निः प्रि॒यत॑नोरिव ।
सोमो॒ ह्य॑स्य दाया॒द इन्द्रो॑ अस्याभिशस्ति॒पाः ॥६॥

न । ब्रा॒ह्म॒णः । हिं॒सि॒त॒व्यः॑ । अ॒ग्निः । प्रि॒यत॑नोःऽइव ।
सोमः॑ । हि । अ॒स्य । दा॒या॒दः । इन्द्रः॑ । अ॒स्य । अ॒भि॒श॒स्ति॒ऽपाः ६

ब्राह्मण अग्निस्वरूप हैं, जैसे कोई अपने प्रिय शरीरका नाश नहीं करता है, ऐसे ही उसका नाश नहीं करना चाहिये । सोम ब्राह्मणके दायाद हैं और इन्द्र इनके शापका पालन करने वाला है

श॒ताप॑ाष्ठां नि गि॑रति तां न श॑क्नोति नि॒ःखिद॑न् ।

अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥७॥

शतऽअपाष्ठाम् । नि । गिरति । ताम् । न । शक्नोति । निःऽखिदन् ।

अन्नम् । यः । ब्रह्मणाम् । मल्वः । स्वादु । अद्मि । इति । मन्यते ७

जो मलिन पुरुष ब्राह्मणोंके अन्नको मैं स्वादिष्ट वस्तुका भक्षण कररहा हूँ, ऐसा समझता है, वह सैंकड़ों आपत्तियोंको निगल लेता है और उनको मिटानेका प्रयत्न करता हुआ भी नहीं मिटा सकता ॥ ७ ॥

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ८

जिह्वा । ज्या । भवति । कुल्मलम् । वाक् । नाडीकाः । दन्ताः । तपसा । अभिऽदिग्धाः ।

तेभिः । ब्रह्मा । विध्यति । देवऽपीयून् । हृत्ऽबलैः । धनुःऽभिः । देवऽजूतैः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणकी जिह्वा ही प्रत्यञ्चा होती है । वाणी कुल्मल (बाण और फलकेको जोड़नेका मसाला) होती है और तपसे लिहसे हुए दाँत नाडीक (तीर) होते हैं । देवताओंसे प्रेरित (देवताओंके दिये हुए) हृदय बलसे प्रेरित ऐसे धनुषोंसे ब्राह्मण (भू-) देवोंका वध करने वालोंको बींधता है ॥ ८ ॥

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा ।

अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्

तीक्ष्णऽइषवः । ब्राह्मणाः । हेतिऽमन्तः । याम् । अस्यन्ति । शरव्याम् । न । सा मृषा ।

अनुऽहाय । तपसा । मन्युना । च । उत । दूरात् । अव । भिन्दन्ति । एनम् ॥ ९ ॥

तप और क्रोधसे पीछे पड़कर तीक्ष्ण बाण वाले आयुधधारी ब्राह्मण जिन बाणोंको छोड़ते हैं वे दूरसे ही इस (वैरी) को बींध डालते हैं ॥ ९ ॥

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥१०॥

ये । सहस्रम् । अराजन् । आसन् । दशऽशताः । उत ।
ते । ब्राह्मणस्य । गाम् । जग्ध्वा । वैतऽहव्याः । परा । अभवन् १०

जो वीतहव्यके वंशके हजारों राजे राज्य करते थे वे ब्राह्मण की गौको छीन कर पराजित होगए थे ॥ १० ॥

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥

गौः । एव । तान् । हन्यमाना । वैतऽहव्यान् । अव । अतिरत् ।
ये । केसरऽप्राबन्धायाः । चरमऽअजाम् । अपेचिरन् ॥ ११ ॥

जिन्होंने केसरप्राबंधा चरमाजाको पकाया, पिटती हुई गौने ही उन वैतहव्योंको तित्तर वित्तर कर दिया ॥ ११ ॥

एक॑शतं॒ ता ज॒नता॒ या भूमि॒र्व्य॑धूनुत ।
प्र॒जां हिं॑सि॒त्वा ब्राह्म॑णीमसंभ॒व्यं परा॑भवन् ॥ १२ ॥

एक॑ऽशतम् । ताः । ज॒नताः॑ । याः । भूमिः॑ । विऽअ॑धूनुत ।
प्र॒ऽजाम् । हिं॒सि॒त्वा । ब्राह्म॑णीम् । अ॒स॒म्ऽभ॒व्यम् । परा॑ । अ॒भव॒न् ।

जो एक सौ जनता भूमिको कँपा चुकी थी वह ब्राह्मणकी प्रजाको मार कर असंभव्य (पुनरुत्पत्तिरहितरूप) से पराजित हुई थी ॥ १२ ॥

दे॒व॒पी॒युश्च॑रति॒ मर्त्ये॑षु गरगी॒र्णो भ॑व॒त्यस्थि॑भूयान् ।
यो ब्रा॑ह्म॒णं दे॒वब॑न्धुं हि॒नस्ति॒ न स पि॑तृ॒याण॒मप्ये॑ति
लो॒कम् ॥ १३ ॥

दे॒व॒ऽपी॒युः । च॒र॒ति॒ । मर्त्ये॑षु । ग॒र॒ऽगी॒र्णः । भ॒व॒ति॒ । अ॒स्थि॑ऽभूयान् ।
यः । ब्रा॒ह्म॒णम् । दे॒वऽबन्धुम् । हि॒नस्ति॑ । न । सः । पि॒तृ॒ऽयान॑म् ।
अपि॑ । एति॒ । लो॒कम् ॥ १३ ॥

(भू-) देवोंका वध करने वाला विषसे जीर्ण हो बहुत सी अस्थियोंके रूपमें रह कर मनुष्योंमें वर्तमान रहता है । जो देवताओंके बन्धु ब्राह्मणकी हिंसा करता है, वह पितृयानसे प्राप्त होने वाले लोकको नहीं जाता ॥ १३ ॥

अ॒ग्निर्वै नः॑ पद॒वायः सोमो॑ दाया॒द उ॑च्यते ।
ह॒न्ताभि॑श॒स्तेन्द्र॒स्तथा॒ तद् वे॒धसो॑ विदुः ॥ १४ ॥

अ॒ग्निः । वै । न॒ः । प॒द॒ऽवा॒यः । सोम॑ः । दा॒या॒दः । उ॒च्य॒ते॒ ।
ह॒न्ता । अ॒भि॒ऽश॑स्ता । इन्द्र॑ः । तथा॑ । तत् । वे॒धस॑ः । वि॒दुः १४

अग्नि हमारे पदोंको पहुँचाने वाला है, सोम हमारा दायाद है । इन्द्रदेव (हमारी ओरसे) मारने वाले और काटने वाले हैं, इसको वेधा जानते हैं ॥ १४ ॥

इषु॑रिव दि॒ग्धा नृ॑पते पृदा॒कूरि॑व गोपते ।
सा ब्रा॑ह्म॒णस्ये॑षु॒र्घो॑रा तया॑ विध्यति॒ पीय॑तः ॥ १५ ॥

इ॑षुःऽइव । दि॒ग्धा । नृ॒ऽप॒ते॒ । पृदाकूःऽइ॑व । गो॒ऽप॒ते॒ ।
सा । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । इषु॑ः । घो॒रा । तया॑ । वि॒ध्य॒ति॒ । पीय॑तः १५

इति चतुर्थेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे पृथ्वीपति राजन् ! ब्राह्मणकी (वाणीरूप) बाण विषमें बुझे हुए बाणकी समान और सर्पिणीकी समान होता है, ब्राह्मण उस बाणसे कष्ट देने वालोंको मारता है ॥ १५ ॥

पञ्चम काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (१६०) ॥

"अतिमात्रम् अवर्धन्त" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"अतिमात्रमवर्धन्त" इस सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया गया है ।

अ॒ति॒मा॒त्रम॑वर्धन्त॒ नोदि॒व दि॒वम॑स्पृशन् ।
भृगुं॑ हिंसि॒त्वा सृंज॑या वैतह॒व्याः परा॑भवन् ॥ १ ॥

अ॒ति॒ऽमा॒त्रम् । अ॒व॒र्ध॒न्त॒ । न । उ॒त्ऽइ॑व । दि॒वम् । अ॒स्पृ॒श॒न् ।

भृगुम् । हिंसित्वा । सृञ्ऽजयाः । वैतऽहव्याः । परा । अभवन् १

सृञ्जय बहुत बढ़ गए थे, किन्तु उन वीतिहव्यके गोत्र वाले सृञ्जयोंने भृगु वंशीको मार डाला था, अतः उनका पराजय हुआ और वह स्वर्गका स्पर्श न कर सके ॥ १ ॥

ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥

ये । बृहत्ऽसामानम् । आङ्गिरसम् । आर्पयन् । ब्राह्मणम् । जनाः ।
पेत्वः । तेषाम् । उभयादम् । अविः । तोकानि । आवयत् ॥२॥

जिन मनुष्योंने बृहत्साम वाले आंगिरसगोत्री ब्राह्मणको आपत्तियोंसे ढ़का था घृतने उनके दोनों (लोकों) खाने (नष्ट करने) वाले (पुत्रको उत्पन्न किया और वह) गतिरहित हुआ (और देवताओंने) उसकी सन्तानको फैंका ॥ २ ॥

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिन्छुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ३

ये । ब्राह्मणम् । प्रतिऽअष्ठीवन् । ये । वा । अस्मिन् । शुल्कम् । ईषिरे
अस्नः । ते । मध्ये । कुल्यायाः । केशान् । खादन्तः । आसते ३

जिन्होंने ब्राह्मण पर थूका था और जो इससे शुल्क (कर) चाहते हुए वे रक्तकी नदीमें बालोंको खाते हुए पड़े हुए हैं ॥३॥

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

ब्रह्मऽगवी । पच्यमाना । यावत् । सा । अभि । विऽजङ्गहे ।
तेजः । राष्ट्रस्य । निः । हन्ति । न । वीरः । जायते । वृषा ॥४॥

जहाँ पर पकती हुई गौ फड़फड़ाती है, तहाँ (वह) राष्ट्रके तेजको नष्ट कर देती है और तहाँ (वीर्यकी) वर्षा करने वाला वीर उत्पन्न नहीं होता ॥ ४ ॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥५॥

क्रूरम् । अस्याः । आऽशसनम् । तृष्टम् । पिशितम् । अस्यते ।
क्षीरम् । यत् । अस्याः । पीयते । तत् । वै । पितृषु । किल्बिषम्५

इसका काटना क्रूर है, इसका जो मांस (मुखमें) फैंका जाता है वह तृषा लगाने वाला है और (वध करनेका विचार करके रक्खी हुई) गौका जो क्षीर पिया जाता है वह पितरोंमें पापका संक्रमण करने वाला होता है ॥ ५ ॥

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥

उग्रः । राजा । मन्यमानः । ब्राह्मणम् । यः । जिघत्सति ।
परा । तत् । सिच्यते । राष्ट्रम् । ब्राह्मणः । यत्र । जीयते ॥६॥

जो राजा अपनेको उग्र मानता हुआ ब्राह्मणको खाना चाहता है, और जहाँ ब्राह्मण दुःखित होता है, वह राष्ट्र (और राजा) वह जाता है ॥ ६ ॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।

द्व्या॑स्या॒ द्विजि॑ह्वा भू॒त्वा सा रा॒ष्ट्रमव॑ धूनुते ब्रह्म॒ज्य॑स्य ॥ ७ ॥

अ॒ष्टाऽप॑दी । च॒तुः॒ऽअ॒क्षी । च॒तुः॑ऽश्रोत्रा । च॒तुः॑ऽह॒नुः ।
द्विऽआ॑स्या । द्विऽजि॑ह्वा । भू॒त्वा । सा । रा॒ष्ट्रम् । अव॑ । धू॒नु॒ते॒ ।
ब्र॒ह्म॒ऽज्य॑स्य ॥ ७ ॥

वह ब्राह्मण पर डाली हुई आपत्ति ब्राह्मणको हानि पहुँचाने वालेके राज्यको आठ पैर, चार नेत्र, चार कान, चार ठोड़ी, दो मुख और दो जीभ वाली होकर हिला डालती है ॥ ७ ॥

तद् वै रा॒ष्ट्रमा स्र॑वति॒ नावं॑ भि॒न्नामि॑वोद॒कम् ।
ब्र॒ह्माणं॒ यत्र॒ हिंस॑न्ति॒ तद् रा॒ष्ट्रं ह॑न्ति दु॒च्छुना॑ ॥८॥

तत् । वै । रा॒ष्ट्रम् । आ । स्र॒व॒ति॒ । नाव॑म् । भि॒न्नाम्ऽइ॑व । उ॒द॒कम् ।
ब्र॒ह्माण॑म् । यत्र॑ । हिंस॑न्ति । तत् । रा॒ष्ट्रम् । ह॒न्ति॒ । दु॒च्छुना॑ ८

जैसे छेद वाली नावको जल डुवा देता है, इसी प्रकार वह पाप उसके राष्ट्रको डुवा देता है, जिस राष्ट्रमें ब्राह्मणोंको पुरुष मारते हैं उस राष्ट्रको आपत्ति नष्ट कर देती है ॥ ८ ॥

तं वृ॒क्षा अप॑ सेधन्ति छा॒यां नो॒ मोप॑गा॒ इति॑ ।
यो ब्रा॑ह्म॒णस्य॒ सद्धन॑म॒भि ना॑रद॒ मन्य॑ते ॥ ९ ॥

तम् । वृ॒क्षाः । अप॑ । से॒ध॒न्ति॒ । छा॒याम् । नः॒ । मा । उप॑ । गाः॒ ।
इति॑ ।

यः । ब्राह्मणस्य । सत् । धनम् । अभि । नारद । मन्यते ॥९॥

हे नारद ! जो ब्राह्मणके सद्धनको दबा कर अपना मानता है, उसको हृत्त निवारण करना चाहते हैं, किन्तु हमारी छायामें न आ ॥ ९ ॥

विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ।१०।

विषम् । एतत् । देवऽकृतम् । राजा । वरुणः । अब्रवीत् ।

न । ब्राह्मणस्य । गाम् । जग्ध्वा । राष्ट्रे । जागार । कः । चन १०

राजा वरुणने कहा है, कि–(ब्राह्मणके धनका अपहरण यह) देवताओंका रचा हुआ विष है। ब्राह्मणकी गौ (आदि सम्पत्ति) का हरण कर राष्ट्रमें कोई जागता हुआ नहीं रहा है ॥ १० ॥

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ ११ ॥

नव । एव । ताः । नवतयः । याः । भूमिः । विऽअधूनुत ।

प्रऽजाम् । हिंसित्वा । ब्राह्मणीम् । असम्ऽभव्यम् । परा । अभवन्

वे आठ सौ दश पुरुष जिनसे भूमि काँपती थी वे ब्राह्मणकी प्रजाका संहार कर असंभव्यरूपसे पराजित होगए ॥ ११ ॥

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥

याम् । मृताय । अनुऽबध्नन्ति । कूद्यम् । पदऽयोपनीम् ।

तत् । वै । ब्रह्मऽज्य । ते । देवाः । उपऽस्तरणम् । अब्रुवन् ।१२।

पैरोंको मोहमें डालने वाली कुत्सित शब्द करने वाली जिस (रस्सी) को मृत पुरुषके लिये बाँधते हैं, हे ब्रह्मज्य ! (ब्राह्मण को हानि पहुँचाने वाले) उसीको देवताओंने तेरे लिये बिछौने के रूपमें कहा है ॥ १२ ॥

अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥

अश्रूणि । कृपमाणस्य । यानि । जीतस्य । ववृतुः ।
तम् । वै । ब्रह्मऽज्य । ते । देवाः । अपाम् । भागम् । अधारयन्

जीते हुए कृपाके योग्य ब्राह्मणके जो आँसू बहते हैं, हे ब्रह्मज्य ! देवताओंने तेरे लिये वही जलका भाग निर्धारित कर रक्खा है १३

येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥

येन । मृतम् । स्नपयन्ति । श्मश्रूणि । येन । उन्दते ।
तम् । वै । ब्रह्मऽज्य । ते । देवाः । अपाम् । भागम् । अधारयन् १४

जिस जलसे मृतकको स्नान कराते हैं और जिस जलसे मूँछे गीली की जाती हैं, हे ब्रह्मज्य ! देवताओंने तेरे लिये वही जल का भाग निश्चित कर रक्खा है ॥ १४ ॥

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ।१५।

न । वर्षम् । मैत्रावरुणम् । ब्रह्मऽज्यम् । अभि । वर्षति ।

न । अस्मै । सम्ऽइतिः । कल्पते । न । मित्रम् । नयते । वशम् १५

इति चतुर्थेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

सूर्य और वरुणदेवसे होनेवाली वृष्टि ब्रह्मज्य (के राज्य) की ओर नहीं बरसती है । इसके यहाँ कोई सभा समर्थ नहीं होती है और यह अपने मित्रोंको भी वशमें नहीं रख सकता ॥ १५ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१६१) ॥

“उच्चैर्घोषः” इति सूक्तेन त्रासनपरसेनाविद्वेषणकर्मणि भेर्यादिवादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण लेपयित्वा संपात्य त्रिस्ताडयित्वा वादकाय पुरोधाः प्रयच्छेत् । सूत्रितं । “उच्चैर्घोषः [५. २०] उप श्वासय [६. १२६] इति सर्ववादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण संधाव्य संपातवन्ति त्रिराहत्य प्रयच्छति” इति [कौ० २. ७]॥

तथा महाव्रते अनेन सूक्तेन भूमिदुन्दुभिं ताडयेत् । तदु उक्तं वैताने । “भूमिदुन्दुभिम् औक्षेणापिनद्धं पुच्छेनाघ्नन्त्युच्चैर्घोष उप श्वासय” इति [वै० ६. ४]॥

“उच्चैर्घोषः” इस सूक्तसे त्रासन और शत्रुसेनामें द्वेष करानेके कर्ममें भेरी आदि बाजोंको धोकर तगर और खसखससे लेप कर सम्पातन करके तीन वार ताडन करनेके अनन्तर पुरोहित वादकको देदेय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“उच्चैर्घोषः [५ । २०] उप श्वासय (६ । १२६) इति सर्ववादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण संधाव्य सम्पातवन्ति त्रिराहत्य प्रयच्छति” (कौशिकसूत्र २ । ७) ॥

महाव्रतमें इस सूक्तसे भूमिदुन्दुभिका ताड़न करे । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“भूमिदुन्दुभिं औक्षेणापिनद्धं पुच्छेनाघ्नन्त्युच्चैर्घोष उप श्वासय” (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥ १ ॥

उच्चैःऽघोषः । दुन्दुभिः । सत्वनाऽयन् । वानस्पत्यः । सम्ऽभृतः । उस्रियाभिः ।
वाचम् । क्षुणुवानः । दमयन् । सऽपत्नान् । सिंहःऽइव । जेष्यन् । अभि । तंस्तनीहि ॥ १ ॥

हे दुन्दुभे ! तू बलवान् प्राणीकी समान आचरण कर ऊँचा शब्द करने वाली है, वनस्पतियोंसे बनाई हुई है, गौओं (के विकार) से भरी हुई है, ऐसी तू शब्द करती हुई शत्रुओं का दमन कर और सिंहकी समान जीतनेकी इच्छा करती हुई चारों ओरसे गरजती रह ॥ १ ॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः

सिंहःऽइव । अस्तानीत् । द्रुवयः । विऽबद्धः । अभिऽक्रन्दन् । ऋषभः । वासिताम्ऽइव ।
वृषा । त्वम् । वध्रयः । ते । सऽपत्नाः । ऐन्द्रः । ते । शुष्मः । अभिमातिऽसाहः ॥ २ ॥

हे दुन्दुभे ! तू वृक्षकी समान अवस्था वाली है, विशेषरूपसे बँधी हुई है, सिंहकी समान और ऋतुमती गौ पर रंभाते हुए साँडकी समान तूने गर्जना की है तू वृषा है वीर्यकी वर्षा करने वाली है, तेरे शत्रु निर्वीर्य होजाते हैं, तेरा बल इन्द्रकी समान (बलवान् बनाने वाला) है और अभिमानियोंको सहने वाला है ॥ २ ॥

वृषे॑व यू॒थे सह॑सा विदा॒नो ग॒व्यन्न॒भि रु॑व संधना॒जित्
शु॒चा वि॑ध्य॒ हृद॑यं॒ परे॑षां हि॒त्वा ग्रामा॒न् प्रच्यु॑ता यन्तु॒
शत्र॑वः ॥ ३ ॥

वृषा॑ऽइव । यू॒थे । सह॑सा । वि॒दा॒नः । ग॒व्यन् । अ॒भि । रु॒व॒ ।
सं॒ध॒न॒ऽजि॒त् ।

शु॒चा । वि॒ध्य॒ । हृद॑यम् । परे॑षाम् । हि॒त्वा । ग्रामा॑न् । प्रऽच्यु॑ताः ।
य॒न्तु॒ । शत्र॑वः ॥ ३ ॥

जैसे झुण्डमें गौको चाहने वाला साँड सहसा पहिचान लिया जाता है । तैसे ही धनको जीतना चाहने वाली तू शब्द कर, शत्रुओंके हृदयको शोकसे बींध दे । शत्रु (हमारे) ग्रामोंको छोड़ च्युत होकर भाग जावें ॥ ३ ॥

स॒ञ्जय॒न् पृत॑ना ऊ॒र्ध्वमा॑यु॒र्गृह्या॑ गृह्णा॒नो ब॑हु॒धा वि च॑क्ष्व
दैवीं॒ वाचं॑ दुन्दुभ॒ आ गु॑रस्व वे॒धाः शत्रू॑णा॒मुप॑ भरस्व॒ वेदः॑

स॒म्ऽजय॑न् । पृत॑नाः । ऊ॒र्ध्वऽमा॑युः । गृह्याः॑ । गृ॒ह्णा॒नः । ब॒हु॒ऽधा ।
वि । च॒क्ष्व॒ ।

दैवीम् । वाचम् । दुन्दुभे । आ । गुरस्व । वेधाः । शत्रूणाम् । उप । भरस्व । वेदः ॥ ४ ॥

उच्च शब्द करती हुई तू संग्रामोंको जीत और ग्रहण करने योग्य सेनाओं (के चित्तों) को ग्रहण करती हुई अनेक प्रकार से शब्द कर । हे दुन्दुभे ! तू दैवी वाणीको बोल तू वेधा है, अतः शत्रुओंके धनोंको लाकर मुझको दे ॥ ४ ॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्

दुन्दुभेः । वाचम् । प्रऽयताम् । वदन्तीम् । आऽशृण्वती । नाथिता । घोषऽबुद्धा ।

नारी । पुत्रम् । धावतु । हस्तऽगृह्य । अमित्री । भीता । सम्ऽअरे । वधानाम् ॥ ५ ॥

दुन्दुभिकी नियमपूर्वक निकलती हुई ध्वनिको सुनती हुई और उस गर्जनसे जागी हुईसी समरमें वधोंके होनेसे डरी हुई शत्रुकी स्त्री, याचना करती हुई अपने पुत्रका हाथ पकड़ कर भाग जावे ॥ ५ ॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥ ६ ॥

पूर्वः । दुन्दुभे । प्र । वदासि । वाचम् । भूम्याः । पृष्ठे । वद । रोचमानः ।

अमित्रऽसेनाम् । अभिऽजञ्जभानः । द्युऽमत् । वद । दुन्दुभे ।
सूनृताऽवत् ॥ ६ ॥

हे दुन्दुभे ! तू पहिले ध्वनिको करता है अतः तू शत्रुसेनाको नष्ट करता हुआ भूमिकी पीठपर कांतिमय और सत्य प्रिय वाणी को बोल ॥ ६ ॥

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु
शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी

अन्तरा । इमे इति । नभसी इति । घोषः । अस्तु । पृथक् । ते ।
ध्वनयः । यन्तु । शीभम् ।
अभि । क्रन्द । स्तनय । उत्ऽपिपानः । श्लोकऽकृत् । मित्रऽतूर्याय ।
सुऽअर्धी ॥ ७ ॥

इन द्यावापृथिवीके वीचमें तेरा शब्द होवे, तेरी ध्वनियें शीघ्र ही अनेक रूपसे फैल जावें, ऊपरको चढ़ाती हुई और प्रशंसा करने वाली शब्दसमृद्धिसम्पन्न तू मित्रोंमें वेग उत्पन्न करनेके लिये कड़क कर शब्द कर ॥ ७ ॥

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि

धीभिः । कृतः । प्र । वदाति । वाचम् । उत् । हर्षय । सत्वनाम् ।
आयुधानि ।

इन्द्रऽमेदी । सत्त्वनः । नि । ह्वयस्व । मित्रैः । अमित्रान् । अव । जङ्घनीहि

बुद्धिपूर्वक बनाई हुई दुन्दुभि अच्छा शब्द करती है, हे दुंदुभे ! तू बली पुरुषोंके हाथोंको ऊँचा करके प्रसन्न कर। इन्द्र तेरे साथ स्नेह करते हैं, तू शूरोंको बुला और हमारे मित्रोंसे शत्रुओंका संहार करा ॥ ८ ॥

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि
हर द्विराजे ॥ ९ ॥

सम्ऽक्रन्दनः । प्रऽवदः । धृष्णुऽसेनः । प्रवेदऽकृत् । बहुऽधा । ग्रामऽघोषी ।

श्रेयः । वन्वानः । वयुनानि । विद्वान् । कीर्तिम् । बहुऽभ्यः । वि । हर । द्विऽराजे ॥ ९ ॥

तू गर्ज कर शब्द करने वाली है, सेनाको ढीट बनाने वाली है, धन करने वाली है और ग्रामको गुञ्जारने वाली है, हे दुन्दुभे ! तू कल्याणका सेवन करने वाली है, तू श्रेष्ठ पुरुषोंको जानने वाली है, तू इन दो राजाओंके बीचमें बहुतसे योधाओंको कीर्ति दे ॥ ९ ॥

श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो
ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेधि नृत्य वेदः

श्रेयःऽकेतः । वसुऽजित् । सहीयान् । संग्रामऽजित् । सम्ऽशितः ।
ब्रह्मणा । असि ।
अंशून्ऽइव । ग्रावा । अधिऽसवने । अद्रिः । गव्यन् । दुन्दुभे ।
अधि । नृत्य । वेदः ॥ १० ॥

हे दुन्दुभे ! तू कल्याणको देने वाली, धनको जीतने वाली, बलवती, संग्रामका विजय करने वाली और मन्त्रसे तीक्ष्ण की हुई है, जैसे पर्वत पत्थरोंके अधिषवणके समय अपने छोटे २ पत्थरोंको (दबाता हुआ) नृत्य करता है, इसी प्रकार भूमिको चाहने वाली तू शत्रुओंके धनको अधीन करके नाच ॥ १० ॥

शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित्
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह

शत्रूषाट् । नीषाट् । अभिमातिऽसहः । गोऽएषणः । सहमानः ।
उत्ऽभित् ।
वाग्वीऽइव । मन्त्रम् । प्र । भरस्व । वाचम् । सांग्रामऽजित्याय । इषम् ।
उत् । वद । इह ॥ ११ ॥

शत्रुओंको सहने वाली, सदा टक्कर झेलने वाली अभिमानियोंकी टक्कर सहने वाली गवेषणा करने वाली तू वाणीको ऊपरको फोड़ती हुईसी निकालने वाली है, तू वाग्मी पुरुषकी समान शब्दको भर संग्रामको जीतनेके लिये अच्छी प्रकार गड़गड़ाहट कर ॥ ११ ॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।

इन्द्रे॑ण गु॒प्तो वि॒दथा॑ नि॒चिक्य॑द्धृ॒द्द्योत॑नो द्वि॒षतां या॑हि॒
शीभ॑म् ॥ १२ ॥

अ॒च्यु॒त॒ऽच्यु॒त् । स॒ऽमदः॑ । गमि॑ष्ठः । मृधः॑ । जेता॑ । पु॒रः॒ऽए॒ता ।
अ॒यो॒ध्यः ।

इन्द्रे॑ण । गु॒प्तः । वि॒दथा॑ । नि॒ऽचिक्य॑त् । हृ॒त्ऽद्योत॑नः । द्वि॒ष॒ताम् ।
या॑हि॒ । शीभ॑म् ॥ १२ ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे न डिगने वालेको डिगाने वाले नगाड़े ! तू हर्षमें भरने वाला है, योधाओंको चलाने वाला संग्रामोंको जीतने वाला है, आगे आने वाला है, तुझसे कोई युद्ध नहीं कर सकता, तू इन्द्र से रक्षित है, हार्दाकाशमें होने वाले कर्मोंको सचेत करता हुआ तू शत्रुओंके हृदयको प्रदीप्त करता हुआ शीघ्र ही शत्रुओंको प्राप्त हो ॥ १२ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (१६२) ॥

"विहृदयम्" इति सूक्तेन परसेनात्रासनविद्वेषणकर्मणि सर्ववादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण लेपयित्वा संपातवन्ति त्रिराहत्य वादकाय प्रयच्छति ॥

तथा अनेन सूक्तेन सोमाङ्कुरमणिं हरिणचर्मणा वेष्टितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नाति ॥

तद् उक्तं कौशिकसूत्रे । "विहृदयम् इत्युच्चैस्तरां हुत्वा स्रुवम् उद्वर्तयन् सोमांशू हरिणचर्मण्युत्सीव्य क्षत्रियाय बध्नाति" इति [कौ० २. ७] ॥ "विहृदयम्" इति सूक्तस्य सर्वत्र उच्चैःस्वरेण प्रयोगः । उद्वर्तयन् ऊर्ध्वं परिवर्तयन् ॥

"विहृदयम्" इस सूक्तसे शत्रुकी सेनाको त्रस्त करनारूप

विद्वेषके कर्ममें सब प्रकारके बाजोंको धोकर तगर और खसखस का लेप करके सम्पात कर उनको तीन वार ताड़ित कर बजाने वालेको देदेय ॥

तथा इस सूक्तसे सोमके अंकुरकी मणिको हरिणके चर्मसे लपेट कर सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"विहृदयम् इति उच्चैस्तरां हुत्वा स्रुवं उद्वर्तयन् सोमांशू हरिणचर्मण्युत्सीव्य क्षत्रियाय बध्नाति" (कौशिकसूत्र २ । ४) "विहृदयम्" यह सूक्त सर्वत्र ऊँचे स्वरसे पढ़ना चाहिये।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे
जहि ॥ १ ॥

विऽहृदयम् । वैमनस्यम् । वद । अमित्रेषु । दुन्दुभे ।
विऽद्वेषम् । कश्मशम् । भयम् । अमित्रेषु । नि । दध्मसि । अव ।
एनान् । दुन्दुभे । जहि ॥ १ ॥

हे दुंदुभे ! तू शत्रुओंमें वैमनस्य और विहृदयताका प्रचार कर (कह) हम शत्रुओंमें विद्वेष और कश्मलको स्थापित करना चाहते हैं, तू इनको तिरस्कृत करके मार ॥ १ ॥

उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥ २ ॥

उत्ऽवेपमानाः । मनसा । चक्षुषा । हृदयेन । च ।

धावन्तु । बिभ्यतः । अमित्राः । प्रऽत्रासेन । आज्ये । हुते ॥२॥

घृतकी आहुति देने पर हमारे शत्रु काँप जावें और मन चक्षु तथा हृदयसे डर, डरका भाव प्रकट करते हुए भागें ॥ २ ॥

वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥ ३ ॥

वानस्पत्यः । सम्ऽभृतः । उस्रियाभिः । विश्वऽगोत्र्यः ।
प्रऽत्रासम् । अमित्रेभ्यः । वद । आज्येन । अभिऽघारितः ॥३॥

हे (दुन्दुभे) नगाड़े ! तू वनस्पतियोंसे बना हुआ है, चमड़े से मढ़ा हुआ है और सम्पूर्ण मेघोंका जैसा शब्द होता है तैसा शब्द करने वाला है, हे घृतसे अभिघारित नगाड़े ! तू शत्रुओंसे त्रासको कह अर्थात् अपनी गड़गड़ाहटसे शत्रुओंको त्रास दे ॥३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि
मोहय ॥ ४ ॥

यथा । मृगाः । सम्ऽविजन्ते । आरण्याः । पुरुषात् । अधि ।
एव । त्वम् । दुन्दुभे । अमित्रान् । अभि । क्रन्द । प्र । त्रासय ।
अथो इति । चित्तानि । मोहय ॥ ४॥

हे नगाड़े ! जैसे (शिकारी) पुरुषसे जंगली मृग भयभीत हुआ करते हैं, हे दुन्दुभे ! तू गड़गड़ा कर इसी प्रकार शत्रुओंको त्रस्त कर उनके चित्तोंको मोहमें डाल ॥ ४ ॥

य॒था वृका॑दजा॒वयो॑ धाव॑न्ति ब॒हु बिभ्य॑तीः । ए॒वा० ५

यथा॑ । वृका॑त् । अ॒ज॒ऽअ॒वयः॑ । धाव॑न्ति । ब॒हुः । बिभ्य॑तीः ॥०॥५॥

जैसे भेड़ियेसे डरती हुई भेड़ बकरियें बहुत भागती हैं, हे दुन्दुभे ! इसी प्रकार तू शत्रुओंकी ओर गड़गड़ाकर उनके चित्तों को मोहमें डाल कर उनको त्रास दे ॥ ५ ॥

यथा॑ श्ये॒नात् प॑त॒त्रिणः॑ संवि॒जन्ते॒ अह॑र्दिवि सिं॒हस्य॑
स्त॒नथो॒र्यथा॑ ।
ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि॑
मोहय ॥ ६ ॥

यथा॑ । श्ये॒नात् । प॒त॒त्रिणः॑ । स॒म्ऽवि॒जन्ते॑ । अहः॑ऽदिवि । सिं॒हस्य॑ ।
स्त॒नथोः॑ । यथा॑ ।
ए॒व । त्वम् । दु॒न्दु॒भे॒ । अ॒मित्रा॑न् । अ॒भि । क्र॒न्द॒ । प्र । त्रा॒स॒य॒ ।
अथो॒ इति॑ । चि॒त्तानि॑ । मो॒ह॒य॒ ॥ ६ ॥

जैसे पक्षी बाजसे और जैसे (प्राणी) रातमें हो चाहे दिनमें हो सिंहकी दहाड़से डरा करते हैं, इसी प्रकार हे दुन्दुभे ! तू शत्रुओंकी ओर लक्ष्य करके गड़गड़ा और उनके चित्तोंको मोहमें डाल कर त्रस्त कर ॥ ६ ॥

परा॒मित्रा॑न् दु॒न्दु॒भिना॑ हरि॒णस्या॒जिने॑न च ।
सर्वे॑ दे॒वा अ॑तित्रस॒न् ये सं॑ग्रा॒मस्येश॑ते ॥ ७ ॥

परा । अमित्रान् । दुन्दुभिना । हरिणस्य । अजिनेन । च ।
सर्वे । देवाः । अतित्रसन् । ये । सम्ऽग्रामस्य । ईशते ॥ ७ ॥

जो संग्रामके स्वामी देवता हैं, उन सबोंने हरिणकी चर्मसे और दुन्दुभिसे शत्रुओंको पराजित कर डरा दिया है ॥ ७ ॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोमी ये यन्त्यनीकशः ॥ ८ ॥

यैः । इन्द्रः । प्रऽक्रीडते । पत्ऽघोषैः । छायया । सह ।
तैः । अमित्राः । त्रसन्तु । नः । अमी इति । ये । यन्ति ।
अनीकऽशः ॥ ८ ॥

जिन पैरछलोंसे छायाके साथ इन्द्रदेव क्रीड़ा करते हैं उनसे हमारे ये शत्रु जो सेनाबद्ध होकर चलते हैं, वे त्रस्त हों ॥ ८ ॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥ ९ ॥

ज्याऽघोषाः । दुन्दुभयः । अभि । क्रोशन्तु । याः । दिशः ।
सेनाः । पराऽजिताः । यतीः । अमित्राणाम् । अनीकऽशः ॥९॥

जिस दिशाकी ओर शत्रुओंकी सेनाएँ पराजित होकर जारही हैं, उस ओर हमारी दुन्दुभियें और प्रत्यञ्चाके घोष संग्रबद्धसे जावें

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥ १० ॥

आदित्य । चक्षुः । आ । दत्स्व । मरीचयः । अनु । धावत ।

पत्ऽसङ्गिनीः । आ । सजन्तु । विऽगते । बाहुऽवीर्ये ॥ १० ॥

हे आदित्य ! आप शत्रुओंकी नेत्रशक्तिको ग्रहण करिये, हे किरणों ! तुम (शत्रुकी पीठ पर) दौड़ो । शत्रुओंका बाहुबल क्षीण होनेपर उनके पैरोंका साथ देने वाली (जूतियें) उलझ जावें

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत
शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ११

यूयम् । उग्राः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र ।
मृणीत । शत्रून् ।

सोमः । राजा । वरुणः । राजा । महाऽदेवः । उत । मृत्युः ।
इन्द्रः ॥ ११ ॥

हे पृश्निमातृक मरुतों ! तुम उग्र हो (अतः तुम और) राजा सोम राजा वरुण और महादेव मृत्यु और इन्द्रके साथ संयुक्त होकर शत्रुओंको मसलो ॥ ११ ॥

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥ १२ ॥

एताः । देवऽसेनाः । सूर्यऽकेतवः । सऽचेतसः ।
अमित्रान् । नः । जयन्तु । स्वाहा ॥ १२ ॥

चतुर्थेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥ इति चतुर्थोनुवाकः ॥

सूर्यकी पताका वाली और समान चित्त वालीं ये देवसेनाएँ हमारे शत्रुओंको जीतें, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १२ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (१६३) ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

ज्वरभैषज्यकर्मणि "अग्निस्तक्मानम्" इति सूक्तेन लाजान् पाययति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि दावाग्निप्रणयनं कृत्वा अनेन सूक्तेन ताम्रस्रवेण मूर्ध्नि संपातान् आनयति ॥

तथा च सूत्रम् । "अग्निस्तक्मानम् इति लाजान् पाययति । दावे लोहितपात्रेण मूर्ध्नि संपातान् आनयति" इति [कौ० ४.५] ॥ लाजाः कृष्णाः व्रीहयः । तान् अभिमन्त्र्य पाययति मण्डं कृत्वा ॥

ज्वरकी चिकित्साके कर्ममें "अग्निस्तक्मानम्" इस सूक्तसे लाजाओंका पान करावे ।

तथा इसी कर्ममें दावाग्निका प्रणयन करके इस सूक्तसे ताँबे के स्रवेसे मस्तक पर सम्पातोंको लावे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अग्निस्तक्मानं इति लाजान् पाययति । दावे लोहितपात्रेण मूर्ध्नि सम्पातान् आनयति" इति (कौशिकसूत्र ४ । ५) काले धान लाजा कहलाती हैं । उनका मण्ड बना कर पिलावे ॥

अ॒ग्निस्त॒क्मान॒मप॑ बाधतामि॒तः सोमो॒ ग्रावा॒ वरु॑णः
पू॒तद॑क्षाः ।
वेदि॑र्ब॒र्हिः स॒मिधः॒ शोशु॑चाना॒ अप॒ द्वेषां॑स्यमु॒या भ॑वन्तु

अ॒ग्निः । त॒क्मान॑म् । अप॑ । बा॒ध॒ता॒म् । इ॒तः । सोमः॑ । ग्रावा॑ ।
वरु॑णः । पू॒तऽद॑क्षाः ।

वेदिः । बर्हिः । सम्ऽइधः । शोशुचानाः । अप । द्वेषांसि ।
अमुया । भवन्तु ॥ १ ॥

अग्निदेव, सोमदेव, मेघके देवता इन्द्र, पवित्र बलवाले वरुण, वेदि बर्हि और समिधायें प्रदीप्त होकर ज्वरको बाधित करें और हमारे शत्रु यहाँसे हट जावें ॥ १ ॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥ २ ॥

अयम् । यः । विश्वान् । हरितान् । कृणोषि । उत्ऽशोचयन् ।
अग्निःऽइव । अभिऽदुन्वन् ।
अध । हि । तक्मन् । अरसः । हि । भूयाः । अध । न्यङ् ।
अधराङ् । वा । परा । इहि ॥ २ ॥

हे जीवनको कष्टमय करने वाले ज्वर ! यह जो तू सम्पूर्ण मनुष्योंको शोकयुक्त करता हुआ अग्निकी समान उनको संतप्त करता हुआ हरा सा बना देता है, अतः वह तू नीरस (निर्बल) होजा, तू तिरस्कृत हो, नीचेसे नीचे स्थानको प्राप्त हो ॥ २ ॥

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥ ३ ॥

यः । परुषः । पारुषेयः । अवध्वंसःऽइव । अरुणः ।

तक्मानम् । विश्वधाऽवीर्य । अधराञ्चम् । परा । सुव ॥ ३ ॥

जो कठोर है, कठोरतासे हुए अवध्वंस (कत्ल) की समान लाल वर्ण वाला है, हे सब प्रकारकी शक्ति वाले ! ऐसे ज्वरको आप तिरस्कृत करके दूर करिये ॥ ३ ॥

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥

अधराञ्चम् । प्र । हिनोमि । नमः । कृत्वा । तक्मने ।
शकम्ऽभरस्य । मुष्टिऽहा । पुनः । एतु । महाऽवृषान् ॥ ४ ॥

मैं ज्वरको प्रणाम करके उसे नीचेके स्थलमें भेजता हूँ, रस वाले पुरुषको मुक्केसे मारने वाला ज्वर (वीर्यकी) बड़ी वर्षा करने वालोंको फिर प्राप्त हो ॥ ४ ॥

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५॥

ओकः । अस्य । मूजऽवन्त । ओकः । अस्य । महाऽवृषाः ।
यावत् । जातः । तक्मन् । तावान् । असि । बल्हिकेषु । निऽओचरः

इस ज्वरका घर मुञ्जवान् है और इसका घर वीर्यकी अधिक वर्षा करने वाले पुरुष हैं, हे तक्मन् ! तू जितना हुआ है उतना ही बल्हिकोंमें निन्य संयुक्त रहता है ॥ ५ ॥

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥ ६ ॥

तक्मन् । विऽआल । वि । गद । विऽअङ्ग । भूरि । यवय ।

दासीम् । निःऽतक्वरीम् । इच्छ । ताम् । वज्रेण । सम् । अर्पय ६

हे सर्पकी समान जीवनको कष्टमय और व्यङ्ग करने वाले विशिष्ट रोग रूप ज्वर ! तू हमसे अपनेको पृथक् कर और चोरी करने वाली दासीको वज्ररूपसे चिपट जा ॥ ६ ॥

तक्मन् मूजंवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१ तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७॥

तक्मन् । मूजऽवतः । गच्छ । बल्हिकान् । वा । परःऽतराम् ।

शूद्राम् । इच्छ । प्रऽफर्व्यम् । तान् । तक्मन् । विऽइव । धूनुहि ७

हे जीवनको दुःखमय बनाने वाले ज्वर ! तू मूँज वाले प्रदेशको वा वाल्हीक देशोंको वा उससे भी दूर जा और हे तक्मन् ! तू प्रथम अवस्था वाली शूद्राकी इच्छा कर और उसको विशेष रीतिसे कँपा ॥ ७ ॥

महावृषान् मूजंवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८॥

महाऽवृषान् । मूजऽवतः । बन्धु । अद्धि । पराऽइत्य ।

प्र । एतानि । तक्मने । ब्रूमः । अन्यऽक्षेत्राणि । वै । इमा ॥८॥

तू मूँज वाले महावृष्टियुक्त स्थानों पर जा और तहाँ बन्धुओंको खा, इन क्षेत्रोंको वा अन्य क्षेत्रोंको हम ज्वरके लिये कहते हैं ८

अन्यक्षेत्रे न रंमसे वशी सन् मृंडयासि नः ।

अभू॑दु॒ प्रार्थ॑स्त॒क्मा स ग॑मिष्यति॒ बल्हि॑कान् ॥९॥

अ॒न्य॒ऽक्षे॒त्रे । न । र॒म॒से॒ । व॒शी । सन् । मृ॒ड॒या॒सि॒ । नः॒ ।

अभू॑त् । ऊं॒ इति॑ । प्रऽअ॑र्थः । त॒क्मा । सः । ग॒मि॒ष्य॒ति॒ । बल्हि॑कान् ९

तू अन्यक्षेत्रमें सा रम रहा है, तू वशी है अतः हमको सुख दे अब ज्वर हममें सफल होचुका अब वह बल्हिकोंको जावेगा, ॥९॥

यत् त्वं शी॒तोथा॑ रू॒रः स॒ह का॒सावे॑पयः ।
भी॒मास्ते॑ तक्मन् हे॒तय॒स्ताभिः॑ स्म॒ परि॑ वृङ्ग्धि॒ नः १०

यत् । त्वम् । शी॒तः । अथो॒ इति॑ । रू॒रः । स॒ह । का॒सा । अवे॑पयः ।

भी॒माः । ते॒ । त॒क्म॒न् । हे॒तयः॑ । ताभिः॑ । स्म॒ । परि॑ । वृ॒ङ्ग्धि॒ । नः॒ १०

जो तू शीतज्वर है, जो तू शीतके अनन्तर होने वाला ज्वर है वा तू खाँसीके साथ कँपाता है, यही तेरे भयङ्कर आयुध हैं उनके साथ तू हमको छोड़ दे ॥ १० ॥

मा स्मै॒तान्त्सखी॑न् कुरुथा ब॒लासं॑ का॒समु॑द्यु॒गम् ।
मा स्मातो॒र्वाङैः पुन॒स्तत् त्वा॑ तक्म॒न्नुप॑ ब्रुवे ॥११॥

मा । स्म॒ । ए॒तान् । सखी॑न् । कु॒रु॒थाः॑ । ब॒लास॑म् । का॒सम् । उ॒त्ऽयु॒गम् ।

मा । स्म॒ । अतः॑ । अ॒र्वाङ् । आ । ऐः॒ । पुनः॑ । तत् । त्वा॒ । त॒क्म॒न् । उप॑ । ब्रु॒वे॒ ॥ ११ ॥

हे तक्मन्! आप बलक्षयकारक रोगको खाँसीको वा इन दोनों

१६६०

को हमारा मित्र न बनाइये । और उस स्थानसे हमारे पास फिर नीचा होकर तू न आ, हे तक्मन् । मैं तुझसे यह वारंवार कहता हूँ

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥ १२ ॥

तक्मन् । भ्रात्रा । बलासेन । स्वस्रा । कासिकया । सह ।
पाप्मा । भ्रातृव्येण । सह । गच्छ । अमुम् । अरणम् । जनम् १२

हे तक्मन् ! तू अपने भाई बलका क्षय करनेवाले रोगके साथ और अपनी बहन खाँसीके साथ और (रोगकी उत्पत्तिके कारण) भतीजे पापके साथ इस असम्भाव्य पुरुषके पास जा ॥ १२ ॥

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥ १३ ॥

तृतीयकम् । विऽतृतीयम् । सदम्ऽदिम् । उत । शारदम् ।
तक्मानम् । शीतम् । रूरम् । ग्रैष्मम् । नाशय । वार्षिकम् ॥१३॥

(हे देव !) आप तिजारी (तीसरे दिनके) और चौथे दिनके सदा खण्डनसा करने वाले और शरद् ऋतुमें होने वाले, वर्षा ऋतुमें होने वाले ग्रीष्म ऋतुमें होने वाले ज्वरको शीत और रूरज्वरको नष्ट करिये ॥ १३ ॥

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥१४॥

गन्धारिऽभ्यः । मूजवत्ऽभ्यः । अङ्गेभ्यः । मगधेभ्यः ।

प्र॒ऽए॒ष्यन् । जन॑म्ऽइव । शे॒व॒ऽधिम् । त॒क्मान॑म् । परि॑ । द॒द्म॒सि॒ १४

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

गन्धार मूजवान् अङ्ग मगध इन देशोंसे कष्टदाक रोगको भेजते हुए हम मनुष्योंको सुखसा देते हैं ॥ १४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१६४) ॥

कृमिभैषज्यकर्मणि "ओते मे द्यावापृथिवी" इति सूक्तेन करीर मूलं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा अनेन सूक्तेन गोवालैः करीरकाष्ठं वेष्टयित्वा सूक्तं जपित्वा पाषाणेन चूर्णयति । तथा सूक्तेनाग्नौ प्रतपति । ततः सूक्तेनादधति ॥

तथा अनेन सूक्तेन ग्रामपांशून् अभिमन्त्र्य सव्येन हस्तेन दक्षिणामुखो भूत्वा पांशून् परिकिरति ॥

तथा अनेन सूक्तेन पांशून् अभिमन्त्र्य हस्तेन मथित्वा कृमरुपरि क्षिपति ॥

तथा अनेन सूक्तेन शान्तिवृक्षसमिध आदधाति । कृमिभञ्जनम् ॥

तथा अनेन सूक्तेन पश्चाद् अग्नेर्मातुरुत्सङ्गे बालं कृत्वा नवनीतान्वक्तेन मुसलबुध्नेन तालुनि तापयति । त्रिः सूक्तप्रयोगः ॥

तथा अनेन सूक्तेन शिग्रुबीजेन नवनीतिमिश्रेण अभिमन्त्र्य व्याधिदेशं प्रलिम्पति ॥

तथा अनेन सूक्तेन एकविंशत्युशीराणां मूलान्यभिमन्त्र्य पाषाणेन कुट्टयति । ततः सूक्तं जपित्वा उशीराणि अग्निना दहति ॥

तथा अनेन सूक्तेन एकविंशत्युशीराणि अभिमन्त्र्य व्याधिताय समर्पयति ॥

तथा अनेन सूक्तेन उदकघटम् एकविंशत्युशीरपिञ्जूलीसहितं संपात्य अभिमन्त्र्य व्याधितम् आप्लावयति ॥

तद् उक्तं कौशिकसूत्रे । "ओते म इति करीरमूलं काण्डेनैकदेशम् । ग्रामात् पांशून् । पश्चाद् अग्नेर्मातुरुपस्थे मुसलबुध्नेन

नवनीतान्वक्तेन त्रिः प्रतीहारं तालुनि तापयति। शिग्रुभिर्नवनीतमिश्रैः प्रदेग्धि। एकविंशतिम् उशीराणि भिनद्मि [१३] इति मन्त्रोक्तम्। उशीराणि प्रयच्छति। एकविंशत्या सहाप्लावयति” इति [कौ० ४. ५]॥

कृमियोंकी चिकित्साके कर्ममें ‘ओते मे द्यावापृथिवी’ इस सूक्तसे करीरकी जड़को सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे॥

इस सूक्तसे गोवालोंसे करीरके काठको लपेट कर सूक्तको जप पाषाणसे चूरा करे।

तथा इस सूक्तसे ग्रामधूलिके कणोंका अभिमन्त्रण कर दक्षिणकी ओर मुख कर बायें हाथसे धूलिकणोंको बखेरे॥

तथा इस सूक्तसे धूलिकणोंका अभिमन्त्रण कर हाथसे मसल कर कीड़ेके ऊपर फैंके॥

तथा इस सूक्तसे शान्तिवृक्षकी समिधाओंको रक्खे। यह कृमियोंका संहार करने वाला कर्म है।

तथा इस सूक्तसे पीछे माताकी गोदमें बालकको रख मक्खनसे सने हुए मूसलकी जड़से (मक्खनको अग्निमें गरम कर उस मक्खनसे) बालकके तालुको तपावे। इस सूक्तका प्रयोग तीन वार करे।

तथा इस सूक्तसे सोहाञ्जनेके बीजको मक्खनसे मिला अभिमन्त्रित कर व्याधिदेश पर लेप करे।

तथा इस सूक्तसे खसखसकी इक्कीस जड़ोंका अभिमन्त्रिण कर उनको पत्थरसे कूटे। तदनन्तर सूक्तका जप कर खसखसोंको अग्निसे जलावे।

तथा इस सूक्तसे इक्कीस खसखसको अभिमन्त्रित कर रोगी पर झाड़े।

तथा इस सूक्तसे इक्कीस खसखसकी मुट्ठीसे युक्त जलपूर्ण घटका अभिमन्त्रण कर और सम्पातन कर व्याधित (रोगी) पर जल छिड़के।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–'ओते म इति करीरमूलं काण्डेनैकदेशं । ग्रामात् पांशून् । पश्चाद् अग्नेर्मातुरुपस्थे मुसलबुध्नेन नवनीतान्वक्तेन त्रिःप्रतीहारं तालुनितापयति । शिग्रुभिर्नवनीतमिश्रैः प्रदेग्धि । एकविंशतिं उशीराणि भिनद्मि (१३) इति मन्त्रोक्तं । उशीराणि प्रयच्छति। एकविंशत्या सहास्नावयति" (कौशिकसूत्र ४ । ५) ।

ओते॑ मे॒ द्यावा॑पृथि॒वी ओता॑ दे॒वी सर॑स्वती ।
ओतौ॑ म॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ क्रिमिं॑ ज॒म्भयता॒मिति॑ ॥१॥

ओ॑ते इत्या॑ऽउते । मे॒ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । आऽउ॑ता । दे॒वी । सर॑स्वती । आऽउ॑तौ । मे॒ । इन्द्र॑ः । च॒ । अ॒ग्निः । च॒ । क्रिमि॑म् । ज॒म्भ॒य॒ता॒म् । इति॑ ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी मुझमें ओतप्रोत हैं, सरस्वती देवी मुझमें ओतप्रोत हैं इन्द्र और अग्निदेव भी मुझमें ओतप्रोत हैं, वे कृमिका संहार करें ॥ १ ॥

अ॒स्येन्द्र॑ कुमा॒रस्य॒ क्रिमी॑न् धनपते जहि ।
ह॒ता विश्वा॒ अरा॑तय उ॒ग्रेण॒ वच॑सा॒ मम॑ ॥ २ ॥

अ॒स्य । इ॒न्द्र॒ । कु॒मा॒रस्य॑ । क्रिमी॑न् । ध॒न॒ऽप॒ते॒ । ज॒हि॒ । ह॒ताः । विश्वा॑ः । अरा॑तयः । उ॒ग्रेण॑ । वच॑सा । मम॑ ॥ २ ॥

हे धनपते इन्द्र ! मेरे उग्र वचनसे आप इस कुमारके शत्रुरूप सम्पूर्ण कृमियोंका नाश करिये ॥ २ ॥

यो अ॒क्ष्यौ॑ परि॒सर्प॑ति॒ यो नासे॑ परि॒सर्प॑ति ।

दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥

यः । अक्ष्यौ । परिऽसर्पति । यः । नासे इति । परिऽसर्पति ।
दताम् । यः । मध्यम् । गच्छति । तम् । क्रिमिम् । जम्भयामसि ॥ ३ ॥

जो कीड़ा आँखोंमें घूमता है, जो नासिकाके दोनों नथौड़ोंमें घूमता है, जो दाँतोंके बीचमें जाता है उस कीड़ेको हम नष्ट करते हैं

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥

सऽरूपौ । द्वौ । विऽरूपौ । द्वौ । कृष्णौ । द्वौ । रोहितौ । द्वौ ।
बभ्रुः । च । बभ्रुऽकर्णः । च । गृध्रः । कोकः । च । ते । हताः ४

दो कीड़े एकसे रूप वाले होते हैं दो विकट रूप वाले होते हैं दो लोहित वर्ण वाले होते हैं एक बभ्रुवर्ण वाला होता है, एकके कान बभ्रुवर्ण वाले हैं, एक गृध्र नामक और एक कोक नामक कीड़ा होता है, वे सब मन्त्रशक्तिसे नष्ट होगए ॥ ४ ॥

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥

ये । क्रिमयः । शितिऽकक्षाः । ये । कृष्णाः । शितिऽबाहवः ।
ये । के । च । विश्वऽरूपाः । तान् । क्रिमीन् । जम्भयामसि ॥५॥

जो कृमि तीक्ष्ण कोख वाले हैं और जो काले कीड़े तीक्ष्ण भुजा वाले हैं और जो अनेक रूप वाले हैं उन सबको हम मंत्रशक्तिसे नष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

उत पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६॥

उत । पुरस्तात् । सूर्यः । एति । विश्वऽदृष्टः । अदृष्टऽहा ।
दृष्टान् । च । घ्नन् । अदृष्टान् । च । सर्वान् । च । प्रऽमृणन् ।
क्रिमीन् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंसे देखे हुए सूर्यदेव न दीखने वाले कीड़ोंका संहार करने वाले हैं । वे दीखते हुए और न दीखते हुए संपूर्ण कृमियोंका मर्दन करते हुए पूर्वदिशासे उदय होकर आरहे हैं ६

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥

येवाषासः । कष्कषासः । एजत्ऽकाः । शिपवित्नुकाः ।
दृष्टः । च । हन्यताम् । क्रिमिः । उत । अदृष्टः । च । हन्यताम् ७

जो शीघ्र चलने वाले, परमपीड़ाप्रद थर्राने वाले तेज कीड़े हैं (उनमेंसे जो) दीखे उसको और जो न दीखता हो उसको भी हे मन्त्रशक्ति ! तू मार ॥ ७ ॥

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥ ८ ॥

हतः । येवाषः । क्रिमीणाम् । हतः । नदनिमा । उत ।
सर्वान् । नि । मष्मषा । अकरम् । दृषदा । खल्वान्ऽइव ॥ ८ ॥

कृमियोंमें जो तीक्ष्ण चलने वाला कीड़ा था वह मंत्रशक्तिसे नष्ट होगया और नदनिमा कीड़ा मारा गया जैसे पत्थरसे चनों को मसलते हैं, इसी प्रकार मैंने इनको मसल डाला है ॥ ८ ॥

त्रि॒शी॒र्षाणं॑ त्रिक॒कुदं॒ क्रिमिं॑ सा॒रङ्ग॒मर्जु॑नम् ।
शृ॒णाम्य॑स्य पृ॒ष्टीरपि॑ वृश्चामि॒ यच्छिरः॑ ॥ ९ ॥

त्रि॒ऽशी॒र्षाण॑म् । त्रि॒ऽक॒कुद॑म् । क्रिमि॑म् । सा॒रङ्ग॑म् । अर्जु॑नम् ।
शृ॒णामि॑ । अ॒स्य॒ । पृ॒ष्टीः । अपि॑ । वृ॒श्चा॒मि॒ । यत् । शिरः॑ ॥ ९ ॥

तीन शिर वाले तीन ककुद वाले शवल वर्ण वाले और श्वेत वर्ण वाले कीटको मंत्रशक्तिसे नष्ट करता हूँ और इसकी पसलियों और शिरको भी काटता हूँ ॥ ९ ॥

अ॒त्त्रि॒वद् वः॑ क्रिमयो हन्मि कण्व॒वज्ज॑मद॒ग्नि॒वत् ।
अ॒गस्त्य॑स्य॒ ब्रह्म॑णा॒ सं पि॑नष्म्य॒हं क्रिमी॑न् ॥ १० ॥

अ॒त्त्रि॒ऽवत् । वः॒ । क्रि॒म॒यः॒ । ह॒न्मि॒ । क॒ण्व॒ऽवत् । ज॒म॒द॒ग्नि॒ऽवत् ।
अ॒गस्त्य॑स्य । ब्रह्म॑णा । सम् । पि॒न॒ष्मि॒ । अ॒हम् । क्रिमी॑न् ॥ १० ॥

हे कृमियों ! मैं तुमको अत्रि कण्व और जमदग्नि ऋषिकी समान मारता हूँ अर्थात् वे तुमको मंत्रशक्तिसे जिस प्रकार नष्ट करते हैं इसी प्रकार मैं भी तुमको मंत्रशक्तिसे नष्ट करता हूँ तथा महर्षि अगस्त्यके मंत्रके प्रभावसे मैं तुमको नष्ट करता हूँ ॥१०॥

ह॒तो राजा॒ क्रिमी॑णामु॒तैषां॑ स्थ॒पति॑र्ह॒तः ।
ह॒तो ह॒तमा॑ता॒ क्रिमि॑र्ह॒तभ्रा॑ता ह॒तस्व॑सा ॥ ११ ॥

ह॒तः । राजा॑ । क्रिमी॑णाम् । उ॒त । ए॒षा॒म् । स्थ॒पतिः॑ । ह॒तः ।
ह॒तः । ह॒तऽमा॑ता । क्रिमि॑ः । ह॒तऽभ्रा॑ता । ह॒तऽस्व॑सा ॥ ११ ॥

हमारी की हुई मन्त्र और औषधिके प्रभावसे कृमियोंका राजा और इनका मंत्री भी मारा गया, माता भाई और बहिनके नष्ट होनेसे यह कृमिकुल पूर्णरीतिसे नष्ट होगया ॥ ११ ॥

ह॒तासो॑ अस्य वे॒शसो॑ ह॒ता॒सः परि॑वेशसः॑ ।
अ॒थो ये क्षु॑ल्ल॒का इ॑व॒ सर्वे॒ ते क्रिम॑यो ह॒ताः ॥१२॥

ह॒तासः॑ । अ॒स्य॒ । वे॒शसः॑ । ह॒तासः॑ । परि॑ऽवेशसः ।
अथो॒ इति॑ । ये । क्षु॒ल्ल॒काःऽइ॑व । सर्वे॑ । ते । क्रिम॑यः । ह॒ताः १२

इस कृमिकुलके बैठनेके स्थान मुख्य गृह (घड़िया) नष्ट होगए और समीपके घर भी नष्ट होगए और जो बीजरूपमें स्थित छोटे छोटे कीड़े थे वे भी नष्ट हो गए ॥ १२ ॥

सर्वे॑षां च॒ क्रिमी॑णा॒ं सर्वा॑सां च क्रि॒मीणा॑म् ।
भि॒नद्म्य॑श्मना॒ शिरो॒ दहा॑म्य॒ग्निना॒ मुख॑म् ॥ १३ ॥

सर्वे॑षाम् । च॒ । क्रिमी॑णाम् । सर्वा॑साम् । च॒ । क्रि॒मीणा॑म् ।
भि॒नद्मि॑ । अश्म॑ना । शिरः॑ । दहा॑मि । अ॒ग्निना॑ । मुख॑म् ॥१३॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

सब (नर) कृमियोंके और सकल (मादा) कृमियोंके शिर को मैं पत्थरसे नष्ट करता हूँ और अग्निसे मुखको झुलसता हूँ १३

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१६५) ॥

पौरोहित्यं करिष्यन् "सविता प्रसवानाम्" इति सूक्तेन शूद्रेणाहृताः समिध आदधातीति केशवः । तथा च सूत्रम् । "सविता प्रसवानाम् इति पौरोहित्ये वत्स्यन् वैश्वलोपीः समिध आधाय" इति [कौ० २. ८]। विश्वो लुप्यते चन्द्रोस्याम् इति विश्वलोपा अमावास्या । तस्यां भवा एतादृशीः समिधः । चन्द्रमसः सर्वलोपाद् अमावास्या विश्वलोपेति हि दारिलः ॥

तथा अस्य सूक्तस्य विवाहे आज्यहोमे विनियोगः । तथा च सूत्रम् । "सविता प्रसवानाम् इति" इति [कौ० १०. ४] ॥

तथा चातुर्मास्ये वैश्वदेवपर्वणि साबित्रं यागं "सविता प्रसवानाम्" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "सविता प्रसवानाम्" इति [वै० २. ४] ॥

पौरोहित्यको करना चाहने वाला 'सविता प्रसवानाम्' इस सूक्तसे शूद्रकी लाई हुई समिधाओंको रक्खे–यह केशवका मत है । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"सविता प्रसवानां इति पौरोहित्ये वत्स्यन् वैश्वलोपीः समिध आधाय ।–पुरोहिताईके कृत्यको करता हुआ वैश्वलोपी (अमावस्यामें हुई) समिधाओंको स्थापित कर (कार्यका आरंभ करे)

इस सूक्तका विवाहके समय किये जाने वाले घृतहोममें विनियोग है । इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि–'सविता प्रसवानाम्' (कौशिकसूत्र १० । ४) ।

तथा ब्रह्मा चातुर्मास्यके वैश्वदेवपर्वमें सावित्रयागका इस सूक्तसे अनुमंत्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है । "सविता प्रसवानां" इति (वैतानसूत्र २ । ४) ॥

स॒वि॒ता प्र॑स॒वाना॒मधि॑पति॒ः स मा॑वतु ।
अ॒स्मिन् ब्रह्म॑ण्य॒स्मिन् कर्म॑ण्य॒स्यां पु॒रोधाया॑म॒स्यां

प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १ ॥

सविता । प्रऽसवानाम् । अधिऽपतिः । सः । मा । अवतु । अस्मिन् । ब्रह्मणि । अस्मिन् । कर्मणि । अस्याम् । पुरःऽधायाम् । अस्याम् । प्रतिऽस्थायाम् । अस्याम् । चित्त्याम् । अस्याम् । आऽकूत्याम् । अस्याम् । आऽशिषि । अस्याम् । देवऽहूत्याम् । स्वाहा १

भगवान् सूर्यदेव उत्पन्न हुए पदार्थोंके अधिपति हैं, वह इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १ ॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।० ॥ २ ॥

अग्निः । वनस्पतीनाम् । अधिऽपतिः । सः । मा । अवतु ।० ॥२॥

अग्निदेव वनस्पतियोंके स्वामी हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २ ॥

द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावताम् ।० ॥ ३ ॥

द्यावापृथिवी इति । दातॄणाम् । अधिपत्नी इत्यधिऽपत्नी । ते इति । मा । अवताम् ।० ॥ ३ ॥

द्यावापृथिवी दाताओंके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त

कर्ममें इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ॥ ३ ॥

व॒रु॑णो॒पामधि॑पतिः॒ स मा॑वतु ।० ॥ ४ ॥

वरु॑णः । अ॒पाम् । अधि॑ऽपतिः । सः । मा॒ । अ॒व॒तु॒ ।० ॥ ४ ॥

वरुणदेव जलके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४ ॥

मि॒त्रावरु॑णौ वृ॒ष्ट्याधि॑पती॒ तौ मा॑वताम् ।० ॥५॥

मि॒त्रावरु॑णौ । वृ॒ष्ट्या । अधि॑पती॒ इत्यधि॑ऽपती । तौ । मा॒ । अ॒व॒ताम् ।० ॥ ५ ॥

मरुद्गण पर्वतोंके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५ ॥

म॒रुतः॒ पर्व॑ताना॒मधि॑पतय॒स्ते मा॑वन्तु ।० ॥ ६ ॥

म॒रुतः॑ । पर्व॑तानाम् । अधि॑ऽपतयः । ते । मा॒ । अ॒व॒न्तु॒ ।० ॥६॥

मित्र और वरुण देवता वृष्टिके अधिपति हैं, वह इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ६ ॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।० ॥ ७ ॥

सोमः । वीरुधाम् । अधिऽपतिः । सः । मा । अवतु ।० ॥७॥

सोम देवता लताओंके अधिपति हैं, वह इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ७ ॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स ०।० ॥ ८ ॥

वायुः । अन्तरिक्षस्य । अधिऽपतिः ।० ॥ ८ ॥

वायुदेव अन्तरिक्षके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स ०।० ॥ ९ ॥

सूर्यः । चक्षुषाम् । अधिऽपतिः ।० ॥ ९ ॥

सूर्यदेव नेत्रके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ९ ॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स ०।० ॥ १० ॥

चन्द्रमाः । नक्षत्राणाम् । अधिऽपतिः ।० ॥ १० ॥

चन्द्रदेव नक्षत्रोंके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें इस प्रतिष्ठामें इस चितिमें, इस संकल्पमें इस देवताओंके बुलाने

के कर्म में और इस आशीर्वादात्मक कर्म में मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १० ॥

इन्द्रो दिवोधिपतिः स ०।० ॥ ११ ॥

इन्द्रः । दिवः । अधिऽपतिः ।० ॥ ११ ॥

इन्द्रदेव स्वर्गके राजा हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्म में, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्म में और इस आशीर्वादात्मक कर्म में मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स ०।० ॥१२॥

मरुताम् । पिता । पशूनाम् । अधिऽपतिः ।० ॥ १२ ॥

मरुतोंके पिता पशुओंके अधिपति हैं, वह इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्म में, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्म में और इस आशीर्वादात्मक कर्म में मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १२ ॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स ०।० ॥ १३ ॥

मृत्युः । प्रऽजानाम् । अधिऽपतिः ।० ॥ १३ ॥

मृत्यु प्रजाओंके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्म में, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओं के बुलानेके कर्म में और इस आशीर्वादात्मक कर्म में मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १३ ॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु ।० ॥ १४ ॥

यमः । पितॄणाम् । अधिऽपतिः । सः । मा । अवतु ।० ॥ १४ ॥

यम पितरोंके अधिपति हैं, वे इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १४ ॥

पितरः परे ते मावन्तु ।० ॥ १५ ॥

पितरः । परे । ते । मा । अवन्तु ।० ॥ १५ ॥

सात पीढ़ीसे ऊपर जाकर मिलनेवाले पितर, इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १५ ॥

तता अवरे ते ०।० ॥ १६ ॥

तताः । अवरे । ते ।० ॥ १६ ॥

और सपिण्ड (मरे हुए) पितर, इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्ममें और इस आशीर्वादात्मक कर्ममें मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १६ ॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्या
प्रतिष्ठायामस्या चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशि-
ष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १७ ॥

ततः । ततामहाः । ते । मा । अवन्तु ।

अ॒स्मिन् । ब्रह्म॑णि । अ॒स्मिन् । कर्म॑णि । अ॒स्याम् । पु॒रः॒ऽधा-
या॑म् । अ॒स्याम् । प्र॒ति॒ऽस्थाया॑म् । अ॒स्याम् । चित्त्या॑म् ।
अ॒स्याम् । आऽकू॑त्याम् । अ॒स्याम् । आ॒ऽशिषि॑ । अ॒स्याम् । दे॒व-
ऽहू॑त्याम् । स्वाहा॑ ॥ १७ ॥

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

तत ततामह (मृतक) पितर, इस पुरोहिताईके वेदोक्त कर्ममें, इस प्रतिष्ठामें, इस चितिमें, इस संकल्पमें, इस देवताओंके बुलानेके कर्म में और इस आशीर्वादात्मक कर्म में मेरी रक्षा करें यह आहुति स्वाहुति हो ॥ १७ ॥

पञ्चम काण्डके पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१६६) ॥

गर्भाधानाख्ये कर्मणि "पर्वताद् दिवः" इति सूक्तेन आगमकृशरं चरुद्वयं श्रपयित्वा संपात्य अभिमन्त्र्य द्वितीयं चरुं युगच्छिद्रेण संपात्य अभिमन्त्र्य आशयति ।

तथा तत्रैव कर्मणि केलूनांश्च पलाशत्सरून्निवृत्ते निघृष्य "पर्वताद् दिवः" इति सूक्तेन अभिमन्त्र्य शिश्ने आधाय ततो मैथुनं करोति ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "पर्वताद् दिव इत्यागमकृशरम् आशयति । युगतर्द्मना संपातवन्तं द्वितीयम् । केलूनांश्च पलाशत्सरून्निवृत्ते निकर्ष्याधाय शिश्ने ग्रामं प्रविशति" इति [कौ० ४. ११] ॥

गर्भाधान नाम वाले कर्ममें "पर्वताद् दिवः" इस सूक्तसे आगमकृशरके दो चरुओंको पकावे फिर उनका संपातन और अभिमन्त्रण कर दूसरे चरुको युगके छिद्रसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ।

तथा इसी कर्ममें पलाशकी खड्गमुष्टि और केलूनोंको निवृत

(महल आदिसे घिरे हुए स्थान) में घिस कर "पर्वताद् दिवः" इस सूक्तसे अभिमन्त्रित कर शिश्न पर रख कर मैथुन करे ।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि–"पर्वताद् दिव इति आगमकुशरं आशयति । युगतर्द्मना सम्पातवन्तं द्वितीयं वेलूनांश्च पलाशत्सरून्निवृत्ते निकर्ष्याधाय शिश्ने ग्रामं प्रविशति" (कौशिक सूत्र ४ । ११) ॥

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥

पर्वतात् । दिवः । योनेः । अङ्गात्ऽअङ्गात् । सम्ऽआभृतम् ।
शेपः । गर्भस्य । रेतःऽधाः । सरौ । पर्णम्ऽइव । आ । दधत् १

पर्वतकी (औषधि आदि) से स्वर्ग (के पुण्य आदि) से और प्रत्येक अंग (में शक्ति होने) से भली प्रकार पुष्ट हुआ वीर्यको धारण करने वाला पुंस्प्रजनन (चलनेवाले) जलमें पत्ते की समान योनिमें गर्भको स्थापित करता है ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥

यथा । इयम् । पृथिवी । मही । भूतानाम् । गर्भम् । आऽदधे ।
एव । आ । दधामि । ते । गर्भम् । तस्मै । त्वाम् । अवसे । हुवे २

जैसे यह विशाल पृथ्वी सकल भूतोंके गर्भको धारण करती है इसी प्रकार मैं तेरे गर्भको धारण करती हूँ और उसकी रक्षा के लिये तेरा आह्वान करती हूँ ॥ २ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं॑ ते अ॒श्विनो॒भा ध॑त्तां॒ पुष्क॑रस्रजा ॥ ३ ॥

गर्भ॑म् । धे॒हि॒ । सि॒नी॒वा॒लि॒ । गर्भ॑म् । धे॒हि॒ । स॒र॒स्व॒ति॒ ।

गर्भ॑म् । ते॒ । अ॒श्विना॑ । उ॒भा । ध॒त्ताम् । पुष्क॑रऽस्रजा ॥ ३ ॥

हे अमावास्याके पूर्व प्रहरकी अधिष्ठात्री देवते सिनिवालि ! तुम गर्भको पुष्ट करो, हे सरस्वति ! तुम गर्भको पुष्ट करो। हे कल्याणि ! तेरे गर्भको फूलोंकी माला धारण करने वाले दोनों अश्विनीकुमार तेरे गर्भको पुष्ट करें ॥ ३ ॥

गर्भं॑ ते मि॒त्रावरु॑णौ॒ गर्भं॑ दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ ।

गर्भं॑ त॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ गर्भं॑ धा॒ता द॑धातु ते ॥ ४ ॥

गर्भ॑म् । ते॒ । मि॒त्रावरु॑णौ । गर्भ॑म् । दे॒वः । बृह॒स्पतिः॑ ।

गर्भ॑म् । ते॒ । इन्द्रः॑ । च॒ । अ॒ग्निः । च॒ । गर्भ॑म् । धा॒ता । द॒धा॒तु॒ । ते॒४

मित्र और वरुण देवता तथा बृहस्पति इन्द्र अग्निदेव और धाता देवता तेरे गर्भको पुष्ट करें ॥ ४ ॥

विष्णु॒र्योनिं॑ कल्पयतु॒ त्वष्टा॑ रू॒पाणि॑ पिं॑शतु ।

आ सि॑ञ्चतु प्र॒जाप॑तिर्धा॒ता गर्भं॑ दधातु ते ॥ ५ ॥

विष्णुः॑ । योनि॑म् । क॒ल्प॒य॒तु॒ । त्वष्टा॑ । रू॒पाणि॑ । पिं॑श॒तु॒ ।

आ । सि॒ञ्च॒तु॒ । प्र॒जाऽप॑तिः । धा॒ता । गर्भ॑म् । द॒धा॒तु॒ । ते ॥५॥

विष्णुदेवता योनिको समर्थ करें, त्वष्टा देवता रूपोंको बनावें, प्रजापति देवता गर्भका सिञ्चन करें और धाता देवता तेरे गर्भका पोषण करें ॥ ५ ॥

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥

यत् । वेद । राजा । वरुणः । यत् । वा । देवी । सरस्वती ।
यत् । इन्द्रः । वृत्रऽहा । वेद । तत् । गर्भऽकरणम् । पिब ॥ ६ ॥

राजा वरुण जिस गर्भकरणको जानते हैं और जिस गर्भकरणको देवी सरस्वती जानती हैं और वृत्रासुरके संहारक इन्द्रदेव जिस गर्भकरणको जानते हैं उसको गर्भको करने वाली वस्तुको तू पी ॥ ६ ॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥७॥

गर्भः । असि । ओषधीनाम् । गर्भः । वनस्पतीनाम् ।
गर्भः । विश्वस्य । भूतस्य । सः । अग्ने । गर्भम् । आ । इह । धाः ७

हे अग्निदेव ! आप औषधियोंके गर्भ हैं, आप वनस्पतियोंके गर्भ हैं और सम्पूर्ण भूतोंके गर्भ हैं, वह आप यहाँ मेरे गर्भको पुष्ट करिये ॥ ७ ॥

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥

अधि । स्कन्द । वीरयस्व । गर्भम् । आ । धेहि । योन्याम् ।
वृषा । असि । वृष्ण्यऽवन् । प्रऽजायै । त्वा । आ । नयामसि ८

ऊपर स्थित होकर चल, वीरता कर, योनिमें गर्भको स्थापित कर, हे वृष्ण्यावन्! तू वर्षा करने वाला है, प्रजाके लिये हम तुझको लिये जाते हैं ॥ ८ ॥

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥

वि । जिहीष्व । बार्हत्ऽसामे । गर्भः । ते । योनिम् । आ । शयाम् ।
अदुः । ते । देवाः । पुत्रम् । सोमऽपाः । उभयाविनम् ॥ ९ ॥

हे बड़ी सान्त्वना वाली! अदुष्टे! तू विशेष गति कर मैं तेरी योनिमें गर्भको स्थापित करता हूँ, सोमपान करने वाले देवताओंने इस लोक और परलोक दोनों स्थानोंमें रक्षा करने वाले पुत्रको दिया है ॥ ९ ॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १० ॥

धातः । श्रेष्ठेन । रूपेण । अस्याः । नार्याः । गवीन्योः ।
पुमांसम् । पुत्रम् । आ । धेहि । दशमे । मासि सूतवे ॥ १० ॥

हे धातः! इस स्त्रीकी अँतड़ियोंसे निकले हुए मूत्रको मूत्राशयमें पहुँचाने वालीं दोनों पसलियोंकी ओर स्थित नाड़ियोंमें दशवें महीने प्रसूत करनेके लिये श्रेष्ठ रीति पर पुरुषपुत्रको पुष्ट करिये ॥ १० ॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन ०।० ॥ ११ ॥

त्वष्टः । श्रेष्ठेन ।० ॥ ११ ॥

हे त्वष्टा देवता ! इस स्त्रीकी अँतड़ियोंसे निकले हुए मूत्रको मूत्राशयमें पहुँचाने वाली दोनों पसलियोंकी ओर स्थित नाड़ियों में दशवें महीने प्रसूत करनेके लिये श्रेष्ठ रीति पर पुरुषपुत्रको पुष्ट करिये ॥ ११ ॥

सवि॑त॒ः श्रेष्ठे॑न ०।० ॥ १२ ॥

सवि॑तः । श्रेष्ठे॑न ।० ॥ १२ ॥

हे सवितादेवता ! इस स्त्रीकी अँतड़ियोंसे निकले हुए मूत्रको मूत्राशयमें पहुँचाने वालीं दोनों पसलियोंकी ओर स्थित नाड़ियोंमें दशवें महीने प्रसूत करनेके लिये श्रेष्ठ रीति पर पुरुषपुत्रको पुष्ट करिये ॥ १२ ॥

प्रजा॑पते॒ श्रेष्ठे॑न रू॒पेणा॒स्या नार्या॑ गवी॒न्योः ।
पुमां॑सं पु॒त्रमा धे॑हि दश॒मे मा॒सि सूत॑वे ॥ १३ ॥

प्रजा॑ऽपते । श्रेष्ठे॑न । रू॒पेण॑ । अ॒स्याः । नार्याः॑ । ग॒वी॒न्योः ।
पुमां॑सम् । पु॒त्रम् । आ । धे॒हि॒ । द॒श॒मे । मा॒सि । सूत॑वे ॥ १३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे प्रजापते ! इस स्त्रीकी अँतड़ियोंसे निकले हुए मूत्रको मूत्राशयमें पहुँचाने वालीं दोनों पसलियोंकी ओर स्थित नाड़ियों में दशवें महीने प्रसूत करनेके लिये श्रेष्ठ रीति पर पुरुषपुत्रको पुष्ट करिये ॥ १३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१६७) ॥

“यजूंषि यज्ञे” इति सूक्तेन नवशालायां पुष्टिकामो घृतं मधुमिश्रं जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । “यजूंषि यज्ञे [५. २६] इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रं जुहोति । दोषो गाय [६. १] इति

द्वितीयाम् । युक्ताभ्यां तृतीयाम्” इति [कौ० ३. ६] ॥ आहुतिम् इति शेषः ॥

ज्योतिष्टोमे “यजूंषि यज्ञे” इति सूक्तेन आज्यं जुहोति । “यजूंषि यज्ञ इति च” [वै० ३. ६] इति वैतानसूत्रात् ॥

“यजूंषि यज्ञे” इस सूक्तसे पुष्टिको चाहने वाला नवशालामें मधुसे मिले हुए घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–‘यजूंषि यज्ञे (५ । २६) इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रं जुहोति । दोषो गाय इति द्वितीयाम् । युक्ताभ्यां तृतीयाम् । ‘यजूंषि यज्ञे’ सूक्तसे मधुमिश्रित घृतकी आहुति देय । ‘दोषो गाय’ इस (६ । १) से दूसरी और दोनोंसे तीसरी आहुति देय । ज्योतिष्टोममें ‘यजूंषि यज्ञे’ इस सूक्तसे घृतकी आहुति देय ।’ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–“यजूंषि यज्ञ इति च” (वैतानसूत्र ३ । ६) ।

यजूं॑षि य॒ज्ञे स॒मिध॒ः स्वाहा॒ग्निः प्र॑वि॒द्वानि॒ह वो॑ युनक्तु १

यजूं॑षि । य॒ज्ञे । स॒म्ऽइधः॑ । स्वाहा॑ । अ॒ग्निः । प्र॒ऽवि॒द्वान् । इ॒ह ।
व॒ः । यु॒न॒क्तु॒ ॥ १ ॥

हे यजुर्वेदके मन्त्र और समिधाओं ! जानने वाले अग्निदेव इस यज्ञमें तुमसे संयुक्त हों ॥ १ ॥

यु॒नक्तु॑ दे॒वः स॑वि॒ता प्र॑जा॒नन्न॒स्मिन् य॒ज्ञे म॑हि॒षः
स्वाहा॑ ॥ २ ॥

यु॒नक्तु॑ । दे॒वः । स॒वि॒ता । प्र॒ऽजा॒नन् । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । म॒हि॒षः ।
स्वाहा॑ ॥ २॥

मध्यम देवता विद्वान् सूर्यदेव इस यज्ञमें युक्त होवें, यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हो ॥ २ ॥

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥

इन्द्रः । उक्थऽमदानि । अस्मिन् । यज्ञे । प्रऽविद्वान् । युनक्तु । सुऽयुजः । स्वाहा ॥ ३ ॥

विद्वान् इन्द्रदेव इस यज्ञमें हे उक्थके मदों ! तुमसे संयुक्त हों, यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हो ॥ ३ ॥

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ४

प्रऽएषाः । यज्ञे । निऽविदः । स्वाहा । शिष्टाः । पत्नीभिः । वहत । इह । युक्ताः ॥ ४ ॥

हे शिष्ट पुरुषों ! तुम युक्त होकर अपनी पत्नियोंके साथ इस यज्ञमें प्रैष (आज्ञारूप) वाणियोंको धारण करो यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४ ॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ५

छन्दांसि । यज्ञे । मरुतः । स्वाहा । माताऽइव । पुत्रम् । पिपृत । इह । युक्ताः ॥ ५ ॥

जैसे माता पुत्रका पालन करती है, इसी प्रकार इस यज्ञमें मरुत् देवता संयुक्त होकर छन्दोंका पालन करें, यह आहुति मरुत् देवताओंके लिये स्वाहुत हो ॥ ५ ॥

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ६

आ । इ॒यम् । अ॒ग॒न् । ब॒र्हिषा॑ । प्र॒ऽउ॑क्षणीभिः । य॒ज्ञम् । त॒न्वा॒ना ।
अदि॑तिः । स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

यह अदिति देवी कुशा और प्रोक्षणियोंके साथ यज्ञको बढ़ाती हुई आई है, यह आहुति अदितिके लिये स्वाहुत हो ॥ ६ ॥

विष्णु॑र्युनक्तु बहु॒धा तपां॑स्य॒स्मिन् य॒ज्ञे सु॒युज॒ः स्वाहा॑ ७

विष्णुः॑ । यु॒न॒क्तु॒ । ब॒हु॒ऽधा । तपां॑सि । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । सु॒ऽयुजः॑ ।
स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

भगवान् विष्णु भली प्रकार किये हुए तपों (के फल) को (इस यज्ञकी पूर्त्तिके लिये) संयुक्त करें, यह आहुति भगवान् विष्णुके लिये स्वाहुत हो ॥ ७ ॥

त्वष्टा॑ युनक्तु बहु॒धा नु रू॒पा अ॒स्मिन् य॒ज्ञे सु॒युज॒ः
स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

त्वष्टा॑ । यु॒न॒क्तु॒ । ब॒हु॒ऽधा । नु । रू॒पाः । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । सु॒ऽयुजः ।
स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

त्वष्टा देवता भली प्रकार ठीक किये हुए रूपोंको इस यज्ञमें संयुक्त करें, यह आहुति त्वष्टा देवताके लिये स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

भगो॑ युन॒क्त्वाशि॒षो न्व॑१॒स्मा अ॒स्मिन् य॒ज्ञे प्र॑वि॒द्वान्
यु॑नक्तु सु॒युज॒ः स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

भ॑गः । यु॒न॒क्तु॒ । आ॒ऽशि॑षः । नु । अ॒स्मै । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । प्र॒ऽवि॒-
द्वान् । यु॒न॒क्तु । सु॒ऽयुज॑ः । स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

विद्वान् भगदेवता इस यज्ञमें सुयोग्य आशीर्वादोंसे संयुक्त करें, यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हो ॥ ९ ॥

सोमो॑ युनक्तु ब॒हु॒धा पयां॑स्य॒स्मिन् य॒ज्ञे सु॒युजः॒ स्वाहा॑

सो॑मः । यु॒न॒क्तु । ब॒हु॒ऽधा । पयां॑सि । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । सु॒ऽयु॒जः॑ ।
स्वाहा॑ ॥ १० ॥

सोमदेव इस यज्ञमें भली प्रकार संयुक्त होने वाले जलोंको संयुक्त करें । यह आहुति सोमदेवके लिये स्वाहुत हो ॥ १० ॥

इन्द्रो॑ युनक्तु ब॒हु॒धा वी॒र्या॑ण्य॒स्मिन् य॒ज्ञे सु॒युजः॒ स्वाहा॑

इ॑न्द्रः । यु॒न॒क्तु । ब॒हु॒ऽधा । वी॒र्या॑णि । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । सु॒ऽयु॒जः॑ ।
स्वाहा॑ ॥ ११ ॥

इन्द्रदेव इस यज्ञमें इस यज्ञके अनुरूप वीर्योंको संयुक्त करें, यह आहुति इन्द्रदेवके लिये स्वाहुत हो ॥ ११ ॥

अश्वि॑ना॒ ब्रह्म॒णा या॑तम॒र्वाञ्चौ॑ वषट्का॒रेण॑ य॒ज्ञं व॒र्धय॑न्तौ
बृह॑स्पते॒ ब्रह्म॒णा या॒ह्य॒र्वाङ् य॒ज्ञो अ॒यं स्व॑रि॒दं यज॑मा-
नाय॒ स्वाहा॑ ॥ १२ ॥

अश्वि॑ना । ब्रह्म॑णा । आ । या॒त॒म् । अ॒र्वा॒ऽअ॒ञ्चौ॑ । व॒ष॒ट्ऽका॒रेण॑ ।
य॒ज्ञम् । व॒र्धय॑न्तौ ।
बृह॑स्पते । ब्रह्म॑णा । आ । या॒हि॒ । अ॒र्वाङ् । य॒ज्ञः । अ॒यम् । स्वः॑ ।
इ॒दम् । यज॑मानाय । स्वाहा॑ ॥ १२ ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥ इति पञ्चमोनुवाकः ॥

९४६४

हे अश्विनीकुमारों! तुम मन्त्रके द्वारा वषट् होने पर यज्ञको बढ़ावा देते हुए यज्ञके अभिमुख आओ, हे बृहस्पते! आप मंत्रके द्वारा यज्ञके अभिमुख होकर आइये। यह यज्ञ यजमानके लिये स्वर्ग (देने वाला हो) यह आहुति अश्विनीकुमार और बृहस्पतिजी के लिये स्वाहुत हो ॥ १२ ॥

अथर्ववेदसंहिताके पञ्चम काण्डके पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम
सूक्त समाप्त (१६८) ॥
पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

पुष्टिकामः "ऊर्ध्वा अस्य" इति सूक्तेन अग्नौ मन्थाकारम् औदुम्बरं दत्त्वा आज्यं जुहोति ॥

तथा असंख्याता आगमशष्कुलीरधिश्रित्य अनेन सूक्तेन सप्त शष्कुलीरग्नौ दत्त्वा आज्यं जुहोति। शेषाः शष्कुलीः कर्त्रे ददाति ॥

तदु उक्तं कौशिकेन। "ऊर्ध्वा अस्येति वार्ष्मणम् औदुम्बरं मन्थप्रतिरूपम् अभि जुहोति। असंख्याता अधिश्रित्य समागमशष्कुलीः" इति [कौ० ३. ६]॥ प्रतिग्रहोपात्तेन द्रव्येण कृताः शष्कुल्य आगमशष्कुल्यः ॥

तथा वशाशमनकर्मणि अस्य सूक्तस्य विनियोग उक्तः। सूक्तादिकं "समिद्धो अद्य" इति सूक्ते [५. १२] द्रष्टव्यम् ॥

पुष्टिको चाहने वाला "ऊर्ध्वा अस्य" इस सूक्तसे अग्निमें मन्थ (रई) के आकारके औदुम्बर (गूलड़) को देकर घृतकी आहुति देय।

तथा असंख्य आगम शष्कुलियोंको पकाकर इस सूक्तसे सात शष्कुली (पूरियों) को अग्निमें डाल कर घृतकी आहुति देय। शेष पूरियोंको कर्ताको दे देय।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"ऊर्ध्वा अस्येति वार्ष्मणम् औदुम्बरं मन्थप्रतिरूपं जुहोति। असंख्याता अधिश्रित्य समागमशष्कुलीः" (कौशिकसूत्र ३। ६)। प्रतिग्रहमें मिले हुए द्रव्यसे बनाई हुई पूरियें आगमशष्कुली कहलाती हैं।

तथा वशाशमनकर्ममें इस सूक्तका विनियोग कहा है । सूत्र आदिक 'समिद्धो अद्य' इस पञ्चमकाण्डके बारहवें सूक्तमें देखना चाहिये ।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः १

ऊर्ध्वाः । अस्य । सम्ऽइधः । भवन्ति । ऊर्ध्वा । शुक्रा । शोचींषि । अग्ने
द्युमत्ऽतमा । सुऽप्रतीकः । सऽसूनुः । तनूऽनपात् । असुरः । भूरिऽपाणिः ॥ १ ॥

इन अग्निदेवकी समिधायें ऊँची होती हैं, इनके वीर्य (पराक्रम) संतापदायक होवे हैं, यह अग्निदेव परमकांतिमय हैं, इनके प्रतीक सुन्दर हैं, यह सूनु (सूर्य , की समान हैं, यह प्राणदाता हैं, इनका हाथ (यज्ञोंमें) बहुत रहता है ॥ १ ॥

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥ २ ॥

देवः । देवेषु । देवः । पथः । अनक्ति । मध्वा । घृतेन ॥ २ ॥

यह देवताओंमें श्रेष्ठ देव हैं और यह मधु तथा घृतसे मार्गोंको शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्
देवः सविता विश्ववारः ॥ ३ ॥

मध्वा । यज्ञम् । नक्षति । प्रैणानः । नराशंसः । अग्निः । सुऽकृत् ।
देवः । सविता । विश्वऽवारः ॥ ३ ॥

मनुष्योंसे श्लाघनीय, सुन्दर कर्मोंको करने वाले सविता विश्व भरके वरणीय अग्निदेव मधुसे यज्ञको संयुक्त करते हुए व्याप्त होरहे हैं ॥ ३ ॥

अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ४

अच्छ । अयम् । एति । शवसा । घृता । चित् । ईडानः । वह्निः । नमसा ॥ ४ ॥

घृत बल और हविरूप अन्नसे स्तुति पाते हुए यह अग्निदेव अभिमुख होकर आरहे हैं ॥ ४ ॥

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ५ ॥

अग्निः । स्रुचः । अध्वरेषु । प्रऽयक्षु । सः । यक्षत् । अस्य । महिमानम् । अग्नेः ॥ ५ ॥

जिसमें देवताओंकी संगति अधिकरूपसे होती है ऐसे यज्ञोंमें अग्निदेव इस यज्ञकी महिमाको और स्रुवोंको अग्निसे अर्थात् अपने आपसे संयुक्त करें ॥ ५ ॥

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६॥

तरी । मन्द्रासु । प्रऽयक्षु । वसवः । च । अतिष्ठन् । वसुऽधातरः । च६

हर्षमें भरने वाले देवसंगतिक यज्ञोंमें तारक अग्निदेव तथा धनके पोषक वसु स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७॥

द्वारः । देवीः । अनु । अस्य । विश्वे । व्रतम् । रक्षन्ति । विश्वहा ७

इन अग्निदेवकी प्रकाशमान (द्वार) लपटें इस यजमानके व्रतकी अनेक प्रकारसे रक्षा करती हैं ॥ ७ ॥

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ८ ॥

उरुऽव्यचसा । अग्नेः । धाम्ना । पत्यमाने इति ।
आ । सुस्वयन्ती इति । यजते इति । उपाके इति । उषसानक्ता । इमम् । यज्ञम् । अवताम् । अध्वरम् । नः ॥ ८ ॥

महत्त्वमय अनेक प्रकारके गमनसे सम्पन्न अग्निके तेजसे ऐश्वर्य करती हुई अग्निकी दीप्ति और आहुतिकी दीप्ति सुन्दरतासे मुसकुराती हुईसी यज्ञकी सम्पादिका हैं, यह परस्परका आश्रय लेनेसे मिल करके दिपती हैं वे हमारे इस हिंसारहित यज्ञकी भली प्रकार रक्षा करें ॥ ८ ॥

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥ ९ ॥

दैवाः । होतारः । ऊर्ध्वम् । अध्वरम् । नः । अग्नेः । जिह्वया । अभि । गृणत । गृणत । नः । सुऽइष्टये ।

तिस्रः । देवीः । बर्हिः । आ । इदम् । सदन्ताम् । इडा । सरस्वती । मही । भारती । गृणाना ॥ ९ ॥

हे देवसंबंधी होताओं! हमारे इस उच्च यज्ञकी अग्निकी जिह्वासे प्रशंसा करो, हमारे कल्याणके लिये प्रशंसा करो। पृथ्वी, अग्निकी कांति और सरस्वती ये तीनों देवियें प्रशंसा करती हुई इस कुशा पर स्थित हों ॥ ९ ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥ १० ॥

तत् । नः । तुरीपम् । अत्ऽभुतम् । पुरुऽक्षु ॥ देव । त्वष्टः । रायः । पोषम् । वि । स्य । नाभिम् । अस्य ॥ १० ॥

हे त्वष्टा देवता! आप हमको जल बहुतसा अन्न और अद्भुत धनकी पुष्टि (दीजिये) और इस (धनकी थैली) की नाभि (गाँठ) को खोल दीजिये ॥ १० ॥

वनस्पतेव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥ ११ ॥

वनस्पते । अव । सृज । रराणः ॥ त्मना । देवेभ्यः । अग्निः । हव्यम् । शमिता । स्वदयतु ॥ ११ ॥

हे वनस्पते! शब्द करते हुए आप अपनेको छोड़िये, शमिता अग्निदेव देवताओंके लिये हविको स्वादिष्ट बनावें ॥ ११ ॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ १२ ॥

अग्ने॑ । स्वाहा॑ । कृ॒णु॒हि॒ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ ॥ इन्द्रा॑य । य॒ज्ञम् । विश्वे॑ ।
दे॒वाः । ह॒विः । इ॒दम् । जु॒ष॒न्ता॒म् ॥ १२ ॥

इति षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप इंद्रके लिये यज्ञको (सम्पन्न) करिये, सम्पूर्ण देवता इस हविका सेवन करें। यह आहुति स्वाहुत हो १२

पञ्चम काण्डके छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१६६)॥

सर्वसंपत्कर्मसु "नव प्राणान्" इति सूक्तस्य विनियोगः ॥

तथा आयुष्कामस्य हिरण्यमणिबन्धने अस्य विनियोगः ॥ एतदुभयविस्तरः "यदाबध्नन्" इति सूक्ते [१. ३५] द्रष्टव्यः ॥

उपनयनकर्मण्यपि आयुष्कामस्य ब्रह्मचारिण आज्यहोमे एतद् विनियुक्तम् अस्य आयुष्यगणे पाठात्। सूत्रितं हि। "मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्" इति [कौ० ७. ८]॥

तथा अनेन सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामस्य माणवकस्य सुवर्णरजतलोह[मयानि]त्रीणि शकलान्येकत्र कृत्वा नवशालाकं मणिं त्रिवृतं कृत्वा संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति इति केशवः। तद् उक्तं कौशिकेन। "उपनयनम्" [कौ० ७. ६] प्रक्रम्य "नव प्राणान् इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ७. ६]

तथा "वैष्णवीम् अन्नकामस्य अन्नक्षये च" इति [न० क० १७] विहितायां वैष्णव्याख्यायां महाशान्तौ त्रिवृन्मणिबन्धनेपि अस्य सूक्तस्य विनियोगः। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "नव प्राणान् इति त्रिवृतं वैष्णव्याम्" इति [न० क० १६]॥

सम्पूर्ण सम्पत्ति जनककर्मोंमें 'नव प्राणान्' इस सूक्तका विनियोग होता है।

तथा आयु चाहने वालेके सुवर्णकी मणिको बाँधनेमें भी इसका विनियोग होता है। इन दोनोंका विस्तार 'यदाबध्नन्' इस प्रथम काण्डके पैंतीसवें सूक्तमें देखना चाहिये।

१४७०

इस सूक्तका आयुष्यगणमें पाठ है अतः उपनयन कर्ममें आयु चाहने वाले ब्रह्मचारीके घृतहोममें इसका विनियोग किया जाता है। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-“मेधाजननायुष्यैर्जुहुयात्” (कौशिकसूत्र ७ । ८)॥

तथा उपनयनके अनन्तर इस सूक्तसे आयु चाहने वाले ब्रह्मचारीके सोना चाँदी और लोहेके तीन टुकड़ोंको एक स्थानमें करके नौ शलाका वाली मणिको तिहरी करके सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि-“उपनयनम्” (कौशिकसूत्र ७ । ६) प्रक्रम्य “नव प्राणम्” इति मन्त्रोक्तम् (कौशिकसूत्र ७ । ६)॥

तथा “वैष्णवीं अन्नकामस्य अन्नक्षये च-अन्नक्षयमें अन्नकी कामना वालेके लिये वैष्णवी शान्तिको करे” (नक्षत्रकल्प १७) से विहित वैष्णवी नाम वाली महाशान्तिके त्रिवृन्मणिबन्धनमें भी इस सूक्तका विनियोग किया जाता है। इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि-“नव प्राणान् इति त्रिवृतं वैष्णव्याम्” (नक्षत्रकल्प १६)॥

नव॑ प्रा॒णान्न॒वभि॒ः सं मि॑मीते दीर्घायु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय॑
हरि॑ते॒ त्रीणि॑ रज॒ते त्रीण्यय॑सि॒ त्रीणि॒ तप॒साऽवि॑ष्ठितानि १

नव॑ । प्रा॒णान् । न॒वऽभिः॑ । सम् । मि॒मी॒ते॒ । दी॒र्घा॒यु॒ऽत्वाय॑ । श॒त-
ऽशा॑रदाय ।
हरि॑ते । त्रीणि॑ । र॒ज॒ते । त्रीणि॑ । अय॑सि । त्रीणि॑ । तप॑सा ।
आऽवि॑स्थितानि ॥ १ ॥

नव प्राणोंको सौवर्ष तककी दीर्घायु पानेके लिये नौसे मिलाते

हैं, इसमें तपसे पूर्ण तीन लटें सुवर्णकी हैं, तीन चाँदीकी हैं और तीन लोहेकी हैं ॥ १ ॥

अ॒ग्निः सूर्य॑श्च॒न्द्रमा॒ भूमि॒रापो॒ द्यौर॒न्तरि॑क्षं॒ प्र॒दिशो॒ दि॑शश्च ।
आ॒र्त॒वा ऋ॒तुभिः॑ संवि॒दा॒ना अ॒नेन॑ मा त्रि॒वृता॑ पारयन्तु

अ॒ग्निः । सूर्यः॑ । च॒न्द्रमाः॑ । भूमिः॑ । आपः॑ । द्यौः॑ । अ॒न्तरि॑क्षम् । प्र॒ऽदिशः॑ । दिशः॑ । च॒ ।

आ॒र्त॒वाः । ऋ॒तुऽभिः॑ । स॒म्ऽवि॒दा॒नाः । अ॒नेन॑ । मा॒ । त्रि॒ऽवृता॑ । पा॒र॒य॒न्तु॒ ॥ २ ॥

इस त्रिवृत् कर्मसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा भूमि जल द्यौ अन्तरिक्ष दिशा और प्रदिशायें ऋतुके अंश और ऋतुओंके साथ प्राप्त हो कर मुझे पार लगावें ॥ २ ॥

त्र॒यः॒ पोषा॑स्त्रि॒वृति॑ श्रयन्ताम॒नक्तु॑ पू॒षा पय॑सा घृ॒तेन॑ ।
अन्न॑स्य भू॒मा पुरु॑षस्य भू॒मा भू॒मा प॒शूनां॑ त इ॒ह श्र॑यन्ताम् ॥ ३ ॥

त्रयः॑ । पोषाः॑ । त्रि॒ऽवृति॑ । श्र॒य॒न्ता॒म् । अ॒नक्तु॑ । पू॒षा । पय॑सा । घृ॒तेन॑ ।

अन्न॑स्य । भू॒मा । पुरु॑षस्य । भू॒मा । भू॒मा । प॒शू॒नाम् । ते । इ॒ह । श्र॒य॒न्ता॒म् ॥ ३ ॥

इस त्रिवृत्में तीन पुष्टियें आश्रय लेंय, पूजा देवता दुग्ध घृतसे इस कर्मको शुद्ध करे। अन्नकी बहुतायत, पुरुषोंकी बहुतायत और जो पशुओंका आधिक्य है, वह यहाँ आश्रय लेय ॥ ३ ॥

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु

इमम् । आदित्याः । वसुना । सम् । उक्षत । इमम् । अग्ने । वर्धय । वावृधानः ।
इमम् । इन्द्र । सम् । सृज । वीर्येण । अस्मिन् । त्रिऽवृत् । श्रयताम् । पोषयिष्णु ।

आदित्य देवता इस बालकको धनसे पूर्ण करें, हे अग्ने! बढ़ते हुए आप इसको भी बढ़ाइये। हे इन्द्रदेव! आप इसको वीर्यसे युक्त करिये। पोषण करनेवाला त्रिवृत् इसमें आश्रय लेय ॥४॥

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्

भूमिः । त्वा । पातु । हरितेन । विश्वऽभृत् । अग्निः । पिपर्तु । अयसा । सऽजोषाः ।
वीरुत्ऽभिः । ते । अर्जुनम् । सम्ऽविदानम् । दक्षम् । दधातु । सुऽमनस्यमानम् ॥ ५ ॥

भूमि सुवर्णसे तेरी रक्षा करे। संसार भरका भरण करने वाले अग्निदेव तुझसे प्रेम कर लोहेसे तेरा पालन करें और लताओं

से प्राप्त होने वाले बलके द्वारा तुझमें शुभ संकल्पमय बलको स्थापित करे ॥ ५ ॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव
सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृद-
स्त्वायुषे ॥ ६ ॥

त्रेधा । जातम् । जन्मना । इदम् । हिरण्यम् । अग्नेः । एकम् ।
प्रियऽतमम् । बभूव । सोमस्य । एकम् । हिंसितस्य । परा ।
अपतत् ।
अपाम् । एकम् । वेधसाम् । रेतः । आहुः । तत् । ते । हिरण्यम् ।
त्रिऽवृत् । अस्तु । आयुषे ॥ ६ ॥

यह सुवर्ण तीन प्रकारके जन्मोंमे उत्पन्न हुआ है इसका एक जन्म अग्निको परमप्रिय हुआ है, एकवार यह सोमके पीड़ित करने पर गिरा है (रसायनसे हुआ है) एकको वेधा जलोंका वीर्यरूप कहते हैं, हे ब्रह्मचारिन् ! वह सुवर्ण तेरी आयुके लिये त्रिवृत् (तिलड़ा) हो ॥ ६ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेकरम् ॥ ७ ॥

त्रिऽआयुषम् । जमत्ऽअग्नेः । कश्यपस्य । त्रिऽआयुषम् ।
त्रेधा । अमृतस्य । चक्षणम् । त्रीणि । आयूंषि । ते । अकरम् ७

महर्षि जमदग्निकी बालकपन तरुणत्व और वृद्धत्व रूप तीन आयु हैं और महर्षि कश्यपकी बालकपन, तरुणता और वृद्धत्व-रूप तीन आयु हैं, वह अमृतके निदर्शनरूप हैं, ऐसी ही तीन आयुएँ मैं तेरे लिये करता हूँ ॥ ७ ॥

त्रय॑ः सुप॒र्णास्त्रि॒वृ॒ता यदाय॑न्नेकाक्ष॒रम॑भिस॒म्भूय॑ श॒क्राः।
प्रत्यौ॑ह॒न्मृत्युम॒मृते॑न सा॒कम॑न्त॒र्दधा॑ना दुरि॒तानि॒
विश्वा॑ ॥ ८ ॥

त्रय॑ः । सु॒ऽप॒र्णाः । त्रि॒ऽवृता॑ । यत् । आय॑न् । ए॒क॒ऽअ॒क्ष॒रम् ।
अ॒भि॒ऽसं॒भूय॑ । श॒क्राः ।
प्रति॑ । औ॒ह॒न् । मृ॒त्युम् । अ॒मृते॑न । सा॒कम् । अ॒न्त॒ःऽदधा॑नाः ।
दु॒ःऽइ॒तानि॑ । विश्वा॑ ॥ ८ ॥

जब तीन समर्थ सुपर्ण एकाक्षर पर त्रिवृत्‌रूपसे आये तब संपूर्ण पापोंका अन्तर्धान कर अमृतके द्वारा मृत्युको वितर्कित करतेहुए ॥ ८ ॥

दि॒वस्त्वा॑ पातु॒ हरि॑तं॒ मध्या॑त् त्वा पा॒त्वर्जु॑नम् ।
भूम्या॑ अय॒स्मय॑ं पातु॒ प्रागा॑द् देवपु॒रा अय॒म् ॥ ९ ॥

दि॒वः । त्वा॒ । पा॒तु॒ । हरि॑तम् । मध्या॑त् । त्वा॒ । पा॒तु॒ । अर्जु॑नम् ।
भूम्या॑ः । अ॒य॒स्मय॑म् । पा॒तु॒ । प्र । अ॒गा॒त् । दे॒व॒ऽपु॒राः । अ॒यम् ९

सुवर्ण तेरी द्युलोकसे रक्षा करे, श्वेत वर्णकी चाँदी मध्यलोकसे तेरी रक्षा करे भूमिसे यह लोहमय तार रक्षा करे, यह देवताओंकी पुरियोंको प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं विभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥ १० ॥

इमाः । तिस्रः । देवऽपुराः । ताः । त्वा । रक्षन्तु । सर्वतः ।
ताः । त्वम् । विभ्रत् । वर्चस्वी । उत्तरः । द्विषताम् । भव ॥१०॥

यह देवताओंकी तीन पुरियें हैं यह चारों ओरसे तेरी रक्षा करें, इनको धारण करता हुआ तू वर्चस्वी हो और शत्रुओंसे श्रेष्ठ हो

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥ ११ ॥

पुरम् । देवानाम् । अमृतम् । हिरण्यम् । यः । आऽबेधे । प्रथमः ।
देवः । अग्रे ।
तस्मै । नमः । दश । प्राचीः । कृणोमि । अनु । मन्यताम् ।
त्रिऽवृत् । आऽबधे । मे ॥ ११ ॥

मुख्य देवताने जिस सुवर्णरूपी अमृतको देवताओंके सामने बाँधा था । दश श्रेष्ठ नमस्कारोंको करता हूँ, वह देवता इस त्रिवृत्के बाँधनेमें मुझे अनुमति दें ॥ ११ ॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः । अहर्जातस्य
यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥ १२ ॥

आ । त्वा । चृततु । अर्यमा । आ । पूषा । आ । बृहस्पति ॥ अहःऽ-

जातस्य । यत् । नाम॑ । तेन॑ । त्वा॒ । अति॑ । चृ॒ता॒म॒सि॒ ॥१२॥

अर्यमा पूषा और बृहस्पति देवता तुझको भलीप्रकार ग्रंथित करें, प्रतिदिन उत्पन्न होने वालेका जो नाम है, उससे हम तुझ को बाँधते हैं ॥ १२ ॥

ऋ॒तुभि॑ष्ट्वार्त॒वैरायु॑षे॒ वर्च॑से त्वा सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॒
सं ह॑नु कृण्मसि ॥ १३ ॥

ऋ॒तुऽभि॑ः । त्वा॒ । आ॒र्त॒वैः । आयु॑षे । वर्च॑से । त्वा॒ ॥ स॒म्ऽव॒त्स॒रस्य॑ । तेज॑सा । तेन॑ । सम्ऽह॑नु । कृ॒ण्म॒सि॒ ॥ १३ ॥

हे ब्रह्मचारिन् ! मैं तुझको आयु और तेज पानेके लिये ऋतुओं से, ऋतुओंके अंश महीनोंसे और सम्वत्सरके तेज (सूर्य) से ठोड़ी (सा) संयुक्त करता हूँ ॥ १३ ॥

घृ॒तादुल्लु॑प्तं॒ मधु॑ना॒ सम॑क्तं भूमि॒दृं॑हमच्यु॑तं पारयि॒ष्णु
भि॒न्दत् स॒पत्ना॒नध॑रांश्च कृ॒ण्वदा मा॑ रोह मह॒ते सौभ॑गाय

घृ॒तात् । उत्ऽलु॑प्तम् । मधु॑ना । सम्ऽअ॑क्तम् । भू॒मि॒ऽदृं॒ह॑म् । अच्यु॑तम् । पा॒र॒यि॒ष्णु ।

भि॒न्दत् । स॒ऽप॑त्नान् । अध॑रान् । च॒ । कृ॒ण्वत् । आ । मा॒ । रो॒ह । म॒ह॒ते । सौभ॑गाय ॥ १४ ॥

इति षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

घृतसे लुप्त, मधुसे सींचा हुआ, भूमिकी समान दृढ़ अच्युत और पार लगाने वाला शत्रुओंको भेदता हुआ और नीचा

बनाता हुआ बड़ा भारी सौभाग्य प्राप्त करानेके लिये मुझ पर स्थित हो ॥ १४ ॥

पञ्चम काण्डके छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१७०) ॥

"पुरस्ताद् युक्तः" इति सूक्तस्य चातनगणे पाठाद् यत्रयत्र चातनगणस्य विनियोगस्तत्रतत्रास्य सूक्तस्य विनियोगः । विस्तरस्तु "स्तुवानम् अग्ने" इति [१. ७] सूक्ते कृतः ॥

"पुरस्ताद् युक्तः" इस सूक्तका चातनगणमें पाठ है, अतः जहाँ २ चातनगणका विनियोग होगा, तहाँ २ इसका भी विनियोग होगा । इसका अधिक विस्तार प्रथम काण्डके सप्तम सूक्त "स्तुवानम् अग्ने" में देखना चाहिये ।

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम

पुरस्तात् । युक्तः । वह । जातऽवेदः । अग्ने । विद्धि । क्रियमाणम् । यथा । इदम् ।
त्वम् । भिषक् । भेषजस्य । असि । कर्ता । त्वया । गाम् । अश्वम् । पुरुषम् । सनेम ॥ १ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप सब कर्मोंमें पहिले युक्त होते हैं अतः इस कार्यभारको उठाइये इस वर्तमानमें होते हुए कार्यको जानिये आप वैद्य हैं और (भूतोच्चाटन आदिकी) औषधि करने वाले हैं आपके द्वारा (भूत आदिकी बाधा दूर होने पर) हम गौ घोड़े और पुरुषोंको पावें ॥ १ ॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवै सह संविदानः ।

यो नो॑ दि॒देव॑ यत॒मो ज॒घास॒ यथा॒ सो अ॒स्य प॑रि॒-
धिष्पता॑ति ॥ २ ॥

तथा॑। तत्। अ॒ग्ने॒। कृ॒णु। जा॒त॒ऽवे॒दः॒। वि॒श्वे॑भिः। दे॒वैः। स॒ह।
स॒म्ऽवि॒दा॒नः।

यः। न॒ः। दि॒देव॑। य॒त॒मः। ज॒घास॑। यथा॑। सः। अ॒स्य। प॒रि॒ऽधिः।
पता॑ति ॥ २ ॥

हे जातवेदा अग्ने! आप सकल देवताओंके साथ मिल कर ऐसा करिये, कि–जो हमसे क्रीड़ा कर चुका है वा जो कोई हम को खा (ने की इच्छासे हमारे ऊपर भूतावेश कर) चुका है उसका परकोटा गिर जावे ॥ २ ॥

य॒था सो अ॒स्य परि॒धिष्पता॑ति॒ त॒था तद॑ग्ने कृणु जातवेदः
विश्वे॑भिर्दे॒वैः स॒ह सं॑वि॒दा॒नः ॥ ३ ॥

यथा॑। सः। अ॒स्य। प॒रि॒ऽधिः। पता॑ति। तथा॑। तत्। अ॒ग्ने॒।
कृ॒णु॒। जा॒त॒ऽवे॒दः॒।
विश्वे॑भिः। दे॒वैः। स॒ह। स॒म्ऽवि॒दा॒नः ॥ ३ ॥

हे जातवेदा अग्ने! जिस प्रकार उसका परकोटा गिरे तिस प्रकार सब देवताओंसे सम्मिलित होकर आप करिये ॥ ३ ॥

अ॒द्यौ॒ ३॑ नि वि॑ध्य॒ हृद॑यं॒ नि वि॑ध्य जि॒ह्वां नि तृ॑न्द्धि॒
प्र द॒तो मृ॑णीहि।
पि॒शा॒चो अ॒स्य य॑त॒मो ज॒घासाग्ने॑ यवि॒ष्ठ प्रति॒ तं शृ॑णीहि

बनाता हुआ बड़ा भारी सौभाग्य प्राप्त करानेके लिये मुझ पर स्थित हो ॥ १४ ॥

पञ्चम काण्डके छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१७०) ॥

"पुरस्ताद् युक्तः" इति सूक्तस्य चातनगणे पाठाद् यत्रयत्र चातनगणस्य विनियोगस्तत्रतत्रास्य सूक्तस्य विनियोगः । विस्तरस्तु "स्तुवानम् अग्ने" इति [१. ७] सूक्ते कृतः ॥

"पुरस्ताद् युक्तः" इस सूक्तका चातनगणमें पाठ है, अतः जहाँ २ चातनगणका विनियोग होगा, तहाँ २ इसका भी विनियोग होगा । इसका अधिक विस्तार प्रथम काण्डके सप्तम सूक्त "स्तुवानम् अग्ने" में देखना चाहिये ।

पु॒रस्ता॑द् यु॒क्तो व॑ह जातवे॒दो॑ग्ने वि॒द्धि क्रि॒यमा॑णं॒ यथे॒दम्
त्वं भि॒षग् भे॑ष॒जस्या॑सि क॒र्ता त्व॒या गाम॑श्वं॒ पुरु॑षं सनेम

पु॒रस्ता॑त् । यु॒क्तः । व॒ह॒ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ । अग्ने॑ । वि॒द्धि । क्रि॒यमा॑णम् । यथा॑ । इ॒दम् ।

त्वम् । भि॒षक् । भे॒ष॒जस्य॑ । अ॒सि॒ । क॒र्ता । त्वया॑ । गाम् । अश्व॑म् । पुरु॑षम् । स॒ने॒म॒ ॥ १ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप सब कर्मोंमें पहिले युक्त होते हैं अतः इस कार्यभारको उठाइये इस वर्तमानमें होते हुए कार्यको जानिये आप वैद्य हैं और (भूतोच्चाटन आदिकी) औषधि करने वाले हैं आपके द्वारा (भूत आदिकी बाधा दूर होने पर) हम गौ घोड़े और पुरुषोंको पावें ॥ १ ॥

त॒था तद॑ग्ने कृणु जा॒तवे॑दो॒ विश्वे॑भिर्दे॒वैः स॒ह सं॑वि॒दा॒नः ।

यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परि-
धिष्पताति ॥ २ ॥

तथा । तत् । अग्ने । कृणु । जातऽवेदः । विश्वेभिः । देवैः । सह ।
सम्ऽविदानः ।

यः । नः । दिदेव । यतमः । जघास । यथा । सः । अस्य । परिऽधिः ।
पताति ॥ २ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप सकल देवताओंके साथ मिल कर ऐसा करिये, कि–जो हमसे क्रीड़ा कर चुका है वा जो कोई हम को खा (ने की इच्छासे हमारे ऊपर भूतावेश कर) चुका है उसका परकोटा गिर जावे ॥ २ ॥

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३ ॥

यथा । सः । अस्य । परिऽधिः । पताति । तथा । तत् । अग्ने ।
कृणु । जातऽवेदः ।

विश्वेभिः । देवैः । सह । सम्ऽविदानः ॥ ३ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! जिस प्रकार उसका परकोटा गिरे तिस प्रकार सब देवताओंसे सम्मिलित होकर आप करिये ॥ ३ ॥

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि
प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि

अ॒क्ष्यौ॑ । नि । वि॒ध्य॒ । हृद॑यम् । नि । वि॒ध्य॒ । जि॒ह्वाम् । नि ।
तृ॒न्द्धि॒ । प्र । द॒तः । मृ॒णी॒हि॒ ।

पि॒शा॒चः । अ॒स्य । य॒त॒मः । ज॒घास॑ । अग्ने॑ । य॒वि॒ष्ठ॒ । प्रति॑ । तम् ।
शृ॒णी॒हि॒ ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! जो पिशाच इसका भक्षण करना चाह चुका है, उसकी आँखोंको आप बींध डालिये, हृदयको फोड़ दीजिये, जिह्वाको काट दीजिये और दाँतोंको तोड़ दीजिये, हे यविष्ठ ! इस प्रकार करके आप उसका संहार करिये ॥ ४ ॥

यद॑स्य हृ॒तं विहृ॑तं॒ यत् परा॑भृतमा॒त्मनो॑ ज॒ग्धं य॑त॒मत्
पि॑शा॒चैः ।
तद॑ग्ने वि॒द्वान् पुन॒रा भ॑र॒ त्वं शरी॑रे मां॒सम॒सुमेर॑यामः

यत् । अ॒स्य । हृ॒तम् । वि॑ऽहृतम् । यत् । परा॑ऽभृतम् । आ॒त्मन॑ः ।
ज॒ग्धम् । य॒त॒मत् । पि॒शा॒चैः ।

तत् । अ॒ग्ने॒ । वि॒द्वान् । पुन॑ः । आ । भ॒र॒ । त्वम् । शरी॑रे ।
मां॒सम् । असु॑म् । आ । ई॒र॒या॒मः॒ ॥ ५ ॥

पिशाचोंने इसका जो (ज्ञान) हर लिया है, जो (मांस) विशेषरूपसे हर लिया है, जो खा लिया है, जो हटा लिया है, हे विद्वान् अग्ने ! उस मांस और ज्ञानको आप फिर इसके शरीरमें स्थापित करिये, हम मन्त्र शक्तिसे इसके शरीरमें प्राणोंको प्रेरित करते हैं ॥ ५ ॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचा अशने
ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु

आमे । सुऽपक्वे । शबले । विऽपक्वे । यः । मा । पिशाचः ।
अशने । ददम्भ ।
तत् । आत्मना । प्रऽजया । पिशाचाः । वि । यातयन्ताम् । अगदः ।
अयम् । अस्तु ॥ ६ ॥

जो पिशाच कच्चे पात्रमें पक्के चितकबरे पात्रमें और विशेषरूपसे पके हुए भोजनमें वा कच्चे भोजनमें (प्रवेश करके) हमें नष्ट करनेका विचार कर चुका है। ऐसे पिशाच उसी रूपसे अपने आप और अपनी प्रजाके साथ विशेषरूपसे यातना भोगें और यह पुरुष नीरोग होजाय ॥ ६ ॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३
यः । तदा० ॥ ७ ॥

क्षीरे । मा । मन्थे । यतमः । ददम्भ । अकृष्टऽपच्ये । अशने
धान्ये । यः ॥० ॥ ७ ॥

जो पिशाच दुग्धमें मंथमें और खेतीसे पके हुए अन्नमें प्रवेश करके हमको नष्ट करनेका विचार कर चुका है, वह पिशाच इसी रूपसे अपने आप और अपनी प्रजाके साथ विशेषरूपसे यातना भोगे ॥ ७ ॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने
शयानम् । तद्वा० ॥ ८ ॥

अपाम् । मा । पाने । यतमः । ददम्भ । क्रव्यऽअत् । यातूनाम् ।
शयने । शयानम्० ॥ ८ ॥

जिस मांसभक्षी पिशाचने जलके पीनेके अवसर पर, वा यातना भोगनेके अवसर (यात्राके समय) पर (भूमिरूप) शय्या पर शयन करनेमें पीड़ित किया है, वह इसी रूपसे अपने आप और अपनी प्रजाके साथ पीड़ा भोगे ॥ ८ ॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने
शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३य-
मस्तु ॥ ९ ॥

दिवा । मा । नक्तम् । । ददम्भ । क्रव्यऽअत् । यातूनाम् ।
शयने । शयानम् ।
तत् । आत्मना । प्रऽजया । पिशाचाः । वि । यातयन्ताम् । अगदः ।
अयम् । अस्तु ॥ ९ ॥

जिस मांसभक्षक पिशाचने दिन रातमें, वा यातना भोगनेके अवसर (यात्राके समय) पर (भूमिरूप) शय्या पर शयन करनेमें पीड़ित किया है, वह इसी रूपसे अपने आप और अपनी प्रजाके साथ पीड़ा भोगे ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।

तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो
अस्य धृष्णुः ॥ १० ॥

क्रव्यऽअदम् । अग्ने । रुधिरम् । पिशाचम् । मनःऽहनम् । जहि ।
जातऽवेदः ।

तम् । इन्द्रः । वाजी । वज्रेण । हन्तु । छिनत्तु । सोमः । शिरः ।
अस्य । धृष्णुः ॥ १० ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप मांस भक्षी रुधिर-(भक्षी) मनका नाश करने वाले पिशाचको मारिये, घोड़ों वाले इन्द्र उसको वज्र से मारें और धर्षणशील सोम इसके शिरको काट डालें ॥१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत
दैव्यायाः ॥ ११ ॥

सनात् । अग्ने । मृणसि । यातुऽधानान् । न । त्वा । रक्षांसि । पृतनासु । जिग्युः ।

सहऽमूरान् । अनु । दह । क्रव्यऽअदः । मा । ते । हेत्याः । मुक्षत ।
दैव्यायाः ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! आप चिरकालसे यातुधानोंका मर्दन करते रहते हैं, राक्षस संग्रामोंमें आपको नहीं जीत सकते हैं, इन मांसभक्षकोंको आप इनकी मूर्छाशक्तिके साथ भस्म करिये, यह आपके दिव्य आयुधसे न छूट सकें ॥ ११ ॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥

सम्ऽआहर । जातऽवेदः । यत् । हृतम् । यत् । पराऽभृतम् ।
गात्राणि । अस्य । वर्धन्ताम् । अंशुःऽइव । आ । प्यायताम् ।
अयम् ॥ १२ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! इस पुरुषका जो ज्ञान ग्रस्त हुआ है और जो मांस हटाया गया है, उसको आप लाइये । इसके अङ्ग प्रत्यङ्ग बढ़ें और यह सोमाङ्कुरकी समान पुष्ट हो ॥ १२ ॥

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥ १३ ॥

सोमस्यऽइव । जातऽवेदः । अंशुः । आ । प्यायताम् । अयम् ।
अग्ने । विऽरप्शिनम् । मेध्यम् । अयक्ष्मम् । कृणु । जीवतु ॥१३॥

जैसे सोमलताका अङ्कुर पुष्ट होता है, हे अग्ने ! इसी प्रकार यह पुरुष पुष्ट हो, हे अग्ने ! इस महागुणवान् पवित्र पुरुषको आप रोगरहित करिये, यह जीवित रहे ॥ १३ ॥

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥

एताः । ते । अग्ने । सम्ऽइधः । पिशाचऽजम्भनीः ।
ताः । त्वम् । जुषस्व । प्रति । च । एनाः । गृहाण । जातऽवेदः १४

हे अग्ने ! यह पिशाचोंका संहार करने वालीं आपकी समिधायें हैं, हे जातवेदा अग्ने ! आप इनसे प्रसन्न हूजिये और इनको ग्रहण करिये ॥ १४ ॥

ता॒र्ष्टा॒घीर॑ग्ने स॒मिध॒ः प्रति॑ गृह्णाह्य॒र्चिषा॑ ।
जहा॑तु क्र॒व्याद्रू॒पं यो अ॑स्य मा॒ंसं जिही॑र्षति ॥१५॥

ता॒र्ष्ट॒ऽअ॒घीः । अ॒ग्ने॒ । स॒म्ऽइध॑ः । प्रति॑ । गृ॒ह्णा॒हि॒ । अ॒र्चिषा॑ ।
जहा॑तु । क्र॒व्य॒ऽअत् । रू॒पम् । यः । अ॒स्य॒ । मा॒ंसम् । जिही॑र्षति १५

इति षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आप अपनी लपटसे इन तृषाको शान्त करने वालीं समिधाओंको ग्रहण करिये, मांसभक्षी पिशाच, कि–जो इसके मांसका हरण करना चाहता है, वह अपने रूपको छोड़ देवे १५

पञ्चम काण्डके छठे अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१७१) ॥

“आवतस्ते” इति सूक्तस्य अंहोलिङ्गगणे पाठात् तस्य गणस्य यत्रयत्र सर्वभैषज्यादिषु विनिगोग उक्तस्तत्र सर्वत्र विनियोगोनुसंधेयः । अस्य विस्तरस्तु “अक्षीभ्याम्” इत्यत्र [२. ३३] उक्तः ॥

तथा अनेन सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामं माणवकम् अभिमृश्य अभिमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । “उत देवः [४. १३] आवतस्ते” [५. ३०] इत्यादि “इत्यभिमन्त्रयते ब्राह्मणोक्तम्” इत्यन्तम् [कौ० ७. ६] ॥

तथा ऋषिहस्ते माणवकशरीराभिमन्त्रणेपि एतत् सूक्तम् । सूत्रितं हि । “उत देवाः [४. १३] आवतस्ते” [५. ३०] इत्यादि “इत्यभिमन्त्रयते” इत्यन्तम् [कौ० ७. ६]॥

तथा अस्य सूक्तस्य पिष्टरात्रीकल्पे सर्षपाभिमन्त्रणानन्तरं जपे

विनियोगः। तद् उक्तं परिशिष्टे। "अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्यास्यामः" इति प्रक्रम्य "सर्षपान् अभिमन्त्र्य आवतस्ते इति जपन्" इति [प० ६]॥

"आवतस्ते" इस सूक्तका अंहोलिंगगणमें पाठ है, अतः इस गणका सर्व प्रकारकी चिकित्साओंमें जहाँ २ विनियोग होगा तहाँ २ सर्वत्र इसका भी विनियोग होगा। इसका विस्तार 'अक्षीभ्याम्' इस द्वितीयकाण्डके तैंतीसवें सूक्तमें देखना चाहिये।

तथा उपनयनके अनन्तर बालकका स्पर्श करके इस सूक्तसे अनुमन्त्रण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"उत देवाः (४। १३) आवतस्ते" (५। ३०) इत्यादि "इत्यभिमन्त्रयते" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ७। ८)।

तथा इस सूक्तका ऋषिहस्तसे बालकके शरीरका स्पर्श करने पर भी पाठ किया जाता है। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"उत देवाः (४। १३) आवतस्ते" (५। ३०) इत्यादि "इत्यभिमन्त्रयते" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ७। ८)॥

तथा इस सूक्तका पिष्टरात्रिकल्पमें सरसोंके अभिमन्त्रणके अनन्तर जप करनेमें भी विनियोग होता है। इसी बातको परिशिष्टमें कहा है, कि-"अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्यास्यामः" इति प्रक्रम्य "सर्षपान् अभिमंत्र्य आवतस्ते जपन्" इति (अथर्वपरिशिष्ट ६)॥

आ॒वत॑स्त आ॒वतः॑ परा॒वत॑स्त आ॒वतः॑ ।
इ॒हैव भ॑व॒ मा नु गा॒ मा पूर्वा॒ननु गाः पि॒तॄनसुं॑
बध्नामि ते दृ॒ढम् ॥ १ ॥

आ॒ऽवतः॑ । ते॒ । आ॒ऽवतः॑ । प॒रा॒ऽवतः॑ । ते॒ । आ॒ऽवतः॑ ।

१४८६.

इ॒ह । ए॒व । भ॒व॒ । मा । नु । गाः॒ । मा । पूर्वा॑न् । अनु॑ । गाः॒ ।
पि॒तॄन् । असु॑म् । ब॒ध्ना॒मि॒ । ते॒ । दृ॒ढम् ॥ १ ॥

तेरे समीपके देशसे और तेरे समीपसे तेरे दूरके देशसे और तेरे पाससे तेरे प्राणोंको दृढ़ रीतिसे बाँधता हूँ तू (मरे हुए) पूर्व पितरोंका (अभीसे) अनुकरण न कर यहाँ ही रह ॥ १ ॥

यत् त्वा॑भिचे॒रुः पुरु॑षः॒ स्वो यदर॑णो॒ जनः॑ ।
उ॒न्मो॒च॒न॒प्र॒मो॒च॒ने उ॒भे वा॒चा व॑दामि ते ॥ २ ॥

यत् । त्वा॒ । अ॒भि॒ऽचे॒रुः । पुरु॑षः । स्वः । यत् । अर॑णः । जनः॑ ।
उ॒न्मो॒च॒न॒प्र॒मो॒च॒ने इत्यु॑न्मोचनऽप्रमो॒च॒ने । उ॒भे इति॑ । वा॒चा । व॒दा॒मि॒ ।
ते॒ ॥ २ ॥

जिस पितृऋणको दूर न करसकने वाले अपने पुरुषने तुझ पर अभिचार किया है, उससे छूटना और विशेषरूपसे छूटना इन दोनों बातोंको मैं मन्त्रशक्तिसे कहता हूँ ॥ २ ॥

यद् दु॒द्रोहि॑थ शेपि॒षे स्त्रि॒यै पुं॒से अचि॑त्त्या । उ॒न्मो॒० ३

यत् । दु॒द्रोहि॑थ । शे॒पि॒षे । स्त्रि॒यै । पुं॒से । अचि॑त्त्या ॥० ॥ ३ ॥

जिस तूने स्त्री वा पुरुषके विषयमें मोहवश द्रोह वा शाप किया है (और उन द्रोह वा शापके चिन्तवनके कारण तू रुग्ण होगया है) उससे मुक्त करने और विशेषरूपसे मुक्त करनेको मैं तुझसे वाणीके द्वारा कहता हूँ ॥ ३ ॥

यदेन॑सो मा॒तृकृ॑ता॒च्छेषे॑ पि॒तृकृ॑ता॒च्च यत् ।
उ॒न्मो॒च॒न॒प्र॒मो॒च॒ने उ॒भे वा॒चा व॑दामि ते ॥ ४ ॥

यत्। एन॑सः। मा॒तृ॒ऽकृ॑तात्। शेषे॑। पि॒तृ॒ऽकृ॑तात्। च॒। यत्।
उ॒न्मो॒च॒न॒प्र॒मो॑च॒ने इत्यु॑न्मोचनऽप्रमोच॒ने। उ॒भे इति॑। वा॒चा। व॒दा॒मि॒।
ते॒ ॥ ४ ॥

जो तू माताके पापवश वा पिताके पापवश (रोगशय्या पर) शयन कर रहा है, उस पापनिमित्तक रोगसे उन्मोचन और प्रमोचन इन दोनोंको मैं तेरे लिये मन्त्ररूपा वाणीसे कहता हूँ ॥ ४ ॥

यत् ते॑ मा॒ता यत् ते॑ पि॒ता जा॒मिर्भ्राता॑ च॒ सर्ज॑तः।
प्र॒त्यक् से॑वस्व भे॒षजं ज॒रद॑ष्टिं कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥

यत्। ते॒। मा॒ता। यत्। ते॒। पि॒ता। जा॒मिः। भ्राता॑। च॒। सर्ज॑तः।
प्र॒त्यक्। से॒व॒स्व॒। भे॒ष॒जम्। ज॒रत्ऽअ॑ष्टिम्। कृ॒णो॒मि॒। त्वा॒ ॥ ५ ॥

तेरी माताने, तेरे पिताने, तेरे भाईने, और तेरी बहिनने जिस मन्त्रकर्मकी वा औषधिकी सृष्टि की है, उस औषधिका तू भली प्रकार सेवन कर, मैं तुझको बुढ़ापे तक जीवनकी व्याप्ति वाला करता हूँ ॥ ५ ॥

इ॒हैधि॑ पुरुष॒ सर्वे॑ण॒ मन॑सा स॒ह।
दू॒तौ य॒मस्य॒ मानु गा॒ अधि॑ जीवपु॒रा इ॑हि ॥ ६ ॥

इ॒ह। ए॒धि॒। पु॒रु॒ष॒। सर्वे॑ण। मन॑सा। स॒ह।
दू॒तौ। य॒मस्य॑। मा। अनु॑। गाः। अधि॑। जी॒व॒ऽपु॒राः। इ॒हि॒ ६

हे पुरुष! तू अपनी सम्पूर्ण मनोवृत्तियोंके साथ यहाँ बढ़, यमके दूतोंके पीछे न जा, पहिले यहाँ जीवित रह ॥ ६ ॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोयनम् ॥ ७ ॥

अनुऽहूतः । पुनः । आ । इहि । विद्वान् । उत्ऽअयनम् । पथः ।
आऽरोहणम् । आऽक्रमणम् । जीवतःऽजीवतः । अयनम् ॥ ७ ॥

इस कर्मके अनन्तर बुलाया हुआ तू फिर आ तू उदय होनेके मार्गको जानता है अयनरूप आरोहण और आक्रमण तेरे जीते २ ही (हों) अर्थात् उत्तरायन और दक्षिणायन तेरी जीवित अवस्थामें ही बीतें॥ ७ ॥

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥ ८ ॥

मा । बिभेः । न । मरिष्यसि । जरत्ऽअष्टिम् । कृणोमि । त्वा ।
निः । अवोचम् । अहम् । यक्ष्मम् । अङ्गेभ्यः । अङ्गऽज्वरम् । तव ८

हे रोगिन् ! तू न डर, मैं तुझको बुढ़ापे तक इस लोकमें, व्याप्त रहने वाला करता हूँ, मैं कहता हूँ, कि-तेरे अंगोंसे यक्ष्मा और अंगज्वर निकल गया है ॥ ८ ॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ९

अङ्गऽभेदः । अङ्गऽज्वरः । यः । च । ते । हृदयऽआमयः ।
यक्ष्मः । श्येनःऽइव । प्र । अपप्तत् । वाचा । साढः । परःऽतराम् ९

जो तेरे अंगोंमें भेद होता रहता था, जो अंगोंमें ज्वर व्याप्त था और जो तेरा हृदयका रोग था और जो तेरा राजयक्ष्मा रोग

था वह मन्त्रशक्तिरूप वाणीसे तिरस्कृत होकर बाज पक्षीकी समान बहुत दूर जाकर गिर पड़ा है ॥ ९ ॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् १०

ऋषी इति । बोधऽप्रतीबोधौ । अस्वप्नः । यः । च । जागृविः ।
तौ । ते । प्राणस्य । गोप्तारौ । दिवा । नक्तम् । च । जागृताम् १०

जो जागृत और अस्वप्नके बोध प्रतिबोध ऋषि हैं, तेरे प्राणके रक्षक वे दिन रात जागते रहें ॥ १० ॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥

अयम् । अग्निः । उपऽसद्यः । इह । सूर्यः । उत् । एतु । ते ।
उत्ऽएहि । मृत्योः । गम्भीरात् । कृष्णात् । चित् । तमसः । परि ११

यह पासमें रखने योग्य अग्निदेव हैं इसी लोकमें तेरे लिये सूर्य उदय होवें, तू घोर अन्धकाररूप गम्भीरमृत्युसे (मुक्त होकर) उदयको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत
ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेस्मा अरिष्टतातये १२

नमः । यमाय । नमः । अस्तु । मृत्यवे । नमः । पितृऽभ्यः । उत ।
ये । नयन्ति ।

उत्ऽपारणस्य । यः । वेद । तम् । अग्निम् । पुरः । दधे । अस्मै ।
अरिष्टऽतातये ॥ १२ ॥

जो लेजाते हैं उन यमराजके लिये नमस्कार है, मृत्युके लिये नमस्कार है, पितरोंके लिये नमस्कार है, जो शरीरके पारणकी विधिको उत्कृष्ट रूपसे जानते हैं उन अग्निको हम इस पुरुषके कल्याणकी वृद्धिके लिये आगे रखते हैं ॥ १२ ॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३॥

आ । एतु । प्राणः । आ । एतु । मनः । आ । एतु । चक्षुः । अथो
इति । बलम् ।
शरीरम् । अस्य । सम् । विदाम् । तत् । पत्ऽभ्याम् । प्रति ।
तिष्ठतु ॥ १३ ॥

प्राण इसके पास आवे, मन इसके पास आवे, चक्षुः इसके पास आवे, बाज इसमें आवे, मैंने इसके शरीरको (मंत्रशक्तिसे) प्राप्त कर लिया है, सो यह अपने पैरों पर खड़ा होजावे ॥१३॥

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा भूमिगृहो भुवत् ॥१४॥

प्राणेन । अग्ने । चक्षुषा । सम् । सृज । इमम् । सम् । ईरय । तन्वा ।
सम् । बलेन ।
वेत्थ । अमृतस्य । मा । नु । गात् । मा । नु । भूमिऽगृहः ।
भुवत् ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! इस पुरुषको आप प्राणशक्ति और चक्षुः शक्तिसे सम्पन्न करिये, शरीरसे प्रेरित करिये, बलसे भली प्रकार संयुक्त करिये, हे अग्ने ! आप अमृतको जानते हैं, यह पुरुष इस लोकसे न जावे इसका घर भूमि न हो अर्थात् यह (अभी) श्मशान-भूमिको अपना घर न बनावे ॥ १४ ॥

मा ते॑ प्रा॒ण उप॑ दस॒न्मो अ॑पा॒नोपि॑ धायि ते ।
सू॒र्य॑स्त्वाधि॑पतिर्मृ॒त्योरु॒दाय॑च्छतु र॒श्मिभिः॑ ॥ १५ ॥

मा । ते॒ । प्रा॒णः । उप॑ । द॒स॒त् । मो इति॑ । अ॒पा॒नः । अपि॑ । धा॒यि॒ । ते॒ ।
सू॒र्यः॑ । त्वा॒ । अधि॑ऽपतिः । मृ॒त्योः । उत्ऽआय॑च्छतु । र॒श्मिऽभिः॑ १५

हे रोगिन् ! तेरा प्राण क्षीण न होवे, तेरा अपान न ढका जावे, अधिपति सूर्यदेव तुझे अपनी किरणोंसे मृत्युसे उठावें १५

इ॒यम॒न्तर्व॑दति जि॒ह्वा ब॒द्धा प॑निष्प॒दा ।
त्वया॒ यक्ष्मं॒ निर॑वोचं श॒तं रोपी॑श्च त॒क्मनः॑ ॥ १६ ॥

इ॒यम् । अ॒न्तः । व॒द॒ति । जि॒ह्वा । ब॒द्धा । प॒नि॒ष्प॒दा ।
त्वया॑ । यक्ष्म॑म् । निः । अ॒वो॒च॒म् । श॒तम् । रोपीः॑ । च॒ । त॒क्मनः॑ १६

यह भीतर बँधी हुई हिलती हुई जिह्वा भीतर कह रही है मैं कहता हूँ, कि-तुझसे यक्ष्मारोग हट गया और जीवनको कष्टमय बनाने वाले ज्वरके सैंकड़ों आक्रमण भी हट गए ॥ १६ ॥

अ॒यं लो॒कः प्रि॒यत॑मो दे॒वाना॒मप॑राजितः ।
यस्मै॒ त्वमि॒ह मृ॒त्यवे॑ दि॒ष्टः पु॑रुष ज॒ज्ञिषे ।

स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७॥

अयम् । लोकः । प्रियऽतमः । देवानाम् । अपराऽजितः ।

यस्मै । त्वम् । इह । मृत्यवे । दिष्टः । पुरुष । जज्ञिषे ।

सः । च । त्वा । अनु । ह्वयामसि । मा । पुरा । जरसः । मृथाः १७

इति षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

जिस मृत्युके लिये निर्दिष्ट होकर तू प्रकट हुआ है, ऐसा यह अपराजित मृत्युका लोक देवताओंको परम प्रिय है परन्तु हे पुरुष! हम तेरा आह्वान करते हैं, तू बुढ़ापेसे पहिले न मर ॥ १७ ॥

छठे अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१७२) ॥

"यां ते चक्रुः" इति सूक्तस्य कृत्याप्रतिहरणगणे पाठाद् यत्र-यत्र तस्य गणस्य विनियोगस्तत्र सर्वत्रास्य सूक्तस्य विनियोगोनुसंधेयः । विस्तरस्तु "दूष्या दूषिरसि" इति सूक्ते [२.११] कृतः ॥

"यां ते चक्रुः" इस सूक्तका कृत्याप्रतिहरणगणमें पाठ है, अत एव जहाँ २ इस गणका विनियोग होगा, तहाँ २ सर्वत्र इस सूक्तका विनियोग भी करना चाहिये । इसका विस्तार द्वितीयकाण्डके ग्यारहवें सूक्त "दूष्या दूषिरसि" में देखना चाहिये ॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे-मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् १

याम् । ते । चक्रुः । आमे । पात्रे । याम् । चक्रुः । मिश्रऽधान्ये ।

आमे । मांसे । कृत्याम् । याम् । चक्रुः । पुनः । प्रति । हरामि ।
ताम् ॥ १ ॥

हे कृत्ये ! जिस तुझको अपक्व मृत्पात्रमें अभिचारकोंने किया

है और जिस तुझको अभिचारकोंने धान जौं गेहूँ उपवाक तिल और कंगनी इन मिश्रधान्योंमें किया है वा कुक्कुट आदिके शरीर—अपक्व मांसमें किया है, ऐसी तुझको मैं अभिचारकके ऊपर ही फिर लौटाता हूँ ॥ १ ॥

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां० ॥ २ ॥

याम् । ते । चक्रुः । कृकवाकौ । अजे । वा । याम् । कुरीरिणि ।
अव्याम् । ते । कृत्याम् ।०॥ २ ॥

हे कृत्ये ! तुझको यदि अभिचारकोंने मुर्गे पर किया है, वा केशवाले बकरे पर किया है, वा भेड़ पर किया है तो हम उसको अभिचारक पर ही फिर लौटाते हैं ॥ २ ॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां० ॥ ४ ॥

याम् । ते । चक्रुः । एकऽशफे । पशूनाम् । उभयादति ।
गर्दभे । कृत्याम् ।०॥ ३ ॥

हे कृत्ये ! तुझको यदि अभिचारकोंने पशुओंमें एक खुर (सुम) वाले और (ऊपर नीचे) दोनों ओर दाँत वाले गधे पर किया है तो हम तुझको अभिचारकके पास ही लौटाते हैं॥३॥

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां० ॥ ४ ॥

१४९४

याम् । ते॒ । च॒क्रुः । अ॒मू॒ला॑याम् । व॒ल॒गम् । वा॒ । न॒रा॒च्याम् ।
क्षेत्रे॑ । ते॒ । कृ॒त्याम् ।०॥ ४ ॥

हे कृत्ये ! यदि अभिचारकोंने तुझको मनुष्योंसे पूजित खाने योग्य पदार्थमें ढक कर खेतमें किया है, तो हम तुझको अभिचारक पर ही लौटाते हैं ॥ ४ ॥

यां ते॑ च॒क्रुर्गार्ह॑पत्ये पू॒र्वा॒ग्नावु॒त दु॒श्चितः॑ ।
शाला॑यां कृ॒त्यां यां० ॥ ५ ॥

याम् । ते॒ । च॒क्रुः । गार्ह॑ऽपत्ये । पू॒र्व॒ऽअ॒ग्नौ । उ॒त । दुः॒ऽचितः॑ ।
शाला॑याम् । कृ॒त्याम् ।०॥ ५ ॥

हे कृत्ये ! तुझको यदि बुरा चीतनेवाले अभिचारक पुरुषोंने गार्हपत्यकी पूर्वाग्निमें किया है, वा अग्निहोत्रकी शालामें किया है, तो हम तुझको अभिचारक पर ही लौटाते हैं ॥ ५ ॥

यां ते॑ च॒क्रुः स॒भायां॒ यां च॒क्रुर॑धि॒देव॑ने ।
अ॒क्षेषु॑ कृ॒त्यां यां० ॥ ६ ॥

याम् । ते॒ । च॒क्रुः । स॒भाया॑म् । याम् । च॒क्रुः । अ॒धि॒ऽदेव॑ने ।
अ॒क्षेषु॑ । कृ॒त्याम् ।०॥ ६ ॥

हे कृत्ये ! तुझको अभिचारकोंने यदि सभामें वा जुएके समय पाशोंमें किया है, तो हम तुझको अभिचारक पुरुष पर ही लौटाते हैं

यां ते॑ च॒क्रुः सेना॑यां॒ यां च॒क्रुरि॑ष्वायु॒धे ।
दु॒न्दु॒भौ कृ॒त्यां यां० ॥ ७ ॥

याम्। ते॒। च॒क्रुः। सेना॑याम्। याम्। च॒क्रुः। इ॒षु॒ऽआ॒यु॒धे।

दु॒न्दु॒भौ। कृ॒त्याम्।०॥ ७॥

जिस कृत्याको अभिचारकोंने सेनामें वा बाणरूप आयुध पर वा दुन्दुभिमें किया है, तो उस कृत्याको मैं अभिचारक पर ही डालता हूँ॥ ७॥

यां ते॑ कृ॒त्यां कूपे॑वद॒धुः श्म॑शा॒ने वा॑ निच॒ख्नुः।
सद्मा॑नि कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॒ः प्रति॑ हरा॒मि ताम्॥८॥

याम्। ते॒। कृ॒त्याम्। कूपे॑। अ॒व॒ऽद॒धुः। श्म॒शा॒ने। वा॒। नि॒ऽच॒ख्नुः।

सद्म॑नि। कृ॒त्याम्। याम्। च॒क्रुः। पुनः॑। प्रति॑। ह॒रा॒मि॒। ताम् ८

हे कृत्ये! जिस तुझको अभिचारकोंने कूपमें डालकर किया है, वा जिसको करके श्मशानमें गाढ़ दिया है वा जिस कृत्याको घरमें किया है, उसको मैं फिर लौटाता हूँ॥ ८॥

यां ते॑ च॒क्रुः पु॑रुषा॒स्थे अ॒ग्नौ संक॑सुके च॒ याम्।
ओ॒कं नि॒र्दा॒हं क्र॒व्याद॒ं पुन॒ः प्रतिं॑ हरा॒मि ताम्॥९॥

याम्। ते॒। च॒क्रुः। पु॒रु॒ष॒ऽअ॒स्थे। अ॒ग्नौ। सम्ऽक॑सुके। च॒। याम्।

ओ॒क॑म्। नि॒ःऽदा॒हम्। क्र॒व्य॒ऽअद॑म्। पुनः॑। प्रति॑। ह॒रा॒मि॒। ताम्

जिस कृत्याको अभिचारकने पुरुषकी हड्डी पर वा अस्थिर (लपलप करने वाली) अग्निमें किया है, उस धनको छीनकर गुप्तरीतिसे ले जाने वाले मांसभक्षी बहुत जलाने वाले अभिचारक पुरुष पर ही मैं उस कृत्याको भेजता हूँ॥ ९.॥

अप॒थेना ज॑भारै॒णां तां प॒थेतः प्र हि॑ण्मसि।

१४९६

अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥ १० ॥

अपथेन । आ । जभार । एनाम् । ताम् । पथा । इतः । प्र । हिण्मसि ।
अधीरः । मर्याऽधीरेभ्यः । सम् । जभार । अचित्त्या ॥ १० ॥

जो पुरुष अज्ञानवश कृत्याको कुमार्गसे हम मर्यादापालकों पर ले आया है, उसको हम मार्गसे उस पर ही भेजते हैं ॥ १० ॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥ ११ ॥

यः । चकार । न । शशाक । कर्तुम् । शश्रे । पादम् । अंगुरिम् ।
चकार । भद्रम् । अस्मभ्यम् । अभगः । भगवत्ऽभ्यः ॥ ११ ॥

जो हम पर कृत्याको कर हमारी अंगुलिका नाश करना चाहता है वा पैरको नष्ट करना चाहता है । वह वैसा करनेको समर्थ न हो, इस प्रकार वह अभागा हम भाग्यवानोंके लिये कल्याण ही करे ॥ ११ ॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥ १२ ॥

कृत्याऽकृतम् । वलगिनम् । मूलिनम् । शपथेय्यम् ।
इन्द्रः । तम् । हन्तु । महता । वधेन । अग्निः । विध्यतु । अस्तया

षष्ठेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

षष्ठोनुवाकः ॥

इति पञ्चमं काण्डं समाप्तम् ॥

छिप कर काम करने वाले शपथकारी कुछ जड़ रखने वाले कृत्याकारीको इन्द्रदेव वधके साधन बड़े भारी शस्त्रसे मार डालें और अग्नि अपनी फैंकी हुई लपटसे बींध डालें ॥ १२ ॥

अथर्ववेदसंहिताके पञ्चम काण्डके छटे अनुवाकमें
पञ्चम सूक्त समाप्त (१७३) ॥

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका पञ्चम काण्ड अ० कु०
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक अ०. कु० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत भाषानुवादसहित
समाप्त.

पञ्चमकाण्ड समाप्त.

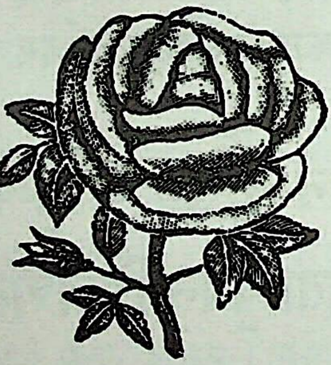

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

षष्ठं-काण्डम्

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्का निर्माण किया है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

षष्ठे काण्डे त्रयोदशानुवाकाः ।,तत्र,प्रथमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "दोषो गाय" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन नवशालायां पुष्टिकामो घृतं मधुमिश्रं जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । "यजूंषि यज्ञे [५. २६] इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रं जुहोति गाय [,६. १] इति द्वितीयां युक्ताभ्यां तृतीयाम्",इति [कौ० ३. ६]॥

तथा तेनैव तृचेन स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । "दोषो गाय [६, १] पातं नः [६. ३] इति पञ्च" इत्यादि "भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत" इत्यन्तम् [कौ० ७. १] ॥

तथा अनेन तृचेन सर्वलोकाधिपत्यकामः अथर्वाणं यजत उपतिष्ठते वा ॥

तथा अनेनैव समावर्तनानन्तरं भक्तं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "दोषो गायेत्यथर्वाणं समावृत्याश्नाति" इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा सोमयागे प्रातःसवने बहिष्पवमानस्तोत्रसमये ब्रह्मा "दोषो गाय" इत्येतज्जपन् उद्गातारम् ईक्षेत । तद् उक्तं वैताने । "चात्वालाद् दक्षिणत उपविशन्ति । दोषो गायेति जपन्नुद्गातारम् ईक्षते" इति [वै० ३. ७] ॥

"इन्द्राय सोमम् ऋत्विजः" इति तृचेन सोमयागे द्रोणकलशस्थं सोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "इन्द्राय सोमम् ऋत्विज इति द्रोणकलशस्थम् अनुमन्त्रयते" इति वैतानसूत्रात् [वै० ३. ६] ॥

अत्र "आ य विशन्ति" [६. २. २] इत्यनया ऋचा राक्षसकृतपीडापरिहारार्थं पक्षिनीडकाष्ठपक्वं क्षीरौदनं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् । सूत्रितं हि । "आ यं विशन्तीति वयोनिवेशनभृतं क्षीरौदनम् अश्नाति" इति [कौ० ४. ५] ॥

यद्यपि अस्मिन् काण्डे प्रायेण सर्वाणि सूक्तानि तृचात्मकान्येव तथापि अध्यापकसंप्रदायानुरोधेन तृचद्वयम् एकीकृत्य सूक्तत्वेन व्यवह्रियते ॥

छठे काण्डमें तेरह अनुवाक हैं । उनमें पहिले अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'दोषो गाय' यह पहिला सूक्त है । उनमें पहिले तीन ऋचा वाले सूक्तसे पुष्टि चाहने वाला नवीन शाला (घर) में शहद मिले हुए घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"यजूंषि यज्ञे (५ । २६) इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रं जुहोति 'दोषो गाय' (६ । १) इति द्वितीयां युक्ताभ्यां तृतीयाम् ॥-'यजूंषि यज्ञे' इस पञ्चम काण्डके छब्बीसवें सूक्तसे नवीन घरमें मधु और घृतकी पहिली आहुति देय और 'दोषो

गाय' इस छठे काण्डके प्रथमसूक्तसे दूसरी आहुति देय और इन दोनों सूक्तोंसे तीसरी आहुति देय ।" (कौशिकसूत्र ३ । ६) ॥

तथा स्वस्त्ययनको चाहने वाला इसी तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृत समिधा पुरोडाश आदिसे पूरी तकके तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-दोषो गाय (६ । १) पातं नः (६ । ३) इति पञ्च" इत्यादि "भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र ७ । १)

तथा सब लोकों पर अधिपतित्व चाहने वाला, इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अथर्वा ऋषिका यजन वा उपस्थान करे ।"

तथा इसी सूत्रसे समावर्तनके अनन्तर भातका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"दोषो गायेत्यथर्वाणं समावृत्याश्नाति" इति (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा सोमयागके प्रातःसवनमें बहिष्पवमान स्तोत्रके समय ब्रह्मा इस 'सोमो गाय' सूक्तका जप करता हुआ उद्गाताको देखे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"चात्वालाद् दक्षिणत उपविशन्ति । दोषो गायेति जपन्नुद्गातारं ईक्षते" (वैतानसूत्र ३ । ७) ॥

"इन्द्राय सोमम् ऋत्विजः" इन तीन ऋचाओंसे सोमयागमें द्रोणकलशमें स्थित सोमका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । "इन्द्राय सोमं ऋत्विज इति द्रोणकलशस्थम् अनुमन्त्रयते" वैतानसूत्र ३ । ६ इस विषयमें प्रमाण है ।

यहाँ "आ यं निशन्ति" इस छठे काण्डके दूसरे सूक्तकी दूसरी ऋचासे राक्षसकी की हुई पीड़ाको दूर करनेके लिये पक्षियोंके घोंसलेके काष्ठसे औटाये हुए दूध भातका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"आ यं विशन्तीति वयोनिवेशनशृतं क्षीरौदनं अश्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । ५) ।

यद्यपि इस काण्डमें प्रायः सब ही सूक्त तीन ऋचा वाले हैं तथापि अध्यापकसम्प्रदायके अनुरोधवश दो वार तीन ऋचाओं को एक करके सूक्तरूपमें व्यवहार किया गया है ।

तत्र प्रथमा ॥

दो॒षो गा॑य बृ॒हद् गा॑य द्यु॒मद्धे॑हि ।
आथ॑र्वण स्तु॒हि दे॒वं स॑वि॒तार॑म् ॥ १ ॥

दो॒षो इति॑ । गा॒य॒ । बृ॒हत् । गा॒य॒ । द्यु॒ऽमत् । धे॒हि॒ ।
आथ॑र्वण । स्तु॒हि । दे॒वम् । स॒वि॒तार॑म् ॥ १ ॥

हे आथर्वण अथर्वणः पुत्रः । ❀ "तस्यापत्यम्" इति अणि "अन्" इति प्रकृतिभावात् टिलोपाभावः । स च अथर्वणः पुत्रो दध्यङ् नाम महर्षिः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "प्रजापतिर्वा अथर्वा अग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणः" इति [तै० सं० ५. ६. ६. ३] निगमश्च भवति । "तम् उ त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः" इति [ऋ० ६. १६. १४] ❀ । हे तादृश आथर्वण महर्षे दोषो । दोषाशब्दो रात्रिवाची । स च अधिकरणप्रधानः । उशब्दः अप्यर्थे । दोषा रात्रौ । अपिशब्दाद् अहनि । अहोरात्रोपलक्षिते सर्वस्मिन्नपि काले गाय स्तुत्युपयोगीनि सामानि उच्चारय । "बृहत्साम तथा साम्नाम्" इति [भ० गी० १०. ३५] यद् भगवतोक्तं बृहत्साम्नः प्राधान्यं तत् ख्यापयितुं विशेषतो निर्दिशति बृहद् गायेति । "त्वाम् इद्धि हवामहे" [ऋ० ६. ४६. १] इत्यस्याम् ऋचि उत्पन्नं साम बृहत् । तद्धि सर्वसोमयागानां प्रकृतिभूते प्रथमप्रयोज्येग्निष्टोमे माध्यंदिनसवने पृष्ठस्तोत्रेषु विकल्पेन प्रथमं प्रयुज्यते । तद् उक्तम् । "रथन्तरसाम्ना बृहत्साम्नोभयसाम्ना वा प्रथमं यजेत" इति । तद् बृहत् साम हे स्तोतः गाय । ❀ कै गै शब्दे इति धातुः ❀ ।

तेन च गानेन द्युमत् दीप्तिमद् धनं धेहि अस्मासु धारय । ❀डुधाञ् धारणपोषणयोः । "घ्वसोरेद्धौ०" इति एत्त्वाभ्यासलोपौ ❀ । तस्य च गीयमानस्य साम्नः उक्तफलसाधनत्वं स्तोत्रनिष्पादनद्वारेत्याह स्तुहीति । देवम् दानादिगुणयुक्तं सवितारम् अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकं सूर्यं स्तुहि प्रशंस । गुणिनिष्ठगुणाभिधानं हि स्तुतिः । सा च यज्ञे द्विविधा प्रगीताप्रगीतमन्त्रभेदात् । तत्र प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम् । तच्च "आज्यैः स्तुवते" "पृष्ठैः स्तुवते" इत्यादिवाक्यैर्विहितम् । अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम् । तदपि "आज्यं शंसति" "प्रउगं शंसति" इत्यादिशंसतिचोदनाविहितम् । तयोश्च याज्यानुवाक्योक्तिवत् संस्कारकर्मत्वम् आशङ्क्य प्रधानकर्मत्वं राद्धान्तितम् । "स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो याज्यावद् देवताभिधानत्वात्" इत्यधिकरणे [जै० २. १. १३] । एतद् उक्तं भवति । गीयमानेन बृहता साम्ना फलसाधनपरमापूर्वजननार्थं पृष्ठस्तोत्राख्यं प्रधानकर्म निष्पादयेद् इति ॥ ❀ आथर्वण इत्यामन्त्रितस्य "आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इति अविद्यमानवद्भावात् स्तुहीत्यस्य पादादित्वाद् "०अपादादौ" इति पर्युदस्तत्वात् "तिङ्ङतिङः" इति निघाताभावः ❀ ॥

हे अथर्वाके पुत्र दध्यङ् नामक महर्षे † ! आप स्तुतिके उपयोगी बृहत्साम ‡ का रात दिन गान करिये, हे स्तोतः ! उस गान

---

† तैत्तिरीयसंहिता ५ । ६ । ६ । ३ में कहा है, कि "प्रजापतिर्वा अथर्वा अग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणः ॥—प्रजापति अथर्वा अग्नि ही हैं, उन अथर्वाके पुत्रका नाम दध्यङ् महर्षि है ॥" ऋग्वेदसंहिता ६ । १६ । १४ में कहा है, कि—"तम् उ त्वा दध्यङ् ऋषि पुत्र ईधे अथर्वणः ॥—अथर्वाके पुत्र दध्यङ् ऋषि तुझको बढ़ाते हैं

‡ भगवद्गीतामें कहा है, कि—"बृहत् साम तथा साम्नाम् ।—मैं सामोंमें वृहत्—साम हूँ ॥" उसी बृहत् सामकी प्रधानता इस

के द्वारा दानादि गुण युक्त सबके प्रेरक अन्तर्यामी सविता देवता की स्तुति × करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमु॑ ष्टुहि॒ यो अ॒न्तः सिन्धौ॑ सू॒नुः ।
स॒त्यस्य॒ युवा॑न॒मद्रो॑घवाचं सु॒शेव॑म् ॥ २ ॥

मन्त्रमें बृहत् शब्दसे सूचित होती है। यह साम ऋग्वेदसंहिता ६।४६।१ की "त्वाम् इद्धि हवामहे" इस ऋचामें उत्पन्न हुआ साम बृहत्साम कहलाता है। वही सब सोमयागोंके प्रकृतिभूत प्रथम प्रयोग किये जाने वाले अग्निष्टोमके माध्यन्दिनसवनमें पृष्ठस्तोत्रमें विकल्पसे पहिले प्रयुक्त होता है। इसी बातको कहा है, कि—"रथन्तरसाम्ना बृहत्साम्नोभयसाम्ना वा प्रथमं यजेत ॥-रथन्तरसामसे बृहत्सामसे वा दोनों सामोंसे पहिले यजन करे।"

× गुणीमें स्थित गुणोंका कथन स्तुति कहलाती है, वह यज्ञमें प्रगीत और अप्रगीत मन्त्रके भेदसे दो प्रकारकी होती है। जो स्तुति प्रगीत मन्त्रसे साध्य होती है अर्थात् की जाती है वह स्तुति स्तोत्र कहलाती है, वह 'आज्यैः स्तुवते' 'पृष्ठैः स्तुवते' इत्यादि वाक्योंसे विहित है और अप्रगीत मन्त्रसे साध्य स्तुति शस्त्र कहलाती है। वह भी 'आज्यं शंसति' 'प्रउगं शंसति' इत्यादि शंसति चोदनाविहित है। इन दोनोंकी याज्यानुवाक्योक्तिकी समान संस्कारकर्मत्वकी आशंका कर प्रधानकर्मत्व माना है। इसका स्पष्ट वर्णन जैमिनीयसूत्र २।१।१३ 'स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो याज्यावद्द देवताभिधानत्वात्' के अधिकरणमें है। तात्पर्य यह है, कि—इस गाये जाते हुए बृहत्सामसे फलके साधन परम अपूर्वको उत्पन्न करनेके लिये पृष्ठस्तोत्र नाम वाले प्रधानकर्मको निष्पन्न करे ॥

१५०४

तम् । ऊ॒ं इति॑ । स्तु॒हि॒ । यः । अ॒न्तः । सिन्धौ॑ । सू॒नुः ।

स॒त्यस्य॑ । युवा॑नम् । अद्रो॑घऽवाचम् । सु॒ऽशेव॑म् ॥ २ ॥

हे स्तोतः तमु तमेव देवं स्तुहि स्तुत्या प्रीणय । यो देवः सविता सत्यस्य परब्रह्मणः सूनुः प्रथमजः पुत्रः । तथा च जगत्कारणं परमात्मानं प्रकृत्य वाजसनेयकम् । "स त्रेधात्मानं व्यकुरुत अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्" इति [बृ०आ० १.२.३]। एतेन इतरदेवेभ्यः प्राशस्त्यम् अस्योक्तं भवति। ईदृशो यः सविता सिन्धौ स्यन्दनशीले समुद्रे अन्तः मध्ये। उद्यन् दृश्यत इति शेषः । तं युवानम् नित्यतरुणं नैशस्य तमसो यावयितारं पृथक्कर्तारं वा अद्रोघवाचम् अहिंसकवाक्ययुक्तम्। शोभनवाचम् इत्यर्थः। सुशेवम् सुसुखम् । स्तुहीत्यन्वयः ॥

हे स्तोतः ! तुम उन देवको ही स्तुतिसे प्रसन्न करो, कि-जो सविता देवता परब्रह्मके प्रथम उत्पन्न हुए पुत्र हैं † । और समुद्र में उदय होते हुए दीखते हैं । उन सदा तरुण रहने वाले रात्रिके अन्धकारको दूर करनेवाले शोभन वाणी वाले सुखस्वरूप सविता को तुम स्तुतिसे प्रसन्न करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स घा॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता सा॑विष॒दमृता॑नि॒ भूरि॑ ।
उ॒भे सु॑ष्टु॒ती सु॒गात॑वे ॥ ३ ॥

---

† इसी बातका वाजसनेयी शाखाके बृहदारण्यक उपनिषत्के १ । २ । ३ में वर्णन किया है, कि "स त्रेधात्मानं व्यकुरुत अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयं आदित्यम् तृतीयम् ॥" इस प्रकार अन्यदेवताओंकी अपेक्षा सविता देवताकी श्रेष्ठता सिद्ध है ।

सः । घ॒ । न॒ः । दे॒वः । स॒वि॒ता । सा॒वि॒ष॒त् । अ॒मृता॑नि । भूरि॑ ।

उ॒भे इति॑ । सु॒स्तु॒ती इति॑ सु॒ऽस्तु॒ती । सु॒ऽगात॑वे ॥ ३ ॥

स घ स एव देवः सविता नः अस्माकम् अमृतानि अमृतत्वसाधनानि भूरि भूरीणि बहूनि हविःप्रदानादीनि कर्माणि साविषत् प्रेरयतु देवान् प्रापयतु । यद्वा अमृतानि अमरणहेतुभूतानि बलानि भूरि बहुलं नः अस्मभ्यं साविषत् प्रेरयतु । ❀ षू प्रेरणे । अस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलं णिद् वक्तव्यः" इति वचनाद् वृद्ध्यावादेशौ । घशब्दस्य "ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्" इति सांहितिको दीर्घः ❀ । किमर्थम् इत्यत आह उभे इति । उभयविधे सुष्टुती शोभनस्तुतिसाधने बृहद्रथंतरे सामनी सुगातवे सुष्ठु गातुम् । यद्वा उभे सुष्टुती स्तुतशस्त्रात्मिके शोभने स्तुती सुगातवे सुष्ठु प्रयोक्तुम् । ❀ गायतेस्तुमर्थे तवेप्रत्ययः ❀ ॥

वह सविता देवता ही हमारे अमृतत्वके साधन हविः प्रदान आदि कर्मोंको देवताओंको प्राप्त करावें वा अमरणके साधन बहुत से बलोंको शोभन स्तुतिके साधन दोनों बृहद्र रथन्तर सामको वा स्तुत शस्त्रोंको गानेके लिये, हममें प्रेरित करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रा॑य॒ सोम॑मृत्विजः सु॒नोता च॑ धावत ।

स्तो॒तुर्यो॑ वच॑ः शृ॒णव॒द्धवं॑ च मे ॥ १ ॥

इन्द्रा॑य । सोम॑म् । ऋ॒त्वि॒जः॒ । सु॒नोत॑ । आ । च॒ । धा॒व॒त॒ ।

स्तो॒तुः । यः । वच॑ः । शृ॒णव॑त् । हव॑म् । च॒ । मे॒ ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः अध्वर्युप्रमुखाः इन्द्राय इन्द्रार्थं सोमं सुनोत अभिषुणुत । ❀ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तशब्दस्य तबादेशः । तस्य पित्त्वेन

ङित्त्वाभावात् "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणः ❀ ॥ तथा तं सोमम् आ धावत च । आधावनं नाम अदाभ्यग्रहार्थं गृहीतस्य वसतीवरीजलस्य "वसवस्त्वा" [तै० सं० ३. ३. ३. १] इत्यादिमन्त्रगृहीतैस्त्रिभिः सोमांशुभिः "मांदासु ते" [तै०सं०३.३.३.१] इत्यादिभिर्मन्त्रैश्चालनम् । यद् आह आपस्तम्बः । "अंशुम् अदाभ्यं वा प्रथमं गृह्णाति।" इति प्रक्रम्य "उपनद्धस्य राज्ञस्त्रीन् अंशून् प्रवृहति । वसवस्त्वा प्रवृहन्तु गायत्रेण छन्दसेत्येतैः प्रतिमन्त्रम् । तैरेनं चतुराधूनोति । पञ्चकृत्वः सप्तकृत्वो वा । "मांदासु त इत्येतान् प्रतिविभज्य" इति [आप० १२. ८. २] । ❀ धूञ् कम्पने इत्यस्मात् ण्यन्तात् लोटि "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ । यद्वा । ❀ धावु गतिशुद्ध्योः ❀ । तम् अभिषुतं सोमम् आ धावत दशापवित्रेण सर्वतः शोधयत । य इन्द्रः स्तोतुः मे मम वचः स्तुतिलक्षणं वाक्य हवम् आह्वानं च शृणवत् शृणुयात् आदरेण जानीयात् तस्मा इन्द्रायेति संबन्धः । ❀ शृणवत् इति । श्रु श्रवणे । अस्मात् लेटि अडागमः । "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः शृभावश्च । हवम् इति । "भावेऽनुपसर्गस्य" इति अप् संप्रसारणं च ❀ ॥

हे अध्वर्यु आदि ऋत्विजों ! जो इन्द्र मुझ स्तोताके स्तुतिवाक्यरूप आह्वानको आदरपूर्वक सुनें उन इन्द्रदेवके लिये तुम सोमका अभिषव करो, तथा उस सोमका आधावन भी करो × ४

× अदाभ्यग्रहके ग्रहण किये हुए वसतीवरी जलको "वसवस्त्वा०" (तैत्तिरीयसंहिता ३ । ३ । ३ । १) के तीन मन्त्रोंसे गृहीत तीन सोमांशुओंसे 'मादांशु ते०' (तैत्तिरीयसंहिता ३ । ३ । ३ । १) के मन्त्रोंके द्वारा चालन करनेका नाम आधावन है । इसी बातको आपस्तम्ब मुनिने कहा है, कि—"अंशु अदाभ्यं वा प्रथमं गृह्णाति" इति प्रक्रम्य "उपनद्धस्य राज्ञस्त्रीन् अंशून् प्रवृहति

पञ्चमी ॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

आ । यम् । विशन्ति । इन्दवः । वयः । न । वृक्षम् । अन्धसः ।
विऽरप्शिन् । वि । मृधः । जहि । रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

इन्दवः सोमाः अन्धसः । अन्ननामैतत् । ❀ अदेर्नुम् धश्च [उ० ४. २०५] इति असुनि व्युत्पादितम् ❀ । अन्नभूताः सन्तः यम् इन्द्रम् आ विशन्ति प्रविशन्ति । तत्र दृष्टान्तः वय इति । नशब्दः उपमार्थे । वयः पक्षिणो यथा निलयभूतं वृक्षं शीघ्रं स्वेच्छया प्राप्नुवन्ति तथा इन्द्रार्थम् अभिषुताः सोमाः तत्प्राशनाय तच्छरीरं स्वयमेव प्रविशन्तीत्यर्थः ।[स त्वं] हे विरप्शिन् महन्नामैतत् । हे महन्निन्द्र सोमपानेन दृप्तः सन् रक्षस्विनीः रक्षोभिर्बाधकैरुपेता मृधः युध्यमानाः शत्रुसेना वि जहि विबाधस्व । ❀ हन्तेर्जः” इति जादेशः । तस्य “असिद्धवद् अत्रा भात्” इति असिद्धत्वाद् “अतो हेः” इति लुगभावः ❀ ॥

जैसे पक्षी अपने निवासस्थान वृक्ष पर शीघ्र ही स्वेच्छापूर्वक आते हैं इसी प्रकार अन्नरूप सोम अभिषुत होने पर इन्द्रदेवके प्राशनके लिये उनके शरीरमें स्वयं ही प्रवेश करते हैं ऐसे हे महान् इन्द्र ! आप सोमपानसे मदमें भर कर रक्षक बाधकोंसे युक्त लड़ती हुई शत्रुसेनाओंको पीड़ित करिये ॥ २ ॥

वसवस्त्वा प्रवृहन्तु गायत्रेण छन्दसेत्येतैः प्रतिमन्त्रम् । तैरेनं चतुराधूनोति । पञ्चकृत्वः सप्तकृत्वो वा । मांदासु त इत्येतान् प्रतिविभज्य” (आप० १२ । ८ । २) ॥

षष्ठी ॥

सु॒नोता॑ सोम॒पाव्ने॒ सोम॒मिन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑ ।
यु॒वा जेतेशा॑न॒ः स पु॑रु॒ष्टुतः ॥ ३ ॥

सु॒नोता॑ । सो॒म॒ऽपाव्ने॑ । सोम॑म् । इन्द्रा॑य । व॒ज्रिणे॑ ।
युवा॑ । जेता॑ । ईशा॑नः । सः । पु॒रु॒ऽस्तु॒तः ॥ ३ ॥

हे अध्वर्यवः सोमपाव्ने सोमस्य पात्रे सोमपानोत्सुकाय । ❀ "आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति वनिप् ❀ । वज्रिणे वज्रहस्ताय शत्रुनिरसनक्षमाय इन्द्राय सोमं सुनोत अभिषुणुत । स खलु इन्द्रो युवा नित्यतरुणः शत्रूणां यावयिता वा अत एव जेता जयशीलः ईशानः सर्वस्य जगत ईशिता स्वामी । ❀ ईश ऐश्वर्ये इत्यस्मात् लटः शानच् । अदादित्वात् शपो लुक् । अनुदात्तेत्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरेण आद्युदात्तः ❀ । पुरुष्टुतः पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्वस्वाभिलषितसिद्धये स्तुतः प्रशंसितः । य इत्थं सर्वोत्कृष्ट इन्द्रः तत्प्रीत्यर्थं सोमम् अभिषुणुतेति संबन्धः ॥

[इति] षष्ठे काण्डे प्रथमं सूक्तम् ॥

हे अध्वर्युओं ! सोमका पान करने वाले वज्रधारी शत्रुओंका तिरस्कार करनेमें समर्थ इन्द्रके लिये सोमका अभिषव करो, वह इन्द्रदेव सदा तरुण रहते हैं, शत्रुओंको भगाने वाले हैं, जयशील हैं, सब जगत्के स्वामी हैं और बहुतसे यजमान अपने २ अभीष्ट कामकी सिद्धिके लिये उनकी प्रशंसा करते हैं, जो इन्द्र ऐसे उत्कृष्ट हैं उनकी प्रीतिके लिये सोमका अभिषव करो ॥ ३ ॥

छठे काण्डमें प्रथम सूक्त समाप्त (१७५) ॥

"पातं नः" इति तृचेन विजयस्वस्त्ययनकर्मणि आज्यं हुत्वा खड्गादिशस्त्रं संपात्य अभिमन्त्र्य योधकाय प्रयच्छेत् ॥

तथैव स्वस्त्ययनकामो रात्रौ शयनकाले एतं तृचं जपन् प्रादेशेन मुखं प्रमाय स्वप्यात् ॥

तथैव सुप्तोत्थितस्य अनेन तृचेन स्वस्त्ययनार्थं त्रीणि पदानि तिस्रो दिष्टीर्वा प्रमाय उत्तिष्ठेत् ॥

सूत्रितं हि । "पातं नः [६. ३] य एनं परिषीदन्ति [६. ७६] यदायुधं दण्डेन व्याख्यातं दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो दिष्टीः" इति [कौ० ७. १] ॥

तथा "पातं नः" इति पञ्चभिर्ऋग्भिः स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । "पातं नः [६. ३] इति पञ्च अनडुद्भ्यः" [६. ५९] इत्यादि "भवाशर्वौ" [११.२] "इत्युपदधीत" इत्यन्तं सूत्रम् [कौ० ७.१]॥

"त्वष्टा मे" इति तृचेन दायादविभागकर्मणि पुष्ट्यर्थं सरूपवत्साया गोर्दुग्धे पक्वम् ओदनं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन धनुर्ज्यां संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि दण्डं संपात्य अभिमन्त्र्य विमृज्य धारयेत् ॥

आह च कौशिकः । "त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणोश्नाति । ज्यां बध्नाति । दण्डं संपातवन्तं विमृज्य धारयति" इति [कौ० ३. ६]॥

तथा पुष्ट्यर्थचित्राकर्मणि अनेन तृचेन वृक्षशाखादिसंभारान् संपातयेत् । "त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणः" इति प्रक्रम्य "युक्तयोश्चित्राकर्म । निशायां संभारान् संपातवतः करोति" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० ३. ६] ॥

तथा च कुमारस्य कुमार्या वा मूर्ध्नि आवर्तद्वयजनने तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "कुमारस्य कुमार्या वा द्वावावर्तौ मूर्धन्यौ भवतः" इति प्रक्रम्य होमार्थं कांश्चन

मन्त्रान् पठित्वा सूत्रितम् "त्वष्टा मे दैव्यं वचः" इति [कौ० १३. ३२]॥

"पातं नः" इन तीन ऋचाओंसे विजयके स्वस्त्ययनकर्ममें घृत की आहुति देकर शस्त्र आदि खड्गको सम्पातित और अभिमंत्रित करके योधाको देय ।

तथा इसी प्रकार स्वस्त्ययनको चाहने वाला रात्रिमें शयनके समय इन तीन ऋचाओंको जपता हुआ प्रादेश (तर्जनी अँगुली से अँगूठे तककी फैली हुई हथेली) से मुखको ढक कर सोवे ॥

तथा सोकर उठे हुएका स्वस्त्ययन करनेके लिये इन तीन ऋचाओंसे तीन पैर वा तीन दिष्टिको नाप कर उठे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"पातं नः (६ । ३) य एनं परिषीदन्ति (६ । ७६) यदायुधं दण्डेन व्याख्यातं दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो दिष्टीः" (कौशिकसूत्र ७ । १)

तथा "पातं नः" इन पाँच ऋचाओंसे स्वस्त्ययनको चाहनेवाला घृत समिधा पुरोडाशसे पूरी तकके तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें कौशिकसूत्र ७ । १ का प्रमाण है कि–"पातं नः (६ । ३) इति पञ्च अनुडुद्भ्यः" (६ । ५९) इत्यादि "भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत" इत्यन्तम् ॥

दायादविभागकर्ममें पुष्टि चाहने वाला "त्वष्टा मे" इन तीन ऋचाओंसे अपने और बछड़ेके एकसे रूप वाली गौके दुग्धमें बने हुए भातको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके खावे ॥

तथा तहाँ ही इसी कर्ममें इन ही तीन ऋचाओंसे धनुषकी प्रत्यंचाको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे ।

तथा तहाँ ही दण्डका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके शुद्ध करके धारण करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है,

कि–“त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणोऽश्नाति । ज्यां बध्नाति । दण्डं सम्पातवन्तं त्रिमृज्य धारयति” (कौशिकसूत्र ३ । ६) ॥

तथा पुष्ट्यर्थचित्राकर्ममें इन तीन ऋचाओंसे वृक्षकी शाखा आदि सामग्रियोंको सम्पातित करे इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–“त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणः” इति प्रक्रम्य “युक्तयोश्चित्राकर्म । निशायां संभारान् सम्पातवतः करोति” (कौशिकसूत्र ३।६)

तथा कुमार वा कुमारीके मस्तक पर दो आवर्तोंके प्रकट होने पर शान्तिके लिये इन तीन ऋचाओंसे घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–“कुमारस्य कुमार्या वा मूर्ध्नि द्वावावर्तौ भवतः” इति प्रक्रम्य होमार्थं कांश्चन मन्त्रान् पठित्वा सूत्रितम् । “त्वष्टा मे दैव्यं वचः” (कौशिकसूत्र १३ । ३२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

पा॒तं न॑ इन्द्रापूष॒णादि॑ति॒ः पान्तु॑ म॒रुत॑ः ।
अपां॑ नपात् सिन्धवः स॒प्त पा॑तन॒ पातु॑ नो॒ विष्णु॑-
रु॒त द्यौः ॥ १ ॥

पा॒तम् । न॒ः । इ॒न्द्रा॒पू॒ष॒णा॒ । अदि॑तिः । पान्तु॑ । म॒रुत॑ः ।
अ॑पाम् । न॒पा॒त् । सि॒न्ध॒व॒ः । स॒प्त । पा॒त॒न॒ । पातु । न॒ः । विष्णुः ।
उ॒त । द्यौः ॥ १ ॥

हे इन्द्रापूषणा । इन्द्रश्च पूषा च इन्द्रापूषणौ । ❀ “देवताद्वन्द्वे च” इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । “सुपां सुलुक्०” इति विभक्तेराकारः । इन्हन्पूषार्यम्णां शावेव सर्वनामस्थाने इति नियमाद् उपधादीर्घाभावः ❀ । हे इन्द्रापूषणौ नः अस्मान् पातम् रक्षतम् ॥ अदितिः अदीना देवमाता । सा अस्मान् पातु इति विपरिणामेन

संबन्धः ॥ मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याकाः सप्तगणात्मकास्तत्पुत्रा देवाः । ते च अस्मान् पान्तु रक्षन्तु ॥ अपां नपात् एतत्संज्ञः अबिन्धनोग्निः और्ववैद्युतलक्षणः । सप्त सिन्धवः सप्त समुद्राश्च यूयम् अस्मान् पातन पात रक्षत ॥ उत अपिच विष्णुर्व्यापनशीलो देवः द्यौः द्युलोकश्च नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥

हे इन्द्र और पूषा देवताओं ! आप हमारी रक्षा करें । अदीना देवमाता अदिति भी हमारी रक्षा करें, उड़श्वास मरुत् देवता भी हमारी रक्षा करें, और अपां नपात् नाम वाले जलको ईंधन समझने वाले और्ववैद्युतरूप अग्नि हमारी रक्षा करें, तथा सात समुद्र द्युलोक और विष्णुदेव भी हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पा॒तां नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒भिष्ट॑ये॒ पा॑तु॒ ग्रावा॒ पातु॒
सोमो॑ नो॒ अंह॑सः ।
पातु॑ नो दे॒वी सु॒भगा॒ सर॑स्वती॒ पात्व॒ग्निः शि॒वा ये
अ॑स्य पा॒यवः॑ ॥ २ ॥

पा॒ताम् । नः॒ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । अ॒भिष्ट॑ये । पातु॑ । ग्रावा॑ । पातु॑ ।
सोमः॑ । नः॒ । अंह॑सः ।
पातु॑ । नः॒ । दे॒वी । सु॒ऽभगा॑ । सर॑स्वती । पातु॑ । अ॒ग्निः ।
शि॒वाः । ये । अ॒स्य । पा॒यवः॑ ॥ २ ॥

द्यावापृथिवी । द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । ते नः अस्मान् पाताम् रक्षताम् । किमर्थम् । अभिष्टये अभ्येष-

णाय अभिमतफलप्राप्तये ॥ तथा ग्रावा अभिषवहेतुरश्मा पातु रक्षतु। अभिषुतश्च सोमो नः अस्मान् अंहसः पापात् पातु रक्षतु ॥ सुभगा सौभाग्ययुक्ता देवी दानादिगुणयुक्ता सरस्वती च मन्त्रात्मिका नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥ अग्निः आहवनीयादिरूपेण अवस्थितश्च पातु रक्षतु। अस्य अग्नेः शिवाः कल्याणाः सुखकराः पायवः राक्षसादिकृताद् दुःखात् पातारो ये रश्मयः सन्ति तेपि अस्मान्। रक्षन्त्विति शेषः। "ये पायवो मामतेयं ते अग्ने" [ऋ० १. १४७. ३] इत्यादि मन्त्रान्तरम्। ❀ पा रक्षणे इत्यस्मात् कृवापाजि० [उ० १. १] इति उण् प्रत्ययः। "आतो युक् चिण्कृतोः" इति युक् ❀ ॥

अभिलषित फलकी प्राप्तिके लिये द्यावापृथिवी हमारी रक्षा करें, और निचोड़नेका ग्रावा भी हमारी रक्षा करे, और निचोड़ा हुआ सोम भी पापसे हमारी रक्षा करे। और सौभाग्यसे युक्त दानादिगुणयुक्त मंत्ररूपा सरस्वती देवी भी हमारी रक्षा करें। आहवनीय आदिरूपसे स्थित अग्नि भी हमारी रक्षा करें। और इन अग्निदेव की राक्षस आदिके दुःखोंसे रक्षा करने वाली सुखदायिनी रश्मियें हमारी रक्षा करें † ॥ २ ॥

तृतीया ॥

पा॒तां॑ नो॑ दे॒वाश्विना॑ शु॒भस्पती॑ उ॒षासा॒नक्तो॒त न॑
उरुष्यताम्।
अपां॑ नपा॒दभि॑ह्रुती॒ गय॑स्य चि॒द् देव॑ त्वष्टर्व॒र्धय॑ स॒र्व-
ता॑तये ॥ ३ ॥

---

† "ये पायवो मामतेयं ते अग्ने" इस ऋक्संहिताके १। १४७। ३ में भी इसी बातका वर्णन है।

पाताम् । नः । देवा । अश्विना । शुभा । पती इति । उषासानक्ता ।
उत । नः । उरुष्यताम् ।

अपाम् । नपात् । अभिहुती । इत्यभिऽहुती । गयस्य । चित् ।
देव । त्वष्टः । वर्धय । सर्वऽतातये ॥ ३ ॥

हे [देवा] देवौ दानादिगुणयुक्तौ शुभस्पती शोभमानस्य दीप्यमानस्य तेजसः अलंकारस्य वा स्वामिनौ । ❀ शुभ शुम्भ दीप्तौ । अस्मात् क्विबन्तात् षष्ठी । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । यद्वा शुभः शोभमानायाः सूर्यायाः पती भर्तारौ ईदृशौ हे अश्विना अश्विनौ नः अस्मान् पातम् रक्षतम् ॥ उत अपि च उषासानक्ता । उषाश्च नक्तं च उषासानक्ता । ❀ "उषासोषसः" इति उषासा आदेशः ❀ । एतच्छब्दवाच्ये अहोरात्रदेवते नः अस्मान् उरुष्यताम् रक्षताम् । ❀ उरुष्यती रक्षाकर्मा इति यास्कः [नि० ५. २३] ❀ ॥ अपां नपात् मेघस्थानाम् अपां न पातयिता संवर्धकः एतत्संज्ञोग्निः कयस्य चित् । ❀ वर्णोपजनश्छान्दसः ❀ । कस्यचिदपि राक्षसादेः अभिहुती अभिहृतौ अभिहरणे अभितः सर्वतो हिंसने प्राप्ते अस्मान् रक्षतु इति शेषः । ❀ हृ कौटिल्ये इत्यस्मात् क्तिन्नन्तात् सप्तम्या ईकारः । "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इति प्रगृह्यत्वम् ❀ ॥ हे त्वष्टर्देव सर्वतातये सर्वस्मै फलाय अस्मान् वर्धय । ❀ "सर्वदेवात् तातिल्" इति स्वार्थिकस्तातिल् प्रत्ययः ❀ ॥

हे दान आदि गुणोंसे युक्त और दीप्यमान अलंकारके स्वामी अश्विनीकुमारों ! तुम हमारी रक्षा करो । उषासानक्ता नाम वाला दिन और रात्रिकी अभिमानी देवता भी हमारी रक्षा करें और मेघोंमें स्थित जलोंको न गिरने देने वाले संवर्धक अपां नपात्

नामक अग्नि, किसी भी राक्षससे सब ओरसे हिंसाकी प्राप्ति होने पर हमारी रक्षा करें। और हे त्वष्टा देवता! सबप्रकारकी फलकी प्राप्तिके लिये आप हमें बढ़ावें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वष्टा॑ मे॒ दैव्यं॒ वचः॑ प॒र्जन्यो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
पु॒त्रैर्भ्रातृ॑भि॒रदि॑ति॒र्नु पा॑तु नो दु॒ष्टरं॒ त्राय॑माण॒ṃ सहः॑ १

त्वष्टा॑ । मे॒ । दैव्य॑म् । वचः॑ । प॒र्जन्यः॑ । ब्रह्म॑णः । पतिः॑ ।
पु॒त्रैः । भ्रातृ॑ऽभिः । अदि॑तिः । नु । पा॒तु॒ । नः॒ । दु॒स्त॑रम् । त्राय॑माणम् । सहः॑ ॥ १ ॥

त्वष्टा देवः मे मदीयं दैव्यम् देवार्हं स्तुतिलक्षणं वचः शृणोतु। ❀ "देवाद् यञञौ" इति देवशब्दात् प्राग्दीव्यतीयो यञ् ❀ ॥ तथा पर्जन्यः वृष्टिकरो देवः। ब्रह्मणस्पतिः मन्त्रस्याधिपतिर्देवः। तावुभौ मदीयं स्तुतिवचनं शृणुताम् इत्यर्थः ॥ तथा अदितिः स्वकीयैः पुत्रैः भ्रातृभिश्च सह न अस्माकं त्रायमाणम् रक्षकं दुष्टरम् अन्यैस्तरीतुम् अशक्यम् अनतिक्रमणीयं सहः बलं नु क्षिप्रं पातु नियमेन रक्षतु ॥

त्वष्टा देवता मेरे देवोचित स्तुतिरूप वचनको सुनें तथा वृष्टि करने वाले पर्जन्य देव और मन्त्रके अधिपति ब्रह्मणस्पति देव मेरे स्तुतिरूप वचनको सुनें। तथा अदिति देवी अपने पुत्र और भ्राताओंके साथ हमारे रक्षक, दूसरोंसे कठिनतासे तरे जा सकने वाले बलकी शीघ्र ही नियमपूर्वक रक्षा करें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अं॒शो भगो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मादि॑तिः पान्तु म॒रुतः॑ ।

अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ।२।

अंशः । भगः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । अदितिः । पान्तु । मरुतः ।
अप । तस्य । द्वेषः । गमेत् । अभिऽह्रुतः । यवयत् । शत्रुम् । अन्तितम्

अंशादयः अदितेः पुत्राः । "तस्या अंशश्च भगश्चाजायेताम्" [तै० ब्रा० १, १. ९. २] इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धाः । ते च अदितिश्च मरुतः मरुद्गणाश्च पान्तु अस्मान् रक्षन्तु ॥ यस्माच्छत्रुजाताद् रक्षणं प्रार्थ्यते तस्य द्वेषः तत्कर्तृकम् अनिष्टाचरणम् अप गमेत् अस्मत्तः अपगच्छतु । ❀ "लिङ्याशिष्यङ् इति गमेर्लिङि अङ् प्रत्ययः ❀ । कीदृशो द्वेष इति विशिनष्टि । अभिह्रुतः अभितो हिंसकः । ❀ ह्रृ कौटिल्ये इत्यस्मात् कर्तरि निष्ठा ❀ । स च अस्मत्तः अपगतो द्वेषः तमेव शत्रुम् अन्ति अन्तिकात् । ❀ "कादिलोपो बहुलम्" इति वचनात् कादेर्लोपः ❀ । अस्मत्समीपाद् यवयत् पृथक्करोतु । ❀ यु मिश्रणामिश्रणयोः । अस्मात् ण्यन्तात् लेटि अडागमः ❀ ॥

अदितिके अंश भग वरुण मित्र और अर्यमा नामक पुत्र[‡] तथा अदिति और मरुद्गण हमारी रक्षा करें, जिन शत्रुओंसे हम रक्षा चाहते हैं उनका किया हुआ अनिष्टाचरण हमसे दूर होवे और वह चारों ओरसे हिंसा करने वाला हमसे दूर हुआ द्वेष उस शत्रुको हमारे पाससे दूर करे ॥ २ ॥

[‡] तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । ९ । २ में कहा है, कि–तस्या अंशश्च भगश्चाजायेताम् ॥–उन अदिति देवीके अंश और भग देवता हुए ।"

षष्ठी ॥

धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रच्छन् ।
द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥ ३ ॥

धिये । सम् । अश्विना । प्र । अवतम् । नः । उरुष्य । नः । उरुऽज्मन् । अप्रऽयुच्छन् ।
द्यौः । पितः । यवय । दुच्छुना । या ॥ ३ ॥

हे अश्विना अश्विनौ व्यापनशीलौ देवौ नः अस्मान् धिये । धीरिति कर्मनाम । अग्निहोत्रादिलक्षणाय सत्कर्मणे सद्बुद्धये वा सम्यक् प्रावतम् प्रकर्षेण रक्षतम् । यथा अस्माकं सत्कर्मविषया बुद्धिर्भवति तथा कुरुतम् इत्यर्थः ॥ हे उरुज्मन् विस्तीर्णगमन वायो अप्रयुच्छन् अप्रमाद्यन् त्वं नः अस्मान् उरुष्य रक्ष ॥ हे द्यौः हे पितः वृष्टिद्वारा सर्वस्य प्राणिजातस्य जनक द्युलोक दुच्छुना या दुष्टं शुनं सुखम् अस्याम् इति वा श्वेव दुष्टेति वा दुच्छुना अनिष्टकारिणी पापदेवता । ❀ पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिः ❀ । तां यवय अस्मत्तः अपगमय ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमार नामक देवताओं ! तुम हमारे अग्निहोत्र आदि कर्मकी और सद्‌बुद्धिकी श्रेष्ठतासे रक्षा करो, तात्पर्य यह है, कि–जिस प्रकार हमारी बुद्धि सत्‌कर्ममें प्रवृत्त हो तैसा करो । हे विस्तीर्ण गमन वाले वायुदेव ! आप प्रमादरहित होकर हमारी रक्षा करें, हे पिता द्यौः ! अर्थात् हे वृष्टिके द्वारा सब प्राणियोंके जनक द्युलोक ! जो दुष्ट कुत्तेकी समान अनिष्ट करने वाली और दुष्ट सुख वाली पापदेवता है, उसको हमसे अलग करिये ॥ ३ ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त (१७७) ॥

"उदेनम् उत्तरं नय" "योस्मान् ब्रह्मणस्पते" इति तृचाभ्यां ग्रामकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा ॥

तथा आभ्यां तृचाभ्याम् उदुम्बरपलाशकर्कन्धूतक्षणाधानम् सभोपस्तरणतृणाधानम् अभिमन्त्रितान्नासवप्रदानं वा कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "उदेनम् उत्तरं नय [६. ५] योस्मान् [६.६] इन्द्रः सुत्रामा [७. ९६] इति ग्रामकामो ग्रामसांपदानाम् अप्ययः" इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः आग्नेयचरुम् "उदेनम् उत्तरं नय" इत्याद्याभिस्तिसृभिरृग्भिर्जुहुयात् । सूत्रितं हि । "उदेनम् उत्तरं नयेति पुरस्ताद्धोमसंहतां पूर्वाम् एवं पूर्वांपूर्वां संहतां जुहोति स्वाहान्ताभिः प्रत्यृचं होमाः" इति [कौ० १. ४] ॥

तथा अग्निचयने षोडशगृहीतवैश्वकर्मणहोमानन्तरम् "उदेनम् उत्तरं नय" इत्यनेन आधीयमानाः समिधो ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "उदेनम् उत्तरं नयेति समिध आधीयमानाः" इति वैतानसूत्रात् [वै० ५. २] ॥

दर्शपूर्णमासयोः "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" [२] इत्यनया ऐन्द्रम् आघारं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत ॥

तथा अनयैव ऐन्द्रं सांनाय्ययागम् अनुमन्त्रयेत ॥

"इन्द्रेमम् इत्यैन्द्रम् आघारम्" इति [वै० १. २] "सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वेन्द्रेमम् [२] त्वम् इन्द्रस्त्वं महेन्द्रः [१७.१८]" इति च वैतानं सूत्रम् [वै० १. ३] ॥

अद्भुतमहाशान्तौ इन्द्रयजने "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" [२] इत्येषा ऋग् विनियुक्ता । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अथातोऽद्भुतमहाशान्तौ दिशो यजते" इति प्रक्रम्य "इन्द्रेमं प्रतरं कृधीतीन्द्रस्य" इति [न० क० १४] ॥

ग्रामको चाहनेवाला "उदेनं उत्तरं नय" और "योस्मान् ब्रह्मणस्पते" इन दो तृचाओंसे इन्द्रका पूजन वा उपस्थान करे ।

तथा इन दोनों तृचोंसे गूलड़ पलाश वेरके बुरादेको रक्खे सभाके बिछौनेके तिनकोंको रक्खे वा अभिमंत्रित अन्नके आसव को देवे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-“उदेनं उतरं नय (६ । ५) योऽस्माम् (६ । ६) इन्द्रः सुत्रामा (७ । ९६) इति ग्राम-कामो साम्पदानां अप्ययः” इति (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा दर्शपूर्णमासमें आग्नेय चरुको ‘उदेनं उत्तरं नय’ इन तीन पहिली ऋचाओंसे होमे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“उदेनं उत्तरं नयेति पुरस्ताद्धोमसंहतां पूर्वां एवं पूर्वां पूर्वां संहताम् जुहोति स्वाहान्ताभिः प्रत्यृचं होमाः—अर्थात् पुरस्ताद्धोम संज्ञा वाली पहिली तीन ऋचाओंमेंसे प्रत्येक ऋचाके अन्तमें स्वाहा शब्द लगाकर आहुति देय ।” (कौशिकसूत्र १ । ४) ॥

तथा अग्निचयनमें षोडशगृहीतवैश्वकर्मण होमके अनन्तर ‘उदेनं उत्तरं नय’ से रक्खी जाती हुई समिधाओंका ब्रह्मा अनुमंत्रण करे । वैतानसूत्र ५ । २ में कहा भी है, कि—“उदेनं उत्तरं नयेति समिध आधीयमानाः” ॥

ब्रह्मा दर्शपूर्णमासमें “इन्द्रेमं प्रतरं कृधि” इस दूसरी ऋचा से ऐन्द्र आघारका अनुमन्त्रण करे ।

तथा इसी ऋचासे इन्द्रसंबंधी सांनाय्ययागका अनुमंत्रण करे । इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि—“इन्द्रेमं इत्यैन्द्रं आघारम् (वैतानसूत्र १ । २) “सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वेन्द्रेमम् (२) त्वं इन्द्रस्त्वं महेन्द्रः (१७ । १८) इति च (वैतानसूत्र १ । ३) ॥

अद्भुतमहाशान्तिके इन्द्रपूजनमें “इन्द्रेमं प्रतरं कृधि” इस दूसरी ऋचाका विनियोग होता है । इसी बातको नक्षत्रकल्प १४ में कहा है, कि—“अथातोऽद्भुतमहाशान्तौ दिशो यजते” इति प्रक्रम्य “इन्द्रेमं प्रतरं कृधीतीन्द्रस्य” ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदे॑नमुत्त॒रं न॒याग्ने॑ घृ॒तेना॑हुत ।
समे॑नं॒ वर्च॑सा सृज प्र॒जया॑ च ब॒हुं कृ॑धि ॥ १ ॥

उत् । ए॒न॒म् । उ॒त्ऽत॒रम् । न॒य॒ । अग्ने॑ । घृ॒तेन॑ । आ॒ऽहु॒त॒ ।
सम् । ए॒न॒म् । वर्च॑सा । सृ॒ज॒ । प्र॒ऽजया॑ । च॒ । ब॒हुम् । कृ॒धि॒ ।१।

हे घृतेनाहुत आज्येन आहूयमान । ❀ "सुबामन्त्रिते०" इति तृतीयान्तस्य पराङ्गवद्भावात् पदद्वयस्य आष्टमिकम् आमन्त्रितानुदात्तत्वम् ❀ । ईदृश हे अग्ने एनं यजमानम् उत्तरम् उत्कृष्टतरं स्थानम् उन्नय उत्कर्षेण ऊर्ध्वं वा प्रापय । यद्वा । उत्तरम् इति उत्कर्षार्थवृत्तिन उच्छब्दात् तरप् । "अमु च च्छन्दसि" इति अमुप्रत्ययः । अनेन च उन्नयनक्रियायाः प्रकर्षो द्योत्यते । एक उच्छब्दः अनुवादः । उत्कर्षप्रापणानन्तरम् एनं यजमानं वर्चसा तेजसा शरीरकान्त्या सं सृज संयोजय । प्रजया पुत्रपौत्रादिलक्षणया च बहुम् बहुलं कृधि कुरु । ❀ "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

हे घृतसे बुलाये जाने वाले अग्ने ! इस यजमानको आप श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्ति कराइये और उत्कृष्ट बताइये और इसको उत्कृष्ट करनेके अनन्तर इस यजमानको शरीरकी कान्तिसे सम्पन्न करिये, और पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजासे इसको बढ़ाइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रे॒मं प्र॑त॒रं कृ॑धि सजा॒ताना॑मसद् व॒शी ।
रा॒यस्पोषे॑ण॒ सं सृ॑ज जी॒वात॑वे ज॒रसे॑ नय ॥ २ ॥

इन्द्र॑ । इ॒मम् । प्र॒ऽत॒रम् । कृ॒धि॒ । स॒ऽजा॒ताना॑म् । अ॒स॒त् । व॒शी ।

रा॒यः । पोषे॑ण । सम् । सृ॒ज॒ । जी॒वात॑वे । ज॒रसे॑ । न॒य॒ ॥ २ ॥

हे इन्द्र इमं यजमानं प्रतरम् प्रवृद्धतरं कृधि कुरु ॥ सजातानाम् समानजन्मनां भ्रातृणां मध्ये वशी वशयिता स्वतन्त्रः अधिष्ठाता असत् त्वत्प्रसादाद् भवतु ॥ अपि च एनं रायस्पोषेण धनसमूहेन सं सृज संयोजय । ❀ "ऊडिदंपदादि०" इति रायो विभक्तिरुदात्ता । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । तदा एतत् सर्वं सति जीवने इत्याशयेनाह जीवातव इति । जीवातुर्जीवनौषधम् । ❀ जीव प्राणधारणे इत्यस्मात् जीवेरातुः [उ० १.७६] इति आतुप्रत्ययः ❀ । चिरजीवननिमित्ताय जरसे जरायै इमं यजमानं नय प्रापय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । जरापर्यन्तम् अखण्डितं दीर्घम् आयुषो दैर्घ्यं प्रापयेत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! इस यजमानको आप बहुत बढ़ा हुआ करिये, यह आपके प्रसादसे अपने समान जन्म वाले भाई बांधवोंमें सबको वशमें रखने वाला और स्वयं स्वतन्त्र हो, इसको बहुतसे धनकी पुष्टिसे संयुक्त करिये और इसको जीनेके लिये बुढ़ापे तक ले जाइये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यस्य॑ कृ॒ण्मो ह॒विर्गृ॒हे तम॑ग्ने वर्ध॑या॒ त्वम् ।
तस्मै॒ सोमा॒ अधि॑ ब्रव॒दयं॑ च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑ः ॥ ३ ॥

यस्य॑ । कृ॒ण्मः । ह॒विः । गृ॒हे । तम् । अ॒ग्ने॒ । व॒र्ध॑य॒ । त्वम् ।

तस्मै॑ । सोम॑ः । अधि॑ । ब्र॒व॒त् । अ॒यम् । च॒ । ब्रह्म॑णः । पति॑ः ३

यस्य यजमानस्य गृहे चरुपुरोडाशादिलक्षणं हविः देवार्थं कृण्मः कुर्मः । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति

उप्रत्ययः । "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः ❀ । हे अग्ने त्वं तं तजमानं वर्धय समृद्धं कुरु । तस्मै यजमानाय सोमो देवः [अधि] ब्रवत् अधिब्रवीतु । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । अस्मदीयोयम् इत्यनुगृह्णातु इत्यर्थः । अयं च ब्रह्मणस्पतिः वेदस्याधिष्ठाता एतत्संज्ञो देवः अधिब्रवीतु ॥

जिस यजमानके घरमें हम चरु पुरोडाश आदि हविको देवताओंके लिये कर रहे हैं हे अग्ने ! उस यजमानकी आप वृद्धि करिये । और सोम देवता उसके विषयमें पक्षपातपूर्वक कहें, कि-यह हमारा है । और इसी प्रकार वेदके अधिष्ठाता ब्रह्मणस्पति देवता कहें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यो॒॑ऽ॒स्मान् ब्रह्मणस्प॒ते दे॑वो अ॒भिमन्य॑ते ।
स॒र्वं॑ तं र॑न्धयासि मे॒ यज॑मानाय सु॒न्वते ॥ १ ॥

यः । अ॒स्मान् । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । अदे॑वः । अ॒भि॒ऽमन्य॑ते ।
सर्व॑म् । तम् । र॒न्ध॒या॒सि॒ । मे॒ । यज॑मानाय । सु॒न्व॒ते ॥ १ ॥

हे ब्रह्मणस्पते अदेवः निर्देवो यः शत्रुः अस्मान् अभिमन्यते अभिहन्तव्यान् जानाति । अभिपूर्वो मन्यतिर्हिंसार्थे । यथा । "न तत्र रुद्रः पशून् अभिमन्यते" इति [तै० सं० ३. १. ९. ६] । तं सर्वं शत्रुं सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते मे मह्यं यजमानाय मदीयाय वा रन्धयासि रन्धय वशीकुरु । ❀ रध्यतिर्वशगमने इति यास्कः [नि० १०. ४०] । रध हिंसासंराद्ध्यो । अस्मात् ण्यन्तात् लेटि आडागमः । "रधिजभोरचि" इति नुम् । "शतुरनुमः०" इति सुन्वच्छब्दात् परा विभक्तिरुदात्ता ❀ ॥

हे ब्रह्मणस्पते देव ! जो देवताओंकी भक्ति न करने वाला

शत्रु हमको मारनेका पात्र समझता है, उस शत्रुको आप सोमाभिषव करने वाले मेरे यजमानके अधीन कर दीजिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यो नः सोम सुशंसिनो॑ दु॒ःशंस॑ आ॒दिदे॑शति ।
वज्रे॑णास्य॒ मुखे॑ जहि॒ स संपि॑ष्टो॒ अपा॑यति ॥ २ ॥

यः । नः॒ । सो॒म॒ । सु॒ऽशं॒सिनः॑ । दुः॒ऽशंसः॑ । आ॒ऽदिदे॑शति ।
वज्रे॑ण । अ॒स्य॒ । मुखे॑ । ज॒हि॒ । सः । सम्ऽपि॑ष्टः । अप॑ । अ॒य॒ति॒ ।२।

हे सोम यो दुःशंसः दुष्टाभिशंसनः दुष्टाभिप्रायः शत्रुः सुशंसिनः शोभनाशंसान् नः अस्मान् आदिदेशति आदिशति निष्ठुरभाषणेन न्यक्करोति । ❀ आङ्पूर्वाद् दिशेः परस्य विकरणस्य व्यत्ययेन श्लुः । पुनश्च शप् ❀ । अस्य शत्रोर्मुखे वज्रेण वर्जकेन आयुधेन जहि ताडय । स शत्रुः संपिष्टः वज्राघातेन चूर्णीभूतः सन् अपायति अपगच्छतु ॥

हे सोम ! जो दुष्ट अभिप्राय वाला शत्रु अच्छे अभिप्राय वाले हमारा निष्ठुर भाषण कर तिरस्कार करता है, उस शत्रुके मुख पर आप वज्र नामक आयुधसे प्रहार करिये। तब वह शत्रु वज्राघात से चूर्ण होकर भाग जावे ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यो न॑ सोमाभि॒दास॑ति॒ सना॑भि॒र्यश्च॒ निष्ट्यः॑ ।
अप॒ तस्य॒ बलं॑ तिर म॒हीव॒ द्यौर्व॑ध॒त्मना॑ ॥ ३ ॥

यः । नः॒ । सो॒म॒ । अ॒भि॒ऽदास॑ति । सऽना॑भिः । यः । च । निष्ट्यः॑ ।
अप॑ । तस्य॑ । बल॑म् । ति॒र॒ । म॒हीऽइ॑व । द्यौः । व॒ध॒त्मना॑ ॥ ३ ॥

हे सोम यः शत्रुः सनाभिः समानजन्मा दायादः नः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति । यश्च निष्ट्यः निकृष्टः शत्रुः अस्मान् बाधते । तस्य बलम् अप तिर अपजहि । तत्र दृष्टान्तः महीवेति । यया मही महती द्यौः वधत्मना वधः हन्यन्ते अनेन जना इति अशनिर्वधः । ❀ "हनश्च वधः" इति अप् तत्संनियोगेन वधादेशश्च । "मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" इति आत्मन आकारलोपः ❀ । वधात्मना अशनिरूपेण आयुधेन निहन्ति । तथा वज्रेण तस्य बलं वृश्चेत्यर्थः ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे सोम ! जो समान जन्म वाला दायाद हमारा नाश करना चाहता है और जो निकृष्ट शत्रु हमको पीड़ित कर रहा है, उसके बलको आप बड़ा भारी द्युलोक जैसे वध करने वाली अशनिसे संहार करता है, तिस प्रकार नष्ट करिये ॥ ६ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (१७९) ॥

"येन सोम" इति तृचेन यागविघ्नशमनार्थं सरूपवत्साया गोः क्षीरे पक्वं पायसं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा अयाज्ययाजनदोषशमनार्थं च यागसमाप्त्यनन्तरं चरुणा सोमं यजेत ॥

सूत्रितं हि । "येन सोमेति याजयिष्यन् सारूपवत्सम् अश्नाति निधने यजते" इति [कौ० ५. १०] ॥

"यथा वृक्षं लिबुजा" इति तृचेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि वृक्षत्वक्शरखण्डतगराञ्जनकुष्ठादिद्रव्याणि पेषयित्वा आज्येन आलोड्य स्त्रिया अङ्गम् अनुलिम्पेत् । सूत्रितं हि । "यथा वृक्षम् [६. ८] वाञ्छ मे [६. ९] यथायं वाहः [६. १०२] इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषुतगराञ्जनकुष्ठमधुघरेष्ममथिततृणम् आज्येन संनीय संस्पृशति" इति [कौ० ४. ११] ॥

'येन सोम' इन तीन ऋचाओंसे यागके विघ्नकी शान्तिके लिये सरूपवत्सा गौके क्षीरमें बने हुए पायसका सम्पातन और अभिमंत्रण करके भक्षण करे।

तथा यज्ञ न कराने योग्यको यज्ञ कराने पर यागकी समाप्ति के अनन्तर चरुसे सोमका यजन करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"येन सोमेति याजयिष्यन् सारूपवत्सं अश्नाति निधने यजते।" (कौशिकसूत्र ५। १०)॥

स्त्रीवशीकरणकर्ममें "यथा वृक्षं लिबुजा" इन तीन ऋचाओं वृक्षकी छाल, सैंटेके टुकड़े तगर अञ्जन और कूट आदि द्रव्योंको पीस कर घृतमें मिला कर स्त्रीके अंग पर चुपड़ देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यथा वृक्षम् (६। ८) वाञ्छ मे (६। ६) यथायं वाहः (६।१०२) इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषुतगरांजनकुष्ठमधुघरेष्ममथिततृणं आज्येन संनीय संस्पृशति" (कौशिकसूत्र ४।११)॥

तत्र प्रथमा॥

ये॑न सो॒मादि॑तिः प॒था मि॒त्रा वा॒ यन्त्य॒द्रुहः॑ ।
तेना॒ नोव॒सा ग॑हि ॥ १ ॥

ये॑न । सो॒म॒ । अदि॑तिः । प॒था । मि॒त्राः । वा॒ । यन्ति॑ । अ॒द्रुहः॑ ।
तेन॑ । नः॒ । अव॑सा । आ । ग॒हि॒ ॥ १ ॥

हे सोम येन पथा मार्गेण देवयानाख्येन अदितिः अखण्डनीया एतत्संज्ञा देवमाता मित्रा वा। ❀ वाशब्दः चार्थे। बहुवचनाद् आद्यर्थलाभः ❀। मित्राद्याश्च तत्पुत्रा द्वादशादित्याः यन्ति संचरन्ति। कुतो हेतोः संचरन्ति तत्राह। यतस्ते अद्रुहः अद्रोग्धार

अनुग्रहशीलाः। तस्माज्जगदनुग्रहार्थं तेषां पर्यटनं युक्तम् इत्यर्थः। तेन मार्गेण नः अस्मान् अवसा रक्षणेन सह आ गहि आगच्छ। ❀ गमेर्लोटि शपो लुक्। "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः। तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वाद् "अतो हेः" इति लुङ् न भवति ❀ ॥

हे सोम ! जिस देवयान नाम वाले मार्गमें किसीसे द्रोह न करने वाले अत एव जगत् पर अनुग्रह करने वाले मित्र आदि बारह आदित्य और उनकी माता अदिति देवी घूमती हैं, उसी मार्ग से आप रक्षाके भावको लेकर आइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

येन॑ सोम साह॒न्त्यासु॑रान् र॒न्धया॑सि नः ।
तेना॑ नो॒ अधि॑ वोचत ॥ २ ॥

येन॑ । सो॒म॒ । सा॒ह॒न्त्य॒ । असु॑रान् । र॒न्धया॑सि । न॒ः ।
तेन॑ । न॒ः । अधि॑ । वो॒च॒त॒ ॥ २ ॥

हे सोम साहन्त्य। ❀ षह अभिभवे इत्यस्माद् औणादिको झिच् प्रत्ययः ❀। सहन्तिः सोढा अभिभवित्ता। तत्र भवः साहन्त्य। ❀ "पाथोनदीभ्यां ड्यण्" इति बाहुलकाद् अस्मादपि द्रष्टव्यः❀। ईदृश हे सोम येन बलेन नः अस्मदर्थम् असुरान् रन्धयासि वशीकरोषि। अभिभवसीत्यर्थः। तेन बलेन नः अस्मभ्यम् अधि वोचत। अधिवचनं पक्षपातेन वचनम्! ❀ "अस्यतिवक्ति०" इत्यादिना वक्तेः अङ् आदेशः। "वच उम्" इति उम् आगमः ❀ ॥

हे दवाने वाले पत्थरसे उत्पन्न हुए सोम ! जिस बलसे तुम हमारे कारण राक्षसोंको वशमें करते हो उसी बलको हमारे विषैं पक्षपातपूर्वक कहो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥

येन । देवाः । असुराणाम् । ओजांसि । अवृणीध्वम् ।
तेन । नः । शर्म । यच्छत ॥ ३ ॥

हे देवाः येन आत्मीयेन बलेन असुराणाम् सुरविरोधिनां क्षेपणशीलानां वा शत्रूणाम् ओजांसि बलानि अवृणीध्वम् ततः पृथक्कृत्य यूयं संभक्तवन्तः तेन बलेन नः अस्मभ्यं शर्म सुखं यच्छत प्रयच्छत । ❀ दाण् दाने । शपि "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ❀ ॥

हे देवताओं ! अपने जिस बलसे तुमने देवताओंके विरोधी असुरोंके बलोंको और अस्त्र फेंकने वाले शत्रुओंके बलोंको उनसे पृथक् करके अपनेमें मिला लिया है, उस बलसे हमको सुखदो ३

चतुर्थी ॥

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥

यथा । वृक्षम् । लिबुजा । समन्तम् । परिऽसस्वजे ।
एव । परि । स्वजस्व । माम् । यथा । माम् । कामिनी । असः ।
यथा । मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ १ ॥

[लिबुजा] । ❀ लिबुजा व्रततिर्भवतीति यास्कः [नि० ६.

२८] ❀ । यथा ताम्बूलादिवल्ली स्वाश्रयं वृक्षं समन्तम् सर्वतः परिषस्वजे आश्लिष्यति । ❀ ष्वञ्ज परिष्वङ्गे । अस्मात् छान्दसो लिट् । “श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनाम् इति वक्तव्यम्” इति लिटः कित्त्वाद् अनुनासिकलोपः ❀ । हे जाये एव एवं मां परि ष्वजस्व आश्लिष्य । यथा येन प्रकारेण मां कामिनी कामयमाना असः भवेः यथा च मत् सकाशाद् अपगाः अपगन्त्री च नासः न भवसि । तथाहं त्वाम् अनेन प्रयोगेण वशीकरोमीत्यर्थः ॥

जैसे ताम्बूल आदिकी बेल अपने आश्रय वृक्षको चारों ओर से लपेट लेती है, हे जाये ! इसी प्रकार तू मेरा आलिंगन कर । जिस प्रकार तू मेरी अभिलाषा वाली बनी रहे और मेरे पाससे न जा सके (इस प्रकार मैं तुझको इस प्रयोगसे वशमें करता हूँ) ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा
मन्नापगा असः ॥ २ ॥

यथा । सुऽपर्णः । प्रऽपतन् । पक्षौ । निऽहन्ति । भूम्याम् ।
एव । निः । हन्मि । ते । मनः । यथा । माम् । कामिनी । असः ।
यथा । मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ २ ॥

यथा सुपर्णः गरुत्मान् प्रपतन् स्वावासस्थानाद् उत्तिष्ठन् भूम्यां स्वकीयौ पक्षौ निहन्ति वीजनवेगेन ताडयति हे योषित् एव एवमेव ते त्वदीयं मनः हृदयं नि हन्मि नितरां पीडयामि । अस्मद्वशं करोमीत्यर्थः । यथा माम् इत्यादि पूर्ववद् वाक्यशेषस्य योजना ॥

जैसे गरुड़ अपने स्थानसे उठता हुआ भूमिमें अपने परोंको ताड़ित करता है, हे स्त्री! इसी प्रकार तेरे मनको मैं पीड़ित करता हूँ, अपने वशमें करता हूँ, जिस प्रकार तू मेरी अभिलाषा वाली बनी रहे और मेरे पाससे न जा सके (इस प्रकार मैं तुझको इस प्रयोगसे वशमें करता हूँ)॥ २ ॥

षष्ठी ॥

य॒थे॒मे द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्यः प॒र्येति॒ सूर्यः॑ ।
ए॒वा पर्यें॑मि ते॒ मनो॒ यथा॒ मां का॒मिन्यसो॒ यथा॒ मन्नाप॑गा॒
अस॑ः ॥ ३ ॥

यथा॑ । इ॒मे इति॑ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । स॒द्यः । प॒रि॒ऽएति॑ । सूर्यः॑ ।
ए॒व । परि॑ । ए॒मि॒ । ते॒ । मनः॑ । यथा॑ । माम् । का॒मिनी॑ । अस॑ः ।
यथा॑ । मत् । न । अप॑ऽगाः । अस॑ः ॥ ३ ॥

इमे परिदृश्यमाने द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं च [यथा] सूर्यः सर्वस्य प्रेरको भास्करः सद्यः शीघ्रं पर्येति परितो व्याप्नोति एव एवं हे योषित् ते त्वदीयं मनः अहं पर्येमि परितः प्राप्नोमि । यथा माम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

इन दीखते हुए द्युलोक भूलोक और स्वर्गलोकको सबके प्रेरक सूर्यदेव शीघ्र ही चारों ओरसे व्याप्त कर लेते हैं, हे स्त्रि! इसी प्रकार मैं तेरे चित्तमें चारों ओरसे व्याप्त होता हूँ, जिस प्रकार तू मेरी अभिलाषा वाली बनी रहे और मेरे पाससे न जा सके (इस प्रकार मैं तुझको इस प्रयोगसे वशमें करता हूँ)॥ ३ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (१८१)॥

“वाञ्छ मे” इति तृचस्य “यथा वृक्षं लिबुजा” इति तृचवद्

विनियोगो द्रष्टव्यः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

“पृथिव्यै श्रोत्राय” इति तृचेन सर्वसंपत्कर्मसु आज्यं जुहुयात् । “पृथिव्यै श्रोत्रायेति जुहोति” इति [कौ० २, ३] सूत्रितत्वात् ॥

“वाञ्छ मे” इन तीन ऋचाओंका “यथा वृक्षं लिबुजा” इन तीन ऋचाओंकी समान विनियोग समझना चाहिये । सूत्र भी तहाँ ही कहा है ।

“पृथिव्यै श्रोत्राय” इन तीन ऋचाओंसे सकल सम्पत् कर्मोंमें घृतकी आहुति देय । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-“पृथिव्यै श्रोत्रायेति जुहोति” (कौशिकसूत्र २ । ३) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वाञ्छ॑ मे त॒न्वं॑१॒ पादौ॒ वाञ्छा॒क्ष्यौ॒३॒ वाञ्छ॑ स॒क्थ्यौ॑
अ॒क्ष्यौ॑ वृष॒ण्यन्त्या॒ः केशा॒ मां ते॒ कामे॑न शुष्यन्तु १

वाञ्छ॑ । मे॒ । त॒न्व॑म् । पादौ॑ । वाञ्छ॑ । अ॒क्ष्यौ॑ । वाञ्छ॑ । स॒क्थ्यौ॑ ।
अ॒क्ष्यौ॑ । वृ॒ष॒ण्यन्त्याः॑ । केशाः॑ । माम् । ते॒ । कामे॑न । शु॒ष्य॒न्तु॒ १

हे कामिनि मे मम तन्वम् शरीरं वाञ्छ कामयस्व । ❀ वाछि इच्छायाम् इति धातुः ❀ । तथा मदीयौ पादौ वाञ्छ इच्छ । अक्ष्यौ मदीये अक्षिणी सक्थ्यौ सक्थिनी च वाञ्छ कामयस्व । मत्परतन्त्रा भवेत्यर्थः । ❀ “ई च द्विवचने” इति ईकारः ❀ । तत्पारतन्त्र्यम् आत्मनः आविष्करोति अक्ष्याविति । वृषण्यन्त्याः वृषाणं सेचनसमर्थं युवानम् आत्मन इच्छन्त्याः कामिन्यास्ते तव अक्ष्यौ अक्षिणी केशाश्च लावण्यातिशयेन कामेन चित्तविकारेण मां शुष्यन्तु शोषयन्ति । परितापयन्तीत्यर्थः । अतो वाञ्छेति संबन्धः ॥

हे कामिनी ! तू मेरे शरीरकी इच्छा कर, मेरे पैरोंकी इच्छा

कर, मेरे नेत्र और जङ्घाओंकी इच्छा कर अर्थात् तू मेरे अधीन होजा, तुझ सेचनसमर्थ तरुण पुरुषको चाहने वालीके केश और नेत्र परम सुन्दर होनेसे मुझे चित्तविकारके द्वारा सन्तप्त करते हैं १

द्वितीया ॥

मम॑ त्वा दोषणि॒श्रिषं॑ कृ॒णोमि॑ हृदय॒श्रिष॑म् ।
य॒था मम॒ क्रता॒वसो॒ मम॑ चि॒त्तमु॒पाय॑सि ॥ २ ॥

मम॑ । त्वा॒ । दो॒ष॒णि॒ऽश्रिष॑म् । कृ॒णोमि॑ । हृ॒द॒य॒ऽश्रिष॑म् ।
यथा॑ । मम॑ । क्रतौ॑ । अस॑ः । मम॑ । चि॒त्तम् । उ॒प॒ऽआय॑सि ॥२॥

हे कामिनि त्वा त्वां मम दोषणिश्रिषम् बाहौ आसक्तां हृदयश्रिषम् हृदयासक्तां च कृणोमि करोमि । ❀ श्रिष आलिङ्गने इत्यस्मात् कर्तरि क्विप् । "पद्दन्०" इत्यादिना दोःशब्दस्य दोषन्नादेशः । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक् । यथा येन प्रकारेण मम क्रतौ मदीये संकल्पे असः तत्परतन्त्रा भवसि यथा च मम मदीयं चित्तम् उपायसि उपगच्छसि । मदधीना भवसीत्यर्थः ॥

हे कामिनि ! तू जिस प्रकार मेरे सङ्कल्पके अनुकूल होकर मेरे चित्तको प्राप्त हो तिस प्रकार मैं तुझको अपनी भुजाओंमें और हृदयमें जकड़ी हुई करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यासां॒ नाभि॑रा॒रेह॑णं हृ॒दि सं॒वन॑नं कृ॒तम् ।
गावो॑ घृ॒तस्य॑ मा॒तरो॒मूं सं वा॑नयन्तु मे ॥ ३ ॥

यासा॑म् । नाभि॑ः । आ॒ऽरेह॑णम् । हृ॒दि । स॒म्ऽवन॑नम् । कृ॒तम् ।
गाव॑ः । घृ॒तस्य॑ । मा॒तर॑ः । अ॒मूम् । सम् । व॒न॒य॒न्तु॒ । मे॒ ॥ ३ ॥

यासां स्त्रीणां नाभिः नाभ्युपलक्षितम् अङ्गम् आरेहणम् आलेहनम् आस्वादनीयं भवति यासां च हृदि हृदये संवननम् संभजननिमित्तं वशीकरणं कृतम् विधात्रा निर्मितम् ता अमूः परिदृश्यमानाः स्त्रीः [घृतस्य] घृतोपलक्षितस्नेहद्रव्यस्य मातरः निर्मात्र्यो गावः मे मह्यं सं वनयन्तु वशीकुर्वन्तु ॥

जिन स्त्रियोंका नाभि आदि अंग प्रशंसा करनेके योग्य होता है और जिनके हृदयमें विधाताने वशीकरण कर रक्खा है उन इन दीखती हुई स्त्रियोंको घृत दुग्ध आदिका निर्माण करने वाली गौएँ मेरे वशमें करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

पृ॒थि॒व्यै श्रोत्रा॑य॒ व॒नस्पति॑भ्यो॒ग्नये॒धि॑पतये॒ स्वाहा॑ ॥१॥

पृ॒थि॒व्यै । श्रोत्रा॑य । व॒नस्पति॑ऽभ्यः । अ॒ग्नये॑ । अधि॑ऽपतये । स्वाहा॑

पृथिव्यै पृथिवीदेवतायै श्रोत्राय शब्दग्रहणसाधनभूताय इन्द्रियाय । "दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति श्रुतेस्तस्य दिगात्मकत्वाद् दिशां च पृथिव्येकदेशसंयोगित्वात् पृथिवीश्रोत्रयोर्मिथः संबन्धः । वनस्पतिभ्यः पृथिव्याम् अवस्थितेभ्यो वृक्षेभ्यः तदधिष्ठातृदेवताभ्यः ईदृश्याः पृथिव्या योऽग्निरधिपतिः [च] स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

पृथिवी देवताके लिये और शब्दग्रहणकी साधनभूत श्रोत्र इन्द्रियके लिये, † पृथिवी पर स्थित वृक्षोंके अधिष्ठात्री देवताओं

---

† "दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्—दिशाएँ श्रोत्र बन कर कानोंमें घुस गईं" इस ऐतरेय आरण्यककी २ । ४ । २ श्रुतिके अनुसार श्रोत्र दिगात्मक हैं और दिशाएँ पृथिवीके किसी न किसी स्थानसे सम्बन्ध रखती ही हैं । अतः पृथिवी और श्रोत्रका आपसमें संबंध है ।

के लिये और ऐसी पृथिवीके अधिपति अग्निदेवके लिये यह हवि स्वाहुत हो ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

प्रा॒णाया॒न्तरि॑क्षाय॒ वयो॑भ्यो वा॒यवेधि॑पतये॒ स्वाहा॑ २

प्रा॒णाय॑ । अ॒न्तरि॑क्षाय । वयः॑ऽभ्यः । वा॒यवे॑ । अधि॑ऽपतये । स्वाहा॑

मुखनासिकाभ्यां संचरन् वायुः प्राणः । तत्सहचरं गन्धग्राहकम् इन्द्रियं तदाश्रयभूता नासिका च प्राणशब्देन विवक्ष्यते । “वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्” इति हि श्रुतम् [ऐ० आ० २. ४. २] । तस्मै प्राणाय तत्संबन्धिने अन्तरिक्षाय तत्र ये संचरन्ति वयांसि पक्षिणस्तेभ्यो वयोभ्यः तस्यान्तरिक्षस्य अधिपतये अधिष्ठात्रे वायवे च इदं हविः स्वाहा स्वाहुतम् अस्तु ॥

(मुख और नासिकाओंमें विचरण करने वाला वायु प्राण कहलाता है और उसकी सहचारिणी गंधको ग्रहण करने वाली इन्द्रिय और उसकी आश्रयभूता नासिका भी प्राणशब्दसे कही जाती है, इस विषयमें ऐतरेय ब्राह्मण २ । ४ । २ में कहा है, कि—वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥—वायु प्राण बन कर नासिकामें गया ॥”) ऐसे प्राणके लिये और उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्तरिक्षके लिये और उस अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले पक्षियोंके लिये और उस अन्तरिक्षके अधिष्ठात्री देवता वायुके लिये यह हवि स्वाहुत हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

दि॒वे चक्षु॑षे॒ नक्ष॑त्रेभ्यः॒ सू॒र्या॑याधि॑पतये॒ स्वाहा॑ ॥३॥

दि॒वे । चक्षु॑षे । नक्ष॑त्रेभ्यः । सूर्या॑य । अधि॑ऽपतये । स्वाहा॑ ॥३॥

दिवे द्युलोकाय चक्षुषे । रूपग्रहणसाधनम् इन्द्रियं चक्षुः तद्गोलकं च तस्मै । “आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्” [ऐ० आ०

२. ४. २] इति श्रुतेः । तस्य आदित्यात्मकत्वात् द्युलोकस्य च तत्संचारस्थानत्वात् अनयोः संबन्धः । नक्षत्रेभ्यः द्युलोकस्थेभ्यः ईदृश्या दिवः अधिपतये स्वामिने सूर्याय प्राणात्मना सर्वप्राणिनां प्रेरकाय दिवाकराय स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु । ❀ “राजसूयसूर्य०” इत्यादिना सुवतेः क्यपि निपातनाद् रूपसिद्धिः ❀ । तस्य च जगत्प्राणरूपता अन्यत्र श्रूयते । “योसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणान् आदाय उदेति” इति [तै० आ० १. १४. १]

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकांडे प्रथमोनुवाकः

द्युलोकके लिये और रूपग्रहणकी साधन चक्षुरिन्द्रियके लिये ‡ द्युलोकमें स्थित नक्षत्रके लिये और ऐसे द्युलोकके स्वामी प्राणात्मारूपसे † सब प्राणियोंके प्रेरक दिवाकरके लिये यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (१८३) ॥

प्रथम अनुवाक समाप्त ।

द्वितीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र “शमीम् अश्वत्थः” इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन पुंसवनकर्मणि शमीगर्भाश्वत्थाग्निं मधुमन्थे प्रक्षिप्य अभिमन्त्र्य स्त्रियं पाययेत् ॥

---

‡ ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ में कहा है, कि–“आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत् ॥–सूर्य चक्षु होकर नेत्रोंमें प्रवेश कर गए” ॥ इस प्रकार चक्षु और सूर्यके संचारका स्थान होनेसे द्युलोक, इन दोनोंका सूर्यसे संबंध है ।

† सूर्यदेवके जगत्प्राणरूप होनेका अन्यत्र वर्णन है, कि-“योऽसौ तपन्नुदेति सं सर्वेषां प्राणिनां प्राणान् आदायोदेति ॥–यह जो सूर्यदेव उदय होते हैं, यह सब प्राणियोंके प्राणोंको ग्रहण करते हुए उदय होते हैं” ॥ (तैत्तिरीय आरण्यक १ । १४ । १)

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि तथाविधमेवाग्निं कृष्णोर्णया वेष्टयित्वा अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया बध्नीयात् ॥

आह च कौशिकः । "शमीम् अश्वत्थ इति मन्त्रोक्ते अग्निं मथित्वा [पुंष्याः] सर्पिंषि पैज्वमित्र मधुमन्थे पाययति कृष्णोर्णाभिः परिवेष्ट्य बध्नाति" इति [कौ० ४. ११] ॥

"परि द्यामिव" इति तृचेन सर्पविषभैषज्यकर्मणि मधुक्रीडम् अभिमन्त्र्य विषाव्रतं पाययेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन "ब्राह्मणो जज्ञे" [४. ६] इति सूक्तोक्तजपाचमनादीनि कर्माणि कुर्यात् ॥

"परि द्याम् इवेति मधुशीभं पाययति जपादींश्च" इति कौशिकसूत्रम् [कौ० ४. ५] ॥

द्वितीय अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। उनमें "शमीम् अश्वत्थः" यह पहिला सूक्त है। इन पहिली तीन ऋचाओंसे पुंसवनकर्ममें शमी (जण्ड) के भीतर उत्पन्न हुए पीपलकी अग्निको मधुमन्थमें डाल कर अभिमंत्रित करके स्त्रीको पिलावे।

तथा इसी कर्ममें ऐसी ही अग्निको काले ऊनमें लपेट कर सम्पातन और अभिमन्त्रित करके स्त्रीके बाँधे।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"शमीं अश्वत्थ इति मन्त्रोक्ते अग्निं मथित्वा पुंष्या सर्पिंषि पैज्वमित्र मधुमंथे पाययति कृष्णोर्णाभिः परिवेष्ट्य बध्नाति।" (कौशिकसूत्र ४। ११)॥

"परि द्यामिव" इन तीन ऋचाओंसे सर्पविषकी चिकित्सामें मधुक्रीडका अभिमन्त्रण कर विषसे दूषितको पिलावे॥

तथा इसी कर्ममें इन तीन ऋचाओंसे "ब्राह्मणो जज्ञे" इस चतुर्थकाण्डके छठे सूक्तमें कहे हुए जप आचमन आदि कर्म करे।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"परि द्यां इवेति मधुशीभं पाययति जपादींश्च" (कौशिकसूत्र ४। ५)॥

तत्र प्रथमा ॥

श॒मीम॑श्व॒त्थ आरू॑ढ॒स्तत्र॑ पुं॒सुव॑नं कृ॒तम् ।
तद्वै पु॒त्रस्य॒ वेद॑नं॒ तत् स्त्री॒ष्वा भ॑रामसि ॥१॥

श॒मीम् । अ॒श्व॒त्थः । आऽरू॑ढः । तत्र॑ । पु॒म्ऽसुव॑नम् । कृ॒तम् ।
तत् । वै । पु॒त्रस्य॑ । वेद॑नम् । तत् । स्त्री॒षु । आ । भ॒रा॒म॒सि॒ १

शमीम् एतत्संज्ञं वृक्षम् [अश्वत्थः] अश्वत्थाख्यो वृक्ष आरूढः अधिरूढः । अग्निदाहशमनहेतुर्वृक्षः शमी । "प्रजापतिरग्निम् असृजत । सोऽबिभेत् प्र मा धक्ष्यतीति । तं शम्याशमयत् । तच्छम्यै शमित्वम्" इति [तै० ब्रा० १. १. ३. ११] । स च अग्निः अश्वो भूत्वा यस्मिन् वृक्षे पुरा संवत्सरम् अवात्सीत् स वृक्षः अश्वत्थः । ❀ "सुपि स्थः" इति अश्वशब्दोपपदात् तिष्ठतेः कप्रत्ययः । पृषोदरादिः ❀ । श्रूयते हि । "अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे संवत्सरम् अतिष्ठत् । तद् अश्वत्थस्याश्वत्थत्वम्" इति [तै० ब्रा० १. १. ३. ९] ॥ तद् अयम् अर्थः । शमी स्त्री । अश्वत्थः पुमान् । स च अग्निलक्षणं पुत्रम् उत्पादयितुं ताम् अधिरूढः । तस्या उपरि उत्पन्न इत्यर्थः । ईदृशाद् अश्वत्थाद् अग्निमन्थनार्थम् अरण्योराहरणम् । तथा च श्रुतम् । "शमीगर्भाद् अग्निं मन्थति । एषा वा अग्नेर्यज्ञिया तनूः । तामेवास्मै जनयति" इति [तै० ब्रा० १. १ ९. १] । तत्र तादृशे अश्वत्थे पुंसवनम् पुमान् सूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनम् तत् कृतम् अनुष्ठितम् । तद् वै तत् खलु पुत्रस्य वेदनम् लम्भकं तत् पुत्रजनननिमित्तं कर्म स्त्रीषु आभरामसि आहरामः संपादयामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

शमी नाम वाले वृक्ष पर अश्वत्थ नाम वाला वृक्ष चढ़ा हुआ

है ‡ अर्थात् शमी स्त्री है और अश्वत्थ (पीपल) पुरुष है वह अग्नि स्वरूप पुत्रको उत्पन्न करनेके लिये उस पर आरूढ़ है अर्थात् उस पर उत्पन्न हुआ है, ऐसे अश्वत्थसे अग्निमन्थनके लिये अरणियें लाई जाती हैं ‡ ऐसे अश्वत्थमें जिस कर्मसे पुरुष उत्पन्न होता है वह पुंसवन कर्म अनुष्ठित होने पर पुत्रको अवश्य ही प्राप्त कराता है उस पुत्रजननके हेतु कर्मको हम स्त्रियोंमें सम्पादित करते हैं॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥

पुंसि । वै । रेतः । भवति । तत् । स्त्रियाम् । अनु । सिच्यते ।
तत् । वै । पुत्रस्य । वेदनम् । तत् । प्रजाऽपतिः । अब्रवीत् ॥२॥

पुंसि वै पुरुषे खलु प्रथमं बीजभूतं रेतः आश्रितं भवति । तत्

---

† शमीवृक्ष अग्निके दाहको शमन करनेका हेतु है । तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । ३ । ११ में कहा है, कि-"प्रजापतिरग्निं असृजत सोऽबिभेत् प्र मा धक्ष्यतीति । तं शम्याशमयत् । तच्छम्यै शमित्वम् ॥-प्रजापतिने अग्निकी सृष्टिकी फिर वह डरे, कि-कहीं यह मुझको न जला डाले । उसको उन्होंने शमीसे शान्त किया। यही शमीका शमीपन है । वह अग्नि अश्व बनकर जिस वृक्षमें वर्ष भर तक वसा था वह वृक्ष अश्वत्थ कहलाया ॥"

‡ इस विषयमें तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ । ३ । ६ का प्रमाण भी है, कि-"शमीगर्भाद् अग्निं मन्थति । एषा वा अग्नेर्यज्ञिया तनूः । तामेवास्मै जनयति ॥-शमीगर्भसे अग्निको मथे, यही अग्निका यज्ञिय शरीर है ।०"

गर्भाधानकर्मणा स्त्रियाम् अनु सिच्यते गर्भाशये प्रक्षिप्यते । तत् खलु निषिक्तं रेतः पुत्रस्य वेदनम् उत्पत्स्यमानस्य पुत्रस्य लम्भकम् । "पुरुषे ह वा अयम् आदितो गर्भो भवति" [ऐ० आ० २. ५. १] इत्यादिकम् ऐतरेयकम् अत्र द्रष्टव्यम् । तद् एतत् पुंसवनं कर्म प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा अब्रवीत् । पुत्रजननोपायत्वेन लोके प्रकाशितवान् इत्यर्थः ॥

पुरुषमें ही बीजभूत वीर्य आश्रित होता है वह गर्भाधानकर्ममें स्त्रीके गर्भाशयमें सींचा जाता है, वह सींचा-हुआ वीर्य उत्पन्न होने वाले पुत्रकी प्राप्ति कराने वाला है † इस पुंसवनकर्मको प्रजाओं के पति ब्रह्माजीने कहा है । अर्थात् इस बातको उन्होंने पुत्रजनन के उपायरूपसे लोकमें प्रकाशित किया है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥

प्रजाऽपतिः । अनुऽमतिः । सिनीवाली । अचीक्लृपत् ।
स्त्रैसूयम् । अन्यत्र । दधत् । पुमांसम् । ऊं इति । दधत् । इह ३

प्रजापतिः संवत्सरात्मकः अनुमतिः पौर्णमासीदेवता सिनीवाली अमावास्यादेवता च निषिक्तं गर्भाशयस्थं रेतः अचीक्लृपत् हस्तपादाद्यवयवकल्पनया समर्थम् अकार्षीत् । ❀ कृपू सामर्थ्ये इत्यस्मात् लुङि चङि रूपम् ❀ । किं कुर्वन् । स्त्रैसूयम् स्त्रीप्रसवसंबन्धि निमित्तम् अन्यत्र अस्मत्तो व्यतिरिक्ते स्थाने दधत् स्थाप-

---

† ऐतरेय आरण्यक २ । ५ । १ में कहा है, कि-"पुरुषे ह वा अयं आदितो गर्भो भवति ॥-यह गर्भ आदिकालमें पुरुषमें होता है ।

यन् इह अस्मासु पुमांसमु पुमपत्यमेव दधत् कुर्वन्। संवत्सरकालावसाने समर्थम् अकार्षीद् इत्यर्थः ॥

सम्वत्सरात्मक प्रजापति, पौर्णमासीकी देवता अनुमति, अमावस्याकी देवता सिनीवालीने छिड़के हुए गर्भाशयमें स्थित बीजको स्त्रीप्रसवसंबंधी निमित्तको हमसे अतिरिक्त स्थानमें रख कर, पुरुष सन्तानके रूपमें ही हाथ पैर आदि अंगोंकी कल्पना कर समर्थ किया है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प॒रि द्यामि॑व॒ सूर्योही॑ना॒ं जनि॑मागमम् ।
रात्री॒ जग॑दिवा॒न्य॒द्धंसात् तेना ते वारये वि॒षम् ॥१॥

परि॑ । द्या॑म्ऽइव । सूर्य॑ः । अही॑नाम् । जनि॑म । अ॒ग॒म॒म् ।

रात्री॑ । जग॑त्ऽइव । अ॒न्यत् । हं॒सात् । तेन॑ । ते॒ । वा॒र॒ये॒ । वि॒षम् १

सूर्यो द्यामिव अन्तरिक्षमिव अहीनाम् सर्पाणां जनिम् कृत्स्नं जन्म सर्पकुलम् अहं पर्यागमम् परिप्राप्तवान् अस्मि रात्री जगदिव। ❀ "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीप् ❀। यथा रात्रिः स्वकीयेन तमसा कृत्स्नं जगद् व्याप्नोति एवम्। हंसात् हन्ति गच्छति व्याप्नोतीति हंस आत्मा तस्माद् अन्यत् कृत्स्नं शरीरं यद् विषं व्याप्नोति हे विषग्रस्त ते त्वदीयं तद् विषं तेन प्रसिद्धेन भैषज्येन वारये निवारयामि ॥

जैसे सूर्य अन्तरिक्षमें व्याप्त हो जाते हैं और जैसे रात्रि सम्पूर्ण जगत्को अंधकारसे व्याप्त कर लेती है, इसी प्रकार मैंने सर्पोंके सम्पूर्ण जन्मों (कुलों) को व्याप्त कर लिया है। आत्मासे अतिरिक्त अन्य समस्त स्थानों पर जो विष व्याप्त होजाता है, हे विषग्रस्त ! उस विषको मैं इस प्रसिद्ध औषधसे दूर करता हूँ ॥ १ ॥

१५४०

पञ्चमी ॥

यद् ब्र॒ह्मभि॒र्यदृषि॑भि॒र्यद् दे॒वैर्वि॑दि॒तं पु॒रा ।
यद् भू॒तं भव्य॑मास॒न्वत् तेना॑ ते वारये वि॒षम् ॥२॥

यत् । ब्र॒ह्म॑ऽभिः । यत् । ऋषि॑ऽभिः । यत् । दे॒वैः । वि॒दि॒तम् । पु॒रा ।
यत् । भू॒तम् । भव्य॑म् । आ॒स॒न्ऽवत् । तेन॑ । ते॒ । वा॒र॒ये॒ । वि॒षम् २

यद् भैषज्यं ब्रह्मभिः मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्वा साध्यं यच्च ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः अगस्त्यवसिष्ठप्रमुखैः परिज्ञातं यच्च भैषज्यं पुरा पुरातनकाले देवैः इन्द्रादिभिः विदितम् ज्ञातं यच्च भूतम् भूतकालावच्छिन्नं भव्यम् भावि भविष्यकालावच्छिन्नम् आसन्वत् आस्ययुक्तम् । तेनोच्चार्यमाणमन्त्रसहितम् इत्यर्थः । ❀ "पद्दन्०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य मतौ आसन् आदेशः ❀ । तेन सर्वेण भैषज्येन ते त्वच्छरीरस्थं विषं वारये निवारयामि ॥

जो औषधि मन्त्र वा ब्राह्मणोंसे प्राप्त होती है और जो औषधि अतीन्द्रिय पदार्थोंको देखने वाले अगस्त्य वसिष्ठ आदि ऋषियों ने जानी है और जिन औषधियोंको प्राचीनकालमें इन्द्र आदि देवताओंने जाना था, उन भूतकालकी वर्तमान कालकी और भविष्यमें जिनका मुखसे उच्चारण होगा उन भविष्यकालकी भी औषधियोंसे मैं तेरे शरीरमें स्थित विषको दूर करता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

मध्वा॑ पृञ्चे न॒द्य॑१ः पर्व॑ता गि॒रयो॒ मधु॑ ।
म॒धु परु॑ष्णी॒ शीपा॑ला॒ शम॒ास्ने अ॑स्तु॒ शं हृ॒दे ॥३॥

मध्वा॑ । पृ॒ञ्चे॒ । न॒द्य॑ः । पर्व॑ताः । गि॒रय॑ । मधु॑ ।

मधु॑ । परु॑ष्णी । शीपा॑ला । शम् । आ॒स्ने । अ॒स्तु । शम् । हृ॒दे ३

मधु मधुरं विषहरम् अमृतम् आ पृञ्चे आसमन्तात् त्वच्छरीरे संपृक्तं करोमि । ❀ पृची संपर्के ❀ ॥ नद्यः गङ्गाद्याः पर्वताः हिमवदाद्या महाशैलाः गिरयः पर्यन्तपर्वताश्च विषहरं मधु त्वच्छरीरे आसिञ्चन्तु इति विशेषतो विषहरत्वात् प्रार्थ्यते । परुष्णी नाम नदी शीपाला शीपालाः शैवालम् तद्युक्ता । ❀ मत्वर्थीयः अकारः ❀ । ईदृशी परुष्णी नाम नदी मधु आसिञ्चतु । ईदृशं मधु विषहरम् अमृतम् आस्ने आस्याय शम् सुखकरम् अस्तु । ❀ पूर्ववद् आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः ❀ । हृदे. हृदयाय च शम् सुखकरम् अस्तु ॥

[इति] षष्ठकाण्डे द्वितीयानुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

विषका हरण करने वाले अमृत मधुको मैं तेरे सारे शरीरमें चुपड़ता हूँ । गंगा आदि नदियें, हिमवान् आदि बड़े २ पर्वत और छोटे २ पर्वत विषका हरण करने वाले मधुको तेरे शरीरमें सींचें सिवारसे भरी हुई परुष्णी नाम वाली नदी मधुका सिंचन करे । ऐसा विषको हरने वाला मधु मुखके लिये सुखकारक हो और हृदयके लिये भी सुखकारक हो ॥ ३ ॥

छठे काण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१८५) ॥

“नमो देववधेभ्यः” इति तृचेन जयकामः स्वसेनां परितः प्रतिदिशम् उपस्थानं कुर्यात् । “नमो देववधेभ्य इत्युपतिष्ठते” इति हि सूत्रम् [कौ० २. ५] ॥

तथा वैश्यस्य संग्रामजयार्थं प्रहरणोद्यतान् शत्रून् पश्यन् एनं तृचं जपेत् ॥

तथा अनेनैव तृचेन आज्यहोमम् सक्तुहोमम् धनुरिध्मेऽग्नौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मे शरसमिदाधानम् संपातिताभिमन्त्रितधनुःप्रदानं च कुर्यात् ॥

"नमो देववधेभ्य इत्यन्वाह वैश्याय प्रदानान्तानि" इति हि सूत्रम् [कौ० २. ६]॥

तथा अनेनैव तृचेन सर्पवृश्चिकादिभयनिवृत्तिकामः "येस्यां स्थ" [३, २६] इत्यत्रोक्तानि अभिमन्त्रितसिकताप्रक्षेपणादीनि गुडूचीहोमान्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं च तत्रैव उदाहृतम् ॥

तथा आवसथ्याधाने क्रव्याच्छमनानन्तरं गृहम् आगत्य अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६. १३] अग्नेभ्यावर्तिन्" इत्यादि [कौ०६.४]

तथा अनेन तृचेन ब्राह्मणायुधधारणदेवताप्रतिमानर्तनहसनाद्यद्भुतेषु तच्छान्त्यर्थम् आज्यहोमं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतद् ब्राह्मणा आयुधिनो भवन्ति" इति प्रक्रम्य "मा नो विदन् [१. १९] नमो देववधेभ्यः [६. १३]" इति [कौ०१३.१२,१३]॥

तथा यज्ञे वशापुरोडाशादिहविःषु काकोलूकश्वादिभिर्दूषितेषु सत्सु तत्प्रायश्चित्तार्थम् अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतद् वपां वा हवींषि वा वयांसि द्विपदं चतुष्पदं वाभिमृश्य गच्छेयुर्ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६.१३] त्येताभ्यां सूक्ताभ्यां जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ० १३. ३१]॥

"अस्थिस्रंसम्" इति तृचेन श्लेष्मभैषज्यकर्मणि संपातिताभिमन्त्रितवृक्षशकलेन सह व्याधितम् अवसिञ्चेद् मार्जयेद् आचामयेच्च । "अस्थिस्रंसम् इति शकलेन अप्सु संपातवतावसिञ्चति" इति [कौ० ४. ५]॥

"नमो देववधेभ्यः" इन तीन ऋचाओंसे जयको चाहने वाला अपनी सेनाके चारों ओर प्रत्येक दिशामें उपस्थान करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"नमो देववधेभ्य इत्युपतिष्ठते" (कौशिकसूत्र २ । ५)

तथा वैश्यके संग्राममें जय पानेके लिये प्रहार करनेको तयार शत्रुओंको देखता हुआ इन तीन ऋचाओंको पढ़े।

तथा इसी तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृतका होम सत्तुओंका होम और धनुषरूपी ईंधन वाली अग्निमें धनुषरूपी समिधाओं का आधान, शरेध्ममें शररूपी समिधाओंका आधान तथा सम्पातित और अभिमन्त्रित धनुषको देना-यह कर्म करे।

इस विषयमें कौशिकसूत्र २ । ६ का प्रमाण भी है कि-"नमो देववधेभ्य इत्यन्वाह वैश्याय प्रदानान्तानि" ॥

तथा साँप विच्छू आदिके भयको दूर करना चाहने वाला इसी तीन ऋचा वाले सूक्तसे "येस्यां स्थ" इस तीसरे काण्डके छब्बीसवें सूक्तमें कहे हुए अभिमन्त्रित शर्कराको फेंकनेसे गिलोय को होमने तकके कर्म करे। सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है।

तथा आवसथ्याधानमें क्रव्याच्छमनके अनन्तर घरमें आकर इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि "ये अग्नयः (३ । २१) नमो देववधेभ्यः (६ । १३) अग्नेभ्यावर्तिन्" इत्यादि (कौशिकसूत्र ६ । ४) ॥

तथा इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे ब्राह्मणका आयुधको धारण करना, देवताओंकी प्रतिमाओंका नाचना हँसना, आदि अद्भुत होने पर इनकी शांतिके लिये घृतसे होम करे। इस विषयमें सूत्र का प्रमाण भी है, कि-"अथ यत्रैतद् ब्राह्मणा आयुधिनो भवन्ति" इति प्रक्रम्य "मा नो विदन् (१ । १६) नमो देववधेभ्यः (६ । १३)" (कौशिकसूत्र १३ । १२, १३) ॥

तथा यज्ञमें वशापुरोडाश आदि हवियोंको यदि कौए उल्लू कुत्ते आदि दूषित कर जावें तो इस बातका प्रायश्चित करनेके लिये इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति देय। इस

विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अथ यत्रैतद्द् वपां वा हवींषि वा वयांसि द्विपदं चतुष्पदं वाभिमृश्य गच्छेयुर्य अग्नयः (३। २१) नो देववधेभ्यः (६। १३) इति सूक्ताभ्यां जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" (कौशिकसूत्र १३। २१)॥ "अस्थिस्रंसम्" इन तीन ऋचाओं वाले सूक्तसे कफके रोगकी चिकित्साके कर्ममें संपातित अभिमन्त्रित वृत्तके टुकड़ेके साथ रोगी पर जल छिड़के और उसको आचमन करावे ॥ इस विषयमें कौशिकसूत्र ४। ५ प्रमाण है, कि--अस्थिस्रंसं इति शकलेन अप्सु सम्पातवतावसिञ्चति" ॥

तत्र प्रथमा ॥

नमो॑ देवव॒धेभ्यो॒ नमो॑ राजव॒धेभ्यः॑ ।
अथो॒ ये विश्या॑नां व॒धास्तेभ्यो॑ मृत्यो॒ नमो॑स्तु ते १

नमः॑ । दे॒व॒ऽव॒धेभ्यः॑ । नमः॑ । रा॒ज॒ऽव॒धेभ्यः॑ ।
अ॒थो इति॑ । ये । विश्या॑नाम् । व॒धाः । तेभ्यः॑ । मृ॒त्यो॒ इति॑ । नमः॑ ।
अ॒स्तु । ते॒ ॥ १ ॥

देववधेभ्यः देवानाम् इन्द्रादीनां वधाः हननसाधनानि आयुधानि। तेभ्यो नमोस्तु। यथा तेऽस्मान् परिहरन्ति तथा तांस्तोषयाम इत्यर्थः। ❀ "नमःस्वस्ति०" इति चतुर्थी ❀। यद्वा हे मृत्यो तुभ्यं नमोस्तु। कस्माद्धेतोः। देववधेभ्यः देवकृतहननेभ्यो रक्षणात्। ❀ "भीत्रार्थानाम्०" इति पञ्चमी। "हनश्च वधः" इति करणे भावे वा अप् प्रत्ययः तत्संनियोगेन वधादेशश्च। तस्य च अन्तोदात्तत्वाद् उदात्तनिवृत्तिस्वरेण अप उदात्तत्वम् ❀ ॥ तथा राजवधेभ्यः राज्ञः संबन्धिभ्य आयुधेभ्यो नमोस्तु ॥ अथो अपि च विश्यानां वैश्यजातीयानां ये वधास्तेभ्यश्च हे मृत्यो ते तुभ्यं च नमोस्तु। देववधादीन् अस्मत्तः परिहरेत्यर्थः ॥

इन्द्र आदि देवताओंके जो मारने वाले आयुध हैं उनके लिये नमस्कार है, अर्थात् वे जिस प्रकार हमें छोड़ें, तिस प्रकार हम उनको सन्तुष्ट करते हैं अथवा हे मृत्यो ! देवताओंके आयुधोंसे बचानेके लिये तुझे नमस्कार हो और हे मृत्यो ! राजाओंके और वैश्योंके आयुधोंसे वचानेके लिये तुझे नमस्कार हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नम॑स्ते अधिवा॒काय॑ परावा॒काय॑ ते॒ नम॑ः ।
सु॒म॒त्यै मृ॑त्यो ते॒ नमो॑ दु॒र्म॒त्यै त॑ इ॒दं नम॑ः ॥ २ ॥

नम॑ः । ते॒ । अ॒धि॒ऽवा॒काय॑ । प॒रा॒ऽवा॒काय॑ । ते॒ । नम॑ः ।
सु॒ऽम॒त्यै । मृ॒त्यो॒ इति॑ । ते॒ । नम॑ः । दुः॒ऽम॒त्यै । ते॒ । इ॒दम् । नम॑ः२

हे मृत्यो ते तव संबन्धिने अधिवाकाय अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् तत् कुर्वते शोभनाय दूताय नमः । तथा ते त्वदीयाय परावाकाय पराभवस्य वक्त्रे पराभववचनायैत्र वा नमोस्तु । हे मृत्यो ते तव सुमत्यै शोभनायै अनुग्रहात्मिकायै बुद्ध्यै नमोस्तु । ते तव संबन्धिन्यै दुर्मत्यै निग्रहबुद्ध्यै इदं क्रियमाणं नमोस्तु ॥

हे मृत्यो ! तेरे वचनको पक्षपातपूर्वक कहने वाले दूतके लिये नमस्कार प्राप्त हो, तथा तेरे पराभवको कहने वाले दूतके लिये नमस्कार है तथा हे मृत्यो ! तेरी अनुग्रहात्मिका बुद्धिके लिये नमस्कार है और तेरी निग्रह बुद्धिके लिये यह नमस्कार प्राप्त हो २

तृतीया ॥

नम॑स्ते यातु॒धाने॑भ्यो॒ नम॑स्ते भेष॒जेभ्य॑ः ।
नम॑स्ते मृत्यो॒ मूले॑भ्यो ब्राह्म॒णेभ्य॑ इ॒दं नम॑ः ॥ ३ ॥

नम॑ः । ते॒ । या॒तु॒ऽधाने॑भ्यः । नम॑ः । ते॒ । भे॒ष॒जेभ्य॑ः ।

नम॑ः । ते॒ । मृ॒त्यो॒ इति॑ । मू॒ले॑भ्यः । ब्रा॒ह्म॒णे॑भ्यः । इ॒दम् । नम॑ः ३

हे मृत्यो ते तव संबन्धिभ्यो यातुधानेभ्यः पीडाकरेभ्यो नमोस्तु ॥ ते तव संबन्धिभ्यो भेषजेभ्यः रक्षाकरेभ्यश्च नमः ॥ हे मृत्यो ते तव संबन्धिभ्यो मूलेभ्यः मूलबलभूतेभ्यः पुरुषेभ्यो नमोस्तु ॥ तथा ब्राह्मणेभ्यः शापानुग्रहसमर्थेभ्यो वेदविद्भ्यः इदं नमोस्तु ॥

हे मृत्यो ! तेरे संबंधी पीड़ा देने वाले यातुधानोंके लिये नमस्कार हो और तेरी रक्षा करने वाली शक्ति औषधियोंके लिये नमस्कार हो तथा तेरे मूलबलरूप पुरुषोंके लिये नमस्कार हो और शाप देने और अनुग्रह करनेमें समर्थ, वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके लिये यह नमस्कार हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अ॒स्थि॒स्रं॒सं प॑रुस्रं॒समास्थि॑तं हृदया॒मयम् ।
ब॒लासं॒ सर्वं॑ नाशयाङ्गे॒ष्ठा यश्च॒ पर्व॑सु ॥ १ ॥

अ॒स्थि॒ऽस्रं॒सम् । प॒रुः॒ऽस्रं॒सम् । आऽस्थि॑तम् । हृ॒द॒यऽआ॒म॒यम् ।
ब॒ला॑सम् । सर्व॑म् । ना॒श॒य॒ । अ॒ङ्गे॒ऽस्थाः । यः । च॒ । पर्व॑ऽसु १

अस्थिस्रंसम् श्लेष्मरोगेण अस्थ्नां स्रंसनम् । परुस्रंसम् परुषां पर्वणां शरीरावयवसंधीनां स्रंसनम् । आस्थितम् समन्तात् शरीरं व्याप्य स्थितं हृदयामयम् श्लेष्मकृतं हृद्रोगम् । ईदृशं सर्वम् बलासम् बलम् अस्यति क्षिपतीति बलासः कासश्वासात्मकश्लेष्मरोगः तं नाशय । अनुष्ठेयार्थः संबोध्यते । यश्च बलासः अङ्गेष्ठाः हस्तपादाद्यङ्गेऽवस्थितः । यश्च पर्वसु तत्संधिषु आश्रितः । तं बलासम् इति सम्बन्धः ॥

हड्डियोंको हिलाने वाला जोड़ोंको ढीला करने वाला और शरीरमें चारों ओरसे व्याप्त होकर रहने वाला बलको क्षीण करने वाला हृदयका खाँसी और साँसरूप जो श्लेष्मरोग जोड़ोंमें और अंगोंमें व्याप्त होरहा है उस सबको हे मंत्रशक्ते ! तू नष्ट कर ॥१॥

पञ्चमी ॥

नि॒र्बला॑सं ब॒लासिनः क्षि॒णोमि॑ मुष्क॒रं य॑था ।
छि॒नद्म्य॑स्य॒ बन्ध॑नं॒ मूल॑मुर्वा॒र्वा॑ इ॑व ॥ २ ॥

निः । ब॒ला॑सम् । ब॒ला॒सिनः॑ । क्षि॒णोमि॑ । मु॒ष्क॒रम् । य॒था॒ ।
छि॒नद्मि॑ । अ॒स्य॒ । बन्ध॑नम् । मूल॑म् । उ॒र्वा॒र्वाः॑ऽइ॑व ॥ २ ॥

बलासिनः श्लेष्मरोगिणः पुरुषस्य बलासम् श्लेष्मरोगं निःशेषेण क्षिणोमि क्षयं प्रापयामि । तत्र दृष्टान्तः पुष्करम् इति । महाह्रदे प्ररूढं पुष्करं यथा समूलम् उच्छिद्यते तथा व्याधितशरीरात् तं रोगं समूलम् उन्मूलयामीत्यर्थः । एतदेव विव्रियते । अस्य रोगस्य बन्धनम् शरीरसंश्लेषनिमित्तं मूलं छिनद्मि । यथा उर्वार्वाः कर्कट्याः फलस्य परिपक्वस्य वृन्तं स्वयमेव विश्लिष्टं भवति तद्वत् । रोगनिदानम् अनायासेन विश्लेषयामीत्यर्थः । "उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० ७. ५९. १२] ॥

मैं श्लेमरोगीके श्लेष्म (कफ) संबंधी रोगको पूर्णरीतिसे नष्ट करता हूँ, जैसे बड़े भारी सरोवरमें उगे हुए कमलको जड़सहित उखाड़ लिया जाता है, इस प्रकार मैं इस रोगको रोगीके शरीर से जड़ तक उखाड़ता हूँ (इसी बातको स्पष्टकरके कहते हैं, कि–) जैसे फल पकने पर ककड़ीकी घुण्डी अपने आप अलग होजाती है इसी प्रकार इस रोगके बंधनके कारणको मैं शरीरसे अनायासमें ही दूर करता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

निर्ब॑लासे॒तः प्र प॑ताशु॒ंगः शि॑शुको य॑था ।
अ॒थो इट॑ इव हाय॒नोप॑ द्रा॒ह्यवी॑रहा ॥ ३ ॥

निः । ब॒ला॒स॒ । इ॒तः । प्र । प॒त॒ । आ॒शु॒ङ्गः । शि॒शु॒कः । य॒था॒ ।
अ॒थो इति॑ । इट॑ःऽइव । हा॒य॒नः । अप॑ । द्रा॒हि॒ । अवी॑रऽहा ॥३॥

हे बलास इतः अस्मात् शरीराद् निष्प्र पत निष्क्रम्य प्रकर्षेण दूरं गच्छ । यथा येन प्रकारेण आशुङ्गः आशुगामी शुशुकः एतत् संज्ञो मृगो दूरं धावति तद्वद् गच्छ ॥ अथो अपि च इत इव हायनः गतः संवत्सरो यथा न पुनरावर्तते तथा अवीरहा अस्मदीयानां वीराणाम् अहन्ता सन् अप द्राहि अपक्रम्य कुत्सितां गतिं गच्छ । ❀ द्रा कुत्सितायां गताविति धातुः ❀ ॥

[इति] षष्ठकाण्डे द्वितीयेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जैसे शीघ्रगामी शुशुक नामका मृग दूरको भागता है, इसी प्रकार हे बलका क्षय करने वाले रोग ! तू शरीरसे निकल कर दूर भाग, और जैसे गया हुआ वर्ष फिर लौटकर नहीं आता है इसी प्रकार तू हमारे वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्र आदिको नष्ट न करता हुआ चला जा (फिर न आ) ॥ ३ ॥

छठे काण्डके द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१८७) ॥

“उत्तमो असि” इति तृचेन पुष्टिकामः पालाशमणिं वासितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । “उत्तमो असि [६. १५] इति मन्त्रोक्तम् अक्षितास्ते [६. १४२. ३] इति यवमणिम्” इति कौशिकसूत्रम् [कौ० ३. २] ॥

“आवयो अनावयो” इति चतुर्ऋचेन अक्षिरोगभैषज्ये सार्षपतैलेन संपातितं सर्षपकाण्डमणिम् अभिमन्त्र्य रोगार्तस्य बध्नीयात्

तथा अनेन चतुर्ऋचेन आज्यं हुत्वा सर्षपकाण्डं संपात्य सार्षपतैलेन अभ्यज्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन सार्षपतैलेन भृष्टं सर्षपपत्रशाकं चक्षूरोगग्रस्ताय प्रयच्छेत् ॥

तथा चत्वारि शाकवृक्षफलानि अभिमन्त्र्य व्याधिताय प्रयच्छेत्

तथा मूलक्षीरम् अभिमन्त्र्य व्याधितस्य अक्षिणी अञ्ज्यात् ॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन मूलक्षीरं संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

सूत्रितं हि । "आवयो इति सार्षपतैलसंपातं बध्नाति । काण्डं प्रलिप्य पृक्तं शाकं प्रयच्छति । चत्वारि शाकफलानि प्रयच्छति । क्षीरलेपम् अङ्क्तेश्नाति" इति [कौ० ४. ६] ॥

अत्र "अलसाला" [४] इत्यनया ऋचा अन्नस्वस्त्यनकामः तिस्रः सस्यवल्लीरभिमन्त्र्य क्षेत्रमध्ये निखनेत् । सूत्रितं हि । "अलसालेत्यन्नभेषजं त्रीणि शलाङ्गालाग्राण्युर्वरामध्ये निखनति" इति [कौ० ७. २] ॥

पुष्टिको चाहने वाला "उत्तमो असि" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पलाशमणिको वासित करके सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ३ । २ का प्रमाण है, कि-"उत्तमो असि (६ । १५) इति मंत्रोक्तम् । अक्षितास्ते (६ । १४२ । ३) इति यवमणिम्"

"आवयो अनावयो" इस चार ऋचा वाले सूक्तसे नेत्ररोगों की चिकित्साके लिये सरसोंके तेलसे सम्पातित सरसोंके डण्ठल की मणिको अभिमंत्रित करके रोगसे आर्तपुरुषके बाँधे ।

तथा इन चार ऋचाओंसे घृतकी आहुति देकर सरसोंके डण्ठलको सम्पातित करके सरसोंके तेलमें भिगो अभिमंत्रित करके बाँधे ।

तथा इस चार ऋचा वाले सूक्तसे सरसोंके तेलमें भूने हुए सरसोंके पत्तोंके शाकको चक्षुके रोगसे ग्रस्त पुरुषको देय ।

तथा शाकवृक्ष (हरड़ वा सिरीस) के चार फलोंको अभिमंत्रित करके रोगीको देय ।

तथा मूलक्षीरका अभिमंत्रण कर रोगीके नेत्रोंको शुद्ध करे ।

तथा इस चार ऋचा वाले सूक्तसे मूलक्षीरका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"आवयो इति सार्षपतैलसम्पातं बध्नाति । काण्डं प्रलिप्य पृक्तं शाकं प्रयच्छति । क्षीरलेपं अङ्क्तेऽश्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । ६) ॥

यहाँ अन्नस्वस्त्ययनको चाहनेवाला "अलसाला" इस चौथी ऋचासे तीन सस्यलताओंको अभिमन्त्रित करके खेतके बीचमें गाढ़ देय इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अलसालेत्यन्नभेषजं त्रीणि शलाञ्जालाग्राण्युर्वरामध्ये निखनति" (कौशिकसूत्र ७ । २) ॥

तत्र प्रथमा ॥

उ॒त्त॒मो अ॒स्योष॑धीनां॒ तव॑ वृ॒क्षा उ॑प॒स्तय॑ः ।
उ॒प॒स्तिर॑स्तु॒ सो॒३॒॑स्माकं॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति १

उ॒त्ऽत॒मः । अ॒सि॒ । ओष॑धीनाम् । तव॑ । वृ॒क्षाः । उ॒प॒ऽस्तय॑ः ।

उ॒प॒ऽस्तिः । अ॒स्तु॒ । सः । अ॒स्माक॑म् । यः । अ॒स्मान् । अ॒भि॒ऽदास॑ति

हे पलाशवृक्ष मण्युपादानभूत त्वम् ओषधीनाम् । ओषः पाकः एषु इति धीयते ओषधिशब्देन स्थावरमात्रं विवक्षितम् । स्थावराणाम् ओषधिवनस्पतीनाम् उत्तमः उत्कृष्टः असि सोमपर्णोद्भवत्वात् । "तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्" इति प्रक्रम्य तैत्तिरीयके

समाम्नातम् । "तस्य पर्णम् अच्छिद्यत । तत् पर्णोभवत् । तत् पर्णस्य पर्णत्वम्" इति [तै० ब्रा० १. १. ३. १०] । हे पलाशवृक्ष अन्ये वृक्षास्तव उपस्तयः उपासकाः । न्यग्भूता इत्यर्थः त्वत्प्रसादाद् अस्माकं स तादृशः शत्रुः उपस्तिरस्तु उपासकः उपक्षीणो भवतु । यः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति ॥

हे मणिके उपादान पलाश वृक्ष ! तू औषधियोंमें उत्तम है क्योंकि—तू सोमपर्णसे उत्पन्न हुआ है । हे पलाश ! दूसरे वृक्ष तेरे उपासक हैं तेरे प्रसादसे हमारा वह शत्रु उपक्षीण होजावे, कि जो हमको क्षीण करना चाहता है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

स॒ब॑न्धुश्चास॑बन्धुश्च॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति ।
ते॒षां॑ सा॒ वृ॒क्षाणां॑मिवा॒हं भूं॑यासमुत्त॒मः ॥ २ ॥

स॑ऽबन्धुः । च॒ । अस॑बन्धुः । च॒ । यः । अ॒स्मान् । अ॒भि॒ऽदास॑ति ।
ते॑षाम् । सा । वृ॒क्षाणा॑म्ऽइव । अ॒हम् । भू॒या॒स॒म् । उ॒त्ऽत॒मः २

सबन्धुः समानबन्धनः समानजन्मा दायादः । असबन्धुः असमानजन्मा असगोत्रजः । य एवमात्मक उभयविधः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति तेषां शत्रूणां मध्ये अहम् उत्तमः उत्कृष्टतमः भूयासम् । तत्र दृष्टान्तः । यथा सा पलाशात्मिका ओषधिः वृक्षाणाम् उत्तमा भवति तद्वद् अहम् उत्तमो भूयासम् इति ॥

जो सगोत्रका शत्रु हमको क्षीण करना चाहता है और जो दूसरे गोत्रका शत्रु हमको क्षीण करना चाहता है उन दोनों प्रकार के शत्रुओंमें मैं इस प्रकार उत्तम होऊँ, कि—जिस प्रकार पलाश नाम वाली ओषधि अन्य वृक्षोंसे उत्तम होती है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ ३ ॥

यथा । सोमः । ओषधीनाम् । उत्ऽतमः । हविषाम् । कृतः ।
तलाशा । वृक्षाणाम्ऽइव । अहम् । भूयासम् । उत्ऽतमः ॥ ३ ॥

यथा येन प्रकारेण ओषधीनाम् अन्यासां लतानां मध्ये लतात्मकः सोमः उत्तमः उत्कृष्टः हविषाम् चरुपुरोडाशादीनां मध्ये कृतः विधात्रा निर्मितः तथा वृक्षाणां मध्ये पलाश इव च अहं सजातानाम् उत्तमो भूयासम् ॥

जैसे लतात्मक अन्य औषधियोंकी अपेक्षा सोमको चरु पुरोडाश आदि हवियोंमें विधाताने उत्तम बनाया है और जैसे वृक्षों में पलाश उत्तम माना जाता है, इसी प्रकार मैं समान जन्म वालों में अर्थात् सगोत्रोंमें उत्तम होऊँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥

आबयो इति । अनाबयो इति । रसः । ते । उग्रः । आबयो इति ।
आ । ते । करम्भम् । अद्मसि ॥ १ ॥

❀ आवयतिः अत्तिकर्मा । तस्माद् औणादिकः कर्मणि उप्रत्ययः ❀ । हे आवयो रोगनिवृत्त्यर्थम् अद्यमान सर्षप अनावयो अभक्ष्यमाण सर्षपकाण्ड ते तव रसः तैलात्मकः उग्रः उद्गूर्णबलः । व्याधिनिवर्तनक्षम इत्यर्थः । हे आवयो ते त्वदीयं करम्भम्

सार्षपतैलमिश्रभृष्टं तत्पत्रशाकम् आ अभसि मन्त्राभिमन्त्रितम् आदाय भक्षयामः । ❀ “इदन्तो मसिः” ❀ ।।

हे रोगको दूर करनेके लिये खाये जाने वाले सरसों ! हे खाने के अयोग्य, सर्षपकाण्ड ! तेरा तैलरूप रस प्रचण्ड बल वाला है अर्थात् व्याधिको दूर करनेमें समर्थ है । हे रोगको दूर करनेके के लिये खाये जाने वाले सरसों ! तेरे तेलमें भूने हुए तेरे शाक को अभिमंत्रित करनेके अनन्तर लेकर हम खाते हैं ।। १ ।।

पञ्चमी ।।

वि॒ह॒ह्लो नाम॑ ते पि॒ता म॒दाव॑ती॒ नाम॑ ते मा॒ता ।
स हि॑न॒ त्वम॑सि॒ यस्त्वमा॒त्मान॒माव॑यः ।। २ ।।

वि॒ऽह॑ह्लः । नाम॑ । ते॒ । पि॒ता । म॒दऽव॑ती । नाम॑ । ते॒ । मा॒ता ।
सः । हि॒न॒ । त्वम् । अ॒सि॒ । यः । त्वम् । आ॒त्मान॑म् । आव॑यः २

हे सर्षपशाक ते तव विहंलाख्यः कश्चित् पिता जनकः । नामशब्दः प्रसिद्धौ । मदावती नाम ते तव माता जननी । स हि स खलु त्वं नासि न भवसि । यस्त्वम् आत्मानम् आत्मीयं स्वरूपं पत्रादिकम् आवयः पुरुषेण भक्षितम् अकरोः । प्रशस्तमातापितृजन्यत्वाद् आत्मनो हानिं प्राप्यापि परोपकारपरो भवसीत्यर्थः ।।

हे सर्षपशाक (हे सरसोंके शाक !) विहह्ल नाम वाला तेरा पिता है और तेरी जननी मदावती नाम वाली है, वही तू नहीं होता है, क्योंकि-तू अपने पत्र आदि शरीरको पुरुषके खानेके लिये देदेता है अर्थात् तू श्रेष्ठ माता पितासे उत्पन्न होनेके कारण अपनी हानि करके भी दूसरोंका उपकार करता है ।। २ ।।

षष्ठी ।।

तौवि॑लि॒केवे॑ल॒यावा॒यमै॑ल॒ब ऐ॑लयीत् ।

बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥

तौविलिके । अव । ईलय । अव । अयम् । ऐलबः । ऐलयीत् ।

बभ्रुः । च । बभ्रुऽकर्णः । च । अप । इहि । निः । आल ॥३॥

हे तौविलिके एतन्नामिके रोगनिदानभूते पिशाचि अवेलय अवाङ्मुखम् अस्मद्रोगं प्रेरय । ❀ इल प्रेरणे इति धातुः ❀ । अयम् ऐलबः एतत्संज्ञः तत्कृतश्चक्षुर्गतो रोगविशेषः अवैलयीत् अवस्ताद् गच्छतु । ❀ तस्मादेव धातोश्छान्दसो लुङ् । "नोनयतिध्वनयति०" इत्यादिना चङः प्रतिषेधः । "ह्म्यन्तक्षण०" इत्यादिना सिचि वृद्धिनिषेधः ❀ ॥ बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च एतत्संज्ञावुभावपि रोगहेतू तस्माद् रोगिणः पुंसो निर्गच्छताम् । हे निराल एतत्संज्ञ रोग त्वमपि अपैहि अपगच्छ ॥

हे रोगकी निदानभूत तौविलिक नाम वाली पिशाचि ! तू हमारे रोगको पराङ्मुख करके भेज दे । यह ऐलब नाम वाला चक्षु–रोग भाग जावे । बभ्रु और बभ्रुकर्ण नाम वाले रोगके कारण भी इस पुरुषसे निकल जावें । हे निराल नाम वाले रोग ! तू भी भाग जा ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अलसाला । असि । पूर्वा । सिलाञ्जाला । असि । उत्तरा ।

नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अलसालेत्याद्यास्तिस्रः संज्ञास्तिसृणां सस्यवल्लीनाम् । तत्र अलसाला नाम काचित् सस्यविशेषस्य मञ्जरी । सा प्रथमम् उपा-

दीयमानत्वात् पूर्वा । शलाञ्जालाख्या तु सस्यमञ्जरी उत्तरा अपरा पश्चाद् उपादीयमानत्वात् । नीलागलसालाख्या तु तृतीया तयोर्मध्यवर्तिनी ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे अलसाला नाम वाली सस्यमञ्जरी ! तू पहिले ग्रहण करने योग्य होनेसे पूर्वा है, हे शलाञ्जाला नाम वाली सस्यमञ्जरी ! तू अन्तमें ग्रहण कीजाने वाली होनेसे उत्तरा है । और हे नीलागलसाला नामक सस्यमञ्जरी ! तू इन दोनोंके मध्यमें ग्रहणकी जाती है ॥ ४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१८९) ॥

"यथेयं पृथिवी मही" इति तृचेन गर्भदृंहणकर्मणि धनुर्ज्यां त्रिरुद्ग्रथ्य स्त्रियं बध्नीयात् ॥

तथा अनेन तृचेन क्षेत्रमृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य प्रत्यृचं गर्भिणीं प्राशयेत् । कृष्णसिकता अभिमन्त्र्य गर्भिण्याः शयनं परिकिरेद् वा

तथा जम्भग्रहणेपि तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचेन धनुर्ज्याबन्धनादीनि कर्माणि कुर्यात् ॥

यद् आह कौशिकः । "ऋधङ्मन्त्रः [५. १. १] इत्येका यथेयं पृथिवी [६. १७] 'अच्युता' इति गर्भदृंहणानि । जम्भगृहीताय प्रथमावर्जं ज्यां त्रिरुद्ग्रथ्य बध्नाति । लोष्टान् अन्वृचं प्राशयन्ति । श्यामसिकताभिः शयनं परिकिरति" इति [कौ० ४.११]॥

"ईर्ष्याया ध्राजिम्" इति तृचेन स्त्रीविषयेर्ष्यानिवृत्त्यर्थम् ईर्ष्योपेतं दृष्ट्वा जपेत् । तस्यैव भिक्षां वा प्रयच्छेत् स्पृष्ट्वा वा जपेत् । सूत्रितं हि । "ईर्ष्याया ध्राजिम् [६. १८] जनाद् विश्वजनीनात् [७, ४६] त्वाष्ट्रेणाहम् [७. ७८. ३] इति प्रतिजापप्रदानाभिमर्शनानि" इति [कौ० ४. १२] ॥

'यथेयं पृथिवी मही' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे गर्भको दृढ़ करनेके कर्ममें धनुषकी प्रत्यञ्चाको तीन वार ऊपरको गूँथकर स्त्री के बाँधे।

तथा इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे खेतकी मट्टीको अभिमंत्रित कर प्रत्येक ऋचासे गर्भिणीको चटावे। वा काली धूलको अभिमन्त्रित कर गर्भिणीकी खाट पर बखेर देय।

तथा जम्भग्रहणमें उसकी शान्तिके लिये इस तीन ऋचावाले सूक्तसे धनुषकी प्रत्यञ्चाका बन्धन आदि कर्म करे।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका भी है, कि—"ऋधङ्मन्त्रः (५। १। १) इत्येका यथेयं पृथिवी (६। १७) अच्युता इति गर्भदृंहणानि जम्भगृहीताय प्रथमावर्जं ज्यां त्रिरुदुद्ग्रथ्य बध्नाति। लोष्टान् अन्वृचं प्राशयति। श्यामसिकताभिः शयनं परिकिरति" (कौशिकसूत्र ४। ११)

"ईर्ष्याया ध्राजिम्" इस तीन ऋचावाले सूक्तको स्त्रीविषयक ईर्ष्याको दूर करनेके लिये ईर्ष्यायुक्त पुरुषको देख कर जपे। उस को छूकर जपे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"ईर्ष्याया ध्राजिम् (६। १८) जनाद् विश्वजनीनाद् (७। ४६) त्वाष्ट्रेणाहम् (७। ७८। ३) इति प्रतिजापप्रदानभिमर्शनानि" (कौशिकसूत्र ४। १२)॥

तत्र प्रथमा॥

य॒थेयं पृ॑थि॒वी म॒ही भू॒ता॒नां गर्भ॑माद॒धे।
ए॒वा ते॑ ध्रियतां॒ गर्भो॒ अनु॒ सूतुं॒ सवि॑तवे॥ १॥

य॑था। इ॒यम्। पृ॒थि॒वी। म॒ही। भू॒ताना॑म्। गर्भ॑म्। आ॒ऽद॒धे।
ए॒व। ते॒। ध्रि॒य॒ता॒म्। गर्भः॑। अनु॑। सूतु॑म्। सवि॑तवे॥ १॥

यथा मही महती इयं परिदृश्यमाना पृथिवी भूतानाम् भूतजातानां प्राणिनां गर्भम् आदधे धारयति । पार्थिवशरीरोपादानभूतं गर्भं दशमासावधि बिभर्तीत्यर्थः । हे नारि ते तव गर्भः एव एवं ध्रियताम् गर्भाशये धृतः स्थिरो भवतु । कियत्पर्यन्तम् इत्याह अनुसूत्रम् इति । दशमासभरणेन अनुसूत्रम् अनुप्राप्तप्रसवं तं गर्भं सवितवे प्रसवितुं प्रजनयितुम् । ❀ षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । अस्मात् तुमर्थे तवेप्रत्ययः ❀ ॥

जैसे यह विशाल पृथिवी प्राणियोंके शरीरको धारण करती है (अर्थात् पार्थिव शरीरके उपादानरूप गर्भको दश मास तक धारण करती है) हे नारि ! तेरा गर्भ भी इसी प्रकार (गर्भाशयमें) प्रसवके समय उत्पन्न करनेके लिये धरा रहे ॥ १ ॥

यथे॒यं पृ॑थि॒वी म॒ही दा॒धारे॒मान् व॒नस्पती॑न् ।
ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥ २ ॥

यथा॑ । इ॒यम् । पृ॒थि॒वी । म॒ही । दा॒धार॑ । इ॒मान् । व॒नस्पती॑न् ।
ए॒व । ते॒ । ध्रि॒य॒ता॒म् । गर्भः॑ । अनु॑ । सूतु॑म् । सवि॑तवे ॥ २ ॥

यथे॒यं पृ॑थि॒वी म॒ही दा॒धार॒ पर्व॑तान् गि॒रीन् ।
ए॒वा ते॑ ध्रियता॒ं गर्भो॒ अनु॒ सूतु॒ं सवि॑तवे ॥ ३ ॥

यथा॑ । इ॒यम् । पृ॒थि॒वी । म॒ही । दा॒धार॑ । पर्व॑तान् । गि॒रीन् ।
ए॒व । ते॒ । ध्रि॒य॒ता॒म् । गर्भः॑ । अनु॑ । सूतु॑म् । सवि॑तवे ॥ ३ ॥

द्वितीया ॥ मही महती पृथिवी इमान् परिदृश्यमानान् वनस्पतीन् वृक्षान् दाधार स्थिरं धारयति । यथा पर्वतान् महाशैलान् गिरीन् । गिरयस्तत्पर्यन्तवर्तिनः शिलोच्चयाः । तान् सर्वान् दाधार

स्थिरं धारयति। यथा एतद् उक्तं सर्वं पृथिव्या स्थिरं धार्यते एव एवम् हे नारि ते त्वदीयो गर्भः ध्रियताम् इत्यादि पूर्ववद् योजना ॥

जैंसे यह विशाल पृथिवी इन वनस्पतियोंको तथा पर्वत और उपपर्वतोंको स्थिरभावसे धारण कर रही है, इसी प्रकार यह तेरा गर्भ भी प्रसवके समय प्रसव करनेके लिये गर्भाशयमें स्थित रहे२

तृतीया ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥

यथा। इयम्। पृथिवी। मही। दाधार। विऽस्थितम्। जगत्।
एव। ते। ध्रियताम्। गर्भः। अनु। सूतुम्। सवितवे ॥ ४ ॥

मही महती इयं पृथिवी विष्ठितम् विविधम् अवस्थितं चराचरात्मकं जगद् यथा येन प्रकारेण दाधार स्वात्मनि धारयति। ❀ तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम् ❀। अन्यद् व्याख्यातम् ॥

जैसे यह विशाल पृथिवी अनेक प्रकारसे स्थित चराचरात्मक जगत्को अपनेमें धारण करती है इसी प्रकार यह तेरा गर्भ प्रसवके समय उत्पन्न करनेके लिये तेरे गर्भाशयमें स्थित रहे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्याः उतापराम्।
अग्निं हृदय्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥

ईर्ष्यायाः। ध्राजिम्। प्रथमाम्। प्रथमस्याः। उत। अपराम्।
अग्निम्। हृदय्यम्। शोकम्। तम्। ते। निः। वापयामसि १

ईर्ष्यायाः। स्त्रीविषया अक्षमा अत्र ईर्ष्या मैनाम् अन्यो द्राक्षीत् इत्येवंरूपा । तस्या ईर्ष्यायाः ध्राजिम् । ❀ ध्रज गतौ इत्यस्माद् वसिवपीत्यादिना [उ० ४. १२४] भावे इञ् प्रत्ययः ❀ । वेगयुक्तां गतिं प्रथमाम् प्रथमोत्पन्नाम् निर्वापयामसीत्युत्तरत्र संबन्धः । उत तस्याः प्रथमस्याः प्रथमभाविन्या अपराम् अनन्तरोत्पन्नामपि तां निर्वापयामः शमयामः । हृदय्यम् हृदयदाहकं तत्र भवं कोपाग्निं शोकं च तज्जनितम् ईदृशं तम् हे ईर्ष्यायुक्त पुरुष ते तव सकाशाद् निर्वापयामसि निर्वापयामः शमयामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

इस स्त्रीको और कोई न देखे ऐसी ईर्ष्याकी वेगयुक्त प्रथमगतिको हम शान्त करते हैं और उस प्रथम गतिके अनन्तर होने वाली गतिको भी हम शान्त करते हैं और हे ईर्ष्यायुक्त पुरुष ! उससे होने वाली कोपाग्नि और शोकको भी हम तेरे पाससे निकालते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ २ ॥

यथा । भूमिः । मृतऽमनाः । मृतात् । मृतमनःऽतरा ।

यथा । उत । मम्रुषः । मनः । एव । ईर्ष्योः । मृतम् । मनः ॥२॥

भूमिः सर्वप्राणिभिरधिष्ठिता पृथिवी मृतमनाः अपगतमनस्का सती यथा ईर्ष्यां न करोति । यथा च मृतात् त्यक्तप्राणात् शवशरीरादपि मृतमनस्तरा अतिशयेन मृतमनाः पृथिवी भवति । एतेन सर्वक्लेशसहत्वम् अस्या आविष्कृतं भवति । उत अपि च मम्रुषः मृतवतः पुरुषस्य मनः तच्छरीराद् अपगतं सत् यथा

नेर्ष्याजनकम् [एव] एवमेव ईर्ष्योः ईर्ष्यायुक्तस्य स्त्रीविषयकोपयुक्तस्य पुरुषस्य मनः मृतम् विनष्टम् अस्तु । ईर्ष्याग्रस्तं न भवत्वित्यर्थः ॥

जैसे सब प्राणियोंसे अधिष्ठित पृथिवी मरे हुए मन वाली होती है अर्थात् उदासीन रह कर ईर्ष्या नहीं करती है और जैसे वह मरे हुए शरीरकी अपेक्षा भी मरे हुए मन वाली होती है अर्थात् सब प्रकारके क्लेशोंको सहती है और जैसे मरेहुए पुरुषका मन उसके शरीरसे निकल जानेके कारण ईर्ष्याका उत्पन्न करने वाला नहीं होता है । इसी प्रकार स्त्रीविषयक ईर्ष्यासे युक्त पुरुषका मन विनष्ट होजावे अर्थात् ईर्ष्यासे ग्रस्त न होवे ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अ॒दो यत् ते॑ हृ॒दि श्रि॒तं म॑न॒स्कं प॑तयिष्णु॒कम् ।
तत॑स्त ई॒र्ष्यां मु॑ञ्चामि॒ नि॒रूष्मा॒णं दृते॑रिव ॥ ३ ॥

अ॒दः । यत् । ते॒ । हृ॒दि । श्रि॒तम् । म॒नः॒ऽकम् । प॒त॒यि॒ष्णु॒कम् ।
त॑तः । ते॒ । ई॒र्ष्याम् । मु॒ञ्चा॒मि॒ । निः । ऊ॒ष्मा॑णम् । दृते॑ःऽइव ॥३॥

हे ईर्ष्याग्रस्त पुरुष ते तव हृदि हृदये श्रितम् अवस्थितम् अदः प्रसिद्धं यत् मनः पतयिष्णु अश्विष्णु इतस्ततः पतनशीलम् । कम् इति पदद्वयं पदपूरणार्थम् । ततः तस्माद् मनसः ते तव ईर्ष्याम् स्त्रीविषयं कोपं निःशेषेण मुञ्चामि अपगमयामि । तत्र दृष्टान्तः ऊष्माणम् इति । यथा दृतेः चर्ममय्या भस्त्रिकायाः सकाशात् तन्मध्यवर्तिनम् ऊष्माणम् श्वासवद् अन्तःपूरितं वायुं तन्मुखान्निःसारयति कर्मकरस्तद्वद् इत्यर्थः ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे ईर्ष्याग्रस्त पुरुष ! तेरे हृदयमें स्थित इधर उधर गिरते हुए मनसे स्त्रीविषयक कोपको मैं इस प्रकार दूर करता हूँ, कि–जैसे कर्मकार धौंकनीमें भरी हुई गरम वायुको उस धौंकनीके मुखसे निकाल देता है ॥ ३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१९१)॥

“पुनन्तु मा” इत्यस्य तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः मरुद्भ्यो मान्त्रवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्यः क्षीरौदनहोमः आज्यहोमः काशदिविधुवकवेतसाख्या ओषधीरेकस्मिन् पात्रे कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य जलमध्ये अधोमुखं निनयनम् तासामेव काशादीनां संपातिताभिमन्त्रितानाम् अप्सु प्लावनम् श्वशिरसो मेषशिरसश्च अभिमन्त्रितस्य अप्सु प्रक्षेपणम् मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे बन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन संप्रोक्ष्य त्रिपदे शिक्ये निधाय अप्सु प्रक्षेपणं च इत्येतानि अभिवर्षणकर्माणि संपातिताभिमन्त्रितघटोदकेन आप्लावनम् अवसेचनं च अनेन तृचेन कुर्यात् । “अर्थम् उत्थास्यन्” इति प्रक्रम्य “अम्बयो यन्ति [१. ४] शंभुमयोभूः [१. ५, ६] हिरण्यवर्णाः [१. ३३] यददः [३. १३] पुनन्तु मा [६. १९]” इत्यादि “अभिवर्षणावसेचनानाम्” इत्येतदन्तं सूत्रम् अत्र द्रष्टव्यम् [कौ० ५. ५] ॥

तथा सवयज्ञेषु अनेन तृचेन यजमानपत्नी पुत्रान् प्रोक्षेत् । “पवित्रैः संप्रोक्षति” इति हि सूत्रम् [कौ० ८. २]। अत्र पवित्रशब्देन पुनन्तु मा [६. १९] वायोः पूतः [६. ५१] वैश्वानरो रश्मिभिः [६. ६२] इति सूक्तानि विवक्षितानि ॥

तथा पवित्रसवे अनेन [तृचेन] निरुप्तहविरभिमर्शनसंपातादीनि कर्माणि कुर्यात् । “पुनन्तु मा देवजना इति पवित्रं कृसरम्” इति हि सूत्रम् [कौ० ८. ७] ॥

तथा दीक्षायाः दर्भपिञ्जूलैः पूयमानो यजमानः एतं तृचं जपेत्। "पुनन्तु मेति पाव्यमानः" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. १]॥

सौत्रामण्यां "पुनन्तु मा" इत्ययं तृचः आसिच्यमानशतातृण्णानुमन्त्रणे विनियुक्तः। "पुनन्तु मा [६. १९] गिरावरगराटेषु [६. ६९] यद्गिरिषु [९. १. १८] इति शतातृण्णाम् आसिच्यमानाम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. ३]॥

"अग्नेरिवास्य दहतः" इति तृचेन पित्तज्वरभैषज्ये दावाग्नौ ताम्रस्रुवेण आज्यं हुत्वा व्याधितस्य मूर्ध्नि संपातान् आनयेत्। "अग्नेरिवेत्युक्तं।दावे" इति हि सूत्रम् [कौ० ४. ६]॥

"पुनन्तु मा" इन तीन ऋचा वाले सूक्तका बृहद्गणमें पाठ है अतएव शान्त्युदक आदिमें इसका विनियोग होता है।

तथा धनको उठाते समय होने वाले विघ्नोंको शान्त करना चाहने वाला पुरुष मरुत् देवताओंके लिये वा मन्त्रसे प्रतीत होने वाले देवाताओंके लिये क्षीर भात और घृतसे होम करे। काश दिविधुवक और वेत नाम वाली औषधियोंको एक पात्रमें रख, संपातन और अभिमन्त्रण करके जलके मध्यमें नीचेको मुख करके लेजाना, उन ही सम्पातित और अभिमंत्रित काश आदिकोंका जलमें डालना, अभिमन्त्रित कुत्तेके शिरका और मेढ़के शिरका जलमें फेंकना, मनुष्यके केश और पुराने जूतोंको बाँसके ऊपर के भागमें बाँधना, भूसी सहित कच्चे पात्रको अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण कर तीन लड़ वाले छींके पर रख जलमें फेंकना—ये अभिवर्षण (वृष्टि होनेके) कर्म तथा सम्पातित और अभिमन्त्रित घटके जलसे स्नान और अवसेचन इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे करे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ५। ५ का प्रमाण भी है, कि—"अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "अम्बयो यन्ति (१। ४) शंभुमयोभूः (१। ५, ६) हिरण्यवर्णाः (१। ३३) यददः

(३ । १३) पुनन्तु मा (६ । १९) इत्यादि" "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रं अत्र द्रष्टव्यम् ॥

तथा सवयज्ञोंमें इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे यजमानकी पत्नी पुत्रोंको प्रोक्षित करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—पवित्रैः सम्प्रोक्षति" (कौशिकसूत्र ८ । २) यहाँ पवित्र शब्दसे पुनन्तु मा (यह छठे काण्डका उन्नीसवाँ सूक्त) वायोः पूतः (यह छठे काण्डका इक्यावनवाँ सूक्त) वैश्वानरो रश्मिभिः (यह छठे काण्डका बासठवाँ सूक्त) लिये जाते हैं ॥

तथा पवित्रसवमें इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे न होमी हुई हविका अभिमर्शन सम्पातन आदि कर्म करे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । ७ का प्रमाण भी है, कि—"पुनन्तु मा देवजना इति पवित्रं कुसरम्" ॥

तथा दीक्षाकी कुशोंकी मुट्ठीसे पवित्र होता हुआ यजमान इस तीन ऋचा वाले सूक्तको जपे। इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १ का प्रमाण भी है, कि—"पुनन्तु मेति पाव्यमानः" ॥

सौत्रामणीमें "पुनन्तु मा" यह तीन ऋचा वाला सूक्त सींची जाती हुई शतातृण्णाके अनुमन्त्रणमें विनियुक्त होता है। इस विषयमें वैतानसूत्र ५ । ३ का प्रमाण भी है, कि— "पुनन्तु (६ । १९) गिरावरगराटेषु यद्द गिरिषु (६ । १ । १८) इति शतातृण्णां आसिच्यमानाम्" ॥

"अग्नेरिवास्य दहतः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पित्तज्वरकी चिकित्सामें दावाग्निमें ताँबेके स्रवेसे घृतकी आहुति देकर रोगीके मस्तक पर सम्पातोंको लावे। "अग्नेरिवेत्युक्तं दावे" (कौशिकसूत्र ४ । ६) ॥

तत्र प्रथमा ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।

पु॒नन्तु वि॑श्वा भू॒तानि॒ पव॑मानः पुनातु मा ॥ १ ॥

पु॒नन्तु॑ । मा॒ । दे॒व॒ऽज॒नाः । पु॒नन्तु॑ । मन॑वः । धि॒या ।

पु॒नन्तु॑ । विश्वा । भू॒तानि॑ । पव॑मानः । पु॒ना॒तु॒ । मा॒ ॥ १ ॥

देवजनाः देवजातीया मा मां पुनन्तु शोधयन्तु ॥ तथा मनवः मनुष्यजातीयाः धिया बुद्ध्या कर्मणा वा मां पुनन्तु ॥ विश्वा विश्वानि सर्वाणि भूतानि मां पुनन्तु ॥ यश्च अन्तरिक्षे पवमानः गच्छन् वायुः सोपि मां पुनातु । यद्वा दशापवित्रेण शोध्यमानः सोमः पवमानः । स च स्वात्मानमिव अस्मान् शोधयतु ॥

देवजातिके व्यक्ति मुझे पवित्र करें । मनुष्य जातिके पुरुष बुद्धिसे वा कर्मसे मुझे पवित्र करें । सब प्राणी मुझे पवित्र करें । जो वायुदेव अन्तरिक्षमें विचरण करते हैं, वह भी मुझको पवित्र करें । अथवा दशापवित्रमें शोधा जाता हुआ सोम अपनी समान हमको भी पवित्र करे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पव॑मानः पुना॒तु मा॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ ।
अथो॑ अरि॒ष्टता॑तये ॥ २ ॥

पव॑मानः । पु॒ना॒तु॒ । मा॒ । क्रत्वे॑ । दक्षा॑य । जी॒वसे॑
अ॒थो इति । अ॒रि॒ष्टऽतातये ॥ २ ॥

पवमानः सोमः मा मां पुनातु शोधयतु पापविनिर्मुक्तं करोतु । किमर्थम् । क्रत्वे क्रतवे कर्मणे दक्षाय बलाय । यद्वा क्रतुदक्षशब्दाभ्यां प्राणापानौ विवक्षितौ । "प्राणो वै दक्षः अपानः क्रतुः" इति श्रुतेः [तै० सं० २. ५. २. ४] । तयोः प्राणापानयोः शरीरे

अवस्थानार्थं जीवसे तद्धेतुकजीवनार्थं च पुनातिवति संबन्धः। अथो अपि च अरिष्टतातये। रिष्टं हिंसा तदभावः अरिष्टम् तस्य करणाय। ❀ "शिवशमरिष्टस्य करे" इति करणेर्थे तातिल् प्रत्ययः ❀ ॥

पवित्र होता हुआ सोम मुझको पवित्र करे अर्थात् पापसे मुक्त करे। यह सोम कर्म करनेके लिये और बलप्राप्तिके लिये वा प्राण अपानके † लिये अर्थात् उनको शरीरमें स्थापित कर जीवन स्थिर करनेके लिये हमको पवित्र करे और अहिंसाके लिये हमको पवित्र करे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च ।
अ॒स्मान् पु॑नीहि॒ चक्ष॑से ॥ ३ ॥

उ॒भाभ्या॑म् । दे॒व॒ । स॒वि॒तः॒ । प॒वित्रे॑ण । स॒वेन॑ । च ।
अ॒स्मान् । पु॒नी॒हि॒ । चक्ष॑से ॥ ३ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरक हे देव पवित्रेण पवनसाधनेन त्वदीयेन तेजसा सवेन प्रसवेन त्वत्प्रेरणेन च आभ्याम् उभाभ्याम् अस्मान् पुनीहि शुद्धान् कुरु। किमर्थम्। चक्षसे। ❀ चष्टिः पश्यतिकर्मा ❀। दर्शनाय। ऐहिकामुष्मिकसकलसुखसाक्षात्कारार्थम् इत्यर्थः ॥

---

† यहाँ "प्राणो वै दक्षः अपानः क्रतुः ॥–प्राण ही दक्ष है और अपान क्रतु है"। इस तैत्तिरीयसंहिता २। ५। २। ४-की श्रुति के अनुसार दक्ष शब्दसे प्राण और क्रतु शब्दसे अपान अर्थ लिया गया है।

हे सबके प्रेरक सवितादेव ! आप पवित्र करनेके साधन अपने तेज और अपनी प्रेरणा—इन दोनोंसे हमको इस लोक और परलोकके सकल सुखोंका प्रत्यक्ष करनेके लिये शुद्ध करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥ १ ॥

अग्नेःऽइव । अस्य । दहतः । एति । शुष्मिणः । उतऽइव । मत्तः । विऽलपन् । अप । अयति ।
अन्यम् । अस्मत् । इच्छतु । कम् । चित् । अव्रतः । तपुःऽवधाय । नमः । अस्तु । तक्मने ॥ १ ॥

आर्द्रम् अनार्द्रं च सर्वं दहतः दावात्मकस्य अग्नेरिव कृत्स्नम् अङ्गं दहतः शुष्मिणः शोषकबलयुक्तस्य अस्य ज्वरस्य दाहः एति कृत्स्नम् अङ्गं व्याप्नोति । उत अपि च मत्त इव उन्मत्त इव आत्मानं विस्मृत्य विलपन् विविधं प्रलापं कुर्वन् तेन ज्वरेण अपायति अपगच्छति अस्माल्लोकात् प्रैति । ईदृशः प्रबलः पित्तज्वरः अस्मत् अस्मत्तः अन्यं कंचित् कमपि अव्रतः अव्रतं सदाचारहीनं पुरुषम् इच्छतु प्राप्नोतु । उक्तं हि ।

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः
ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः

इति । तपुर्वधाय तपुस्ताप एव वधः हननसाधनम् आयुधं यस्य

स तथोक्तः तस्मै तक्मने कृच्छ्रजीवननिमित्ताय ज्वराभिमानिदेवाय नमोस्तु नमस्कारो भवतु । अनेन नमस्कारेण तुष्टः सन् अन्यत्र अपसर्पत्वित्यर्थः । ❀ तकि कृच्छ्रजीवे । अस्माद् औणादिको मनिन् ❀ ॥

गीले और सूखे सबको जलानेवाले दावाग्निकी समान सम्पूर्ण अंगोंको जलाने वाले शोषक बलयुक्त इस ज्वरका दाह सम्पूर्ण अङ्गमें व्याप्त होजाता है (उस समय पुरुष) उन्मत्तकी समान अपनेको भूलकर अनेक प्रकारका प्रलाप करता हुआ इस लोक से चल देता है । ऐसा प्रबल पित्तज्वर हमारे पाससे अन्य किसी व्रत न करने वाले सदाचारसे हीन पुरुषको प्राप्त होवे † । तापरूपी मारनेके साधन (आयुध) वाले और जीवनको कष्टमय करने वाले ज्वरके अभिमानी देवताके लिये नमस्कार प्राप्त हो, तात्पर्य यह है, कि—इस नमस्कारसे सन्तुष्ट होकर वह अन्यत्र सरक जायँ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

नमो॑ रु॒द्राय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॒ नमो॒ रा॒ज्ञे वरु॑णाय॒
त्विषी॑मते ।
नमो॑ दि॒वे नम॑ः पृथि॒व्यै नम॒ ओष॑धीभ्यः ॥ २ ॥

नमः॑ । रु॒द्राय॑ । नमः॑ । अ॒स्तु॒ । त॒क्मने॑ । नमः॑ । राज्ञे॑ । वरु॑णाय ।
त्विषि॑ऽमते ।

---

‡ कहा भी है, कि—हे मुनिशार्दूल ! पूर्वजन्ममें व्रत उपवास आदिसे जिन्होंने विष्णुभगवान्को सन्तुष्ट नहीं किया होता है, वे ही ग्रह रोग आदिके चक्करमें पड़ते हैं । यथा-"व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः । ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः ॥"

नमः । दिवे । नमः । पृथिव्यै । नमः । ओषधीभ्यः ॥ २ ॥

रुद्राय रोदयति उपतापेन अश्रूणि मोचयतीति रुद्रो ज्वराभिमानी देवः । ❀ "रोदेर्णिलुक् च" [उ० २, २२] इति रक् प्रत्ययः ❀ । तस्मै रुद्राय प्रथमं नमोस्तु तक्मने ज्वराय च नमोस्तु । त्विषीमते दीप्तिमते राज्ञे स्वामिने तत्तत्प्राणिकृतपापानुरोधेन निग्रहकारिणे वरुणाय नमोस्तु । तथा दिवे द्युलोकाय नमः पृथिव्यै च नमः । द्यावापृथिव्यौ हि कृत्स्नस्य भूतजातस्य मातापितरौ तस्मात् तयोर्नमस्कारः कृतः । ओषधीभ्यः पृथिव्याम् उत्पन्नाभ्यो व्रीह्यादिभ्यो नमोस्तु । औषधमेवया पथ्यक्रमेण च आरोग्यम् उपजायत इत्योषधीनां नमस्कारः ॥

तापके द्वारा आँसू निकलवा कर रुलाने वाले ज्वरके अभिमानी देवता रुद्रदेवके लिये नमस्कार हो । ज्वरके लिये भी नमस्कार हो और अपने २ किये हुए पापोंके अनुसार दण्ड देने वाले कान्तिमान् राजा वरुणदेवके लिये नमस्कार हो, द्युलोकके लिये नमस्कार है और पृथिवीके लिये नमस्कार है । (द्यावापृथिवी सकल भूतोंके माता पिता हैं अतएव उनको नमस्कार किया है ।) पृथिवीमें उत्पन्न हुई ब्रीहि आदि औषधियोंके लिये नमस्कार हो (औषधिका सेवन करनेसे और पथ्यके द्वारा आरोग्य प्राप्त होता है अतएव औषधियोंको नमस्कार किया है) ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥ ३ ॥

अ॒यम् । यः । अ॒भि॒ऽशो॒च॒यि॒ष्णुः । विश्वा॑ । रू॒पाणि॑ । हरि॑ता ।

कृ॒णो॑षि ।

तस्मै॑ । ते॒ । अ॒रु॒णाय॑ । ब॒भ्रवे॑ । नमः॑ । कृ॒णो॒मि॒ । वन्या॑य ।

त॒क्मने॑ ॥ ३ ॥

अयम् आपरोक्ष्येण अनुभूयमानः अभिशोचयिष्णुः अभितः सर्वतः कृत्स्नम् अङ्गं सर्वेषु अङ्गेषु शोचयन् शोकम् उत्पादयन् । ❀ शुच शोके । "णेश्छन्दसि" इति इष्णुच् प्रत्ययः ❀ ।ईदृशो यः पित्तज्वरः विश्वा विश्वानि सर्वाणि रूपाणि हरिता हरितानि रक्तदूषणेन हरिद्रावर्णानि कृणोषि करोति । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । तस्मै अरुणाय अरुणवर्णाय बभ्रवे पीतवर्णाय च [वन्याय] संसेव्याय तक्मने ते तुभ्यं ज्वराय नमः कृणोमि करोमि ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
षष्ठकांडे द्वितीयोनुवाकः ॥

यह जो प्रत्यक्षरीतिसे अनुभवमें आनेवाला सब अंगोंमें दाह को करने वाला पित्तज्वर सब प्रकारके रूपोंको रक्तको दूषित कर हल्दीके वर्णका कर देता है, ऐसे अरुणवर्णवाले और पीले वर्ण वाले (दुष्कृतकारियोंके) सेवनीय ज्वरके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डके द्वितीय अनुवाकका पञ्चम सूक्त समाप्त
द्वितीय अनुवाक समाप्त (१९३) ॥

तृतीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "इमा यास्तिस्रः" इति आद्यं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन केशवृद्धिकामं वृक्षभूमिजातौषधिभिः अवज्वालितोदकेन वा विभीतकक्वाथोदकेन वा हरिद्राक्वाथोदकेन वा अभिमन्त्रितेन उषःकाले अवसिञ्चेत् । सूत्रितं हि । "इमा या-

स्तिस्र इति वृक्षभूमौ जाताञ्ज्वालेनावनक्षत्रेवसिञ्चतिं" इत्यादि [कौ० ४. ६]॥

"कृष्णं नियानम्" इति तृचेन उदरतुन्दादिभैषज्यार्थं चित्तिप्रायश्चित्त्याद्योषधिसहितम् उदकम् अभिमन्त्र्य तेनोदकेन व्याधितम् अवसिञ्चेत्॥

तथा तस्मिन्नेव भैषज्यकर्मणि मरुद्भ्यो मान्त्रवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्यः क्षीरौदनहोमम् आज्यहोमम् चित्त्याद्यौषधीरेकस्मिन् पात्रे कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य जलमध्ये अधोमुखं निनयनम् चित्त्यादीनां संपातिताभिमन्त्रितानाम् अप्सु प्लावनम् [शवसिरसो] मेषशिरसश्चाभिमन्त्रितस्य उदके प्रक्षेपणम् मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे बन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन संप्रोक्ष्य त्रिपदे शिक्ये निधाय अप्सु प्रक्षेपणं च इत्येतान्यभिवर्षणकर्माणि कुर्यात्। सूत्रितं हि। "कृष्णं नियानम् [६. २२] सस्रुषीः [६. २३] इत्योषध्यादिभिश्च्योतयति। मारुतानाम् अप्ययः" इति [कौ० ४. ६]॥

अस्य तृचस्य अपां सूक्तेषु पाठाद् आप्लावनादौ विनियोगः॥

तृतीय अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। उनमें "इमा यास्तिस्रः" यह यह प्रथम सूक्त है। इनमें पहिले तीन ऋचा वाले सूक्तसे केशकी वृद्धि चाहने वालेको वृक्ष और भूमि पर उत्पन्न हुई औषधियों से गरम किये हुए जलसे, वा वहेड़ेके काढ़ेके जलसे, वा हलदी के काढ़ेके अभिमन्त्रित जलसे उषःकालमें धोवे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"इमायास्तिस्र इति वृक्षभूमौ जाताज्वालेनावनक्षत्रेवसिञ्चति०" (कौशिकसूत्र ४। ६)॥

"कृष्णं नियानम्" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पेटकी थोंद आदिकी चिकित्साके लिये चित्ति प्रायश्चित्ति आदि औषधि पड़े हुए जलको अभिमन्त्रित कर उस जलसे रोगीको धोवे॥

तथा इसी चिकित्साकर्ममें मरुतोंके लिये वा मन्त्रसे प्रतीत होने वाले देवताओंके लिये क्षीर भातमे वा घृतसे होम करे तथा चित्ति आदि औषधिको एक पात्रमें करके सम्पातन और अभिमन्त्रण करके जलके मध्यमें नीचेको मुख करके उनका ले जाना, संपातित और अभिमन्त्रित चित्ति आदिका जलमें भिगोना, अभिमन्त्रित कुत्तेके सिर और मेढ़ेके शिरका जलमें डालना, मनुष्य के केश और पुराने जूतोंका बाँसके अग्रभागमें बाँधना, भूसी सहित कच्चे वर्तनको अभिमन्त्रित जलसे छिड़क कर तीन लड़ वाले छीकेमें रख कर जलमें डुबोना आदि अभिवर्षणके कार्योंको करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, "कि–कृष्णं नियानं (६।२२) सस्रुषीः (६।२३) इत्योषध्यादिभिश्च्योतयति। मारुतानां अप्ययः" (कौशिकसूत्र ४।६)॥

इस सूक्तका अपांसूक्तोंमें पाठ है अत एव इसका आस्रावन आदिमें विनियोग होता है।

तत्र प्रथमा ॥

इ॒मा यास्ति॒स्रः पृ॑थि॒वीस्तासां॑ ह॒ भूमि॑रुत्त॒मा ।
ता॒साम॑धि॑ त्व॒चो अ॒हं भे॑ष॒जं समु॑ जग्रभम् ॥ १ ॥

इ॒माः । याः । ति॒स्रः । पृ॒थि॒वीः । तासा॑म् । ह॒ । भूमि॑ः । उ॒त्ऽत॒मा ।
तासा॑म् । अधि॑ । त्व॒चः । अ॒हम् । भे॒ष॒जम् । सम् । ऊ॒॑ इति॑ ।
ज॒ग्र॒भ॒म् ॥ १ ॥

इमाः परिदृश्यमानाः तिस्रः त्रित्वसंख्योपेता याः पृथिवीः पृथिव्यः। उपलक्षणम् एतत्। पृथिव्याद्यास्त्रयो लोकाः सन्ति यद्वा। पृथिव्यादयस्त्रयो लोकाः प्रत्येकं त्रिधा भिन्नाः। "तिस्रो भूमीर्धारयन्" [ऋ० २. २७. ८] "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः"

[ऐ० ब्रा० २. १७] इत्यादिश्रुतेः । तासां पृथिव्युपलक्षितानां लोकानां मध्ये इयम् अस्माभिरधिष्ठिता भूमिः खलु उत्तमा उत्कृष्टतमा ऐहिकफलभोगनिमित्तत्वात् स्वर्गादिफलसाधनयागहोमाद्यनुष्ठानहेतुत्वाच्च । तासां पृथिवीनां त्वचः त्वगिव उपरिवर्तमाना या भूमिः तस्या अधि उपरि प्ररूढं भेषजम् व्याधिनिवर्तकम् औषधम् अहं समु जग्रभम् संगृह्णामि । ❀ ग्रहेः स्वार्थण्यन्तात् छान्दसे लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

यह जो पृथिवी आदि तीन लोक दीख रहे हैं उनमें यह हम से अधिष्ठित भूमि ऐहिकफलभोगका निमित्त होनेसे और स्वर्ग आदि फलके साधन होम आदिके अनुष्ठानका हेतु होनेसे श्रेष्ठ है । इन पृथिवी आदिके ऊपर त्वचाकी समान जो भूमि वर्तमान है उसके ऊपर उत्पन्न हुई व्याधिनिवर्तक औषधिको मैं ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

श्रे॑ष्ठमसि भेष॒जाना॒ं वसि॑ष्ठ॒ं वीरु॑धानाम् ।
सोमो॒ भग॑ इ॒व यामे॑षु दे॒वेषु॒ वरु॑णो॒ यथा॑ ॥ २ ॥

श्रे॑ष्ठम् । अ॒सि॒ । भे॒ष॒जाना॑म् । वसि॑ष्ठम् । वीरु॑धानाम् ।
सोम॑ः । भग॑ःऽइव । यामे॑षु । दे॒वे॑षु । वरु॑णः । यथा॑ ॥ २ ॥

हे हरिद्रादिरूप भेषज अन्येषां भेषजानां श्रेष्ठम् प्रशस्यतमम् असि अमोघवीर्यत्वात् । तथा वीरुधानाम् अन्यासां वीरुधां वसिष्ठम् वसुमत्तमं मुख्यम् असि । ❀ वीरुच्छब्दात् टाप् । "टापं चापि हलन्तानाम्" इति स्मरणात् ❀ । तत्र श्रैष्ठ्ये दृष्टान्तः सोम इति । यामेषु अहोरात्रभागेषु साध्येषु यथा सोमश्चन्द्रमाः भगः सूर्यश्च कालावच्छेदहेतुत्वेन प्रशस्तौ तद्वत् श्रेष्ठम् असीत्यर्थः । वसि-

ष्ठत्वे दृष्टान्तः देवेष्विति । यथा देवेषु मध्ये वरुणः वसुमत्तमो मुख्यः तद्वद् इत्यर्थः ॥

हे हरिद्रारूप औषधे ! तू अमोघ वीर्य वाली होनेसे अन्य औषधियोंसे श्रेष्ठ है । तथा अन्य वीरुधोंमें मुख्य है । जैसे दिन रात्रिके भाग यामोंमें चन्द्रदेव और सूर्यदेव कालावच्छेदके कारण श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार तू श्रेष्ठ है । जैसे देवताओंमें वरुण मुख्य हैं इसी प्रकार तू मुख्य है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

रेव॑ती॒रना॑धृषः सिषा॒सव॑ः सिषासथ ।
उ॒त स्थ केश॒दृंह॑णी॒रथो॑ ह केश॒वर्ध॑नीः ॥ ३ ॥

रेव॑तीः । अना॑धृषः । सि॒सा॒स॑वः । सि॒सा॒स॒थ॒ ।
उ॒त । स्थ । के॒श॒ऽदृंह॑णीः । अथो॒ इति॑ । ह॒ । के॒श॒ऽवर्ध॑नीः ॥३॥

हे रेवतीः रेवत्यः रयिमत्यो धनवत्य उक्ता ओषधयः । ❀ "रयेर्मतौ बहुलम्" इति संप्रसारणम् ❀ । अनाधृषः अनाधृषाः केनचिदपि अहिंसिताः सिषासवः सनितुम् आरोग्यं दातुम् इच्छन्त्यः यूयं सिषासथ आरोग्यं दातुम् इच्छथ । ❀ षणु दाने । अस्मात् सनि "०भरज्ञपिसनाम्" इति इटो विकल्पनाद् अभावपक्षे "जनसनखनां सञ्झलोः" इति आत्वम् ❀ ॥ उत अपि च केशदृंहणीः केशानां दार्ढ्यकारिण्यः स्थ भवथ ॥ अथो ह अपि च खलु केशवर्धनीः केशसमृद्धिकारिण्यो भवथ । ❀ दृंहणीर्वर्धनीरिति । दृहेर्वृधेश्च करणे ल्युडन्ताद् ङीपि रूपम् ❀ ॥

हे धन वाली किसीसे भी हिंसित न होने वाली आरोग्य देने की इच्छा करने वाली औषधियों तुम आरोग्य ! देनेकी इच्छा करो केशोंको दृढ़ करने वाली होओ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

कृ॒ष्णं नि॒यानं॒ हर॑यः सुप॒र्णा अ॒पो वसा॑ना॒ दिव॒मुत्
प॑तन्ति ।
त आव॑वृत्र॒न्त्सद॑नादृ॒तस्यादिद् घृ॒तेन॑ पृथि॒वीं व्यू॑दुः

कृ॒ष्णम् । नि॒ऽयान॑म् । हर॑यः । सु॒ऽप॒र्णाः । अ॒पः । वसा॑नाः । दिव॑म् ।
उत् । प॒त॒न्ति॒ ।
ते । आ । अ॒व॒वृ॒त्र॒न् । सद॑नात् । ऋ॒तस्य॑ । आत् । इत् । घृ॒तेन॑ ।
पृ॒थि॒वीम् । वि । ऊ॒दुः॒ ॥ १ ॥

कृष्णम् कृष्णवर्णं नियानम् । नियमेन याति गच्छति अत्र ज्योतिश्चक्रम् इति नियानम् अन्तरिक्षम् । तत् प्राप्य हरयः हरणशीलाः पार्थिवं कृत्स्नं रसं हरन्तः सुपर्णाः शोभनपतना आदित्यरश्मयः अपो वसानाः उदकम् आच्छादयन्तः उदकेन आत्मानम् आवृण्वन्तः दिवम् द्योतमानम् आदित्यमण्डलम् उत् पतन्ति उद्गमनेन प्राप्नुवन्ति । यद्वा कृष्णं नियानम् इति दक्षिणायनाभिप्रायम् । तद्धि ।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् [भ० गी० ८, २५] इति कृष्णपक्षसंबन्धात् कृष्णं नियानं यागहोमादिनियमयुक्तैः पुरुषैः प्राप्तव्यम् ईदृशं दक्षिणायनं प्रति उत्तरायणे समाहृतरसास्ते सूर्यरश्मयः ऋतस्य उदकस्य सदनात् आदित्यमण्डलाद् आववृत्रन् आवर्तन्ते वृष्ट्यर्थम् आगच्छति । ❀ वृतेर्लुङि "द्युद्भ्यो लुङि" इति परस्मैपदम् । छान्दसश्च्लेश्चङ् आदेशः । "बहुलं छन्दसि" इति रुडागमः ❀ ॥ आदित् अनन्तरमेव घृतेन उदकेन ते सूर्यरश्मयः पृथिवीं व्यूदुः विशेषेण उन्दन्ति आर्द्री-

कुर्वन्ति । श्रूयते हि । “यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेथ वर्षति” इति [तै० सं० २. ४. १०. २]। ❀ उन्दी क्लेदने इत्यस्मात् छान्दसे लिटि छान्दस उपधालोपः ❀ ॥

कृष्ण वर्ण वाले, कि–जिसमें ज्योतिश्चक्र नियमपूर्वक घूमता है उस अन्तरिक्षको प्राप्त होकर हरण करनेके स्वभाव वाली सूर्य की किरणें सम्पूर्ण पार्थिव रसको हरते समय सुन्दरतासे पतन कर जलको ढक लेती हैं फिर प्रकाशमान आदित्यमण्डलको उछल जाती हैं फिर वे सूर्यकी किरणें जलके भवन सूर्यमण्डलसे वर्षा करनेके लिये आती हैं इसके उपरान्त ही वे जलसे भूमिको गीली कर देती हैं ॥

वा–कृष्ण † नियान शब्दसे यहाँ दक्षिणायनशब्दका ग्रहण होसकता है, उस समय यह अर्थ होगा, कि–उत्तरायणके समय रससे भरने वाली सूर्यकी किरणें, याग होम आदिसे युक्त पुरुषों को मिलने वाले दक्षिणायनके समय जलके भवन आदित्यमण्डल से वृष्टि करनेके लिये आती हैं फिर वे किरणें जलसे पृथ्वीको गीली कर देती हैं ‡ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

पय॑स्वती कृणु॒थाप ओष॑धी शि॒वा यदेज॑था मरुतो
रुक्मवक्षसः ।

---

† श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है–“धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥ (भगवद्गीता ८ । २५)

‡ तैत्तिरीयसंहिता २ । ४ । १० । २ में कहा है, कि–‘यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथवर्षति ॥–वह आदित्य जब तिरछी किरणोंसे लौटते हैं तब वर्षा करते हैं ॥”

ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः
सिञ्चथा मधु ॥ २ ॥

पयस्वतीः । कृणुथ । अपः । ओषधीः । शिवाः । यत् । एजथ ।
मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।

ऊर्जम् । च । तत्र । सुऽमतिम् । च । पिन्वत । यत्र । नरः ।
मरुतः । सिञ्चथ । मधु ॥ २ ॥

हे मरुतः रुक्मवक्षसः रुक्मः स्वर्णमयम् आभरणं वक्षःस्थले येषां तादृशाः सन्तो यूयं यत् यदा एजथ प्रचलथ । ❀ एजृ कम्पने ❀ । तदानीं पयस्वतीः रसवतीः अपः उदकानि ओषधीश्च शिवाः सुखकरीः कृणुथ कुरुथ ॥ नरः नेतारः हे मरुतः यूयं यत्र मधु मधुररसं वृष्ट्युदकं सिञ्चथ वर्षयथ तत्र तस्मिन् देशे ऊर्जं च बलकरम् अन्नं सुमतिं च शोभनबुद्धियुक्तां प्रजां पिन्वथ उदकसेचनेन पोषयथ ॥

हे मरुतो ! तुम सुवर्णमय आभूषणोंको वक्षःस्थलमें धारण करने वाले हो जब तुम चलते हो उस समय रस वाले जलोंको और औषधियोंको सुख देते हो । हे नेता मरुत् देवताओं ! तुम जिस देशमें मधुर वृष्टिजलको वरसाते हो उस देशमें बलप्रद अन्न और शोभन बुद्धि वाली प्रजाको भी पुष्ट करते हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ३

उदऽप्रुतः । मरुतः । तान् । इयर्त । वृष्टिः । या । विश्वाः ।
निऽवतः । पृणाति ।

ए॑जाति । गह्वा॑ । क॒न्या॑ऽइव । तुन्ना॒ । एरु॑म् । तु॒न्दा॒ना । पत्या॑ऽइव । जा॒या ॥ ३ ॥

हे मरुतः उदप्रुतः उदकस्य प्रेरकान् तान् मेघान् इयर्त प्रेरयत । ❀ च्युङ् प्रुङ् गतौ । अस्मात् कर्तरि क्विप् । "उदकस्योदः संज्ञायाम्" इति उदकशब्दस्य उदभावः । इयर्तेति । ऋ गतौ इत्यस्मात् लोट् । "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तबादेशः । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ । के पुनस्ते मेघा इति विशिनष्टि । या यदीया येषां मेघानां संबन्धिनी वृष्टिः विश्वा विश्वानि व्रीहियवादिसस्यानि निवतः निम्नगामिनीर्नदीश्च पृणाति पूरयति । आप्याययतीत्यर्थः । ❀ "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति गमेरर्थे वतिः ❀ । यद्वा तान् । वर्णव्यत्ययः । या वृष्टिः उक्तविधा तां वृष्टिं प्रेरयतेत्यर्थः ॥ अपि च गह्वा । ❀ गर्ह गह्व कुत्सायाम् ❀ । गह्वयति कुत्सयति भीतिम् उत्पादयतीति गह्वा स्तनयित्नुरूपा माध्यमिका वाक् । सा एजाति एजतु वृष्ट्यर्थं मेघान् कम्पयतु । ❀ एजृ कम्पने । अस्मात् लेटि आडागमः ❀ । तत्र दृष्टान्तः कन्येवेति । यथा तुन्ना दारिद्र्यादिभिः पीडिता कन्या मातापित्रादीन् कम्पयति तद्वद् इत्यर्थः । सा वाग् विशेष्यते । एरुम् गन्तारं मेघं प्राप्य तुञ्जाना आभाषमाणा ध्वनन्ती । ❀ तुजि आभाषणे । चौरादिकः ❀ । यद्वा । ❀ तुञ्जतिर्दानकर्मा । "तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे" [ऋ० १. ७. ७] इति हि निगमः ❀ । एरुम् गमनशीलम् उदकं तुञ्जाना प्रयच्छन्ती । तत्र दृष्टान्तः पत्येवेति । पत्या सहिता जायेव सा यथा आभाषते यथा वा दित्सितम् अन्नादिकं प्रयच्छति तद्वद् वृष्ट्युदकस्य प्रदात्रीत्यर्थः ॥

इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे मरुत देवताओं ! तुम जलके प्रेरक उन मेघोंको प्रेरित करो, कि–जिनकी वृष्टि धान जौं आदि सकल धान्योंको और नीचेको बहने वाली नदियोंको भी तृप्त करती है और गर्जनारूपी भयको उत्पन्न करने वाली माध्यमिका वाणी वृष्टिके लिये उन मेघोंको इस प्रकार कम्पित करे, कि–जिस प्रकार दरिद्रता आदिसे पीड़ित कन्या माता पिताको कँपाती है । जैसे पतिके साथ भाषण करती हुई स्त्री उसको अन्न आदि देती है, इसी प्रकार यह वाणी भी गमनशील मेघको अन्न आदि देती हुई उससे भाषण करती है॥३॥

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (१९५) ॥

“सस्रुषीः” “हिमवतः प्र स्रवन्ति” इति तृचयोः “पुनन्तु मा [६. १९] सस्रुषीः [६. २३] हिमवतः प्र स्रवन्ति [६.२४] वायोः पूतः पवित्रेण” [६. ५१] इति बृहद्गणे [कौ० ९. ९] पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

अनयोः अपां सूक्तेषु पाठात् आप्लावनादौ विनियोगः । सूत्रितं हि । “अवभृथाय व्रजन्त्यपां सूक्तैराप्लुत्य” इति [कौ० ८. ९]॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः आभ्यां तृचाभ्यां “पुनन्तु मा” इत्यत्रोक्तानि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । “अर्थम् उत्थास्यन्” इति प्रक्रम्य “पुनन्तु मा [६. १९] सस्रुषीः [६. २३] हिमवतः प्र स्रवन्ति [६. २४] वायोः पूतः पवित्रेण” [६. ५१] इत्यादि “अभिवर्षणावसेचनानाम्” इत्येतदन्तं सूत्रम् [कौ० ५. ५] अत्र द्रष्टव्यम् ॥

तथा “सस्रुषीः” इत्येकेन तृचेन उदरतुन्दादिभैषज्ये कृष्णं नियानम् [६. २२] इति तृचोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः प्रणीताः प्रमुच्यमाना अनेन तृचेन ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । “प्रणीताः विमुच्यमानाः सस्रुषीरित्यनुमन्त्रयते” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० १. ४] ॥

"हिमवतः प्र स्रवन्ति" इति तृचस्य शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ आस्रावनादौ अर्थोत्थापनकर्मसु च पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा हृदयदोषजलोदरकामलरोगशान्त्यर्थं नद्युदकं प्रवाहानुगुणम् आहृत्य तत्र वल्मीकतृणानि प्रक्षिप्य अनेन तृचेन अवसिच्य व्याधितम् अवसिञ्चेत् मार्जयेत् आचामयेद् वा । सूत्रितं हि । "हिमवत इति स्यन्दमाना अन्वीपम् आहार्य वल्मीकैः" इति [कौ० ४.६] ॥

"सस्रुषी" "हिमवतः प्रस्रवन्ति" इन दोनों सूक्तोंका बृहद्गण में पाठ है अत एव इनका शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि–"पुनन्तु मा (६ । १९) सस्रुषीः (६ । २३) हिमवतःप्रस्रवन्ति (६ । २४) वायो पूतः पवित्रेण (६ । ५१) इति बृहद्गणे" (कौशिकसूत्र १ । ९) ॥

इन दोनों सूक्तोंका अपां सूक्तोंमें पाठ होनेसे आस्रावन आदि में विनियोग होता है । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि– "अवभृथाय व्रजजन्त्यपां सूक्तैरास्रुत्य" (कौशिकसूत्र ८ । ९) ॥

तथा धन उठानेमें होने वाले विघ्नोंको शांत करना चाहने वाला इन दोनों तीन ऋचा वाले सूक्तोंसे क्षीरौदन हवन आदि 'पुनन्तु' (१९ वें) सूक्तमें कहे हुए कर्मोंको करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "पुनन्तु मा (६ । १९) सस्रुषीः (६ । २३) हिमवतः प्रस्रवन्ति (६ । २४) वायोः पूतः पवित्रेण" (६ । ५१) इत्यादि "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रं द्रष्टव्यम् ॥

तथा "सस्रुषीः" इस तीन ऋचा वाले एक सूक्तसे पेटकी थोंद आदिकी चिकित्साके लिये "कृष्णं नियानम्" इस छठे काण्ड के बाइसवें सूक्तमें कहे हुए कर्म करे। सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है

तथा दर्श और पूर्णमासमें प्रमुच्यमान प्रणीताओंका इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें वैतान-

सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"प्रणीता विमुच्यमानाः सस्रषीरित्यनुमन्त्रयते"। (वैतानसूत्र १ । ४) ॥

"हिमवतः प्रस्रवन्ति" इस तीन ऋचा वाले सूक्तका शान्त्युदकके अभिमन्त्रण आदिमें आसावन आदिमें और अर्थोत्थापन कर्मों में भी पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है।

तथा हृदयदोष, जलोदर और कमलवाय रोगकी शांतिके लिये प्रवाहानुगुण नदीके जलको लाकर उसमें घरके तिनकोंको डाले फिर इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे रोगी पर छिड़के वा उसको आचमन करावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"हिमवत इति स्यन्दमाना अन्वीपं" आहार्य वलीकै (कौशिकसूत्र ४।६)

तत्र प्रथमा ॥

स॒स्रुषी॒स्तद॒पसो॒ दिवा॒ नक्तं॑ च स॒स्रुषीः॑ ।
वरेण्यक्रतुर॒ह॒मपो दे॒वीरुप॑ ह्वये ॥ १ ॥

स॒स्रषीः॑ । तत् । अ॒पसः॑ । दिवा॑ । नक्त॑म् । च॒ । स॒स्रषीः॑ ।
व॑रेण्यऽक्रतुः । अ॒हम् । अ॒पः । दे॒वीः । उप॑ । ह्व॒ये॒ ॥ १ ॥

तत् प्रसिद्धं सर्वप्राणिजीवनात्मकं रूपं सस्रुषीः प्राप्तवतीः अपसः अपस्वतीः । ❀ मत्वर्थीयस्य लुक् ❀ । अपसा जगद्रक्षणकर्मणा युक्ताः दिवा नक्तं च अहोरात्रोपलक्षितं कृत्स्नं कालम् अविच्छेदेन सस्रषीः सरणशीलाः प्रवहणशीलाः । ❀ सृ गतौ । अस्माच्छान्दसस्य लिटः क्वसुः । "उगितश्च" इति ङीप् । वसोः संप्रसारणे यण् ❀ । ईदृशीः देवीरपः वरेण्यक्रतुः प्रशस्तकर्मा अहम् उप ह्वये समीपे आह्वयामि। यद्वा उपहवः अनुज्ञा। तां याचामहे इत्यर्थः॥

श्रेष्ठ कर्म वाला मैं सब प्राणियोंके जीवनरूपको प्राप्त होने वाले और जगत्की रक्षाका कर्म करनेके कारण दिन रात सब समय बहने वाले प्रकाशमान जलोंको आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

ओ॒ता आप॑ः कर्म॒ण्या॑ मु॒ञ्चन्त्वि॒तः प्रणी॑तये ।
स॒द्यः॑ कृण्व॒न्त्वेत॑वे ॥ २ ॥

आऽउ॑ताः । आप॑ः । क॒र्म॒ण्या॑ः । मु॒ञ्चन्तु॑ । इ॒तः । प्रऽनी॑तये ।
स॒द्यः । कृ॒ण्व॒न्तु॒ । एत॑वे ॥ २ ॥

ऊताः संतताः अविच्छेदेन प्रवहन्त्यः । ❀ ऊयी तन्तुसंताने । "श्वीदितो निष्ठायाम्" इति इट्प्रतिषेधः ❀ । कर्मण्याः लौकिकेषु वैदिकेषु च कर्मसु साधवः । ❀ "तत्र साधुः" इति यत् । "ये चाभावकर्मणोः" इति प्रकृतिभावः ❀ । ईदृश्य आपः इतः अस्मात् सर्वानर्थनिदानात् पापाद् अस्मान् मुञ्चन्तु । किमर्थम् । प्रणीतये प्रकर्षेण प्राप्याय फलाय । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । तादृक् फलं सद्यः शीघ्रम् एतवे प्राप्तुं कृण्वन्तु उदीरितलक्षणा अब्देवता अस्मांस्तदर्हान् कुर्वन्तु । ❀ प्रणीतये इति । पूर्वान्नयतेः कर्मणि क्तिन् । एतवे इति । इण् गतौ । "तुमर्थे सेसेन्" इति तवे प्रत्ययः ❀ ॥

सन्तत अविच्छिन्नरूपसे बहने वाले जल हमको श्रेष्ठ फल पानेके लिये सब अनर्थोंके मूल पापसे छुड़ावें। हमको श्रेष्ठ फल शीघ्र ही प्राप्त करानेके लिये पापसे मुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे कर्म॑ कृण्वन्तु॒ मानु॑षाः ।
शं नो॑ भवन्त्व॒प ओष॑धीः शि॒वाः ॥ ३ ॥

दे॒वस्य॑ । स॒वि॒तुः । स॒वे । कर्म॑ । कृ॒ण्व॒न्तु॒ । मानु॑षाः ।

१५८२

शम् । नः । भवन्तु । अपः । ओषधीः । शिवाः ॥ ३ ॥

देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वप्रेरकस्य सूर्यस्य सवे प्रेरणे सति मानुषाः मनोरपत्यभूता जनाः कर्म कृण्वन्तु लौकिकं वैदिकं च कृत्स्नं कर्मजातम् अनुतिष्ठन्तु । ❀ "मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च" इति मनुशब्दाद् अञ् षुगागमश्च । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ शिवाः कल्याणकारिण्यः ओषधीः ओषधयः अपः तद्वृद्धिहेतव आपश्च नः अस्माकं शं भवन्तु दुरितशमनहेतवो भवन्तु ॥

प्रकाशमान सूर्यदेवकी प्रेरणा होने पर मनुष्य लौकिक और वैदिक समस्त कर्मोंको करें, कल्याण करने वालीं औषधियें और उनकी वृद्धिके हेतु जल हमारे लिये कल्याणकारक हों—पापक्षय करने वाले हों ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥१॥

हिमऽवतः । प्र । स्रवन्ति । सिन्धौ । समह । सम्ऽगमः ।
आपः । ह । मह्यम् । तत् । देवीः । ददन् । हृद्द्योतऽभेषजम् ।१।

गङ्गादिनदीरूपाः पापक्षयहेतव आपः हिमवतः हिमवत्पर्वतात् प्र स्रवन्ति प्रवहन्ति । तासां सर्वासां सिन्धौ समुद्रे [समह] समानं संगमः संसर्गो भवति । ईदृश्यो देवीः देव्य आपः तत् प्रसिद्धं हृद्द्योतभेषजम् हृदयदाहनिवर्तकम् औषधं मह्यं ददन् प्रयच्छन्तु ॥

पापका क्षय करने वाले गंगाजल आदि जल हिमाचलसे बहते हैं, उन सबका समुद्रमें मेल होता है । ऐसे जल मुझको हृदयके दाहको शान्त करने वालीं औषधियें दें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यन्मे॑ अ॒क्ष्योरा॑दि॒द्योत॒ पार्ष्ण्योः॒ प्रप॑दोश्च॒ यत् ।
आप॒स्तत् सर्वं॒ निष्क॑रन् भि॒षजां॒ सुभि॑षक्तमाः ॥२॥

यत् । मे॒ । अ॒क्ष्योः । आ॒ऽदि॒द्योत॑ । पार्ष्ण्योः॑ । प्रऽप॑दोः । च॒ । यत् ।
आपः॑ । तत् । सर्व॑म् । निः । क॒र॒न् । भि॒षजा॑म् । सुभि॑षक्ऽतमाः

यद् रोगजातं मे मम अक्ष्योः अक्ष्णोः आदिद्योत आदीपयति व्यथयति । ❀ "ई च द्विवचने" इति अक्षिशब्दस्य ईकारान्तादेशः । द्युत दीप्तौ इत्यस्माच्छान्दसो वर्तमाने लिट् । "द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम्" इति अभ्यासस्य संप्रसारणम् ❀ । तथा पार्ष्ण्योः । पादयोरपरभागौ पार्ष्णी । पुरोभागौ प्रपदौ । उभयविधयोस्तयोश्च यद् रोगजातम् आश्रित्य वर्तते तत् सर्वम् आपः देवतारूपाः निष्करन् निष्कुर्वन्तु निर्गतं कुर्वन्तु । ❀ करोतेश्छान्दसो लुङ् । "कृमृदृरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । कीदृश्यस्ताः । भिषजाम् व्याधिनिवर्तकानां मध्ये सुभिषक्तमाः अतिशयेन चिकित्साकुशलाः ॥

जो रोग मेरे नेत्रोंको व्यथित कर रहा है, पार्ष्णि (पैरोंके दूसरे भागों) को और प्रपद (पैरोंके पुरोभागों) को व्यथित कर रहा है, उन सबोंको देवतारूप जल निकाल दें, ये जल व्याधि दूर करने वाली औषधियोंमें परमचिकित्साकुशल हैं ॥२॥

षष्ठी ॥

सिन्धु॑पत्नीः॒ सिन्धु॑राज्ञीः॒ सर्वा॑ या न॒द्य१॒ स्थन॑ ।
दत्त॒ न॒स्तस्य॑ भेष॒जं तेना॑ वो भुनजामहै ॥ ३ ॥

सिन्धु॑ऽपत्नीः । सिन्धु॑ऽराज्ञीः । सर्वाः॑ । याः । न॒द्यः । स्थन॑ ।

द॒त्त । न॒ः । तस्य॑ । भे॒ष॒जम् । तेन॑ । व॒ः । भु॒न॒जा॒म॒है॒ ॥ ३ ॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुपत्न्यः सिन्धुः समुद्रः पतिर्यासां तास्तथोक्ताः । ❀ "विभाषा सपूर्वस्य" इति ङीम्नकारौ ❀ । सिन्धुराज्ञीः सिन्धोः समुद्रराजस्य दाराः । ❀ उभयत्र "वा छन्दसि" इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । एवंभूताः सर्वा या यूयं नद्यः स्तन नदीरूपा भवत । ❀ अस्तेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः ❀ । ईदृश्योयूयं न अस्माकं तस्य रोगस्य भेषजम् निवर्तकम् औषधं दत्त प्रयच्छत । तेन औषधेन वः युष्माकं संबन्धिनो वयं भुनजामहै । निवृत्तरोगाः सन्तः अन्नपानादि बलकरं वस्तु उपजीवाम । ❀ भुज पालनाभ्यवहारयोः । "भुजोऽनवने" इति आत्मनेपदम् ❀ ॥

[इति तृतीयेनुवाके] द्वितीयं सूक्तम् ॥

तुम समुद्रकी पत्नी हो और समुद्र तुम्हारा राजा है तुम नदीरूप बनते हो, हे ऐसे जलों ! तुम रोगको हटानेवाली औषधि दो, उस औषधिसे आपके संबंधी हम रोगरहित होकर अन्न पान आदि बलप्रद वस्तुओंका उपभोग करें ॥ ३ ॥

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (१९७) ॥

"पञ्च च याः" इति तृचेन गण्डमालानिवृत्त्यर्थं पञ्चाधिकपञ्चाशत्संख्याकैः सूत्रोक्तकाष्ठैः प्रज्वालनम् इत्येवमादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "पञ्च च या इति पञ्चपञ्चाशतं परशूपर्णान् काष्ठैरादीपयति कपाले प्रभृतं काष्ठेनालिम्पयति" इत्यादि [कौ ४. ६] ॥

"अव मा पाप्मन्" इति [तृचेन] सर्वरोगभैषज्यकर्मणि सूत्रोक्तप्रकारेण तन्त्रं कृत्वा अपरेद्युस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तांश्चतुष्पथे

अवचरेत् । सूत्रितं हि । "अव मा पाप्मन्निति तितउनि पूल्यान्यवसिच्य अपविध्यापरेद्युस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तांश्चतुष्पथेष्ववचरति" इति [कौ० ४. ६] ॥

महाशान्त्यादौ क्रियमाणे नैर्ऋतकर्मणि एतं तृचं जपन् नदीतीरं गच्छेत् । "अव मा पाप्मन्निति जपन्नुदकम् अभिगच्छेत्" इति हि नक्षत्रकल्पः [न० क० १५] ॥

"पञ्च च याः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे गण्डमालाको हटानेके लिये सूत्रमें कहे हुए पचपन काष्ठोंसे प्रज्वालन आदि कर्म करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पञ्च च या इति पञ्चपञ्चाशतं परशूपर्णान् काष्ठैरादीपयति कपाले प्रसृतं काष्ठेनालिम्पति०" (कौशिकसूत्र ४ । ६) ॥

"अव मा पाप्मन्" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे सब रोगोंकी चिकित्साके कर्ममें सूत्रोक्तरीतिसे तन्त्र करके तीन पुरोडाश सम्वर्तोंको चौराहेमें बखेरे । इस विषयमें कौशिकसूत्र ४ । ६ का का प्रमाण भी है,कि-"अव मा पाप्मन्निति तितउनि पूल्यान्यवसिच्च अपविध्यापरेद्युस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसम्वर्तांश्चतुष्पथेष्ववचरति" ॥

महाशांति आदिके करने पर नैर्ऋतिकर्ममें इस तीन ऋचावाले सूक्तको जपता हुआ नदीके तट पर जावे । इसी बातको नक्षत्रकल्प १५ में कहा है,कि-"अव मा पाप्मन्निति जपन्नुदकम् अभिगच्छेत्" ॥

तत्र प्रथमा ॥

पञ्च॑ च॒ याः प॑ञ्चा॒शच्च॑ सं॒यन्ति॒ मन्या॑ अ॒भि ।
इ॒तस्ताः स॒र्वा॑ नश्यन्तु वा॒का अ॑प॒चिता॑मिव ॥१॥

पञ्च॑ । च॒ । याः । प॒ञ्चा॒शत् । च॒ । स॒म्ऽयन्ति॑ । मन्याः॑ । अ॒भि ।

इ॒तः । ताः । सर्वा॑ः । न॒श्य॒न्तु॒ । वा॒काः । अ॒प॒चिता॑म्ऽइव ॥ १ ॥

पञ्च च पञ्चाशच्च पञ्चाधिकपञ्चाशत्संख्याका या गण्डमालाः मन्याः गलस्योर्ध्वभागे स्थिता धमनीमन्याशब्दवाच्या अभि संयन्ति सर्वतो व्याप्नुवन्ति इतः अस्मात् प्रयोगात् ताः तत्संख्याकाः सर्वा गण्डमाला नश्यन्तु विनष्टा भवन्तु । वाकाः वचनीया दोषाः अपचितामिव पूजितां पतिव्रतां स्त्रियं प्राप्य यथा पराहता नश्यन्ति तथेत्यर्थः ॥

ये पचपन गण्डमालाएँ जो गलेकी ऊपरकी नसोंमें व्याप्त हो रही हैं ये सब इस प्रयोगसे इस प्रकार नष्ट होजावें जिस प्रकार चर्चने योग्य दोष पूजिता पतिव्रता स्त्रीको पाकर नष्ट होजाते हैं १

द्वितीया ॥

स॒प्त च॒ याः स॑प्त॒तिश्च॑ संय॒न्ति॒ ग्रैव्या॑ अ॒भि ।
इ॒तस्ताः सर्वा॑ नश्यन्तु वा॒का अ॑प॒चिता॑मिव ॥ २ ॥

स॒प्त । च॒ । याः । स॒प्त॒तिः । च॒ । स॒म्ऽयन्ति॑ । ग्रैव्या॑ः । अ॒भि ।
इ॒तः । ताः । सर्वा॑ः । न॒श्य॒न्तु॒ । वा॒काः । अ॒प॒चिता॑म्ऽइव ॥ २ ॥

सप्ताधिकसप्ततिसंख्याका या गण्डमालाः ग्रैव्याः ग्रीवासु भवा नाडीः अभि संयन्ति अभितो व्याप्नुवन्ति । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

जो सतत्तर गण्डमालायें ग्रीवाकी नाड़ियोंमें व्याप्त होरही हैं, ये सब इस प्रयोगसे इस प्रकार नष्ट होजावें, जिस प्रकार चर्चने योग्य दोष पूजिता पतिव्रता स्त्रीको पाकर नष्ट होजाते हैं ॥२॥

तृतीया ॥

नव॑ च॒ या न॑व॒तिश्च॑ संय॒न्ति॒ स्कन्ध्या॑ अ॒भि ।
इ॒तस्ता॑ः सर्वा॑ नश्यन्तु वा॒का अ॑प॒चिता॑मिव ॥३॥

नव । च । याः । नवतिः । च । सम्ऽयन्ति । स्कन्ध्याः । अभि ।
इतः । ताः । सर्वाः । नश्यन्तु । वाकाः । अपचिताम्ऽइव ॥ ३ ॥

नवोत्तरनवतिसंख्याका या गण्डमालाः स्कन्ध्याः । ग्रीवाभ्योऽधःप्रदेशः स्कन्धः । तत्र भवा धमनीः अभि संयन्ति अभितो व्याप्नुवन्ति । शेषम् उक्तार्थम् ॥

जो निन्यानवें गण्डमालायें स्कंधकी धमनियोंमें होती हैं, वे सब इस प्रयोगसे इस प्रकार नष्ट होजावें, कि–जैसे चरचने योग्य दोष पूजिता पतिव्रता स्त्रीको पाकर नष्ट होजाते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥ १ ॥

अव । मा । पाप्मन् । सृज । वशी । सन् । मृडयासि । नः ।
आ । मा । भद्रस्य । लोके । पाप्मन् । धेहि । अविऽह्रुतम् ॥ १ ॥

हे पाप्मन् पापाभिमानिदेव [मा] माम् अव सृज त्वत्सकाशाद् विमोचय ॥ वशी सर्वस्य वशयिता त्वं नः अस्मान् सं मृलयासि सम्यङ् मृडय सुखय । ❀ मृड सुखने । अस्मात् लेटि आडागमः ❀ ॥ हे पाप्मन् अविह्रुतम् अपीडितं मा मां भद्रस्य भन्दनीयस्य सुकृतस्य फलभूते लोके स्वर्गादौ आ धेहि स्थापय । ❀ अविह्रुतम् इति । ह्वृ कौटिल्ये । ‘ह्व ह्वरेश्छन्दसि” इति निष्ठायां ह्वभावः ❀ ॥

हे पापके अभिमानी देवता ! मुझे छोड़ दे ! सबको वशमें रखने वाला तू हमको भली प्रकार सुखी कर । हे पाप्मन् ! तू मुझ अपीड़ितको पुण्यके फलरूप स्वर्गमें स्थापित कर ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥ २ ॥

यः । नः । पाप्मन् । न । जहासि । तम् । ऊं इति । त्वा । जहिमः । वयम् ।

पथाम् । अनु । वि॒ऽआवर्तने । अन्यम् । पाप्मा । अनु । पद्यताम् २

हे पाप्मन् यस्त्वं नः अस्मान् न जहासि न परित्यजसि । ❀ ओहाक् त्यागे इति धातुः ❀ । तमु तमेव त्वा त्वां पथाम् चतसृभ्यो दिग्भ्य आगतानां मार्गाणाम् अनुव्यावर्तने यस्मिन् प्रदेशे चतुष्पथलक्षणे अनुप्राप्ताः परस्परं व्यावर्तन्ते तत्र देशे वयं जहिमः । अनेन अनुष्ठितेन कर्मणा बलात् परित्यजामः । ❀ “जहातेश्च” इति इत्त्वम् । “पथाम्” इति । “भस्य टेर्लोपः” इति टिलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् । अनुव्यावर्तन्तेऽस्मिन्निति अनुव्यावर्तनो देशः । अधिकरणे ल्युट् ❀ । तत्र त्यक्तः पाप्मा अन्यम् अस्मद्द्वेष्यम् अनु पद्यताम् अनुप्रविशतु ॥

हे पाप्मन् ! जो तू हमको नहीं छोड़ता है तो हम तुझको मार्गों के व्यावर्तन (चौराहे) में इस अनुष्ठित कर्मसे बलपूर्वक छोड़ते हैं तहाँ पर छोड़ा हुआ तू हमारे द्वेषी दूसरे पुरुषमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥ ३ ॥

अन्यत्र । अस्मत् । नि । उच्यतु । सहस्रऽअक्षः । अमर्त्यः ।

यम् । द्वेषाम । तम् । ऋच्छतु । यम् । ऊं इति । द्विष्मः । तम् । इत् । जहि ॥ ३ ॥

अस्मत् अस्मत्तः अन्यत्र सहस्वान्तः इन्द्रवत् प्रसह्यकारी अमर्त्यः अमरणधर्मा देवतारूपः पाप्मा न्युच्यतु नितरां गच्छतु । ❀ उच समवाये ❀ । एतदेव विव्रियते । यं शत्रुं वयं द्वेषाम द्विष्मः तम् ऋच्छतु पापं गच्छतु । ❀ ऋ गतौ । शपि "पाघ्रा०" इत्यादिना ऋच्छादेशः ❀ । पुनरपि यमेव वयं द्विष्मः तमित् तमेव जहि नाशय । ❀ द्वेषामेति । द्विषेर्लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आडागमः । पिद्वद्भावेन ङित्त्वाभावात् लघूपधगुणः ❀ ॥

[इति तृतीयेनुवाके] तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रकी समान बल दिखाने वाला अमरणधर्मा—देवतारूप—पाप हमसे अलग होजावे और जिससे हम द्वेष करते हैं, उसको प्राप्त होवे, जिससे हम द्वेष करते हैं उसको ही (हे पाप ! तू) नष्ट कर ॥ ३ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१९९)

गृहादिषु कपोतोलूकप्रवेशशान्त्यर्थं शान्त्युदकाभिमन्त्रणे विनियुक्तमहाशान्तिगणे "देवाः कपोतः" [६. २७] "ऋचा कपोतम्" [६. २८] "अमून् हेतिः" [६. २६] इति त्रयस्तृचा आवपनीयाः । तद् उक्तं कौशिकेन । "पतत्रिभ्यो देवाः कपोतः ऋचा कपोतम् अमून् हेतिरिति महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ० ५. १०] ॥

"ऋचा कपोतम्" इति तृचस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

अत्र "परीमे अग्निम्" [२] इत्यनया ऋचा कपोतोलूकप्रवेशशान्त्यर्थमेव गाम् अग्निम् आनीय शालां कपोतप्रवेशस्थलं वा त्रिः परिभ्रामयेत् । सूत्रितं हि । "परीमे अग्निम् इत्यग्निं गाम् आदाय निशि कारयमाणस्त्रिः शालां परिणयति" इति [कौ० ५. १०] ॥

घर आदिमें कबूतर उल्लू आदिके प्रवेश करने पर शान्ति करनेके लिये शान्त्युदकके अभिमंत्रणमें जिस महाशान्तिगणका प्रयोग होता है उसमें इन तीन सूक्तोंको समझना चाहिये। "देवाः कपोतः (६ । २७) ऋचा कपोतम् (६ । २८) अमून् हेतिः (६।२९) ॥" इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—"पतत्रिभ्यो देवाः कपोतः ऋचा कपोतम् अमून् हेतिरिति महाशान्तिम् आवपते" (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

"ऋचा कपोतम्" इस तृचका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है।

इसमेंकी 'परीमे अग्निम्' इस दूसरी ऋचासे कपोत और उल्लूके प्रवेशकी शांतिके लिये ही गौ और अग्निको लाकर शालामें वा कपोतके प्रवेश करनेके स्थान पर तीन वार घुमावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"परीमे अग्निम् इत्यग्निम् गाम् आदाय निशि कारयमाणस्त्रिः शालां परिणयति" (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

तत्र प्रथमा ॥

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

देवाः। कपोतः। इषितः। यत्। इच्छन्। दूतः। निःऽऋत्याः। इदम्। आऽजगाम।

तस्मै॑ । अ॒र्चा॒म॒ । कृ॒णवा॑म । निःऽकृ॑तिम् । शम् । न॒ः । अ॒स्तु॒ ।
द्वि॒ऽप॑दे । शम् । चतु॑ःऽपदे ॥ १ ॥

हे देवाः निर्ऋत्याः पापदेवताया दूतः कर्मकरः इषितः प्रेषितः [कपोतः] कपोताख्यः पक्षी यद् बाधनम् इच्छन् इदम् अस्मदीयं गृहम् आजगाम आगतवान् तस्मै तन्निवृत्त्यर्थम् अर्चाम युष्मान् हविषा पूजयाम ॥ निष्कृतिम् तद्दोषशान्तिं कृणवाम करवाम । नः अस्माकं द्विपदे पादद्वयोपेताय पुत्रभृत्यादये [शम्] चतुष्पदे पादचतुष्टयोपेताय गवाश्वादये च शम् रोगादीनां शमनं कपोतप्रवेशजनितदोषशान्तिश्च अस्तु भवतु ॥

हे देवताओं ! पापदेवताका दूत अर्थात् पापदेवताका काम करने वाला प्रेरित पक्षी जो पीड़ा देनेकी इच्छा करता हुआ हमारे घर पर आया है उसकी निवृत्तिके लिये हम आपकी हविसे पूजा करते हैं उसके दोषकी शान्ति करते हैं। हमारे दो पैर वाले पुत्र भृत्य आदिका कल्याण हो और चार पैर वाले गौ घोड़े आदिके रोग आदिकी शान्ति हो, कपोतप्रवेशसे होने वाले दोषोंकी शान्ति हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

शि॒वः क॒पोत॑ इषि॒तो नो॑ अस्त्वना॒गा देवाः॑ शकु॒नो
गृ॒हं॑ नः॑ ।
अ॒ग्निर्हि विप्रो॑ जु॒षतां॑ ह॒वि॒र्नः परि॑ हे॒तिः प॒क्षिणी॑ नो
वृणक्तु ॥ २ ॥

शि॒वः । क॒पो॑तः । इ॒षि॒तः । न॒ः । अ॒स्तु॒ । अ॒ना॒गाः । दे॒वाः॒ । श॒कु॒नः ।
गृ॒हम् । न॒ः ।

अग्निः । हि । विप्रः । जुषताम् । हविः । नः । परि । हेतिः ।
पक्षिणी । नः । वृणक्तु ॥ २ ॥

हे देवाः इषितः निर्ऋतिदेवतया प्रेषितः कपोतः [नः] शिवः सुखकरः अस्तु भवतु ॥ अनागाः अनपराधकः शकुनः पक्षी नः अस्माकं गृहं न पीडयतु ॥ हि यस्माद् एवं तस्माद् विप्रो मेधावी अग्निः नः अस्मदीयं हविर्जुषताम् सेवताम् ॥ तत्प्रसादात् पक्षिणी पक्षोपेता कपोताख्या हेतिः हननसाधनम् आयुधं नः अस्मान् परि वृणक्तु परिवर्जयतु ॥

हे देवताओं ! यह पापदेवताका प्रेरित कपोत ! हमें सुख देने वाला हो, यह अपराधरहित पक्षी हमारे घरको पीड़ित न करे । इस कारण यह विद्वान् अग्नि हमारी हविका सेवन करें । उनके प्रसादसे यह कबूतर नाम वाला मारनेका साधन आयुध हमको छोड़ देय ॥ २ ॥

तृतीया ॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा
इह हिंसीत् कपोतः ॥ ३ ॥

हेतिः । पक्षिणी । न । दभाति । अस्मान् । आष्ट्री इति । पदम् ।
कृणुते । अग्निऽधाने ।
शिवः । गोभ्यः । उत । पुरुषेभ्यः । नः । अस्तु । मा । नः । देवाः ।
इह । हिंसीत् । कपोतः ॥ ३ ॥

पक्षिणी पक्षाभ्यां युक्ता हेतिः हननसाधनम् अस्मान् न दभाति न हिनस्तु । सा च आष्ट्री आष्ट्र्यां व्याप्तायाम् अरण्यान्याम् अग्निधाने दावाग्निसंचारस्थाने पदं कृणुते पादप्रसारं करोतु । अस्मत्तो विनिर्गच्छत्वित्यर्थः । यद्वा अश्नन्ति अस्यां जना इति आष्ट्री पचनशाला तस्याम् अग्निधाने अग्निनिधानस्थाने इति योज्यम् ॥ तथा गोभ्यः पुरुषेभ्यश्च नः अस्माकं संबन्धिभ्यः शिवः सुखकरः अस्तु भवतु ॥ हे देवाः इह अस्मिन् गृहे युष्मदनुग्रहाद् अयं कपोतः पक्षी नः अस्मान् मा हिंसीत् मा बाधिष्ट ॥

पक्षोंसे युक्त आयुध हमको न मारे, और वह पचनशालाके अग्नि रखनेके स्थानमें वा दावाग्निके विचरनेके स्थान—व्याप्त वन में पैरोंको फैलावे । और वह गौओंके लिये तथा हमारे सम्बंधी पुरुषोंके लिये सुखद हो । हे देवताओं ! आपके अनुग्रहसे यह कपोत पक्षी हमको पीड़ा न देवे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ऋ॒चा क॒पोतं॑ नुदत प्र॒णो॒द॒मिषं॒ मद॑न्तः॒ परि॒ गां न॑यामः

सं॒लो॒भय॑न्तो दुरि॒ता प॒दानि॑ हि॒त्वा न॒ ऊर्जं॒ प्र प॑दा॒त्

प॒थि॑ष्ठः ॥ १ ॥

ऋ॒चा । क॒पोत॑म् । नु॒द॒त॒ । प्र॒ऽनो॒द॑म् । इष॑म् । मद॑न्तः । परि॑ ।

गाम् । न॒या॒मः॒ ।

स॒म्ऽलो॒भय॑न्तः । दुः॒ऽइ॒ता । प॒दानि॑ । हि॒त्वा । न॒ः । ऊर्ज॑म् ।

प्र । प॒दा॒त् । पथि॑ष्ठः ॥ १ ॥

हे देवाः ऋचा अनेन मन्त्रेण कपोतम् कपोताख्यं पक्षिणं प्रनोदम् प्रकर्षेण नोदनीयं प्रेरणीयं नुदत अस्मद्गृहात् प्रेरयत ।

वयं च इषम् अन्नं प्राप्य मदन्तः तृप्ताः सन्तः गां परि नयामः परितः सर्वतः संचारयामः । गोसंचारणेन शान्तिं कुर्म इत्यर्थः । किं कुर्वन्तः । दुरिता दुरितानि दुर्गतिनिमित्तानि पदानि कपोतस्य पादनिधानस्थानानि संलोभयन्तः सम्यक् प्रमार्जयन्तः ॥ स च नः अस्माकम् ऊर्जम् बलकरं पचनशालास्थम् अन्नं हित्वा त्यक्त्वा पतिष्ठः पतत्तां पक्षिणां श्रेष्ठः सन् प्र पतात् प्रपतेत् प्रगच्छतु । ❀ पतॢ गतौ । अस्मात् लेटि आडागमः । पतिष्ठ इति । अस्मादेव तृजन्ताद् आतिशायनिक इष्ठन् । "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः❀

हे देवताओं ! भगाने योग्य कपोत नाम वाले पक्षीको इस मन्त्रसे आप हमारे घरसे भगाइये, हम भी अन्नको पाकर तृप्त होते हुए गौको चारों ओर घुमाते हैं । अर्थात् गौको घुमा कर शांति करते हैं । हम दुर्गतिके निमित्त कपोतके पैर रखनेके चिन्हों के स्थानोंको भली प्रकार मार्जित करते हुए शान्ति करते हैं वह कपोत हमारी पचनशालामें रक्खे हुए अन्नको छोड़ कर पक्षियों में श्रेष्ठ बनकर उड़ जावे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

प॒री॒मे॒३॑ग्निम॑र्षत॒ प॒री॒मे गाम॑नेषत ।
दे॒वेष्व॑क्रत॒ श्रव॒: क इ॒माँ आ द॑धर्षति ॥ २ ॥

परि॑ । इ॒मे । अ॒ग्निम् । अ॒र्ष॒त॒ । परि॑ । इ॒मे । गाम् । अ॒ने॒ष॒त॒ ।

दे॒वेषु॑ । अ॒क्र॒त॒ । श्रव॑: । क: । इ॒मान् । आ । द॒ध॒र्ष॒ति॒ ॥ २ ॥

इमे ऋत्विजः कपोतप्रवेशशान्त्यर्थम् अग्निं पर्यर्षत । परितो होमार्थं गृहे प्रापयन्नित्यर्थः ॥ तथा इमे गां पर्यनेषत परितो गृहम् अगमयन् ॥ तथा देवेषु अग्न्यादिषु श्रवः हविर्लक्षणम् अन्नम् अक्रत

अकृषत । एवं शान्तौ कृतायाम् इमान् अस्मदीयान् पुरुषान् को नाम हिंसकः आ दधर्षति आधृष्टान् बाधितान् करोति ॥

ये ऋत्विज कपोतप्रवेशकी शांतिके लिये होम करनेको घरमें अग्नि ले आये हैं । और ये गौको घरमें चारों ओर घुमा रहे हैं और अग्नि आदि देवताओंमें हविरूप अन्नको अर्पण कर रहे हैं । इस प्रकारकी शान्ति करने पर कौनसा हिंसक पुरुष हमको पीड़ा देसकता है ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यः प्र॑थ॒मः प्र॒वत॑मास॒साद॑ ब॒हुभ्यः॒ पन्था॑मनुपस्पशा॒नः ।
यो॒३॑स्येशे॑ द्वि॒पदो॒ यश्चतु॑ष्पद॒स्तस्मै॑ य॒माय॒ नमो॑
अस्तु मृ॒त्यवे॑ ॥ ३ ॥

यः । प्र॒थ॒मः । प्र॒ऽवत॑म् । आ॒ऽस॒साद॑ । ब॒हुऽभ्यः । पन्था॑म् ।
अ॒नु॒ऽप॒स्प॒शा॒नः ।
यः । अ॒स्य । ईशे॑ । द्वि॒ऽपदः॑ । यः । चतुः॑ऽपदः । तस्मै॑ । य॒माय॑ ।
नमः॑ । अ॒स्तु॒ । मृ॒त्यवे॑ ॥ ३ ॥

यो यमो बहुभ्यः अन्येभ्यो देवेभ्यः प्रथमः प्रथमभावी मुख्यः सन् प्रवतम् प्रवणवन्तं पन्थाम् पन्थानं मार्गम् आससाद प्राप । किं कुर्वन् । अनुपस्पशानः अनुक्रमेण सर्वान् प्राणिनः स्पृशन् परिगणयन् । अयं अद्य मारयितव्यः अयं श्वः अयं परश्वः इत्येवम् आकलयन्नित्यर्थः । यो यमः अस्य द्विपदः पादद्वयोपेतस्य मनुष्यादेः प्राणिजातस्य ईशे ईष्टे यश्चास्य चतुष्पदः गवादेरीष्टे तस्मै यमाय मृत्यवे मृतिकारिणे देवाय नमो अस्तु नमस्कारो भवतु ॥

[इति तृतीयेनुवाके] प्रथमं सूक्तम् ॥

यह देवताओंमें मुख्य यमदेव अनुक्रमसे सब प्राणियोंको गिनते हुए, कि—यह आज मारने योग्य है यह कल मारने योग्य है फलोन्मुख मार्गमें आते हैं और जो यमदेव दो पैर वाले मनुष्य आदिके और चार पैर वाली गौ आदिके स्वामी हैं उन मृत्यु करने वाले यमदेवके लिये नमस्कार हो ॥ ३ ॥

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (२०१) ॥

“अमून् हेतिः” इति तृचस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

“देवा इमम्” इत्यृचा पौनसिरसवे मधुमन्थाभिमर्शनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । “देवा इमं मधुना संजितं यवम् इति पौनसिलं मधुमन्थं सहिरण्यं संपातवन्तम्” इति [कौ० ८. ७]॥

“यस्ते मदः” इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां शमीलवनपापलक्षणशान्त्यर्थं शमीवल्शेन शिरस्युद्वापयेत् । सूत्रितं हि । “यस्ते मद इति शमीलूनपापलक्षणयोः शमीशमकेनाभ्युद्य वापयत्यधिशिरः” इति [कौ० ४. ७] ॥

“आयं गौः” इति तृचेन पृश्निसवे गोरभिमर्शनसंपातादीनि कर्माणि कुर्यात् । “आयं गौः पृश्निः [६. ३१] अयं सहस्रम् [७. २३]इति पृश्निं गाम्” इति [कौ० ८. ७] कौशिकसूत्रात् ॥

तथा आधाने आहितस्य आहवनीयाग्नेः अनेन तृचेन उपस्थानं कुर्यात् । “आहितम् आहवनीयम् आयं गौरित्युपतिष्ठते” इति हि हि वैतानं सूत्रम् [वै० २. २] ॥

द्वादशाहे अविवाक्येहनि मानसस्तोत्रम् अनेन तृचेन अनुमन्त्रयेत ॥

आयं गौरिति चानुमन्त्रयते” इति वैतानं सूत्रम् [वै०६. ३] ॥

‘अमून् हेतिः’ इस तीन ऋचा वाले सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है। सूक्त भी तहाँ ही कह दिया है।

पौनसिरसवमें 'देवा इमम्' इस ऋचासे मधुमन्थका अभिमर्शन आदि कर्म करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"देवा इमं इति मधुना सञ्जितं यवम् इति पौनसिलं मधुमन्थं सहिरण्यं सम्पातवन्तम्" (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥

'यस्ते मदः' इन दो ऋचाओंसे शमीलवनपापलक्षणकी शान्तिके लिये शमीवल्शसे शिर पर उद्वापन करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"यस्ते मद इति शमीलूनपापलक्षणयोः शमीशमकेनाभ्युद्य वापयत्यधिशिरः" (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

"आयं गौः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पृश्निसवमें गौका अभिमर्शन सम्पातन आदि कर्म करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-आयं गौः पृश्नि :(६ । ३१) अयं सहस्रम् (७ । २३) इति पृश्निं गाम्" (कौशिकसूत्र ८ । ७)

तथा आधानमें आहित आहवनीय अग्निका इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे उपस्थान करे इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण है, कि-"आहितं आहवनीयं आयं गौरित्युपतिष्ठते" (वैतानसूत्र २ । २) ॥

द्वादशाहके अविवाक्यदिनमें मानसस्तोत्रका इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि-आयं गौरिति चानुमन्त्रयते" (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अ॒मून् हे॒तिः प॑त॒त्रिणी॒ न्ये॑तु॒ यदुलू॑को॒ वद॑ति मो॒घमे॒तत्
यद् वा॑ क॒पोत॑ः प॒दम॒ग्नौ कृ॒णोति॑ ॥ १ ॥

अ॒मून् । हे॒तिः । प॒त॒त्रिणी॑ । नि । ए॒तु॒ । यत् । उ॒लूक॑ः । वद॑ति ।
मो॒घम् । ए॒तत् ।

यत् । वा । कपोतः । पदम् । अग्नौ । कृणोति ॥ १ ॥

अमून् दूरे दृश्यमानान् अस्मदीयान् शत्रून् पतत्रिणी पक्ष्यात्मिका हेतिः नि एतु नितरां गच्छतु । उलूकः घूको यत् अशोभनं वदति एतत् मोघम् निर्वीर्यं भवतु । वाशब्दः अप्यर्थे । कपोतः कपोताख्यः पक्षी अशुभसूचनाय यत् पदम् अग्नौ पचनाग्निसमीपे कृणोति करोति । तदपि निर्वीर्यं भवत्वित्यर्थः ॥

इन दूर दीखते हुए शत्रुओं पर यह पक्ष वाला आयुध भली प्रकार पहुँचे । यह जो उल्लू अशोभन वाणी बोल रहा है, यह निर्वीर्य होवे और यह कबूतर पक्षी अशुभको सूचित करनेके लिये पचनाग्निके समीपमें पैरोंको धर रहा है, यह भी निर्वीर्य होवे १

द्वितीया ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥

यौ । ते । दूतौ । निःऽऋते । इदम् । आऽइतः । अप्रऽहितौ । प्रऽहितौ ।
वा । गृहम् । नः ।
कपोतऽउलूकाभ्याम् । अपदम् । तत् । अस्तु ॥ २ ॥

हे निर्ऋते पापदेवते ते त्वदीयौ कपोतोलूकात्मकौ यौ दूतौ अप्रहितौ त्वया अप्रेषितौ प्रहितौ वा प्रेषितौ वा नः अस्माकं इदं गृहम् एतौ आगतौ तद् गृहं ताभ्यां कपोतोलूकाभ्याम् अपदम् अनाश्रयभूतम् अस्तु भवतु ॥

हे पापदेवता निर्ऋते ! ये कपोत और उलूक तेरे दूत हैं ये तेरे भेजे हुए वा न भेजे हुए हमारे घर आये हों तब भी यह घर कपोत और उलूकोंका अनाश्रय हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अ॒वै॒र॒ह॒त्याये॒दमा प॑पत्यात् सुवी॒र॑ताया इ॒दमा स॑सद्यात्
परा॑ङे॒व परा॑ व॒द् परा॑ची॒मनु॑ सं॒वत॑म् ।
यथा॑ य॒मस्य॑ त्वा गृ॒हेर॒स॑ प्र॑तिचाक॑शाना॒भूक॑ प्रति॒-
चाक॑शान् ॥ ३ ॥

अ॒वै॒र॒ऽह॒त्याय॑ । इ॒दम् । आ । प॒प॒त्या॒त् । सु॒ऽवी॒रता॑यै । इ॒दम् ।
आ । स॒स॒द्या॒त् ।

परा॑ङ् । ए॒व । परा॑ । व॒द॒ । परा॑चीम् । अनु॑ । स॒म्॑ऽवत॑म् ।

यथा॑ । य॒मस्य॑ । त्वा॒ । गृ॒हे । अ॒र॒सम् । प्र॒ति॒ऽचाक॑शान् । आ॒भू-
क॑म् । प्र॒ति॒ऽचाक॑शान् ॥ ३ ॥

इदं कपोतोलूकजनितं दुर्निमित्तम् अवीरहत्यायै अवीरहननाय अस्मदीयानां वीराणाम् अहिंसनाय आ पपद्यात् आपद्यताम् । अवकल्पताम् इत्यर्थः ॥ तथा अस्माकं सुवीरतायै शोभनवीरसद्भावाय इदं दुर्निमित्तं परामेव परावतम् । परावत् इति दूरनाम । अत्यन्तदूरदेशम् पराचीम् पराङ्मुखम् अपरावृत्तं संवतम् संप्राप्तम् अनुलक्ष्य आ ससद्यात् आसीदतु प्राप्नोतु ॥ हे कपोतात्मक दूत यमस्य स्वामिनो गृहे त्वा त्वां यथा येन प्रकारेण अरसम् निःसारं प्रतिचाकशान् प्रतिपश्येयुः तत्रत्या जनाः तथा आभूकम् आगतवन्तमेव केवलं त्वां प्रतिचाकशान् प्रतिपश्येयुः ॥

यह कपोत और उल्लूसे हुआ दुश्चिन्ह हमारे वीरोंकी अहिंसा करने वाला होजाय । तथा हमारे यहाँ शोभन वीरोंके होनेके लिये यह दुर्निमित्त दूरदेशमें पराङ्मुख होकर न लौटनेके भावको

लक्ष्यमें रख कर प्राप्त हो। हे कपोतरूप यमके दूत ! जिस प्रकार तेरे स्वामी यमके घरमें तहाँके प्राणी तुझको निःसार देखें (तैसा हो) तुझे केवल आता हुआ ही देखें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दे॒वा इ॒मं मधु॑ना॒ संयु॑तं॒ यवं॒ सर॑स्वत्या॒मधि॑ म॒णाव॑चर्कृषुः
इन्द्र॑ आसी॒त् सीर॑पतिः श॒तक्र॑तुः की॒नाशा॑ आसन्
म॒रुत॑ः सु॒दान॑वः ॥ १ ॥

दे॒वाः । इ॒मम् । मधु॑ना । सम्ऽयु॑तम् । यव॑म् । सर॑स्वत्याम् । अधि॑ ।
म॒णौ । अ॒च॒र्कृ॒षु॒ः ।
इन्द्र॑ः । आ॒सी॒त् । सीर॑ऽपतिः । श॒तऽक्र॑तुः । की॒नाशा॑ः । आ॒स॒न् ।
म॒रुत॑ः । सु॒ऽदान॑वः ॥ १ ॥

मधुना मधुररसेन क्षौद्रेण वा संजितम् संप्राप्तं यवम् दीर्घशूकम् इमं धान्यविशेषं सरस्वत्याम् अधि सरस्वत्याख्याया नद्याः समीपे मणौ मनुष्यजातौ देवाः अचर्कृषुः कृतवन्तः। तदानीं कर्षणेन भूमौ तद् धान्यम् उत्पादयितुं शतक्रतुः इन्द्रः सीरपतिः हलस्याधिष्ठाता स्वामी आसीत्। सुदानवः शोभनदाना मरुतः कीनाशाः कर्षका आसन् ॥

मधुर रससे वा शहदसे प्राप्त हुए यवको सरस्वती नदीके समीपमें देवताओंने मनुष्ययोंमें दिया, उस समय जोत करके भूमिमें उस धान्यको उपजानेके लिये शतक्रतु इन्द्र हलके अधिष्ठाता बने थे और शोभन दान वाले मरुत् किसान बने थे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यस्ते मदोवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा
वि रोह ॥ २ ॥

यः । ते । मदः । अवऽकेशः । विऽकेशः । येन । अभिऽहस्यम् ।
पुरुषम् । कृणोषि ।
आरात् । त्वत् । अन्या । वनानि । वृक्षि । त्वम् । शमि । शतऽवल्शा । वि । रोह ॥ २ ॥

हे शमि ते तव संबन्धी [यो] मदः हर्षः अवकेशः अवमतकेशोत्पादकः विकेशः केशविगमनहेतुश्च भवति । येन मदेन अभिहस्यम् अभितो हसनीयं पुरुषं कृणोषि करोषि ॥ अहमपि त्वत्तः अन्या अन्यानि त्वद्व्यतिरिक्तानि आरात् दूरवर्तीनि वनानि वृक्षि वृश्चामि । हे शमि त्वं शतवल्शा शतशाखा सती वि रोह विविधं प्ररूढा भव ॥

हे शमी ! तेरा जो मद है वह अवमत केशोंका उत्पादक और केशोंके बढ़नेका हेतु होता है, (जिस) उस मदसे तू पुरुषको चारों ओर हँसने योग्य कर देता है । मैं भी तेरे अतिरिक्त दूरके जितने वृक्ष हैं उनको काटता हूँ । हे शमि ! तू सैंकड़ों शाखा वाली होकर अनेक प्रकारसे बढ़ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥

बृहत्ऽपलाशे । सुऽभगे । वर्षऽवृद्धे । ऋतऽवरि ।

मातऽइव । पुत्रेभ्यः । मृड । केशेभ्यः । शमि ॥ ३ ॥

हे बृहत्पलाशे । बृहन्ति महान्ति समधिकानि पलाशानि पर्णानि यस्याः सा बृहत्पलाशा । हे सुभगे सौभाग्यकारिणि हे वर्षवृद्धे वर्षेणैव वृद्धे । अपुरुषप्रयत्नसिद्धे इत्यर्थः । हे ऋतावरि । ऋतम् उदकं सत्यं यज्ञो वा तद्वति । ❀ ऋतशब्दात् "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् । "वनो र च" इति ङीब्रेफौ ❀ । एवंभूते हे शमि पुत्रेभ्यो मातेव केशेभ्यो मृल मृडय । यथा माता पुत्रान् अभिवर्धयति तथा केशान् वर्धयेत्यर्थः ॥

हे बड़े २ पत्तों वाली सौभाग्यकारिणी, पुरुषके प्रयत्नके विना वर्षाके जलसे ही बढ़ने वाली जलमयी ओषधे शमी ! माता जैसे पुत्रोंको सुख देती है तिसी प्रकार तू केशोंको सुख दे । अर्थात् जैसे माता पुत्रोंको बढ़ाती है तैसे केशोंको बढ़ा ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

आ । अयम् । गौः । पृश्निः । अक्रमीत् । असदत् । मातरम् । पुरः ।

पितरम् । च । प्रऽयन् । स्वः ॥ १ ॥

गौः गमनशीलः पृश्निः प्राष्टवर्णो व्याप्ततेजा अयं सूर्यः आ अक्रमीत् आक्रान्तवान् । उदयाद्रिशिखरम् इति शेषः । आक्रम्य च पुरः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि परिदृश्यमानः मातरम् सर्वस्य भूतजातस्य जननीं भूमिम् असदत् स्वरश्मिभिर्व्याप्नोत् । ❀ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । अस्मात् लुङि लृदित्वात् च्लेः अङ्

आदेशः ❀ । ततः पितरम् वृष्टिलक्षणस्य रेतसो निषेकेण सर्वस्य जगत उत्पादकं स्वः स्वर्लोकम् चकाराद् अन्तरिक्षं च प्रयन् प्रगच्छन् । पश्चाद् व्याप्नोतीत्यर्थः । स एव वृष्ट्युदकलक्षणस्य अमृतस्य दोहनाद् गौरित्युच्यते ॥

यह तेजसे व्याप्त गमनशील सूर्य उदयाचल पर आगए हैं और इन्होंने उदयाचल पर चढ़ पूर्वदिशामें दीख कर सब प्राणियोंकी जननी भूमिको अपनी किरणोंसे ढक दिया है । तदनन्तर इन्होंने चल कर वृष्टिरूप वीर्यको सींचनेसे सब जगत्के उत्पादक पिता स्वर्लोक और अन्तरिक्षको व्याप्त कर लिया है । यही वृष्टिजलरूप अमृतका दोहन करनेसे गौ कहलाते हैं ॥ १ ॥

अष्टमी ॥

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒ना अ॒स्य प्रा॒णाद॑पान॒तः ।
व्य॑ख्यन्महि॒षः स्वः॑ ॥ २ ॥

अ॒न्तः । च॒र॒ति॒ । रो॒च॒ना । अ॒स्य । प्रा॒णात् । अ॒पा॒न॒तः ।
वि । अ॒ख्य॒त् । म॒हि॒षः । स्वः॑ ॥ २ ॥

प्राणात् प्राणनव्यापाराद् अनन्तरम् अपानतः अपाननव्यापारं कुर्वतः अस्य प्राणिजातस्य शरीरमध्ये मुख्यप्राणात्मना रोचना रोचमाना सूर्यप्रभा अन्तः मध्ये चरति वर्तते । महिषः । महन्नामैतत् । महान् अधिभूतं वर्तमानः स्वः स्वर्गोपलक्षितम् उपरितनं समस्तं लोकं व्यख्यत् विचष्टे प्रकाशयति । ❀ चष्टिः पश्यतिकर्मा । छान्दसो लुङ् । "अस्यतिवक्ति०" इति चक्षेः अङ् आदेशः ❀ ॥

प्राणन व्यापारके अनन्तर अपानके व्यापारको करने वाले इन प्राणियोंके शरीरके मध्यमें मुख्यप्राणरूपसे दमकती हुई सूर्यकी प्रभा विचरती रहती है । अधिभूतरूपसे वर्तमान महान् (सूर्यदेव) स्वर्ग आदि ऊपरके समस्त लोकोंको प्रकाशित करते हैं २

नवमी ॥

त्रिं॒शद् धामा॒ वि रा॑जति॒ वाक् प॑त॒ङ्गो अ॑शिश्रियत्।
प्रति॒ वस्तो॒रह॒र्द्युभिः॑ ॥ ३ ॥

त्रिं॒शत् । धाम॑ । वि । रा॒ज॒ति॒ । वाक् । प॒त॒ङ्गः । अ॒शि॒श्रि॒य॒त् ।
प्र॑ति । व॒स्तोः॑ । अ॑हः । द्युऽभिः॑ ॥ ३ ॥

वस्तोः वासरस्य अहोरात्रस्य अवयवभूतानि त्रिंशन्मुहूर्तात्मकानि धाम धामानि स्थानानि । अहशब्दः अवधारणे । तस्यैव सूर्यस्य द्युभिः दीप्तिभिः प्रति वि राजति विराजन्ते प्रतिक्षणं विशेषेण दीप्यन्ते । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀ ॥ तथा वाक् त्रयीरूपा पतङ्गः । ❀ विभक्तिव्यत्ययः ❀ । पतङ्गं पतनशीलं पक्षिवच्छीघ्रगामिनं सूर्यम् अशिश्रियत् आश्रित्य वर्तते । ❀ "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः०" इति च्लेश्चङ् आदेशः ❀ । "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । सामवेदेनास्तमये महीयते" इति तैत्तिरीयकम् [तै० ब्रा० ३. १२. ९. १] ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
षष्ठकांडे तृतीयोऽनुवाकः ॥

दिन और रात्रिके अवयवभूत तीस मुहूर्तरूप अंश इन सूर्यदेवकी किरणोंसे ही प्रतिक्षण विशेषरूपसे दमकते रहते हैं । तथा वेदत्रयीरूप वाणी पक्षीकी समान शीघ्रगामी सूर्यका आश्रय लेकर रहती है † ॥ ३ ॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डके तीसरे अनुवाकमें पञ्चम सूक्त और तीसरा अनुवाक समाप्त (२०४) ॥

---

† तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । १२ । ९ । १ में लिखा है, कि— "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्न । सामवेदेनास्तमये महीयते ॥

चतुर्थेऽनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "अन्तर्दावे" इति प्रथमं सूक्तम्। तत्र आद्येन तृचेन पिशाचरक्षोजनितभयनिवृत्तये सूत्रोक्तप्रकारेण अग्निं त्रिः प्रदक्षिणं कृत्वा पुरोडाशं जुहुयात्। सूत्रितं हि। "अन्तर्दाव इति समन्तम् अग्नेर्जपंस्त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति" इति [कौ० ४. ७]॥

"यस्येदमा रजः" इति तृचेन कृषिकर्मणि क्षेत्रं गत्वा युगलाङ्गलं बध्नाति। अनेनैव तृचेन दक्षिणम् अनड्वाहं युगे युनक्ति। ततः कर्ता इमं तृचं जपन् प्राचीनं कृषन् तृचसमाप्त्यनन्तरं हालिकाय हलं प्रयच्छेत्। तेन तिसृषु सीतासु कृष्टासु उत्तरसीतान्ते अग्निम् उपसमाधाय पुरोडाशेन इन्द्रं स्थालीपाकेन अश्विनौ च अनेन तृचेन यजन् तस्यामेव सीतायां संपातान् आनयेत्। सूत्रितं हि। "यस्येदमा रज इत्यायोजनानाम् अप्ययः" इति [कौ०२.६]॥

तथा सर्वफलकामः अनेन तृचेन इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा। "यस्येदमा रजः [६. ३३] अथर्वाणम् [७. २] अदितिर्द्यौरदितिः [७. ६]" इत्यादि सूत्रम् [कौ० ७. १०]॥

तथा भूमिकर्षणे लांगलसंश्लेषलक्षणोत्पाते तच्छान्त्यर्थं क्रियमाणे शान्त्युदके एतं तृचम् आवपेत्। "अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः" इति प्रक्रम्य "अत्र शुनासीराण्यनुयोजयेद्" इति सूत्रितम् [कौ० १३. १४]॥

चौथे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। उनमें 'अन्तर्दावे यह पहिला सूक्त है। इनमें तीन ऋचा वाले पहिले सूक्तसे पिशाच और राक्षसोंसे उत्पन्न हुए भयकी निवृत्तिके लिये सूत्रोक्तरीतिसे अग्नि की तीन वार परिक्रमा करके पुरोडाशको होमे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अन्तर्दाव इति समन्तम् अग्नेर्जपंस्त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति" (कौशिकसूत्र ४। ७)॥

"यस्येदमा रजः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे कृषिकर्मके समय

क्षेत्रमें जाकर युगलाङ्गल (जुए और हल) में बाँधे । तथा इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे दाहिनी ओर जोते जाने वाले बैलको जुएमें जोते । तदनन्तर कर्ता इस तीन ऋचा वाले सूक्तको जपता हुआ पूर्वदिशाकी ओरके खेतको जोते और इस सूक्तकी समाप्ति के अनन्तर हलवाहेको हल देदेय । और जब तीन रेखायें खिच जावें तब उत्तरकी रेखाके अन्तमें पासमें अग्निको रख पुरोडाशसे इन्द्रकी और स्थालीपाकसे अश्विनीकुमारोंकी इस तृचसे पूजा करता हुआ उसी रेखामें सम्पातोंको लावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यस्येदमा रज इत्यायोजनानाम् अप्ययः" (कौशिकसूत्र ३ । ६) ॥

तथा सब प्रकारके फलोंको चाहने वाला इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे इन्द्रका पूजन वा उपस्थान करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यस्येदमा रजः (६ । ३३) अथर्वाणम् (७ । २) अदितिर्द्यौरदितिः (७ । ६) ० (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा भूमिको जोतनेमें हलके अटकनेरूप उत्पातमें उसकी शान्तिके लिये किये जाते हुए शान्त्युदकमें इन तीन ऋचाओंको पढ़े । इस विषयमें कौशिकसूत्र १३ । १४ "अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः" से "अत्र शुनासीराण्यनुयोजयेत्" तक देखना चाहिये ।

तत्र प्रथमा ॥

अ॒न्त॒र्दा॒वे जु॑हुता॒ स्वे॒३॒॑तद् या॑तु॒धान॒क्षय॑णं घृ॒तेन॑ ।
आ॒राद् रक्षां॑सि॒ प्रति॑ दह॒ त्वम॑ग्ने॒ न नो॑ गृ॒हाणा॒मुप॑
तीतपासि ॥ १ ॥

अ॒न्तः॒ऽदा॒वे । जु॑हु॒त॒ । सु । ए॒तत् । या॒तु॒धा॒न॒ऽक्षय॑णम् । घृ॒तेन॑ ।

आ॒रात्। रक्षां॑सि। प्रति॑। द॒ह॒। त्वम्। अ॒ग्ने॒। न। न॒ः। गृ॒हा-
णां॑म्। उप॑। ती॒त॒पा॒सि॒॥ १॥

हे ऋत्विजः यातुधानक्षयणम् रक्षोनिवर्हणम् एतत् हविः घृतेन सह दावे दावाग्नौ अन्तः मध्ये [सु] सुष्ठु जुहुत॥ हे अग्ने आहुत्याधारभूतस्त्वं रक्षांसि अस्मदुपद्रवकारिणो राक्षसान् आरात् दूरे प्रति दह भस्मसात् कुरु॥ नः अस्माकं गृहाणां नोप तीतपासि उपतापकरो मा भूः॥

हे ऋत्विजो ! राक्षसोंका संहार करने वाली इस हविको घृत के साथ दावाग्निमें भली प्रकार होमो। हे अग्ने !(आप आहुतिके आधाररूप हैं अतः) उपद्रव करनेवाले राक्षसोंको दूरसे ही भस्म कर दीजिये। और हमारे घरोंको सन्तप्त करने वाले न बनिये॥ १॥

द्वितीया॥

रु॒द्रो वो॑ ग्री॒वा अश॑रैत् पिशा॒चाः पृ॒ष्टीर्वोऽपि॑ शृणातु
यातुधानाः।
वी॒रुद् वो॑ वि॒श्वतो॑वीर्या य॒मे॒न सम॑जीगमत्॥ २॥

रु॒द्रः। व॒ः। ग्री॒वाः। अश॑रैत्। पि॒शा॒चाः। पृ॒ष्टीः। व॒ः। अपि॑।
शृ॒णा॒तु॒। या॒तु॒ऽधा॒नाः।

वी॒रुत्। व॒ः। वि॒श्वतः॑ऽवीर्या। य॒मेन॑। सम्। अ॒जी॒ग॒म॒त्॥ २॥

हे पिशाचाः पिशिताशनाः वः युष्माकं ग्रीवाः गलावयवान् रुद्रः संहर्ता देवः [अशरैत्] छिनत्तु॥ हे यातुधानाः वः युष्माकं पृष्टीः पार्श्वास्थीनि स एव रुद्रः अपि शृणातु हिनस्तु॥ विश्व-

तोवीर्या सर्वतः प्राप्तवीर्या वीरुत् ओषधिश्च वः युष्मान् यातुधानान् यमेन मृत्युना सम् अजीगमम् संगमयतु ॥

हे मांसभक्षक पिशाचों ! संहार करने वाले रुद्रदेव तुम्हारे गलोंको काट डालें । और हे यातुधानों ! तुम्हारी पसलीकी हड्डियोंको भी वही रुद्रदेव काट डालें और वीर्यमयी औषधि भी तुमको यमके पास पहुँचा देय ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोर्चिषात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥

अभयम् । मित्रावरुणौ । इह । अस्तु । नः । अर्चिषा । अत्रिणः । नुदतम् । प्रतीचः ।
मा । ज्ञातारम् । मा । प्रतिऽस्थाम् । विदन्त । मिथः । विऽघ्नानाः । उप । यन्तु । मृत्युम् ॥ ३ ॥

हे मित्रावरुणौ नः अस्माकम् इह अस्मिन् देशे अभयम् भयराहित्यम् अस्तु ॥ अर्चिषा तेजसा अत्रिणः अदनशीलान् राक्षसान् प्रतीचः प्रत्यङ्मुखान् अस्मत्तः पराङ्मुखान् नुदतम् निरस्यतम् ॥ ते च निरस्ताः ज्ञातारम् अभिज्ञं स्वामिनं मा विदन्त मा लभन्ताम् । तथा प्रतिष्ठाम् आवासभूमिं मा लभन्ताम् । निराश्रया भवन्त्वित्यर्थः ॥ ते च मिथः परस्परं विघ्नानाः विहन्यमानाः मृत्युम् मरणम् उप यन्तु उपगच्छन्तु ॥

हे मित्र और वरुण देवताओं ! इस देशमें हमको निर्भयता रहे, आप अपने तेजसे मांसभक्षी राक्षसोंको हमसे पराङ्मुख करके भेज दीजिये और निकाले हुए उनको कोई जानकार स्वामी न मिले तथा उनको रहनेके लिये भूमि भी न मिले और वे परस्परमें मारकाट करके मर जावें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यस्ये॒दमा रजो॒ युज॑स्तु॒जे जना॒ वनं॒ स्वः॑ ।
इन्द्र॑स्य॒ रन्त्यं॑ बृ॒हत् ॥ १ ॥

यस्य॑ । इ॒दम् । आ । रजः॑ । युजः॑ । तु॒जे । जनाः॑ । वन॑म् । स्वः॑ ।
इन्द्र॑स्य । रन्त्य॑म् । बृ॒हत् ॥ १ ॥

यस्येन्द्रस्य इदं रजः रञ्जकं ज्योतिः तुजे तोजनाय शत्रूणां हिंसनाय आ युजः आयोजयति आयुक्तं संनद्धं करोति ,तस्य इन्द्रस्य रन्त्यम् रमणीयं बृहत् परिवृढं वनम् वननीयं स्वः सुष्ठु प्राप्तव्यं निरतिशयसुखसाधनं वा तेजः हे जनाः । यूयं भजध्वम् इति शेषः ।

❀ रज इति । रञ्ज रागे इत्यस्माद् असुनि "रजकरजनरजःसूपसंख्यानम्" इति उपधालोपः । युज इति । युजिर् योगे । अस्माच्छान्दसे लुङि च्लेः अङ् आदेशः । तुजे इति । तुज हिंसायाम् । अस्मात् संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । स्वरिति । सुपूर्वाद् अर्तेर्विच् । रन्त्यम् इति । रमु क्रीडायाम् । अस्मात् "क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्" इति क्तिच् । "न क्तिचि दीर्घश्च" इति अनुनासिकलोपदीर्घयोरभावः। अत एव अन्यत्राम्नातम् । "रन्तिर्नामासि दिव्यो गन्धर्वः" इति [तै०आ०४.११.५] । तत्रभवं ज्योतिः रन्त्यम् ❀ ॥

हे मनुष्यों ! जिन इन्द्रदेवकी यह रँगने वाली रञ्जक ज्योति (रज) शत्रुओंकी हिंसा करनेके लिये (पुरुषको) उद्यत करती

है, उन इन्द्रदेवके रमणीय परम सुखके साधन सेवनीय तेजका तुम सेवन करो ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

नाधृ॑ष॒ आ द॑धृषते धृषा॒णो धृ॑षि॒तः शवः॑ ।
पु॒रा यथा॑ व्य॒थिः श्रव॒ इन्द्र॑स्य॒ नाधृ॑षे॒ शवः॑ ॥ २ ॥

न । आ॒ऽधृ॒षे॒ । आ । द॒धृ॒ष॒ते॒ । धृ॒षा॒णः । धृ॒षि॒तः । शवः॑ ।
पु॒रा । यथा॑ । व्य॒थिः । श्रवः॑ । इन्द्र॑स्य । न । आ॒ऽधृ॒षे॒ । शवः॑ २

स च इन्द्रः नाधृषे नाधृष्यते अन्यैर्नाभिभूयते । स च धृषाणः धृष्टः सन् [धृषितः] । ❀ धृषित इति कर्तरि निष्ठा लिङ्गव्यत्ययः ❀ । धर्षकं [शवः] बलम् आ दधृषते आधर्षयति अभिभवति । पुरा वृत्रासुरवधकाले व्यथि व्यथाकारि श्रवः श्रूयमाणम् इन्द्रस्य शवः बलं यथा नाधृषे अन्यैर्नाधृष्यत । तथेदानीमपीति संबन्धः ॥

वह इन्द्रदेव दूसरोंसे तिरस्कृत नहीं होते हैं, किंतु धृष्ट बनतेहुए दबाने वाले तेजसे दबा देते हैं । पहिले वृत्रासुरवधके समय इन्द्रदेवका व्यथा देने वाला सुननेमें आने वाला बल किसीसे दब नहीं सका था, इस समय भी वह उसी प्रकार अधृष्य है ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

स नो॑ ददातु॒ तां र॒यिमु॒रुं पि॒शङ्ग॑संदृशम् ।
इन्द्र॒ः पति॑स्तु॒विष्ट॑मो॒ जने॒ष्वा ॥ ३ ॥

सः । न॒ः । द॒दा॒तु॒ । ताम् । र॒यिम् । उ॒रुम् । पि॒शङ्ग॑ऽसंदृशम् ।
इन्द्रः॑ । पतिः॑ । तु॒विऽत॑मः । जने॑षु । आ ॥ ३ ॥

स इन्द्रः नः अस्मभ्यं तं रयिम् धनं दधातु प्रयच्छतु । कीदृशम् । उरुम् प्रभूतं पिशङ्गसदृशम् पीतवर्णाभं वर्णप्रकर्षयुक्तम् । उत्कृष्टं काञ्चनम् इत्यर्थः । कस्माद् एवम् उच्यते इति तत्राह इन्द्रः पतिरिति । स इन्द्रो जनेष्वा । ❀ आकारः समुच्चये ❀ । सर्वेषु च जनेषु देवमनुष्यादिषु पतिः अधिपतिः इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः कर्ता । तुवित्तमः बहुतमः प्रभूततमः । सर्वप्रकारोत्कर्षवान् इत्यर्थः ॥

[इति] षष्ठकाण्डे चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

वह इन्द्रदेव हमको पीतवर्णकी समान आभा वाले (सुवर्णरूप) बहुतसे धनको दें (हम ऐसा क्यों कहते हैं, इसका कारण यह है, कि–) वह इन्द्रदेव देवता और मनुष्य आदिके अधिपति हैं अर्थात् उनकी इष्टप्राप्तिके और अनिष्ट वस्तुको हटानेके कर्ता हैं और सब प्रकारकी श्रेष्ठतासे युक्त हैं ॥ ३ ॥

प्रथम सूक्त समाप्त (२०६) ॥

“प्राग्नये वाचम्” इति पञ्चर्चेन रक्षोग्रहजनितपीडानिवृत्तये समिदाज्यशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं हि । “प्राग्नये [६. ३४] प्रेतः [७. ११६. २] इत्युपदधीत” इति [कौ० ४. ७] ॥

“वैश्वानरो न ऊतये” [६. ३५] “ऋतावानं वैश्वानरम्” [६. ३६] इति तृचाभ्यां सर्वभैषज्यकर्मणि उदकहरिद्रासर्पिरादिकपायनद्रव्याणि अभिमन्त्र्य पाययेत् । “वैश्वानरीयाभ्यां पायनम्” इति हि सूत्रम् [कौ० ४. ७] ॥

अग्निचयने “वैश्वानरो न ऊतये” इति तृचेन पुरीषाच्छन्नां चितिं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । “वैश्वानरो न ऊतय इति [चितिंचितिं] पुरीषाच्छन्नाम्” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. २] ॥

“प्राग्नये वाचम्” इस पाँच ऋचा वाले सूक्तसे राक्षसोंके भय से उत्पन्न हुई पीड़ाको निवृत्त करनेके लिये समिधा घृत पूरी

आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"प्राग्नये (६ । ३४) प्रेतः (७ । ११६ । २) इत्युपदधीत" (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

"वैश्वानरो न ऊतये" इस छठे काण्डके पैंतीसवें और "ऋतावानं वैश्वानरम्" इस छठे काण्डके छत्तीसवें इन दोनों सूक्तोंसे सब प्रकारकी चिकित्साके कर्ममें जल हल्दी घी आदि पीनेके द्रव्योंको अभिमंत्रित करके पिलावे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"वैश्वानरीयाभ्यां पायनम्" (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

अग्निचयनमें ब्रह्मा "वैश्वानरो न ऊतये" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पुरीषाच्छन्ना चितिका अनुमंत्रण करे । इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"वैश्वानरो न ऊतय इति चितिंचितिं पुरीषाच्छन्नाम्" ॥ (वैतानसूत्र ५ । २) ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्राग्नये॒ वाच॑मीरय वृष॒भाय॑ क्षिती॒नाम् ।
स न॑ः पर्ष॒दति॒ द्विष॑ः ॥ १ ॥

प्र । अ॒ग्नये॑ । वाच॑म् । ई॒र॒य॒ । वृ॒ष॒भाय॑ । क्षि॒ती॒नाम् ।
सः । न॒ः । प॒र्ष॒त् । अति॑ । द्विषः॑ ॥ १ ॥

हे स्तोतः अग्नये रक्षसां हन्त्रे देवाय स्तुतिलक्षणां वाचं प्रेरय प्रकर्षेण उच्चारय । कीदृशाय । क्षितीनां मनुष्याणां वृषभाय कामाभिवर्षकाय । सः अग्निः नः अस्मान् द्विषः शत्रून् रक्षःपिशाचादीन् अति पर्षत् अतिपारयतु । ❀ पॄ पालनपूरणयोः अस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ❀ ॥

मनुष्योंके कामोंकी वर्षा करने वाले, राक्षसोंके संहारक अग्नि-

देवकी स्तुति करने वाली वाणीको हे स्तोतः! तुम उच्चारण करो। वह अग्निदेव हमको राक्षस पिशाच आदि द्वेष करनेवालों के पार उतार देयँ॥ १॥

द्वितीया॥

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा।
स नः पर्षदति द्विषः॥ २॥

यः। रक्षांसि। निऽजूर्वति। अग्निः। तिग्मेन। शोचिषा।
सः। नः। पर्षत्। अति। द्विषः॥ २॥

योऽग्निः तिग्मेन तीक्ष्णेन शोचिषा तेजसा रक्षांसि निजूर्वति निर्हिनस्ति। स न इत्यादि गतम्॥

जो अग्निदेव तीक्ष्ण तेजसे राक्षसोंका संहार करते हैं, वह हमैं शत्रुओंसे पार लगावें॥ २॥

तृतीया॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते।
स नः पर्षदति द्विषः॥ ३॥

यः। परस्याः। पराऽवतः। तिरः। धन्व। अतिऽरोचते।
सः। नः। पर्षत्। अति। द्विषः॥ ३॥

योऽग्निः परस्याः परावतः अत्यन्तदूरदेशाद्ध धन्व मरुभूमिं जलवर्जितं देशं तिरः अन्तर्धाय अतिरोचते अतिशयेन दीप्यते। स न इत्यादि [गतम्]॥

जो अग्निदेव परम दूर देश जलशून्य मरुभूमिमें अन्तर्हित होकर अतिदीप्त होते हैं अर्थात् धूपसे झुलसते हुए रेतेके रूपमें

दमकते हैं, वह हमको राक्षस पिशाच आदि हमारे शत्रुओंसे हमको पार लगावें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यो विश्वा॒भि वि॒पश्य॑ति॒ भुव॑ना॒ सं च॒ पश्य॑ति ।
स न॑ः पर्ष॒दति॒ द्विष॑ः ॥ ४ ॥

यः । विश्वा॑ । अ॒भि । वि॒ऽपश्य॑ति । भुव॑ना । सम् । च॒ । पश्य॑ति ।
सः । न॒ः । प॒र्ष॒त् । अति॑ । द्विष॑ः ॥ ४ ॥

योऽग्निः विश्वा भुवना विश्वानि भुवनानि अभि विपश्यति अभितः सर्वतो जाठररूपेण प्रदीपादिरूपेण वा विविधं पश्यति सं पश्यति च ऐकरूप्येण सूर्य्यात्मना प्रकाशयति । स न इत्यादि गतम् ॥

जो अग्निदेव सकल भुवनोंमें जाठराग्निरूपमें वा दीपक आदि के रूपमें अनेक प्रकारसे देखते हैं और एक सूर्यरूपसे प्रकाशित कर रहे हैं, वह अग्निदेव हमको राक्षस पिशाच आदि हमारे शत्रुओंसे हमको पार लगावें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यो अ॒स्य पा॒रे रज॑सः शु॒क्रो अ॒ग्निरजा॑यत ।
स न॑ः पर्ष॒दति॒ द्विष॑ः ॥ ५ ॥

यः । अ॒स्य । पा॒रे । रज॑सः । शु॒क्रः । अ॒ग्निः । अजा॑यत ।
सः । न॒ः । प॒र्ष॒त् । अति॑ । द्विष॑ः ॥ ५ ॥

अस्य रज॑सः पार्थिवस्य लोकस्य पारे अवसाने पर्यवसानभूमौ अन्तरिक्षे यः शुक्रः निर्मलः सूर्यात्मकः अग्निरजायत उदपद्यत । स न इत्यादि गतम् ॥

इस भूलोकके पार अन्तरिक्षमें जो सूर्यात्मक निर्मल अग्नि उत्पन्न हुए हैं, वह हमको राक्षस पिशाच आदि शत्रुओंसे पार लगावें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

वै॒श्वा॒न॒रो न ऊ॒तय॒ आ प्र या॑तु परा॒व॑तः ।
अ॒ग्निर्नः सु॒ष्टुतीरुप॑ ॥ १ ॥

वै॒श्वा॒न॒रः । न॒ः । ऊ॒तये॑ । आ । प्र । या॒तु॒ । प॒रा॒ऽव॑तः ।
अ॒ग्निः । न॒ः । सु॒ऽस्तु॒तीः । उप॑ ॥ १ ॥

वैश्वानरः विश्वनरहितः अग्निः नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय परावतः दूरदेशाद् आ प्र यातु अभिमुखं प्रगच्छतु । गत्वा च सोग्निः नः अस्माकं सुष्टुतीः शोभनस्तुतीः उप यातु उपगच्छतु ॥

सम्पूर्ण मनुष्योंका हित करने वाले अग्निदेव हमारी रक्षाके लिये अति दूरदेशसे भी आवें, और हमारी शोभन स्तुतियोंको प्राप्त होवें ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

वै॒श्वा॒न॒रो न॒ आग॑मदि॒मं य॒ज्ञं स॒जूरुप॑ ।
अ॒ग्निरु॒क्थेष्वंह॑सु ॥ २ ॥

वै॒श्वा॒न॒रः । न॒ः । आ । अ॒ग॒म॒त् । इ॒मम् । य॒ज्ञम् । स॒ऽजूः । उप॑ ।
अ॒ग्निः । उ॒क्थेषु॑ । अंह॑ऽसु ॥ २ ॥

वैश्वानरोग्निः नः अस्मान् आगमत् आगच्छतु । आगत्य च अंहसु अभिगन्तव्येषु उक्थेषु अस्माभिः क्रियमाणेषु स्तुतशस्त्रेषु सजूः समानप्रीतिः सन् अस्मदीयम् इमं यज्ञम् उप गच्छतु ॥

वैश्वानर अग्निदेव हमारे पास आने लगें और आकर हमारे किये हुए स्तुतिशस्त्ररूप उक्थोंसे प्रसन्न होते हुए इस यज्ञमें आवें २

अष्टमी ॥

वै॒श्वा॒न॒रोङ्गि॑र॒सां स्तोम॑मु॒क्थं च॑ चाक्लृपत् ।
ऐ॒षु॑ द्यु॒म्नं स्व॒र्य॑मत् ॥ ३ ॥

वै॒श्वा॒न॒रः । अङ्गि॑रसाम् । स्तोम॑म् । उ॒क्थम् । च॒ । च॒क्लृ॒प॒त् ।
आ । ए॒षु॒ । द्यु॒म्नम् । स्वः॑ । य॒म॒त् ॥ ३ ॥

वैश्वानरोग्निः अङ्गिरसाम् महर्षीणां तत्कर्तृकं स्तोमम् स्तोत्रम् उक्थम् शस्त्रं च चक्लृपत् क्लृप्तं समर्थम् अकार्षीत् । एषु अङ्गिरःसु द्युम्नम् द्योतमानं यशः अन्नं वा स्वः सुष्ठु अरणीयं प्राप्तव्यम् आ यमत् आगमयत् । यद्वा द्युम्नम् द्योतमानं स्वः कर्मफलभूतं स्वर्गसुखं प्रापयद् इत्यर्थः ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

वैश्वानर अग्निदेवने अंगिरागोत्री महर्षियोंके स्तोम और शस्त्रनामक स्तुतिको समर्थ कर दिया है । और इन अङ्गिराओंमें प्रकाशमान यश और अन्नको भली प्रकार प्राप्त होनेकी रीतिसे स्थापित कर दिया है कर्मफल बने हुए प्रकाशमान स्वर्गसुखको प्राप्त करा दिया है ॥ ३ ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त (२०८) ॥

"ऋतावानं वैश्वानरम्" इति तृचस्य सर्वरोगभैषज्यकर्मणि पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

"उप प्रागात् सहस्राक्षः" इति तृचेन अभिचारजनितदोषनिवृत्तये अभिमन्त्रितायाः श्वेतमृत्तिकायाः शुने प्रदानम् संपातिताभिमन्त्रितपलाशमणिप्रदानम् इङ्गिडहोमं समिदाधानं वा कुर्यात् ॥ [कौ० ६. २] ॥

"यो नः शपात्" इत्यनया अभिचारकर्मणि विद्युद्धतवृक्षजा एकादश समिध आदध्यात् ॥ [कौ० ६. २] ॥

"ऋतावानं वैश्वानरम्" इस तीन ऋचा वाले सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह दिया है। सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है।

"उप प्रागात् सहस्राक्षः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अभिचारके कारण उत्पन्न हुए दोषको हटानेके लिये अभिमन्त्रित श्वेत मट्टी (खड़िया) कुत्तेको देय, सम्पातित और अभिमंत्रित ढाक की मणि (वृक्षके गुद्दे पर होनेवाली गाँठ मध्यमें छिद्र करने पर मणि कहलाती है) को देय, इङ्गिड होम करें, वा समिदाधान करे। इस विषयमें कौशिकसूत्र ६। २ का प्रमाण भी है।

'यो नः शपात्' इस ऋचासे अभिचारकर्ममें विजलीसे ताड़ित वृक्षसे उत्पन्न हुई ग्यारह समिधाओंको रक्खे (कौशिकसूत्र ६।२)'

तत्र प्रथमा ॥

ऋ॒तावा॑नं वैश्वान॒रमृ॒तस्य॒ ज्योति॑ष॒स्पति॑म् ।
अज॑स्रं घ॒र्ममी॑महे ॥ १ ॥

ऋ॒तऽवा॑नम् । वै॒श्वा॒न॒रम् । ऋ॒तस्य॑ । ज्योति॑षः । पति॑म् ।
अज॑स्रम् । घ॒र्मम् । ई॒म॒हे॒ ॥ १ ॥

ऋतावानम् । ऋतम् इति सत्यस्य उदकस्य यज्ञस्य वा नामधेयम् । तद्वन्तम् । ❀ "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् ❀ । तथा ऋतस्य यज्ञात्मकस्य ज्योतिषः तेजसः पतिम् स्वामिनम् अजस्रम् अनुपरतं संततं घर्मम् दीप्यमानम् एवंभूतं वैश्वानरम् अग्निम् ईमहे ईयामहे उपसीदामः । उपास्महे इत्यर्थः । ❀ ईङ् गतौ । दैवादिकः । व्यत्ययेन श्यनो लुक् ❀ । यद्वा ।

❀ ईमहे इति याच्ञाकर्मसु पठितम् ❀। अभिलषितं फलं याचामह इत्यर्थः ॥

यज्ञ वाले और यज्ञात्मक ज्योतिके स्वामी, कभी विरत न होने वाले सर्वदा दीप्यमान वैश्वानर अग्निकी हम उपासना करते हैं—हम उन अग्निदेवसे फलकी याचना करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत् सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥ २ ॥

सः । विश्वा । प्रति । चक्लृपे । ऋतून् । उत् । सृजते । वशी ।
यज्ञस्य । वयः । उत्ऽतिरन् ॥ २ ॥

सः वैश्वानरोग्निः विश्वाः सर्वाः प्रजाः प्रति चक्लृपे तत्तत् फलं प्रापयितुं समर्थो भवति । ❀ क्लृपू सामर्थ्ये । अस्माच्छान्दसो लिट् ❀। स च वशी वशयिता स्वतन्त्रः सूर्यात्मना ऋतून् वसन्ताद्यान् कालावयवान् उत् सृजते उद्गतान् निर्मिमीते। किं कुर्वन् । यज्ञस्य संबन्धि वयः अन्नं हविर्लक्षम् उत्तिरन् ऊर्ध्वं देवान् प्रापयन्॥

यह वैश्वानर अग्नि सब प्रजाओंको फल देनेमें समर्थ हैं और वह यज्ञसंबंधी अन्न देवताओंको प्राप्त कराते हुए स्वतंत्र सूर्यात्मारूपसे कालके अवयव वसन्त आदि ऋतुओंको निर्मित करते हैं २

तृतीया ॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

अग्निः । परेषु । धामऽसु । कामः । भूतस्य । भव्यस्य ।

स॒म्ऽराट् । एक॑ः । वि । रा॒ज॒ति॒ ॥ ३ ॥

परेषु उत्कृष्टेषु धामसु स्थानेषु अग्निः एक एव सम्राट् सम्यग् राजमानः भूतस्य उत्पन्नस्य भव्यस्य उत्पत्स्यमानस्य च कामः कामयिता कामप्रदो वा भूत्वा वि राजति विशेषेण दीप्यते ॥

श्रेष्ठ धामोंमें एक अग्नि ही सम्राट् होते हैं वह उत्पन्न होने वाले, उत्पन्न हुए और पीछे उत्पन्न हुए कामों (इच्छाओं) को देकर अधिक दिपते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उ॒प प्रागा॑त् सह॒स्राक्षो यु॒क्त्वा॑ श॒प॒थो रथ॑म् ।
श॒प्तार॑म॒न्वि॒च्छन् मम॒ वृक॑ इ॒वावि॑मतो गृ॒हम् ॥ १ ॥

उप॑ । प्र । अ॒गा॒त् । स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षः । यु॒क्त्वा । श॒पथः॑ । रथ॑म् ।
श॒प्तार॑म् । अ॒नु॒ऽइ॒च्छन् । मम॑ । वृकः॑ऽइव । अवि॑ऽमतः । गृ॒हम् १

सहस्राक्षः इन्द्रः शपथः शापक्रियायाः कर्ता सन् रथं युक्त्वा अश्वाभ्यां संयोज्य उप अस्मत्समीपं प्रागात् । आगत्य च मम मदीयं शप्तारम् शापकारिणं शत्रुं जिघांसतु । तत्र दृष्टान्तः । अविमतः अवीनां स्वामिनः पुरुषस्य गृहं वृक इव । यथा वृकः आगत्य तदीयान् अवीन् हन्ति तद्वद् इत्यर्थः ॥

सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र शापक्रियाके कर्ता बनते हुए रथको जोड़ कर हमारे पास आवें और आकर मुझको शाप देने वाले शत्रुको इस प्रकार मार डालें, कि-जिस प्रकार भेड़ोंके स्वामीके घरमें आकर भेड़िया उसकी भेड़ोंको मार डालता है ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

परि॑ णो वृङ्ग्धि शपथ हृ॒दम॒ग्निरि॑वा॒ दह॑न् ।

श॒प्तार॒मत्र॑ नो जहि दि॒वो वृ॒क्षमि॑वा॒शनि॑ः ॥ २ ॥

परि॑ । न॒ः । वृ॒ङ्ग्ध॒ । श॒प॒थ॒ । इ॒दम् । अ॒ग्निःऽइ॑व । दह॑न् ।

श॒प्तार॑म् । अत्र॑ । न॒ः । ज॒हि॒ । दि॒वः । वृ॒क्षम्ऽइ॑व । अ॒शनि॑ः २

हे शपथ नः अस्मान् परि वृङ्ग्ध परिहर मा बाधिष्ठाः । इदम् शत्रुकुलम् अग्निरिव दहन् । भस्मसात् कुर्वन्नित्यर्थः । एवं च अत्र अस्मिन् देशे नः अस्माकं शप्तारम् शापकारिणं शत्रुमेव जहि नाशय । दिवः सकाशात् पतितोऽशनिः यथा वृक्षं निहन्ति तद्वद् इत्यर्थः ॥

हे शपथ ! तू हमको छोड़ दे बाधा मत दे, और जैसे अन्तरिक्षसे गिरती हुई अशनि वृक्षका संहार कर डालती है, इसी प्रकार तू इस देशमें जो शत्रुकुल हमको शाप देरहा है उसको भस्म कर ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यो न॒ः शपा॒दश॑पत॒ः शप॑तो॒ यश्च॑ न॒ः शपा॑त् ।
शुने॒ पेष्ट्र॑मि॒वाव॑क्षाम॒ं तं प्रत्य॑स्यामि मृ॒त्यवे॑ ॥ ३ ॥

यः । न॒ः । शपा॑त् । अश॑पतः । शप॑तः । यः । च॒ । न॒ः । शपा॑त् ।

शुने॑ । पेष्ट्र॑म्ऽइव । अव॑ऽक्षामम् । तम् । प्रति॑ । अ॒स्या॒मि॒ । मृ॒त्यवे॑ ३

यः शत्रुः अशपतः अशापकारिणो नः अस्मान् शपात् परुषभाषणेन शपेत् । यश्च [शपतः] शापकारिणो नः अस्मान् शपात् शपेत् । तम् उभयविधं शत्रुं शुने कौलेयकाय पेष्टम् पिष्टमयं खाद्यमिव अवक्षामम् अवदग्धं कृत्वा मृत्यवे यमाय प्रत्यस्यामि प्रतिक्षिपामि । ❀ अवपूर्वात् क्षायतेः “क्षायो मः” इति निष्ठातकारस्य मकारः ❀ ॥ [इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

जो शत्रु शाप (कठोर भाषण) न देने वाले हमको शाप दे रहा है और जो कठोर भाषण करते समय हमें शाप देय ऐसे दोनों प्रकारके शत्रुओंको जैसे कुत्तोंके सामने पिट्ठीकी कचौड़ी आदि डालते हैं, तैसे इस प्रयोगसे भस्म कर हम मृत्युके लिये फेंकते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (२०९) ॥

"सिंहे व्याघ्रे [६. ३८] यशो हविः [६. ३९]" इति तृचाभ्यां वर्चस्कामः स्नातकसिंहव्याघ्रादीनां सूत्रोक्तानां सप्तानाम् अन्यतमस्य नाभिलोममणिं लाक्षाहिरण्याभ्यां वेष्टयित्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा आभ्यामेव तृचाभ्यां पालाशादिदशशान्तवृक्षशकलनिर्मितमणिं लाक्षाहिरण्यवेष्टितं संपात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामो बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "लोमानि जतुना संनह्य जातरूपेणापिधाप्य सिंहे व्याघ्रे यशो हविरिति स्नातकसिंहव्याघ्रवृष्णिबस्तवृषभराज्ञां नाभिलोमानि दशानां शान्तवृक्षाणां शकलान् । एतयोः" इति [कौ० २. ४] ॥

तथा उत्सर्जनाख्ये कर्मणि आभ्यां तृचाभ्याम् आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान् आनयेत् । सूत्रितं हि । "फल्गुनीषु द्वयान् रसान् उपसादयति" इति प्रक्रम्य "सिंहे व्याघ्रे [६. ३८] यशो हविः [६. ३९] यशसं मेन्द्रः [६. ५८]" इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु संपातान् आनीय" इत्यन्तम् [कौ० १४. ३] ॥

'सिंहे व्याघ्रे' इस छठे काण्डके अड़तीसवें और 'यशो हविः' इस छठे काण्डके उन्तालीसवें-इन दोनोंसे तेजको चाहने वाला स्नातक सिंह व्याघ्र आदि सूत्रमें कहे सातमेंसे एकके नाभिके लोमोंकी मणिको लाख और सुवर्णसे मढ़ कर सम्पातन और अभिमंत्रण करके बाँधे ।

तथा इन्हीं दोनों सूक्तोंसे ढ़ाक आदि दश शान्तवृक्षोंके टुकड़ों से बनी हुई मणिको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके तेजको चाहने वाला बाँधे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"लोमानि जतुना संनह्य जातरूपेणापिधाप्य सिंहे व्याघ्रे यशो हविरिति स्नातकसिंहव्याघ्रबस्तवृष्णिवृषभराज्ञां नाभिलोमानि दशानां शान्तवृक्षाणां शकलान्। एतयोः" इति (कौशिकसूत्र २। ४)॥

तथा उत्सर्जन नाम वाले कर्ममें इन दोनों तृचोंसे घृतकी आहुति देकर रसोंमें सम्पातोंको लावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"फल्गुनीषु द्वयान् रसान् उपसम्पादयति" इति प्रक्रम्य "सिंहे व्याघ्रे (६। ३८) यशो हविः (६। ३९) यशसंमेन्द्रः" (६। ५८) इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु सम्पातान् आनीय" इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र १४। ३)॥

तत्र प्रथमा॥

सिं॒हे व्या॒घ्र उ॒त या पृदा॑कौ॒ त्विषि॑र॒ग्नौ ब्रा॑ह्म॒णे सूर्ये॒॑ या।
इन्द्रं॒ या दे॒वी सु॒भगा॑ ज॒जान॒ सा न॒ ऐतु॒ वर्च॑सा
संवि॑दा॒ना॥ १॥

सिं॒हे। व्या॒घ्रे। उ॒त। या। पृदा॑कौ। त्विषि॑ः। अ॒ग्नौ। ब्रा॒ह्म॒णे।
सूर्ये॑। या।
इन्द्र॑म्। या। दे॒वी। सु॒ऽभगा॑। ज॒जान॑। सा। न॒ः। आ। ए॒तु॒।
वर्च॑सा। स॒म्ऽवि॒दा॒ना॥ १॥

सिंहे सहनशीले मृगेन्द्रे व्याघ्रे शार्दूले च या त्विषिः दीप्ति-

रस्ति उत अपि च पृदाकौ सर्पे अग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये च या दीप्तिरस्ति त्विष्यात्मिका सुभगा सौभाग्ययुक्ता या देवी इन्द्रं जजान जनयामास । अत्र सिंहादिषु त्रिषु आक्रमणशक्तिरूपा त्विषिर्विवक्षिता अग्न्यादिषु त्रिषु दाहशापतापात्मिका । सा त्विष्यात्मिका देवी वर्चसा अस्मदभीप्सितेन तेजसा संविदाना संजानाना ऐकमत्यं गता नः अस्मान् ऐतु आगच्छतु ॥

सहनशील मृगेन्द्रमें, व्याघ्रमें और सर्पमें जो आक्रमणरूप त्विषि (तेज) है, अग्निदेवमें जो दाहरूप त्विषि है, ब्राह्मणमें जो शापरूप त्विषि है, और सूर्यमें जो तापरूप त्विषि है और जिस सौभाग्यमयी त्विषिदेवीने इन्द्रको उत्पन्न किया है । वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेजसे एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

या ह॒स्तिनि॑ द्वी॒पिनि॒ या हिर॑ण्ये॒ त्विषि॑र॒प्सु गोषु॒
या पुरु॑षेषु ।
इन्द्रं॒ या दे॒वी सु॒भगा॑ ज॒जान॒ सा न॒ ऐतु॒ वर्च॑सा
संवि॒दा॒ना ॥ २ ॥

या । ह॒स्तिनि॑ । द्वी॒पिनि॑ । या । हिर॑ण्ये । त्विषि॑ः । अ॒प्ऽसु ।
गोषु॑ । या । पुरु॑षेषु ।
इन्द्र॑म् । या । दे॒वी । सु॒ऽभगा॑ । ज॒जान॑ । सा । न॒ः । आ । ए॒तु॒ ।
वर्च॑सा । स॒म्ऽवि॒दा॒ना ॥ २ ॥

या त्विषिः हस्तिनि गजेन्द्रे द्वीपिनि तरक्षौ हिरण्ये च या

त्विषिरस्ति । गजेन्द्रे तावद् बलोत्कर्षरूपा त्विषिः द्वीपिनि हिंसनरूपा हिरण्ये आह्लादविषयता वर्णोत्कर्षः । अप्सु उदकेषु गोषु पुरुषेषु मनुष्येषु च या तत्तदसाधारणरूपा त्विषिरस्ति । या च देवी सुभगा सौभाग्ययुक्ता त्विष्यात्मिका देवी इन्द्रं जजानेत्यादि पूर्ववद् योजना । ❀ अप्स्विति । "ऊडिदम्०" इति विभक्त्युदात्तत्वम् । गोष्विति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य "न गोश्वन्साववर्ण०" इति प्रतिषेधः ❀ ॥

जो गजेन्द्रमें बलकी अधिकतारूप तेज है, गेंडेमें जो हिंसनरूप तेज हैं, सुवर्णमें जो आल्हाद देना रूप वर्णकी श्रेष्ठता है । और जलोंमें गौओंमें तथा पुरुषोंमें जो अपनी २ विशिष्टतारूप त्विषि है और जिस सौभाग्यमयी त्विषिदेवीने इन्द्रको उत्पन्न किया है । वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेजसे एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

रथे॑ अ॒क्षेष्वृ॑ष॒भस्य॒ वाजे॒ वाते॑ प॒र्जन्ये॒ वरु॑णस्य॒ शुष्मे॑ ।
इन्द्रं॒ या दे॒वी सु॒भगा॑ ज॒जान॒ सा न॒ ऐतु॒ वर्च॑सा सं॒विदा॒ना ॥ ३ ॥

रथे॑ । अ॒क्षेषु॑ । ऋ॒ष॒भस्य॑ । वाजे॑ । वाते॑ । प॒र्जन्ये॑ । वरु॑णस्य । शुष्मे॑ ।
इन्द्र॑म् । या । दे॒वी । सु॒ऽभगा॑ । ज॒जान॑ । सा । न॒ः । आ । ए॒तु॒ ।
वर्च॑सा । स॒म्ऽवि॒दा॒ना ॥ ३ ॥

गमनसाधने रथे अक्षेषु च तदीयेषु वृषभस्य सेचनसमर्थस्य पुंगवस्य वाजे वेगगमने वाते वायौ पर्जन्ये वृष्टिप्रदे मेघे वरुणस्य तदधिष्ठातुर्देवस्य शुष्मे शोषके बले च या प्रतिनियतस्वभावा त्विषिरस्ति । अन्यत् पूर्ववत् ॥

गमनके साधन रथमें अक्षोंमें और उसके सेचनसमर्थ बैलमें, वेगपूर्वक चलने वाले वायुमें, वर्षा करनेवाले मेघमें और उसके अधिष्ठाता देव वरुणदेवके बलमें जो त्विषि है और जिस सौभाग्यमयी त्विषिदेवीने इन्द्रको उत्पन्न किया है । वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेजसे एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

रा॒ज॒न्ये॑ दुन्दु॒भावाय॑ता॒याम॑श्व॑स्य॒ वा॒जे पुरु॑षस्य मा॒यौ
इन्द्रं॒ या दे॒वी सु॒भगा॑ ज॒जान॒ सा न॒ ऐतु॒ वर्च॑सा सं-
वि॒दाना ॥ ४ ॥

रा॒ज॒न्ये॑ । दु॒न्दु॒भौ । आ॒ऽय॑तायाम् । अश्व॑स्य । वा॒जे॑ । पुरु॑षस्य । मा॒यौ ।
इन्द्र॑म् । या । दे॒वी । सु॒ऽभगा॑ । ज॒जान॑ । सा । नः॒ । आ । ए॒तु॒ ।
वर्च॑सा । स॒म्ऽवि॒दाना ॥ ४ ॥

राजन्ये राज्ञोऽभिषिक्तस्य पुत्रो राजन्यः । ❀ "राजश्वशुराद्यत्" । "ये चाभावकर्मणोः" इति प्रकृतिभावः । "तित् स्वरितः" इति स्वरितत्वम् ❀ । तस्मिन् राजकुमारे आयतायाम् आयम्यमानायाम् आताड्यमानायां दुन्दुभौ च या त्विषिरस्ति । अश्वस्य वाजे शीघ्रगमने पुरुषस्य मायौ शब्दे उच्चैर्घोषलक्षणे या त्विषिरस्ति । या च त्विष्यात्मिका देवी सुभगा सौभाग्ययुक्ता इन्द्रं देवं जजान जनयामास सा नः अस्मान् वर्चसा तेजसा संविदाना संजानाना ऐतु आगच्छतु । ❀ संविदानेति । "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀ ॥

राजाके अभिषिक्त पुत्र राजन्यमें बजाई जाती हुई दुन्दुभिमें जो त्विषि है, घोड़के शीघ्रगमनमें पुरुषके उच्चस्वरसे उच्चारण

किये जाने वाले शब्दमें जो त्विषि है। और जिस सौभाग्यमयी त्विषिदेवीने इन्द्रको उत्पन्न किया है। वह त्विषिरूपा देवी हमारे अभिलषित तेजसे एकमत होती हुई हमको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यशो॑ ह॒विर्व॑र्धता॒मिन्द्र॑जूतं स॒हस्र॑वीर्यं सु॒भृ॑तं॒ सह॑स्कृतम्।
प्र॒सर्स्रा॑ण॒मनु॑ दी॒र्घाय॒ चक्ष॑से ह॒विष्म॑न्तं मा वर्धय
ज्ये॒ष्ठता॑तये ॥ १ ॥

यश॑ः । ह॒विः । व॒र्ध॒ता॒म् । इन्द्र॑ऽजूतम् । स॒हस्र॑ऽवीर्यम् । सु॒ऽभृ॑तम् ।
सह॑ःऽकृतम् ।
प्र॒ऽसर्स्रा॑णम् । अनु॑ । दी॒र्घाय॑ । चक्ष॑से । ह॒विष्म॑न्तम् । मा॒ । व॒र्ध॒य॒ ।
ज्ये॒ष्ठऽता॑तये ॥ १ ॥

यशः व्यापकम् । ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्माद् अशेर्युट् च [उ० ४. १९०] इति असुनि युडागमः ❀ । यद्वा फलभूतस्य यशसो हेतुत्वात् तत्कारणं हविरपि यशः । तद् वर्धताम् समृध्यताम् । कथंभूतम् । इन्द्रजूतम् इन्द्रम् उद्दिश्य अस्माभिः प्रेरितं दत्तं सहस्रवीर्यम् अपरिमितसामर्थ्ययुक्तं सुवृतम् सुष्ठु वर्तमानं परिवर्तमानं सहस्कृतम् सहसः पराभिभवनक्षमस्य बलस्य कारकं प्रसर्स्राणम् प्रसरणशीलम् । ❀ सृ गतौ इत्यस्माद् यङ्लुगन्तात् ताच्छीलिकश्चानश् ❀ । उद्दिश्यमाना देवता यावत्परिमाणयुक्तं हविः कामयते तावत्पर्यन्तं मन्त्रसामर्थ्येन अभिवर्धमानम् इत्यर्थः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "धान्यम् असि । धिनुहि देवान् । इत्याह । एतस्य यजुषो वीर्येण यावद् एका देवता कामयते यावद् एका

तावद्ध आहुतिः प्रथते" इति [तै० ब्रा० ३. २. ६. ४]। अनु ईदृशस्य हविषो वर्धनानन्तरं हविष्मन्तम् तेन हविषा युक्तं मा मां यजमानं दीर्घाय चक्षसे चिरकालभाविने दर्शनाय ज्येष्ठतातये सर्वश्रैष्ठ्याय च हे इन्द्र वर्धय समृद्धं कुरु। ❀ "वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि" इति तातिल् प्रत्ययः ❀। दीर्घाय चक्षसे प्रसस्त्राणाम् इति वा संबन्धः ॥

इन्द्रके लिये हमारे द्वारा दी हुई अपरिमित शक्तियुक्त भली प्रकार विराजमान, पराभव करने वाले बलको देने वाली सरकने के स्वभाव वाली यशको देने वाली हवि बढ़े †। हे इन्द्रदेव ! ऐसी हविके वर्धनके अनन्तर उस हविसे युक्त मुझ यजमानको चिरकाल तक देखनेके लिये और सर्वश्रेष्ठ होनेके लिये आप बढ़ाइये अर्थात् मेरी हविको स्वीकार कर बहुत समय तक मुझको सबमें श्रेष्ठ और अच्छी दर्शन शक्ति वाला करिये ॥ १ ॥

षष्ठी ॥

अच्छा॑ न॒ इन्द्रं॑ य॒शसं॒ यशो॑भिर्यश॒स्विनं॑ नमसा॒ना वि॑धेम ।

---

† जिस देवताके निमित्त हवि दीजाती है, वह देवता जितनी बड़ी हविको चाहते हैं मन्त्रकी शक्तिसे हवि उतनी ही बड़ी हो जाती है। इसी लिये मन्त्रमें 'हवि बढ़े' यह कहा है। यह बात कपोलकल्पित नहीं है। श्रुतिका भी इस विषयमें प्रमाण है कि– "धान्यम् असि। धिनुहि देवान्। इत्याह। एतस्य यजुषो वीर्येण यावद्ध एका देवता कामयते यावद्ध एका तावत् आहुतिः प्रथते ॥– तू धान्य है, तू देवताओंको तृप्त कर। इस विषयमें कहा कि–एक देवता जितने परिमाण वाली हविकी इच्छा करते हैं, इस पूजा करने वाले मन्त्रके प्रभावसे, वह आहुति उतने ही परिमाणमें फैल जाती है ॥" (तैत्तिरीयब्राह्मण ३। २। ६। ४)॥

सनो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम

अच्छ । नः । इन्द्रम् । यशसम् । यशःऽभिः । यशस्विनम् ।
नमसानाः । विधेम ।

सः । नः । रास्व । राष्ट्रम् । इन्द्रऽजूतम् । तस्य । ते । रातौ । यशसः ।
स्याम ॥ २ ॥

नः अस्माकम् अच्छ आभिमुख्येन वर्तमानम् इन्द्रं यशसम् यशोरूपं यशसः प्रदातारम् । ❀ यशःशब्दात् क्यजन्तात् क्विपि अतोलोपयलोपौ । "चितः" इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । यशोभिः कीर्तिभिः यशस्विनम् प्रभूतयशस्कम् एवंभूतम् इन्द्रं नमसानाः नमस्यन्तः नमस्कारादिभिः पूजयन्तो वयं विधेम परिचरेम ॥ हे इन्द्र स त्वं नः अस्मभ्यम् इन्द्रजूतम् इन्द्रेण त्वया प्रेरितं राष्ट्रम् राज्यं रास्व देहि । ❀ रासृ दाने ❀ । तस्य ते तव रातौ दाने यशसः यशस्विनो वयं स्याम भवेम ॥

हम अपने सामने वर्तमान यशके देने वाले यशोंसे यशस्वी इन्द्रकी नमस्कार आदिसे पूजा करते हुए सेवा करते हैं । हे इन्द्र! ऐसे आप हमको अपने आप प्रेरणा करके राज्य दीजिये, हम आपके दानमें यशस्वी होवें ॥ २ ॥

सप्तमी ॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥ ३ ॥

यशाः । इन्द्रः । यशाः । अग्निः । यशाः । सोमः । अजायत ।

यशाः । विश्वस्य । भूतस्य । अहम् । अस्मि । यशःऽतमः ।३।

इन्द्रो देवो यशाः यश आत्मन इच्छन् वर्तते। ❀पूर्ववद् यशस्यतेः क्विपि रूपम् ❀। तथा अग्निरपि यशाः यशस्कामो भवति। तथा सोमश्च यशाः यश इच्छन् अजायत। यथैवम् इन्द्रादयो यशस्विनो जाताः एवं यशाः यशस्कामः अहमपि विश्वस्य भूतस्य सर्वस्य भूतजातस्य देवमनुष्यादेः सकाशाद् यशस्तमः अतिशयेन यशस्वी अस्मि भवामि ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव यश चाहते रहते हैं, अग्नि भी यश चाहते हैं, तथा सोम भी यशको चाहते हुए उत्पन्न हुए हैं। जैसे यह इन्द्र आदि यशस्वी हुए हैं, इसी प्रकार यशको चाहने वाला मैं भी देव मनुष्य आदि सब प्राणियोंसे अधिक यशस्वी होता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (२१२) ॥

"अभयं द्यावापृथिवी" इति तृचेन ग्रामाद्यभयकामः तस्यैव प्रतिदिशं सप्तर्षीन् यजते उपतिष्ठते वा। सूत्रितं हि। "अभयं द्यावापृथिवी [६. ४०] श्येनोसि [६. ४८] इति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः" इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा सेनाभयनिवृत्त्यर्थं तस्याः प्रतिदिशं सप्तर्षीणां यागम् उपस्थानं वा कुर्यात्। "अभयानाम् अप्ययः" [कौ० २. ७] इति सूत्रात् ॥

तथा अनेन तृचेन उपाकर्मणि आज्यं जुहुयात्। "अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य सूत्रितम्। "अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्" इति [कौ० १४. ३] ॥

"मनसे चेतसे धिये" इति तृचेन गोदानाख्ये संस्कारकर्मणि महाव्रीहिमयं स्थालीपाकं शान्त्युदकेन अभ्युक्ष्य अभिमन्त्र्य आयुष्कामं माणवकं प्राशयेत्। सूत्रितं हि। "यथा द्यौः [२. १५] मनसे चेतसे धिये [६. ४१] इति महाव्रीहीणां स्थालीपाकं श्रपयित्वा शान्त्युदकेन उपसिच्याभिमन्त्र्य प्राशयति इति [कौ० ७. ५] ॥

ग्राम आदिमें अभयको चाहने वाला "अभयं पृथिवी" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे उस ग्राम आदिकी प्रत्येक दिशामें सप्तर्षियोंकी पूजा वा उपस्थान करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अभयं द्यावापृथिवी (६ । ४०) श्येनो सि (६ । ४८) इति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः" (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा सेनाके भयको दूर करनेके लिये सेनाकी प्रत्येकदिशामें सप्त ऋषियोंके निमित्त याग वा उपस्थान करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अभयानां अप्ययः" (कौशिकसूत्र २ । ७) ॥

तथा उपाकर्ममें इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति देय। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—'अभिजिति शिष्यानुपनीय—अभिजित् मुहूर्तमें शिष्योंका उपनयन करके" इसका आरम्भ करके कहा है, कि—"अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात् ॥—अभय और अपराजितगणके सूक्तोंके घृतकी आहुति देय" (कौशिकसूत्र १४ । ३) ॥

गोदान नाम वाले संस्कारकर्ममें "मनसे चेतसे धिये" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे महाव्रीहिमय स्थालीपाकको शान्तिजल से छिड़क कर और अभिमन्त्रित करके आयु चाहने वाले बालक को खिलावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यथा द्यौः (२ । १५) मनसे चेतसे धिये (६ । ४१) इति महाव्रीहीणां स्थालीपाकं श्रपयित्वा शान्त्युदकेन उपसिच्याभिमन्त्र्य प्राशयति" (कौशिकसूत्र ७ । ५)

तत्र प्रथमा ॥

अभ॑यं द्या॑वापृथिवी इ॒हास्तु॒ नोभ॑यं॒ सोम॑ः सवि॒ता
न॑ः कृणोतु ।

अभ॑यं नोस्तू॒र्व॑१॒न्तरि॑क्षं सप्तऋ॒षीणां॑ च॑ ह॒विषाभ॑यं
नो अस्तु ॥ १ ॥

अभ॑यम् । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी॒ इति॑ । इ॒ह । अ॒स्तु॒ । न॒ः । अभ॑यम् ।
सोम॑ः । स॒वि॒ता । न॒ः । कृ॒णो॒तु॒ ।
अभ॑यम् । न॒ः । अ॒स्तु॒ । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् । स॒प्त॒ऽऋ॒षी॒णाम् ।
च॒ । ह॒वि॑षा । अभ॑यम् । न॒ः । अ॒स्तु॒ ॥ १ ॥

हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ युवयोः प्रसादाद् इह अस्मिन् देशे नः अस्माकम् अभयम् भयराहित्यम् अस्तु । चोरव्याघ्रादिजनितस्य भयस्य निवृत्तिर्भूयाद् इत्यर्थः । तथा सोमश्चन्द्रः सविता सूर्यश्च नः अस्माकम् अभयं कृणोतु करोतु । तथा द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानम् उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं नः अस्माकम् अभयम् अस्तु । तत्रत्याद् निमित्ताद् भयं मा भूद् इत्यर्थः । सप्तर्षीणाम्

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः ।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपः [आश्व० प० १]

इत्येवं प्रसिद्धा ये सप्त ऋषयः सन्ति तेषां संबन्धिना हविषा अस्माभिर्दीयमानेन नः अस्माकम् अभयम् अस्तु । ❀ सप्तर्षीणाम् इति । सप्त च ते ऋषय इति विगृह्य “दिक्संख्ये संज्ञायाम्” इति समासः ❀॥

हे द्यावापृथिवी ! आपके प्रसादसे हमको इस देशमें निर्भयता प्राप्त हो अर्थात् चोर व्याघ्र आदिसे होने वाले भयकी निवृत्ति हो । तथा चन्द्रदेव और सूर्यदेव हमको अभय दें और द्यावापृथिवीके बीचमें वर्तमान अन्तरिक्ष भी हमको अभय दे अर्थात्

तहाँ होने वाले शकुनोंसे हमको भय न हो और सप्त ऋषियों † को दी जाने वाली हविसे हमको अभय प्राप्त हो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अ॒स्मै ग्रामा॑य प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒ ऊर्जं॑ सुभू॒तं स्व॒स्ति
स॑वि॒ता नः॑ कृणोतु ।
अ॒श॒त्रुरिन्द्रो॒ अभ॑यं नः कृणोत्व॒न्यत्र॒ राज्ञा॑म॒भि या॑तु
म॒न्युः ॥ २ ॥

अ॒स्मै । ग्रामा॑य । प्र॒ऽदिशः॑ । चत॑स्रः । ऊर्ज॑म् । सु॒ऽभू॒तम् । स्व॒स्ति ।
स॒वि॒ता । न॒ः । कृ॒णो॒तु॒ ।

अ॒श॒त्रु । इन्द्रः॑ । अभ॑यम् । न॒ः । कृ॒णो॒तु॒ । अ॒न्यत्र॑ । राज्ञा॑म् ।
अ॒भि । या॒तु॒ । म॒न्युः ॥ २ ॥

अस्मै ग्रामाय । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । अस्य ग्रामस्य अस्मदावासभूतस्य प्रदिशश्चतस्रः प्रकृष्टाः प्राच्याद्याश्चतस्रो दिशः । ❀ "०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ❀ । प्रागादिसर्वदिक्षु ऊर्जम् अन्नं सुभूतम् सुष्ठु उत्पन्नं स्वस्ति । अविनाशिनामैतत् । अविनाशोपलक्षितं क्षेमम् एतत् सर्वं नः अस्माकं सविता सर्वस्य प्रेरको देवः सूर्यः कृणोतु करोतु । तथा अशत्रुः अनुपजातविरोधी इन्द्रो देवः नः अस्माकम् अभयम् शत्रुनिमित्तभयराहित्यं कृणोतु करोतु ।

---

† आश्वलायनश्रौतसूत्रपरिशिष्ट १ में कहा है, कि-"विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपः ।-विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप ये सात महर्षि हैं ।"

तत्प्रसादाद् राज्ञां मन्युः क्रोधः अस्मत्तः अन्यत्र अभि यातु अभिगच्छतु ॥

सूर्यदेव ऐसा करें, कि—हमारे रहनेके ग्रामकी समीपवर्ती चारों दिशाओंमें बहुतसा अन्न उत्पन्न हो और हमारे यहाँ अविनाशी क्षेम रहे। तथा जिनका विरोधी नहीं रह सकता वह इन्द्रदेव वह हमको शत्रुके भयसे रहित करें और उनके प्रसादसे राजाओंका कोप हमसे अन्यत्र चला जावे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अ॒न॒मि॒त्रं नो॑ अध॒राद॑नमि॒त्रं न॑ उत्त॒रात् ।
इन्द्रा॑नमि॒त्रं नः॑ प॒श्चाद॑नमि॒त्रं पु॒रस्कृ॑धि ॥ ३ ॥

अ॒न॒मि॒त्रम् । नः॒ । अ॒ध॒रात् । अ॒न॒मि॒त्रम् । नः॒ । उ॒त्त॒रात् ।
इन्द्र॑ । अ॒न॒मि॒त्रम् । नः॒ । प॒श्चात् । अ॒न॒मि॒त्रम् । पु॒रः । कृ॒धि॒ ३

हे इन्द्र नः अस्माकम् अधरात् । अधरशब्दो दक्षिणदिग्वाची । दक्षिणस्या दिशः अनमित्रम् अमित्राः शत्रवः तद्राहित्यं कुरु । तथा उत्तरात् उत्तरस्या दिशः सकाशाद् नः अस्माकम् अनमित्रम् शत्रुराहित्यं कुरु । ❀ "उत्तराधरदक्षिणाद् आतिः" इति आतिप्रत्ययः ❀ । हे इन्द्र नः अस्माकं पश्चात् पश्चिमदिग्भागात् अनमित्रम् अमित्रराहित्यं कुरु । पुरः पुरस्तात् पूर्वस्या दिशः अनमित्रम् अमित्रराहित्यं कृधि कुरु । ❀ "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

हे इन्द्र ! हमको आप दक्षिणदिशासे शत्रुरहित करिये, उत्तर दिशासे शत्रुभावशून्य करिये । और हे इन्द्र ! पश्चिम दिशासे हमको अनमित्र करिये तथा पूर्वदिशासे भी हमको अनमित्र करिये अर्थात् चारों दिशाओंमें हमसे कोई द्वेष न रक्खे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मन॑से॒ चेत॑से धि॒य आकू॑तय उ॒त चित्त॑ये ।
म॒त्यै श्रु॒ताय॒ चक्ष॑से वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥ १ ॥

मन॑से । चेत॑से । धि॒ये । आऽकू॑तये । उ॒त । चित्त॑ये । म॒त्यै ।
श्रु॒ताय॑ । चक्ष॑से । वि॒धेम॑ । ह॒विषा॑ । व॒यम् ॥ १ ॥

मनसे मननसाधनाय सुखाद्यापरोक्ष्यनिमित्ताय इन्द्रियाय । चेतसे । चेतस इत्यादिभिस्तस्यैवावस्थाविशेषा उच्यन्ते । चेतसे सम्यग्ज्ञानसाधनाय । ❀ चिती संज्ञाने इत्यस्मात् करणे असुन् ❀ । धिये ध्यानसाधनाय । आकूतये संकल्पाय । उत अपि च चित्तये यत्संबन्धात् पुरुषश्चेतन उच्यते सा चित्तिः अतीतादिविषयस्मृतिहेतुः । मत्यै आगामिविषयज्ञानजनन्यै । श्रुताय श्रवणजनितज्ञानाय चक्षसे दर्शनाय चाक्षुषज्ञानाय । ❀ सर्वत्र तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । मनआदिसिद्ध्यर्थं वयं हविषा आज्यादिना विधेम परिचरेम ॥

मननके साधन सुख आदिका प्रत्यक्ष करनेमें निमित्तरूप मन इन्द्रियके लिये, भली प्रकार ज्ञान होनेके साधन चेतस्के लिये, ध्यानकी साधन बुद्धिके लिये और जिसके संबंधसे पुरुष चेतन कहलाता है उस बीते हुए आदि विषयोंकी स्मृतिकी हेतु मतिके लिये, आगामी विषयज्ञानकी जननी मतिके लिये और श्रवणजनित ज्ञानरूप श्रुतके लिये तथा चाक्षुषज्ञानरूप दर्शनशक्तिके लिये हम हविसे इन्द्रकी सेवा करते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒पा॒नाय॑ व्या॒नाय॑ प्रा॒णाय॒ भूरि॑धायसे ।
सर॑स्वत्या उरु॒व्यचे॑ वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥ २ ॥

अ॒पा॒नाय॑ । वि॒ऽआ॒नाय॑ । प्रा॒णाय॑ । भूरि॑ऽधायसे ।

सर॑स्वत्यै । उ॒रु॒ऽव्यचे॑ । वि॒धेम॑ । ह॒विषा॑ । व॒यम् ॥ २ ॥

अपानाय अपानवायवे । मुखनासिकाभ्यां बहिर्विनिर्गतस्य समीरणस्य पुनरन्तःप्रवेशः अपाननव्यापारः । व्यानाय विविधम् अननम् ऊर्ध्वाधोवृत्तिपरित्यागेन तस्य समीरणस्य अवस्थानं व्यानः । “अथ यः प्राणापानयोः संधिः स व्यानः” इति हि श्रुतिः [छा० उ० १. ३. ३] । प्राणाय । शरीरस्थस्य प्राणवायोर्मुखनासिकाभ्यां बहिर्विनिर्गमनं प्राणनव्यापारः प्राणः । तस्मै । एवं प्राणापानव्यानवृत्तिभेदेन त्रैधम् अवस्थिताय मुख्यप्राणाय भूरिधायसे भूरि बहुलं धारयित्रे । ❀ वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति असुन् । तस्य णिद्वद्भावाद् “आतो युक् चिण्कृतोः” इति युगागमः ❀ । तथा उरुव्यचे । ❀ व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा । अस्मात् कर्तरि क्विप् ❀ । बहुलं व्याप्नुवत्यै सरस्वत्यै वाग्देवतायै । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । उदीरितलक्षणं प्राणं सरस्वतीं च हविषा आज्यादिना वयं विधेम परिचरेम ॥

मुख और नासिकासे बाहर निकले हुए वायुका फिर भीतर प्रवेश होना अपानन व्यापार कहलाता है, उस अपानन व्यापार करने वाले अपानवायुकी, ऊपर नीचेको जानेकी वृत्तिको त्याग कर स्थित रहने वाले व्यानवायुकी, शरीरमें स्थित प्राणवायुके मुख और नासिकासे बाहर निकालनारूप प्राणन व्यापार करने वाले प्राणवायुकी और प्राण और अपान वृत्तियोंके भेदसे तीन प्रकारसे स्थित बहुतोंको धारण करनेवाले मुख्य प्राणकी और व्याप्ति वाली सरस्वती देवीकी हम हविसे सेवा करते हैं॥ २ ॥

षष्ठी ॥

मा नो॑ हासिषु॒र्ऋष॑यो॒ दैव्या॒ ये त॑नू॒पा ये न॑स्त॒न्व-
स्तनू॒जाः ।
अम॑र्त्या॒ मर्त्याँ॑ अ॒भि नः॑ सचध्व॒मायु॑र्धत्त प्रत॒रं॑ जी॒वसे॑ नः

मा । न॒ः । हा॒सि॒षु॒ः । ऋष॑यः । दैव्या॑ः । ये । त॒नू॒ऽपाः । ये ।
न॒ः । त॒न्व॑ः । त॒नू॒ऽजाः ।
अम॑र्त्याः । मर्त्या॑न् । अ॒भि । न॒ः । स॒च॒ध्व॒म् । आयु॑ः । ध॒त्त॒ ।
प्र॒ऽत॒रम् । जी॒वसे॑ । न॒ः ॥ २ ॥

दैव्याः देवेषु भवा ऋषयः अतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्राणाधिदेवताः सप्त ऋषयः नः अस्मान् मा हासिषुः मा परित्यजन्तु । ये ऋषयस्तनूपाः तन्वाः शरीरस्य पातारः ये च नः अस्माकं तन्वः शरीरात् तनूजाः शरीरसंबन्धितयैव इन्द्रियात्मना उत्पन्नाः । ते ऋषयः मा हासिषुरिति संबन्धः ॥ हे अमर्त्याः अमरणधर्माणो देवाः मर्त्यान् मरणधर्मकान् नः अस्मान् अभि सचध्वम् अभितः प्राप्नुत । नः अस्माकं जीवसे जीवनाय प्रतरम् प्रकृष्टतरम् आयुः जीवनं धत्त प्रयच्छत । ❀ डुधाञ् दानधारणयोः ❀ ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकांडे चतुर्थोनुवाकः

देवताओंमें होने वाले अतीन्द्रियार्थदर्शी प्राणाधिदेवता सात ऋषि जो शरीरके रक्षक हैं और शरीरकी संबधितावश इन्द्रिय रूपसे उत्पन्न हुए हैं वे हमको न त्यागें । हे अमरणधर्म वाले देवताओं ! हम मरणधर्म वालोंका सेवन करो और जीवित रहने के लिये हममें श्रेष्ठ आयुको स्थापित करो ॥ २ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२१४)

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डका चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

पञ्चमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "अव ज्यामिव" इति आद्यं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन स्त्रीपुरुषयोः स्त्रीविषये पुरुषस्य मन्युविनाशार्थं कुपितं पुरुषं पश्यन् अश्मानम् अभिमन्त्र्य हस्तेन गृहीत्वा "सखायाविव" इति द्वितीयाम् ऋचं जपन् अश्मानं भूमौ प्रक्षिप्य "अभि तिष्ठामि" इति तृतीयाम् ऋचं जपन् तस्याश्मन उपरि निष्ठीवेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि कुपितस्य पुरुषस्य च्छायायाम् अनेन तृचेन धनुरभिमन्त्र्य सज्यं कुर्यात् । एवं पुरुषविषये स्त्रिया मन्युविनाशार्थम् उक्तं कर्म कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "अव ज्यामिवेति दृष्ट्वाश्मानम् आदत्ते । द्वितीययाभिनिदधाति । तृतीययाभिनिष्ठीवति । छायायां सज्यं करोति" इति [कौ० ४. १२] ॥

तथा दीक्षायां यजमानः क्रोधे प्राप्ते एतं तृचं जपेत् । "अव ज्यामिव" इति वैतानं सूत्रम् [वै० ३. २] ॥

सर्वविषयमन्युविनाशार्थम् "अयं दर्भः" इति तृचेन दर्भमूलम् ओषधिवत् खात्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । "अयं दर्भ इत्योषधिवत्" इति [कौ० ४. १२] सूत्रात् ॥

पाँचवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें "अव ज्यामिव" यह पहिला सूक्त है । इसके पहिली तीन ऋचा वाले सूक्तसे स्त्री पुरुषोंमें स्त्रीके ऊपर हुए पुरुषके कोपको नष्ट करनेके लिये कुपित पुरुषको देखता हुआ पत्थरको अभिमंत्रित करके हाथमें ग्रहण करके 'सखायाविव' इस दूसरी ऋचाको जपता हुआ पत्थरको भूमिमें फेंक कर 'अभि तिष्ठामि' इस तीसरी ऋचाको जपता हुआ उसके ऊपर थूकदेय ।

तथा इसी कर्ममें कुपित पुरुषकी छायामें इस तृचसे धनुषको अभिमंत्रित करके ताने॥ इसी प्रकार पुरुषके ऊपर उत्पन्न स्त्री के क्रोधको नष्ट करनेके लिये करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अव ज्यामिवेति दृष्ट्वाश्मानम् आदत्ते । द्वितीययाभिनिदधाति । तृतीययाभिनिष्ठीवति । छायायां सज्यं करोति” (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

तथा दीक्षामें यजमानको क्रोध आजावे तब इस तीन ऋचा वाले सूक्तको जपे। इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अव ज्यामिव” (वैतानसूत्र ३ । २) ॥

सब प्रकारके क्रोधको दूर करनेके लिये “अयं दर्भः” इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे दर्भकी मूलको औषधिकी समान खोद कर सम्पात और अभिमंत्रित करके भक्षण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अयं दर्भ इत्योषधिवत्” (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अव॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो म॒न्युं त॑नोमि ते हृ॒दः ।
यथा॒ संम॑नसौ भू॒त्वा सखा॑याविव॒ सचा॑वहै ॥ १ ॥

अव॑ । ज्याम्ऽइ॑व । धन्व॑नः । म॒न्युम् । त॒नो॒मि॒ । ते॒ । हृ॒दः ।
यथा॑ । सम्ऽम॑नसौ । भू॒त्वा । सखा॑यौऽइव । सचा॑वहै ॥ १ ॥

धन्वनः धनुर्दण्डात् ज्यामिव यथा आरोपितां ज्यां धानुष्कोऽवरोपयति तथा हे पुरुष ते तव हृदः हृदयाद् मन्युम् क्रोधम् अव तनोमि अवरोपयामि । अपनयामीत्यर्थः । यथा येन प्रकारेण आवां संमनसौ समानमनस्कौ परस्परानुरागयुक्तौ भूत्वा सखायाविव समानख्यानौ सुहृदाविव सचावहै समवेतौ संगतौ एककार्यकारिणौ भवाव । तथा त्वदीयं क्रोधम् अपनयामीत्यर्थः । ❀ षच समवाये इति धातुः ❀ ॥

जैसे धनुषधारी पुरुष धनुषके दण्डे परसे चढ़े हुए रोदेको

उतारता है, इसी प्रकार मैं तेरे हृदयसे क्रोधको उतारता हूँ, जिससे कि–हम दोनों परस्पर अनुराग रख कर मित्रकी समान किसी कामको अविरुद्धमतिसे करने वाले हों ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२॥

सखायौऽइव । सचावहै । अव । मन्युम् । तनोमि । ते ।
अधः । ते । अश्मनः । मन्युम् । उप । अस्यामसि । यः । गुरुः २

सखायाविवेत्यादि उक्तार्थम् । हे क्रुद्ध पुरुष ते त्वदीयं मन्युम् क्रोधं यो गुरुः गौरवोपेतश्चालयितुम् अशक्यः अश्मास्ति तस्य अश्मनः अधस्ताद् उपास्यामसि उपक्षिपामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

हम मित्रकी समान एकमन होकर कार्य करनेमें जुटें, मैं तेरे क्रोधको जो भारी पत्थर है उसके नीचे फेंकता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

अभि । तिष्ठामि । ते । मन्युम् । पार्ष्ण्या । प्रऽपदेन । च ।
यथा । अवशः । न । वादिषः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि । ३ ।

हे क्रुद्ध पुरुष ते तव मन्युम् क्रोधं पार्ष्ण्या पादापरभागेन प्रपदेन पादाग्रेण च अभि तिष्ठामि उपरि तिष्ठामि । पादस्य पूर्वापरभागाभ्यां निष्पीडयामीत्यर्थः । यथा येन प्रकारेण अवशः पर-

वशः सन् न वादिषः न ब्रूयाः प्रतिवचनसमर्थो न भवेः । येन च प्रकारेण मम चित्तम् मदीयं मनः उपायसि उपगच्छसि । तथा अभितिष्ठामीति संबन्धः । ❀ वादिष इति । वदेर्लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् । "स च णिद्वक्तव्यः" इति स्मरणाद्व उपधावृद्धिः ❀ ॥

हे क्रुद्ध ! तेरे क्रोध पर मैं पैरके अग्रभाग और अपरभागसे खड़ा होता हूँ, कि-जिससे वह पराधीन होकर कुछ कह न सके । जिस प्रकार तू मेरे चित्तके अनुकूल हो तिस प्रकार मैं तेरे क्रोधको दबाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अ॒यं द॒र्भो विम॑न्युक॒ः स्वाय॒ चार॑णाय च ।
म॒न्योर्विम॑न्युकस्या॒यं म॑न्यु॒शम॑न उच्यते ॥ १ ॥

अ॒यम् । द॒र्भः । वि॒ऽम॑न्युकः । स्वाय॑ । च॒ । अर॑णाय । च॒ ।
म॒न्योः । वि॒ऽम॑न्युकस्य । अ॒यम् । म॒न्यु॒ऽशम॑नः । उ॒च्य॒ते॒ ॥ १ ॥

अयं पुरोवस्थितो दर्भः स्वाय ज्ञातये आत्मसंबन्धिने अरणाय अरातये च विमन्युकः मन्युविगमनस्य क्रोधापनयनस्य हेतुः । इष्टजनविषयम् अनिष्टजनविषयं तत्कर्तृकं वा क्रोधं शमयतीत्यर्थः । ❀ स्वाय चारणाय चेति परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । "स्वम् अज्ञातिधनाख्यायाम्" इति गणसूत्रेण ज्ञातिवाचिनः स्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञायाः पर्युदासात् तत्कार्याभावः ❀ । "यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति" [ऋ० ६. ७५. १९] इति हि निगमः । उक्त एवार्थो विव्रियते मन्योरिति । ❀ लुप्तनिर्दिष्टोत्र मत्वर्थप्रत्ययो द्रष्टव्यः ❀ । मन्योः मन्युमतः पुरुषस्य शत्रोः विमन्युकस्य परमार्थतो मन्युरहितस्य आपाततः क्रोधाविष्टस्य आत्मीयस्य च अयं प्रयोगो मन्युशमनः क्रोधनिवारणोपाय उच्यते विधानज्ञैरभिधीयते।

यह सामने खड़ा हुआ दर्भ अपनी जाति वालेके और शत्रुके भी क्रोधको दूर करने वाला है। यह प्रयोग क्रोधी पुरुष शत्रुके और वास्तवमें क्रोध न करने वाले किंतु कारणवश क्रोध करने वालेके क्रोधको भी दूर करनेका उपाय कहा जाता है ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥

अयम् । यः । भूरिऽमूलः । समुद्रम् । अवऽतिष्ठति ।
दर्भः । पृथिव्याः । उत्थितः । मन्युऽशमनः । उच्यते ॥ २ ॥

योयं पुरोवर्ती भूरिमूलः बहुभिर्मूलैरुपेतः [दर्भः] समुद्रम् । समुद्द्रवन्त्यस्माद् आप इति उदकभूयिष्ठो देशः समुद्रः । तम् अवतिष्ठति अवक्रम्य स्थितो भवति । यद्वा समुद्रम् इति अन्तरिक्षनाम । ❀ सैव व्युत्पत्तिः ❀ । अन्तरिक्षम् आक्रम्य अवस्थित इत्यर्थः । पृथिव्याः सकाशाद् उत्थितः उत्पन्नः स दर्भः काशकुशाद्यात्मकः मन्युशमन उच्यते । क्रोधविनाशनस्य हेतुरभिधीयते इत्यर्थः ॥

यह बहुतसी जड़ों वाला दर्भ (कुशा) अधिक जल वाले देश को दबाकर स्थित है, पृथिवीसे उठा हुआ अन्तरिक्षमें स्थित यह दर्भ क्रोधको शान्त करने वाला कहलाता है ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

वि । ते । हनव्याम् । शरणिम् । वि । ते । मुख्याम् । नयामसि ।

यथा॑ । अ॒व॒शः । न । वादि॑षः । मम॑ । चि॒त्तम् । उ॒प॒ऽआय॑सि ३

हे क्रोधाविष्ट पुरुष ते तव हनव्याम् हनुसंबन्धिनीं शरणिम् हिंसाहेतुभूतां क्रोधाभिव्यञ्जिकां धमनिं वि नयामसि विनयामः । तथा ते तव मुख्याम् मुखे भवां क्रोधवशोत्पन्नाम् अन्याम् अपि धमनिं विनयामः क्रोधशमनेन अपगमयामः । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः । ❀ हनव्याम् इति । हनुशब्दात् "शरीरावयवाच्च" इति यत् । ओर्गुणे "वान्तो यि प्रत्यये" इति अव् आदेशः । मुख्याम् इति । पूर्ववद् यत् ❀ ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे क्रोधाविष्ट पुरुष ! तेरी ठोड़ीकी हिंसाकी हेतुभूत क्रोधको प्रकट करने वाली नसको हम शान्त करते है और मुख पर क्रोध के कारण प्रकट होने वाली नसको भी हम क्रोधको शान्त कर दूर करते हैं जिससे कि–पराधीन होकर कुछ न कह सके, जिस प्रकार तू मेरे चित्तके अनुकूल रहे, तिस प्रकार मैं तेरे क्रोधको दबाता हूँ ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२१६) ॥

"अस्थाद् द्यौः" इति तृचेन अपवादभैषज्यकर्मणि स्वयंपतितं गोशृङ्गं संपात्य तद् उदके निधाय अभिमन्त्र्य तद् उदकम् आचामयेत् प्रोक्षेच्च । सूत्रितं हि । "अस्थाद् द्यौरित्यपवातायाः स्वय स्रस्तेन गोशृङ्गेण संपातवता जपन्" इति [कौ० ४. ७] ॥

"परोपेहि" इति तृचेन दुःस्वप्नदर्शननिमित्तदोषनिर्हरणार्थम् उत्थाय मुखं प्रक्षालयेत् ॥

तथा अतिघोरदुःस्वप्नदोषनिर्हरणकर्मणि व्रीहियवगोधूमादिमिश्रधान्यमयं पुरोडाशद्वयं कृत्वा एकम् अनेन तृचेन अग्नौ जुहुयात् । अपरं शत्रुक्षेत्रे निदध्यात् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । “परोपेहि [६. ४५] यो न जीवः [६. ४६] इति स्वप्नं दृष्ट्वा मुखं निमार्ष्टि । अतिघोरं दृष्ट्वा मैश्रधान्यं पुरोडाशम् अन्याशायां वा निदधाति” [कौ० ५.१०] इति॥

“अस्थाद् द्यौः” इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अपवादकी चिकित्सारूप कर्ममें अपने आप गिरे हुए गौके सींगको संपात करके जलमें रक्खे फिर अभिमन्त्रित करके उसका आचमन करावे और प्रोक्षण करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अस्थाद्द्यौरित्यपवातायाः स्वयं स्रस्तेन गोशृङ्गेण सम्पातवता जपन्” (कौशिकसूत्र ४ । ७)॥

“परोपेहि” इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे, दुःस्वप्न देखनेके दोषको हटानेके लिये, उठकर मुखको धोवे ॥

तथा अतिघोर दुःस्वप्नके दोषको दूर करनेके निमित्त धान जौ गेहूँ आदि मिश्रधान्यके दो पुरोडाशोंको करके एकको इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अग्निमें आहुति देय और दूसरेको शत्रुके घरमें रख देय ॥

इस बातका कौशिकसूत्रमें प्रमाण भी है, कि—“परोपेहि(६ । ४५) यो न जीवः (६ । ४६) इति स्वप्नं दृष्ट्वा मुखं विमार्ष्टि । अतिघोरं दृष्ट्वा मैश्रधान्यं पुरोडाशं अन्याशायां वा निदधाति” (कौशिकसूत्र ५ । १०)॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्था॒द् द्यौरस्था॑त् पृथि॒व्यस्था॒द् विश्व॑मि॒दं जग॑त् ।
अस्थु॑र्वृ॒क्षा ऊ॒र्ध्वस्व॑प्ना॒स्तिष्ठा॒द् रोगो॑ अ॒यं तव॑ ॥१॥

अस्था॑त् । द्यौः । अ॒स्था॒त् । पृ॒थि॒वी । अस्था॑त् । विश्व॑म् । इ॒दम् ।
जग॑त् ।

अस्थुः । वृक्षाः । ऊर्ध्वऽस्वप्नाः । तिष्ठात् । रोगः । अयम् । तव १

द्यौः द्युलोको ग्रहनक्षत्रमण्डलोपेतः यथा अस्थात् तिष्ठति नाधः पतति । ❀ तिष्ठतेश्छान्दसो लुङ् । "गातिस्था०" इति सिचो लुक् ❀ । यथा च पृथिवी अस्थात् सर्वाधारभूता तिष्ठति । यथा च तत्राश्रितं विश्वम् सर्वम् इदं परिदृश्यमानं जगत् जङ्गमप्राणिजातम् अस्थात् तिष्ठति । यथा च वृक्षाः पादपाः ऊर्ध्वस्वप्नाः । ऊर्ध्वम् अवस्थिता एव स्वापम् अनुभवन्ति न तु शयाना इति ऊर्ध्वस्वप्नाः । एवंभूताः सन्तः [अस्थुः] तिष्ठन्ति । हे व्याधित तव त्वदीयः अयं रोगः रुधिरस्रावात्मकस्तथा तिष्ठात् तिष्ठतु न स्रवतु । निवर्तताम् इत्यर्थः ॥

ग्रह और नक्षत्रोंके मण्डलों वाला द्युलोक जिस प्रकार ठहरा रहता है नीचे नहीं गिरता है, जिस प्रकार सब भूतोंकी आधार पृथ्वी टिकी हुई है, और जिस प्रकार यह उस पर आश्रित दीखता हुआ जंगम प्राणिसमूह स्थित है । और जिस प्रकार ये ऊर्ध्वस्वाप वृक्ष खड़े हुए हैं अर्थात् खड़े २ ही सोनेका अनुभव करते हैं लेटकर सोनेका अनुभव नहीं करते इस प्रकार खड़े हुए हैं । हे रोगिन् ! तैसे यह रुधिरका बहनारूप रोग टिका रहे बहे नहीं अर्थात् तेरा रुधिरका बहना बन्द होजाय ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥ २ ॥

शतम् । या । भेषजानि । ते । सहस्रम् । सम्ऽगतानि । च ।
श्रेष्ठम् । आस्रावऽभेषजम् । वसिष्ठम् । रोगऽनाशनम् ॥ २ ॥

हे व्याधित ते तव या यानि शतम् शतसंख्याकानि भेषजानि

रोगशमनहेतुभूतान्यौषधानि सन्ति तथा संगतानि संप्राप्तानि सहस्रम् सहस्रसंख्याकानि च औषधानि सन्ति तेषां मध्ये श्रेष्ठम् प्रशस्ततमम् आस्रावभेषजम् रक्तस्रावस्य निवर्तकम् एतत् क्रियमाणं कर्म अत एव वसिष्ठम् वासयितृतमं रोगनाशनम् । ❀ रोगो नश्यत्यनेनेति करणे ल्युट् ❀ ॥

हे रोगिन् ! रोगकी शांति करने वाली जो तेरी सैंकड़ों औषधियें हैं तथा तुझे जो हजारों औषधियें प्राप्त हैं, उनमें यह रक्तस्रावको हटाने वाला वर्तमान कर्म सर्वश्रेष्ठ रोगनाशक है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता
वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥

रुद्रस्य । मूत्रम् । असि । अमृतस्य । नाभिः ।
विऽसानका । नाम । वै । असि । पितृणाम् । मूलात् । उत्थिता ।
वातीकृतऽनाशनी ॥ ३ ॥

रुद्रस्य । रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति रुद्रः जगत्संहर्ता ईश्वरः । हे गोश्रृंगोदक तस्य संहर्तुरीश्वरस्य मूत्रम् तदीयाल्लिंगाद्ध विनिर्गतं जलम् असि । अतो रोगं संहरेत्यर्थः । तथा अमृतस्य अमरणस्य चिरकालजीवनस्य नाभिः बन्धकं स्थापकम् असि । ❀ नहो भश्च [उ० ४. १२५] इति इञ् प्रत्ययः ❀ । रसशास्त्रोक्तप्रकारेण ईश्वरवीर्यस्य रसस्य आसेवनेन हि सिद्धा अजरामरत्वं लभन्त इति तदभिप्रायेणोक्तं रुद्रस्य मूत्रम् असीति । हे गोश्रृंग त्वं विषाणका [नाम वै] विशेषेण रोगनिवर्तनस्य सं-

भक्त्री एतत्संज्ञा खलु असि भवसि । पुनः सा विशेष्यते । पितृणाम् पितृदेवतानां मूलात् उपादानकारणाद् उत्थिता उत्पन्ना वाती आस्रावस्य रोगस्य शोषयित्री कृतनाशनी । कृतं रोगस्य निदानभूतं दुष्कर्म । तस्य नाशयित्री । भवेत्यर्थः ॥

हे भृङ्गोदक ! सबको अन्तिम समयमें रुलाने वाले जगत्के संहारकारक रुद्रदेवका तू मूत्र है अतः तू रोगका संहार कर । तथा चिरकालजीवनरूप अमृतका बाँधने वाला है ।(सिद्ध पुरुष रसशास्त्रमें कही हुई रीतिसे ईश्वरका वीर्य सेवन करनेसे अजर और अमरभावको पाते हैं, इस अभिप्रायसे यहाँ जलको रुद्रका मूत्र कहा है) हे गोशृङ्ग ! तेरा नाम विषाण–विशेषरूपसे रोग निवर्तनके नामको भजने वाला है और पितरोंके मलसे उठे हुए आस्राव रोगके उपादान पापका नाश करने वाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु
गोषु मे मनः ॥ १ ॥

परः । अप । इहि । मनःऽपाप । किम् । अशस्तानि । शंससि ।
परा । इहि । न । त्वा । कामये । वृक्षान् । वनानि । सम् । चर ।
गृहेषु । गोषु । मे । मनः ॥ १ ॥

हे पाप पापासक्त हे मनः स्वप्ननिमित्तभूत परः परस्ताद् अस्मत्तो दूरदेशे अपेहि अपगच्छ । दुःस्वप्नान् न दर्शयेत्यर्थः । तददर्शनेन किं कारणम् । अशस्तानि अशोभनानि शंसति प्रकाशयसि । अतो हेतोः परेहि परागच्छ । त्वा त्वाम् अहं न कामये

अभिलष्यामि । ✿ कमेर्णिङ् ✿ । परागत्य च [वृक्षवनानि] वृक्षभूयिष्ठानि वनानि प्रविश्य तत्रैव सं चर वर्तस्व । मास्मान् । मा बाधिष्ठा इत्यर्थः । एवं दुःस्वप्ननिमित्तस्य पापस्य मनसोपगमनं प्रार्थितम् । शोभनस्य मनसोवस्थानम् आशास्ते । मे मदीयं शोभनं मनः गृहेषु स्त्रीपुत्रादिषु गृहावस्थितेषु अनुकूलजनेषु गोषु च । अवतिष्ठताम् इत्यर्थः । ✿ गोष्विति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तस्य "न गोश्वन्त्साववर्ण०" इति प्रतिषेधः ✿ ॥

हे पापासक्त मन ! (तू स्वप्नका निमित्तरूप है तू) हमसे दूर के स्थानमें जा अर्थात् हमको दुःस्वप्न न दिखा, क्योंकि—तू अशोभन बातोंको प्रकाशित करता है, इस कारण तू दूर जा मैं तुझको नहीं चाहता और जाकर जिसमें बहुतसे वृक्ष हैं ऐसे वनमें घुस जा हमको पीड़ा मत दे (इस प्रकार दुःस्वप्नके निमित्त पापयुक्त मनका अन्यत्र जानेकी प्रार्थना की अब मन शोभन होकर रहे यह आशीर्वाद माँगते हैं, कि—) मेरा मन घरमें स्थित स्त्री पुत्र आदि अनुकूल जनोंमें और गौओंमें शोभनभावसे रहे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒व॒शसा॑ नि॒ःशसा॒ यत् प॑रा॒शसो॑पारि॒म जा॒ग्र॑तो॒ यत्
स्व॒पन्त॑ः ।
अ॒ग्निर्विश्वा॒न्यप॑ दुष्कृ॒तान्यजु॑ष्टान्या॒रे अ॒स्मद् द॑धातु २

अ॒व॒ऽशसा॑ । नि॒ःऽशसा॑ । यत् । प॒रा॒ऽशसा॑ । उ॒प॒ऽआ॒रि॒म ।
जाग्र॑तः । यत् । स्व॒पन्त॑ः ।
अ॒ग्निः । विश्वा॑नि । अप॑ । दु॒ःऽकृ॒तानि॑ । अजु॑ष्टानि । आ॒रे ।
अ॒स्मत् । द॒धा॒तु ॥ २ ॥

[अवशसा]। ❀ अवाद्युपपदात् शसु हिंसायाम् इत्यस्मात् क्विप् ❀। अवशसा अवशसनेन अवस्तात् हिंसनेन निःशसा निःशेषेण नितरां वा हिंसनेन पराशसा पराशसनेन पराङ्मुखहिंसनेन च जाग्रतः जाग्रदवस्थापन्ना वयं यत् येन दुःस्वप्नेन उपारिम उपार्ताः पीडिता भवेम। ❀ अर्तेश्छान्दसो लिट्। जागृ निद्राक्षये इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः। "जक्षित्यादयः षट्" इति अभ्यस्तसंज्ञाविधानाद् "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्प्रतिषेधः❀। तथा स्वपन्तः निद्रावस्थां प्राप्ता वयं यत् येन दुःस्वप्नदर्शनेन हेतुना अवशसनादिभिः पीडिताः तानि विश्वानि सर्वाणि अजुष्टानि अशोभनानि दुष्कृतानि दुःस्वप्ननिमित्तानि पापानि अग्निर्देवः अस्मत् अस्मत्तः आरे दूरे अप दधातु अपनिदधातु अपकृष्य स्थापयतु ॥

पराङ्मुख हिंसा, पूर्णहिंसा और अवहिंसासे जाग्रत् हो जिस स्वप्नके कारण हम पीड़ित होते हैं और सोते २ जिन काटने आदि दुःस्वप्नोंसे पीड़ित होते हैं, उन अशोभन दुःस्वप्नके निमित्त पापोंको अग्नि देव हमसे निकाल कर दूर पर स्थापित करें ॥२॥

षष्ठी ॥

यदि॑न्द्र ब्रह्मण॒स्पते॒पि॒ मृषा॒ चरा॑मसि ।
प्रचे॑ता न आङ्गि॒र॒सो दु॑रि॒तात् पा॒त्वंह॑सः ॥ ३ ॥

यत् । इ॒न्द्र॒ । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । अपि॑ । मृषा॑ । चरा॑मसि ।
प्रऽचे॑ताः । न॒ः । आ॒ङ्गि॒र॒सः । दु॒ःऽइ॒तात् । पा॒तु॒ । अंह॑सः ॥३॥

हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्याधिपते हे इन्द्र यत् येन दुःस्वप्ननिमित्तेन पापेन अपि मृषा चरामसि। ❀ अपिशब्दः कस्यचित्पदस्यार्थे गर्हायां वा वर्तते। "अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमु-

च्चयेषु" इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा ❀ । अपि बहुलं गर्हितं वा स्वप्ने मिथ्या चरामः । ❀"इदन्तो मसिः" ❀ । तस्माद् दुरिताद् दुःखप्रापकाद् अंहसः पापाद् आङ्गिरसः अङ्गिरसां मन्त्राणां संबन्धी प्रचेताः प्रकृष्टज्ञानोपेतः एतत्संज्ञो वरुणः नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे मंत्रके अधिपते ! हे ब्रह्मणस्पते ! हे इन्द्र ! जिस दुःस्वप्नके कारण पापवश हम कुत्सित रीतिसे स्वप्नमें व्यर्थ ही चकराते रहते हैं, उस दुःखप्रापक पापसे आंगिरस मन्त्रोंसे संबंध रखने वाले श्रेष्ठ ज्ञानवान् वरुण हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (२१८) ॥

"यो न जीवः" इति तृचेन दुःस्वप्नजनितदोषनिवृत्तिकामः "परोपेहि" [४५] इति तृचोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

"विद्म ते स्वप्न" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां घोरदुःस्वप्नदर्शने मुखविमार्जनम् मैश्रधान्यपुरोडाशस्य होमम् शत्रुक्षेत्रे प्रक्षेपणम् पार्श्वयोः पर्यावर्तनम् अन्नभक्षणस्वप्नदर्शने अन्ननिरीक्षणं च कुर्यात् । "विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषाम् अप्ययः" इति हि सूत्रम् [कौ० ५. १०] ॥

"अग्निः प्रातःसवने" इति तिसृभिर्ऋग्भिर्यथाक्रमं प्रातरादित्रिषु सवनेषु सवनसमाप्तिहोमान् जुहुयात् । उक्तं वैताने । "अग्निः प्रातःसवने [६. ४७] श्येनोसि [६. ४८] यथा सोमः प्रातःसवने [९. १. ११] इति यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान्" इति [वै० ३. ११] ॥

"यो न जीवः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे दुःस्वप्नसे उत्पन्न होने वाले दोषोंकी निवृत्तिको चाहने वाला पुरुष "परोपेहि" इस पैंतालीसवें सूक्तमें कहे हुए कर्मोंको करे । सूत्रका उदाहरण तहाँ ही दिया है ।

"विद्म ते स्वप्न" इन दो ऋचाओंसे घोर दुःस्वप्नके दीखने पर मुखका मार्जन, (मिश्रधान्यके पुरोडाशका होम, शत्रुक्षेत्रमें फेंकना, पसलियोंका हिलाना और अन्नभक्षणका स्वप्न देखा हो तो अन्नका निरीक्षण भी करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषाम् अप्ययः" (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

"अग्नि प्रातः सवने" इन तीन ऋचाओंसे क्रमानुसार प्रातः आदि तीनों सवनोंमें समाप्तिके होमोंकी आहुति देय । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि–"अग्निः प्रातःसवने (६ । ४७) श्येनोसि (६ । ४८) यथा सोमः प्रातःसवने (९ । १ । ११) इति यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान्" (वैतानसूत्र ३ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यो न जीवोसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पिताररुर्नामासि ॥ १ ॥

यः । न । जीवः । असि । न । मृतः । देवानाम् । अमृतऽगर्भः ।
असि । स्वप्न ।

वरुणानी । ते । माता । यमः । पिता । अररुः । नाम । असि १

हे स्वप्न यस्त्वं जीवः प्राणधारको नासि न भवसि । किं तर्हि मृतः नेत्याह । मृतः त्यक्तप्राणोपि न भवसि । मिथ्यापरिकल्पितस्वभावत्वात् स्वप्नस्य जीवनमरणयोः प्राणिधर्मयोरसंभव इत्यर्थः । किंरूपस्तर्हि स्वप्न इति तत्राह । देवानाम् अग्न्यादीनाम् इन्द्रियाधिष्ठातॄणाम् [अमृतगर्भः] अमृतमयगर्भस्त्वम् असि । स्वप्नस्य जाग्रदनुभवजनितवासनामयत्वात् वासनायाश्च स्थायित्वाद् इति

भावः ॥ देवगर्भत्वम् एव प्रतिपादयति । हे स्वप्न ते तव वरुणानी वरुणस्य पत्नी माता । ❀ "इन्द्रवरुण०" इति ङीषानुकौ ❀ । [यमः] यच्छति नियच्छति प्राणिनो दुष्कृतिनो निगृह्णातीति यमो वरुणः । स पिता जनयिता उत्पादयिता । हे स्वप्न त्वम् अररुर्नाम [अररुः] आर्तिकरोऽसुरः । स एवासि भवसि । नामशब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिं द्योतयति । श्रूयते हि तैत्तिरीयके । "अररुर्वै नामासुर आसीत्" इति [तै० ब्रा० ३. २. ६. ४] ॥

हे स्वप्न ! तू जीव अर्थात् प्राणधारक नहीं होता है और मृत अर्थात् त्यक्तप्राण भी नहीं होता है । तात्पर्य यह है, कि–मिथ्या परिकल्पित स्वभाव होनेके कारण प्राणिधर्म जीवन मरण नहीं होसकते (फिर स्वप्नका स्वरूप क्या है इसको स्पष्ट करते हैं, कि–) इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री अग्नि आदि देवताओंका तू अमृतमयगर्भ है) तात्पर्य यह है, कि–स्वप्न जाग्रत्के अनुभवसे हुई वासनाओंसे संपन्न होता है और वासनायें स्थायी होती हैं । अब स्वप्नकी देवगर्भताका प्रतिपादन करते हैं, कि–हे स्वप्न ! वरुण की पत्नी तेरी माता है और प्राणियोंको यम (वश) में रखने वाले वरुण तेरे पिता हैं–उत्पादक हैं । हे स्वप्न ! तेरा नाम अररु (आर्ति देने वाला असुर) है तू वही है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑ देवजामी॒नां॑ पु॒त्रो॑ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ।
अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ।
तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न दु॒ष्वप्न्या॑त् पा॑हि २

वि॒द्म । ते॒ । स्व॒प्न॒ । ज॒नित्र॑म् । दे॒व॒ऽजा॒मी॒नाम् । पु॒त्रः । अ॒सि॒ । य॒मस्य॑ । कर॑णः ।

अ॑न्तकः । अ॒सि॒ । मृ॒त्युः । अ॒सि॒ ।

तम् । त्वा॒ । स्व॒प्न॒ । तथा॑ । सम् । वि॒द्म॒ । सः । नः॒ । स्व॒प्न॒ ।

दु॒ःऽस्वप्न्या॑त् । पा॒हि॒ ॥ २ ॥

हे [स्वप्न] स्वप्नाभिमानिन् देव ते तव जनित्रम् जन्म विद्म जानीमः । ❀ जनेः औणादिक इत्रप्रत्ययः ❀ । उक्त एवार्थो विविच्यते । देवजामीनाम् देवस्त्रीणां वरुणानीप्रभृतीनां पुत्रः तनयः असि । ताभिरुत्पाद्यमानत्वात् । देवस्त्रियो हि मायारूपाः पुरुषस्य शुभाशुभात्मकं भावि फलं सूचयितुं स्वप्नम् उत्पादयन्तीति प्रसिद्धिः । स्वप्नस्य शुभाशुभफलसूचकत्वं श्रुतिर्दर्शयति । "यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात्" इति । "अथ स्वप्नाः । पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति" [ऐ० आ० ३. २. ४] इत्यादि च । अतो यमस्य करणः । यमशब्दः प्राणापहरणलक्षणं तद्व्यापारं लक्षयति । तस्य कर्ता भवसि । अत एव अन्तकः अन्तकरः जीवनावसानस्य कर्ता असि भवसि । मृत्युरसि प्राणत्यागस्य कारयिता भवसि । हे स्वप्न तं तादृशं त्वा त्वां तथा प्रागुक्तप्रकारेण सं विद्म सम्यग् जानीमः । हे स्वप्न स त्वं नः अस्मान् दुःस्वप्न्यात् दुःस्वप्नजनिताद् भयात् पाहि रक्ष ॥

हे स्वप्नके अभिमानी देव ! हम तेरी उत्पत्तिको जानते हैं, तू देवताओंकी स्त्री वरुणानी आदिका पुत्र है (क्योंकि–उनके द्वारा तू उत्पन्न होता है । यह प्रसिद्ध है, कि–मायारूप देवांगनाएँ पुरुषके आगामी शुभ और अशुभ फलको सूचित करनेके लिये स्वप्नको उत्पन्न करती हैं । स्वप्नके शुभ और अशुभ फल को सूचित करने वाली श्रुति भी है, कि—"यदा कर्मसु काम्येषु

स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात् ॥–जब काम्य कर्मोंमें स्वप्नमें स्त्रीको देखे तो समझे, कि–समृद्धि होगी" "अथ स्वप्नाः । पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति ॥—अब स्वप्नोंका वर्णन करते हैं, कि–जिस स्वप्नमें काले दाँत वाले काले पुरुषको देखता है वह (स्वप्न) देखने वालेके संहारको सूचित करता है" (ऐतरेय आरण्यक ३ । २ । ४) अतएव तू) यमका करण है अर्थात् प्राणका अपहरण करनारूप यमके व्यापारको करने वाला है, अतः जीवनका अवसान कराने वाला अन्तक होता है और प्राणत्याग कराने वाला मृत्यु होता है । हे स्वप्न ! ऐसे तुझको हम भली प्रकार जानते हैं हे स्वप्न ! तू दुःस्वप्न देखनेसे होने वाले भयसे हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं य॒थर्णं॑ सं॒नय॑न्ति ।
ए॒वा दु॒ष्वप्न्यं॒ सर्वं॑ द्वि॒षते सं न॑यामसि ॥ ३ ॥

यथा॑ । क॒लाम् । यथा॑ । श॒फम् । यथा॑ । ऋ॒णम् । स॒म्ऽनय॑न्ति ।
ए॒व । दुः॒ऽस्वप्न्य॑म् । सर्व॑म् । द्वि॒ष॒ते । सम् । न॒या॒म॒सि॒ ॥ ३ ॥

गोरवयवैकदेशः कला । शफः खुरः । दोषदूषितं कलादिकम् अङ्गं यथा छेदनादिना अपगमयन्ति । यथा वा ऋणम् अधमर्णाः पुरुषाः संनयन्ति संप्रदानेन गमयन्ति । एव एवं सर्वं दुष्वप्न्यम् दुःस्वप्नजनितं भयं द्विषते द्वेष्ट्रे जनाय सं नयामसि सम्यक् प्रापयामः

जैसे गौके कला खुर आदि दोषदूषित अगोंको छेदन आदिक से दूर कर देते हैं और जैसे कर्जदार पुरुष ऋणको देकर निबटा देते हैं, इसी प्रकार दुःस्वप्नसे होने वाले सारे भयोंको हम अपने शत्रुओं पर पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अ॒ग्निः प्रा॑तःसव॒ने पा॑त्व॒स्मान् वै॑श्वान॒रो वि॑श्व॒कृद्
वि॒श्वशं॑भूः ।
स नः॑ पाव॒को द्रवि॑णे द॒धात्वायु॑ष्मन्तः स॒हभ॑क्षाः स्याम

अ॒ग्निः । प्रा॒त॒ःऽस॒व॒ने । पा॒तु॒ । अ॒स्मान् । वै॒श्वा॒न॒रः । वि॒श्व॒ऽकृत् ।
वि॒श्वऽशं॑भूः ।

सः । न॒ः । पा॒व॒कः । द्रवि॑णे । द॒धा॒तु॒ । आयु॑ष्मन्तः । स॒हऽभ॑क्षाः । स्या॒म॒

अग्निः । सवनत्रयात्मको हि सोमयागः । तानि च सवनानि गायत्रं त्रैष्टुभं जागतम् इति क्रमेण नियतच्छन्दस्कानि । "अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वा" [ऋ० १०. १३०. ४] इति श्रुतेः अग्निर्गायत्र्या अधिदेवतेति तन्निर्वर्त्यस्य प्रातःसवनाख्यस्य कर्मणः स एवाधिदेवता । [प्रातःसवने] प्रातःसवनाख्ये कर्मणि अस्मान् ऋत्विग्यजमानान् पातु संभवद्वैकल्यपरिहारेण सवनसंपूर्त्या रक्षतु । कीदृशः सोग्निः । वैश्वानरः विश्वनरात्मको विराड्रूपः सर्वप्राणिहितकरो वा । अत एव विश्वकृत् विश्वस्य कृत्स्नस्य जगतः कर्ता । विश्वशंभूः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन् जगति दुःखशमनेन सुखस्य भावयिता । स तादृग्गुणविशिष्टः पावकः शोधकोग्निः नः अस्मान् द्रविणे यागफलात्मके धने दधातु स्थापयतु । वयमपि तत्प्रसादाद् आयुष्मन्तः दीर्घायुषा युक्ताः सहभक्षाः समानसोमपानाः पुत्रपौत्रादिभिः सहभोजना वा स्याम भवेम ॥

अग्निदेव † प्रातःसवन नाम वाले कर्ममें हम ऋत्विज और यज-

---

† सोमयागमें तीन सवन होते हैं, वे छन्दोंके ऊपर नियत हैं उनके नाम गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत हैं "अग्नेर्गायत्र्यभवत्

मानोंकी होसकने वाली विकलताको दूर कर सवनकी पूर्ति कर रक्षा करें। सब प्राणियोंका हित करने वाले वैश्वानर सम्पूर्ण जगत्के कर्ता विश्वकृत्, सम्पूर्ण जगत्के दुःखको शान्त कर सुख देने वाले विश्वशंभू शोधक यह अग्निदेव हमको यागफलरूप धनमें स्थापित करें। हम भी उनके प्रसादसे आयुष्मान् दीर्घायु और पुत्र पौत्र आदिके साथ भोजन करने वाले बनें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने
न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम

विश्वे । देवाः । मरुतः । इन्द्रः । अस्मान् । अस्मिन् । द्वितीये ।
सवने । न । जह्युः ।
आयुष्मन्तः । प्रियम् । एषाम् । वदन्तः । वयम् । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम ॥ २ ॥

विश्वे सर्वे देवाः दानादिगुणयुक्ता मरुतः एतत्संज्ञका एकोनपञ्चाशत्संख्याकाः सप्तगणात्मका देवाः इन्द्रश्च तेषाम् अधिपतिः । एते हि माध्यंदिनसवनस्य अधिपतयः । “इन्द्रो मरुत्वान्त्सोमस्य पिबतु । मरुत्स्तोत्रो मरुद्गणः” [निवि० २] इत्येवमादिनिविन्मन्त्रैः प्रतिपाद्याः । एते अस्मिन् परिसमाप्यमाने द्वितीये सवने अस्मान् ऋत्विग्यजमानान् न जह्युः न जहतु न परित्यजन्तु । अस्माभि-

---

सयुग्वा ॥” इस ऋग्वेदसंहिता १० । १३० । ४ की श्रुतिके अनुसार अग्नि गायत्रीके अधि देवता हैं अत एव गायत्री छन्दसे होने वाले प्रातःसवनकर्मके भी वही अधिदेवता हैं ।

दत्तं हविः स्वीकृत्य अस्मदीया इमे अभिमतफलप्रदानेन रक्षणीया इत्येवम् अनुग्रहबुद्धया युक्ता भवन्त्वित्यर्थः । एषां देवानाम् मरुताम् इन्द्रस्य च प्रियम् प्रीतिकरं स्तुतशस्त्रात्मकं वाक्यं वदन्तः उच्चारयन्तो वयं तत्प्रसादात् आयुष्मन्तः शतसंवत्सरपरिमितेन आयुषा युक्ताः सन्तः तेषां देवानां सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ स्याम भवेम ॥

दान आदि गुणोंसे युक्त मरुत् नाम वाले उडश्वास मरुद्गण और उनके अधिपति इन्द्रदेव यह इस समाप्त किये जाते हुए माध्यन्दिनसवन नामक दूसरे सवनमें हम ऋत्विज और यजमानोंका त्याग न करें तात्पर्य यह है, कि–हमारी दी हुई हविको स्वीकार करके यह देव हमको अपना समझ हम पर अनुग्रह-बुद्धि रक्खें और अभिमत फल देकर इनकी रक्षा करनी चाहिये यह हम पर अनुग्रह करें। हम इन मरुत्देवताओंकी और इन्द्रदेवको प्रसन्न करने वाले स्तुत और शस्त्र नामक वाक्यको कहते हुए उनके प्रसादसे सौ वर्ष तककी आयुसे युक्त हो देवताओंकी अनुग्रहबुद्धिको पाते रहें–देवता हमैं सौ वर्षकी आयु दें सौ वर्ष तक हम पर अनुग्रह करते रहें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

इ॒दं तृ॒तीयं॒ सव॑नं क॒वी॒नामृ॒तेन॒ ये च॑म॒समैर॑यन्त ।
ते सौ॑धन्व॒नाः स्व॑रानशा॒नाः स्वि॑ष्टिं नो अ॒भि वस्यो॑
नयन्तु ॥ ३ ॥

इ॒दम् । तृ॒तीय॑म् । सव॑नम् । क॒वी॒नाम् । ऋ॒तेन॑ । ये । च॒म॒सम् । ऐर॑यन्त ।
ते । सौ॒ध॒न्व॒नाः । स्वः॑ । आ॒न॒शा॒नाः । सु॒ऽइ॑ष्टिम् । नः॒ । अ॒भि ।
वस्यः॑ । न॒य॒न्तु ॥ ३ ॥

इदं परिसमाप्यमानं तृतीयम् त्रित्वसंख्यापूरकं सवनम् सोमाभिषवोपलक्षितं तृतीयसवनाख्यं कर्म कवीनाम् क्रान्तदर्शनानाम् ऋभूणां स्वभूतम् । त एव हि इन्द्रादिभिः सहितास्तस्य सवनस्य अधिदेवताः । तथा च तत्रत्यो मन्त्रवर्णः । “इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम्” [ऋ० ३. ६०. ५] “समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः” [ऋ० ४. ३५. ७] “ऋभवो देवाः सोमस्य मत्सन्” इति [निवि० ६] च । ये ऋभवो देवाः ऋतेन सत्येन अवितथेन आत्मीयेन शिल्पकर्मणा चमसम् सोमभक्षणपात्रम् एकम् ऐरयन्त प्रैरयन्त । चतुर्धा विभागेन चतुरश्चमसान् अकुर्वन् । “प्रैतु होतुश्चमसः प्र ब्रह्मणः प्रोद्गातुः प्र यजमानस्य” [आप० १२. २३. १३] इत्येवं निर्दिष्टा मध्यतःकारिणां ये प्रधानभूताश्चमसास्तदभिप्रायम् एतत् । ननु मैत्रावरुणादीनामपि षण्णां होत्रकाणां पृथक्पृथक् चमसाः सन्ति । अत एव “होतृचमसमुख्यान् दश चमसान् उन्नयति” इति सूत्रकारा आहुः [आप० १२. २१. १४] । नैवम् । मैत्रावरुणादीनां वषट्कर्तृत्वेन होतृकार्यापन्नत्वाद् “वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः” इति वषट्कारनिमित्तभक्षणसाधनचमसपात्रम् एकम् एवेति न चतुष्ट्वभङ्गः । तथा च दाशतय्याम् आर्भवसूक्तेषु देवत्वप्राप्तये चमसचतुष्टयनिर्माणं तत्रतत्र आम्नातम् । “एकं चमसं चतुरः कृणोतन” [ऋ०१. १६१. २] “व्यकृणोत चमसं चतुर्धा” [ऋ० ४. ३५. ३] “यदावाख्यच्चमसां चतुरः कृतान्” [ऋ० १, १६१. ४] इत्यादि । ते महानुभावाः सौधन्वनाः सुधन्वन आङ्गिरसस्य पुत्राः । तद् उक्तं यास्केन । सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः । ऋभुर्विभ्वा वाज इति । प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवन्निगमा भवन्ति न मध्यमेनेति [नि० ११. १६] । ते च मनुष्या एव सन्तो रथनिर्माणादिशिल्पकरणेन देवांस्तोषयित्वा तत्प्रसादेन देवत्वं प्राप्ताः । श्रूयते हि । “तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू” [ऋ० १. १११. १] इत्यादि । तद् इदम्

उच्यते स्वरानशाना इति । रथचमसादिनिर्माणेन स्वर्गवासोपलक्षितं देवत्वं प्राप्नुवन्तस्तृतीयसवनस्य अधिपतय ऋभवः वस्यः वसीयः । ❀ ईयस आदिवर्णलोपश्छान्दसः । वसीय इत्येव तैत्तिरीयका अधीयते ❀ । वसीयः वसुमत्तमं वासयितृतमं वा प्रशस्तं फलम् अभिलक्ष्य नः अस्मान् स्विष्टिम् शोभनाम् इष्टिं यजनं नयन्तु अविकलं प्रापयन्तु ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

यह परिसमाप्यमान तीनकी संख्याको पूर्ण करने वाला सोमाभिषवोपलक्षित तृतीयसवन नाम वाला कर्म क्रान्तदर्शी उन ऋभुओंका है, ‡ कि–जिन ऋभु देवताओंने सत्य शिल्पकर्मसे सोमभक्षणके पात्र चमसको प्रेरित किया था + वे महानुभाव

---

‡ इन्द्र आदि और वे ऋभु ही इस सवनके अधिदेवता हैं । इस विषयमें मन्त्रोंके प्रमाण भी हैं, कि–“इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम् ॥–हे इन्द्र ! आप यज्ञिय अन्नके भोक्ता ऋभुओंके साथ इस समुक्षित०” ऋग्वेदसंहिता ३ । ६० । ५ और “समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः–रत्नधारी ऋभुओंके साथ आप सोमपान करिये” ऋग्वेदसंहिता ६ । ३५ । ७ और “ऋभवो देवाः सोमस्य मत्सन् ॥–ऋभुदेवता सोमके विषयमें आनन्दित हुए” निश्वित् ६ ।

+ चमसको प्रेरित करनेका तात्पर्य यह है, कि उन्होंने चार विभाग करके चार चमस बनाये थे । आपस्तम्बश्रौतसूत्र १२ । २३ । १३ में कहा है, कि–“प्रैतु होतुश्चमसः प्र ब्रह्मणः प्रोद्गातुः प्र यजमानस्य ॥–होताका ब्रह्माका उद्गाताका और यजमानका चमस शीघ्रतासे आवे ।” यह मध्यतःकारियोंके चार प्रधान चमसोंको लक्ष्य करके कहा है । यहाँ यह शङ्का हो सकती है, कि–मैत्रावरुण आदि छः होत्रकोंके भी अलग अलग छः चमस

सुधन्वा आंगिरसके पुत्र हैं † वे रथ चमस आदिका निर्माण करनेसे स्वर्गमें बसना रूप देवत्वको प्राप्त होगए हैं ऐसे वे ऋभु

(खानेके पात्र) होने चाहियें, फिर चार चमस कैसे ? हमारी बातकी पुष्टि आपस्तम्बश्रौतसूत्र १२ । २१ । १४ से भी होती है, कि–"होतृचमसमुख्यान् दश चमसान् उन्नयति ॥–जिनमें होताका चमस मुख्य है ऐसे दश चमसोंका उन्नयन करे" । इस शङ्काका उत्तर यह है, कि मैत्रावरुण आदि वषट्कर्ता होनेसे होताके ही अन्तर्गत आ जाते हैं और "वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः–वषट्कर्ताका प्रथम भक्ष होता है" इस प्रकार वषट्कारनिमित्तभक्षणसाधन चमसपात्र एक ही होता है अत एव चारका भङ्ग नहीं होता । अत एव ऋग्वेदसंहिताके आर्भवसूक्तोंमें देवत्वकी प्राप्तिके लिये चार चमसोंके निर्माणकी बात जहाँ तहाँ कही है, कि–"एकं चमसं चतुरः कृणोतन–एक चमसके स्थानमें चार बनाओ" ऋग्वेदसंहिता ६ । १६१ । २ "व्यकृणोत चमसं चतुर्धा–चमसको चार तरहसे बनाओ" ऋग्वेदसंहिता ४ । ३५ । ३ "यदावाख्य-चमसां चतुरः कृतान् ॥–चार बनाये हुए चमसोंको निवेदन किया" ऋग्वेदसंहिता ६ । १६१ । ४ ॥

‡ इसका वर्णन यास्क मुनिने किया है, कि–"अंगिरस सुधन्वाके ऋभु विभु और वाज नामक तीन पुत्र हुए । इनमें ऋभु और वाजसे संयुक्त बहुतसे मंत्र हैं मध्यम विभुसे संयुक्त मंत्रोंके विषयमें यह बात नहीं है ।" (निघंटु ११ । १६) वे मनुष्य होने पर भी रथ चमस आदिके निर्माणरूप शिल्पकार्यसे देवताओंको प्रसन्न कर उनके प्रसादसे देवत्वको प्राप्त होगए थे । इस विषयमें ऋग्वेदसंहिता १ । १११ । १ का प्रमाण भी है, कि–"तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू०" ॥

श्रेष्ठ फलको लक्ष्यमें रख कर हमारी इष्टिको अविकलरीतिसे पूर्णताको प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (२२०) ॥

“श्येनोसि” इति तृचेन उपनीतस्य माणवकस्य आचार्यो दण्डम् अभिमन्त्र्य दद्यात् । सोपि माणवकः एतं तृचं जपन् प्रतिगृह्णीयात् । “उपनयनम्” [कौ० ७. ६] प्रक्रम्य सूत्रितम् । “पालाशदण्डं प्रयच्छति” इति [कौ० ७. ८] “अवक्रोविधुरो भूयासम् इति प्रतिगृह्णाति श्येनोसीति च” इति [कौ० ७. ७]॥

तथा अभयकामः अनेन तृचेन सप्तर्षीन् यजते उपतिष्ठते वा । “श्येनोसीति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः” इति हि सूत्रम् [कौ० ७. १०] ॥

“श्येनोसि” “वृषासि” “ऋभुरसि” इति तिस्र ऋचः सवनत्रये क्रियमाणेषु बहिष्पवमानमाध्यंदिनार्भवपवमानेषु स्तुतेषु यजमानं ब्रह्मा यथाक्रमं वाचयेत् । उक्तं वैताने । “स्तुते बहिष्पवमाने वाचयति श्येनोसीति वृषासीति माध्यंदिने ऋभुरसीत्यार्भवे” इति [वै० ३. ७]

तथा “श्येनोसि इत्याद्याभिर्ऋग्भिः यथाक्रमं सवनसमाप्तिहोमान् जुहुयात् । उक्तं वैताने । “श्येनोसि [६. ४८] यथा सोमः प्रातःसवने [९. १. ११] इति यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान्” इति [वै० ३. ११] ॥

“नहि ते अग्ने” इति तृचेन मृताचार्यदहनाग्नौ श्रेयस्कामो ब्रह्मचारी सूत्रोक्तप्रकारेण पुरोडाशं जुहुयात् । सूत्रितं हि । “नहि ते अग्ने तन्वः [६. ४९] इति ब्रह्मचार्याचार्यस्यादहन उपसमाधाय त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति” इति [कौ० ५. १०] ॥

“श्येनोसि” इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे आचार्य उपनीत बालकको दण्डको अभिमंत्रित करके देय । और वह बालक भी

इस तीन ऋचा वाले सूक्तको जपता हुआ दण्डको ग्रहण करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"उपनयनम्" (कौशिकसूत्र ७ । ६) प्रक्रम्य सूत्रितम् । "पालाशदण्डं प्रयच्छति" (कौशिकसूत्र ७ । ८) अवक्रो विधुरो भूयासम् इति प्रतिगृह्णाति श्येनोसीति च" (कौशिकसूत्र ७ । ७) ॥

तथा अभयको चाहने वाला पुरुष इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे सप्त ऋषियोंके निमित्त यजन वा उपस्थान करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"श्येनोसीति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

"श्येनोसि" "वृषासि" "ऋभुरसि" इन तीन ऋचाओंको तीनों सवनोंमें किये जाने वाले बहिष्पवमान माध्यंदिन और आर्भवपवमानरूप स्तुतोंमें यजमानसे ब्रह्मा क्रमानुसार वचवावे। इस बातको वैतानसूत्रमें कहा भी है, कि-"स्तुते बहिष्पवमाने वाचयति श्येनोसीति वृषासीति माध्यन्दिने ऋभुरसीत्यार्भवे" (वैतानसूत्र ३ । ७) ॥

तथा "श्येनोसि" आदि तीन ऋचाओंसे यथाक्रम सवनसमाप्तिहोमोंमें आहुति देय। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"श्येनोसि (६।४८) यथा सोमः प्रातःसवने (६।१।११) इति॥ यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान् (वैतानसूत्र ३। ११)॥

कल्याण चाहने वाला ब्रह्मचारी मरे हुए आचार्यको भस्म करने वाली अग्निमें 'न हि ते अग्ने' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे सूत्रोक्तरीतिसे पुरोडाशको होमे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'न हि ते अग्ने तन्वः (६ । ४६) इति ब्रह्मचार्याचार्यस्यादहन उपसमाधाय त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति' (कौशिकसूत्र ५ १०॥)

तत्र प्रथमा ॥

श्ये॒नो॑ऽसि गाय॒त्रच्छ॑न्दा॒ अनु॒ त्वा रभे ।
स्वस्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञ॒स्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥१॥

श्ये॒नः । अ॒सि॒ । गा॒य॒त्रऽछ॑न्दाः । अनु॑ । त्वा॒ । आ । र॒भे॒ ।
स्व॒स्ति । मा॒ । सम् । व॒ह॒ । अ॒स्य । य॒ज्ञस्य । उ॒त्ऽऋ॑चि । स्वाहा॑

हे प्रातःसवनात्मक यज्ञ त्वं श्येनः शंसनीयगतिः पक्षिविशेषः तद्वत् शीघ्रगमनः असि । कीदृशस्त्वम् । गायत्रच्छन्दाः । गायत्र्येव गायत्रम् । ❀ "छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसके स्वार्थ उपसंख्यानम्" इति स्वार्थिकः अण् प्रत्ययः ❀ । स्तुतशस्त्रादिषु गायत्रम् एव छन्दो यस्मिन् सवने स तथोक्तः । अल्पाक्षराया अपि गायत्र्याः प्रथमं यज्ञसंबन्धः सोमाहरणनिमित्तकः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ब्रह्मवादिनो वदन्ति । कस्मात् सत्याद् गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयायेति । यदेवादः सोमम् आहरत् तस्माद् यज्ञमुखं पर्यैत्" इति [तै० सं० ६. १. ६. ४] । यद्वा श्येनाकारेण चीयमानोग्निः श्येनः । श्रूयते हि । "श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकामः । श्येनो वै वयसां पतिष्ठः" इति [तै० सं० ५. ४. ११. १] । स चाग्निः गायत्र्यच्छन्दः । गायत्र्यास्तस्य च प्रजापतिमुखात् सहोत्पत्तेः । ईदृशं त्वा त्वाम् अन्वा रभे दण्डवद् आधारत्वेन परिगृह्णामि । अतः अस्य अनुष्ठीयमानस्य यज्ञस्य उदृचि । उत्तमा अवसानवर्तिनी ऋक् उदृक् । तद्वाचिना अनेन शब्देन यागसमाप्तिर्लक्ष्यते । समाप्तौ स्वस्ति क्षेमेण मा मां सं वह सम्यक् प्रापय । स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु । यद्वा स्वैव वाक् एवम् आहेति स्वाहाशब्दस्यार्थः । ❀ तथा च यास्कः । स्वा वाग आहेति वा स्वं प्राहेति वेति [नि० ८. २०] । तन्मूल-

भूता श्रुतिरेवम् आम्नायते । "स्वैव ते वाग् इत्यब्रवीत् । सोजुहोत् स्वाहेति" इति [तै० ब्रा० २. १. २. ३] ❀ ॥

हे प्रातःसवनात्मक यज्ञ ! तू प्रशंसनीय गति वाले बाज पक्षी की समान शीघ्र चलने वाला है, तेरे स्तुत और शस्त्र नामक स्तोत्रोंमें गायत्री छन्दका ही अधिक प्रयोग होता है अत एव तू गायत्रच्छन्दा है ‡ । ऐसे तुझको मैं दण्डकी समान आधार-रूप में ग्रहण करता हूँ अत एव इस अनुष्ठीयमान यज्ञकी अंतिम उत्तम ऋचामें मुझको भली प्रकार पहुँचा, यह आहुति स्वाहुत हो ।

अथवा—हे प्रातःसवनात्मक अग्ने ! तुम श्येन हो, बाजकी समान फैलाये जाते हो † और गायत्रीच्छन्दा हो (क्योंकि—गायत्रीकी और उसकी प्रजापतिके मुखसे साथ ही साथ उत्पत्ति हुई है । ऐसे तुमको मैं दण्डकी समान आधाररूपसे ग्रहण करता हूँ, वह अग्निदेव हमको इस अनुष्ठीयमान यज्ञकी उत्तम अन्तिम ऋचा

---

‡ अल्प अक्षर वाली गायत्रीका सोमाहरणके निमित्त यज्ञसे सम्बन्ध होता है । इस बातका तैत्तिरीयसंहितामें वर्णन है, कि "ब्रह्मवादिनो वदन्ति । कस्माद् सत्याद् गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयायेति । यदेवादः सोममाहरत् तस्याद् यज्ञमुखं पर्यैत् ॥—ब्रह्मवादी कहते हैं, कि-गायत्री और छन्दोंसे (अक्षरोंमें) छोटी होने पर भी किस सत्यके प्रभावसे यज्ञमुख को प्राप्त होती है—यज्ञके आरम्भमें ही पढ़ी जाती है—। (इसका उत्तर यह है, कि—) यह सोमका आहरण करती है अतः यज्ञमुखको प्राप्त होती है" (तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ६ । ४) ॥

† इस विषयमें श्रुतिका प्रमाण भी है, कि—"श्येनचितं सुन्वीत सुवर्गकामः । श्येनो वै वयसां पतिष्ठः ॥—स्वर्ग चाहनेवाला पुरुष श्येनचित् यागको करे । श्येन पक्षियोंमें शीघ्रतासे उड़ने वाला है" (तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । ११ । १) ॥

में पहुँचावें । वाणी अपने आप ही ऐसी ही हो कहती है ‡ ॥ १

द्वितीया ॥

ऋ॒भुर॑सि॒ जग॑च्छन्दा॒ अनु॒ त्वा र॑भे ।
स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥

ऋ॒भुः । अ॒सि॒ । जग॑त्छन्दाः । अनु॑ । त्वा॒ । आ । र॒भे॒ ।
स्व॒स्ति । मा॒ । सम् । व॒ह॒ । अ॒स्य । य॒ज्ञस्य॑ । उ॒त्ऽऋ॒चि॑ । स्वाहा॑२

हे तृतीयसवनात्मक यज्ञ जगच्छन्दाः । जगच्छब्दो जगतीपर्यायः । "जागतं तृतीयसवनम्" इति [तै० ब्रा० ३.८.१२.२] श्रुतेः । तृतीयसवनगतस्तुतशस्त्रादिषु जगतीछन्दस्का एव मन्त्राः प्रायेण भवन्ति । अतो जगच्छन्दस्त्वम् । ऋभुरसि । ऋभुर्नाम सौधन्वन आङ्गिरसः क्रियाविशेषेण लब्धदेवभाव इत्युक्तम् । तत्प्रीतिकरत्वात् तदात्मकोसीत्यर्थः । अनु त्वा रभे इत्यादि पूर्ववत्॥

हे तृतीय सवनात्मक यज्ञ ! तू जगच्छन्दा है, अर्थात् तुझमें जगती छन्द वाले मन्त्र ही अधिक आते हैं × । देव भावको प्राप्त हुए ऋभुको प्रसन्न करने वाला होनेसे तू ऋभु ही है, ऐसे तुझको मैं दण्डकी समान आधाररूपसे ग्रहण करता हूँ, वह

---

‡ इस विषयमें यास्क मुनिने कहा है, कि–'स्वा वाग् आहेति वा स्वं प्राहेति वेति ॥–स्वाहा शब्दका यह अर्थ है, कि–वाणी अपनेको कहती है वा अपनी वाणी कहती है ॥" (निघण्टु ८ । २०) ॥ इस विषयमें श्रुतिका प्रमाण भी है, कि–"स्वैव ते ते वाग् इत्यब्रवीत् । सोऽजुहोत् स्वाहेति" (तैत्तिरीयब्राह्मण २ । १ । २ । ३) ॥

× तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । ८ । १२ । २ में कहा है, कि–"जागृतं तृतीयसवनम् ॥–तृतीय सवनमें जगतीच्छन्द होता है"॥

हमको इस अनुष्ठीयमान यज्ञकी उत्तम अन्तिम ऋचा पर पहुँचावें, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

वृषा॑सि त्रि॒ष्टुप्छ॑न्दा॒ अनु॒ त्वा र॑भे ।
स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥

वृषा॑ । अ॒सि॒ । त्रि॒स्तुप्ऽछ॑न्दाः । अ॒नु॑ । त्वा॒ । आ । र॒भे॒ ।
स्व॒स्ति । मा॒ । सम् । व॒ह॒ । अ॒स्य । य॒ज्ञस्य॑ । उ॒त्ऽऋचि॑ । स्वाहा॑ ।

हे माध्यन्दिनसव त्वं वृषा सेचनसमर्थ इन्द्रः स एवासि भवसि तत्प्रीतिकरत्वात् । स खलु माध्यन्दिनसवनस्याधिपतिः । श्रूयते हि । “प्रातः सुतम् अपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते” [ऋ० ४. ३५. ७] इति । स त्वं त्रिष्टुप्छन्दाः त्रिष्टुप्छन्दस्कमन्त्रसाध्यस्तुतशस्त्रोपेतत्वात् । “त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्” इति हि ब्राह्मणम् [तै० ब्रा० ३. ८. १२. १] । अन्यद्व्याख्यातम् ॥

हे माध्यन्दिनसवन ! तू सेचन समर्थ इन्द्रको प्रसन्न करने वाला होनेसे इन्द्र है ‡ वह तू त्रिष्टुप्छन्दा है, क्योंकि–तेरे स्तुत और शस्त्र नामक स्तोत्रोंमें त्रिष्टुप् छन्द ही अधिक आते हैं † ।

---

‡ इन्द्रदेव माध्यन्दिन सवनके अधिपति हैं । श्रुतिमें भी इस का प्रमाण है, कि–“प्रातः सुतं अपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ॥—हे हरे घोड़ों वाले इन्द्र ! आप प्रातःकालके समय निचोड़े हुए सोमको पीजिये, यह केवल माध्यन्दिन सवन ही आपका है । [ऋग्वेदसंहिता ४ ।” ३५ । ७] ॥

† तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । ८ । १२ । १ में कहा है, कि-“त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् ॥–माध्यन्दिन सवनमें त्रिष्टुप् छन्दका प्रयोग किया गया है ।”

ऐसे तुझको मैं दण्डकी समान आधाररूपसे ग्रहण करता हूँ, वह हमको इस अनुष्ठीयमान यज्ञकी उत्तम अन्तिम ऋचा पर पहुँचावे, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥ १ ॥

नहि । ते । अग्ने । तन्वः । क्रूरम् । आनंश । मर्त्यः ।
कपिः । बभस्ति । तेजनम् । स्वम् । जरायु । गौःऽइव ॥ १ ॥

हे अग्ने ते तव तन्वः शरीरस्य ज्वालात्मकस्य क्रूरम् तैक्ष्ण्यं मर्त्यः मरणधर्मा पुरुषः नहि आनंश न खलु प्राप्तुं शक्नोति । ❀ अश्नोतेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् ❀ । अपि च कपिः कम् उदकं शरीरगतं रसं पिबतीति कपिः । यद्वा कपिवद् इतस्ततश्चङ्क्रमणशीलस्त्वदीयो ज्वालासमूहः तेजनम् अन्तर्निःसारं वेणुमिव स्थितं शरीरं बिभस्ति दीपयति भस्मीकरोति। ❀ भस भर्त्सनदीप्त्योः । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः ❀ । यद्वा । ❀ बभस्तिरत्तिकर्मा इति यास्कः [नि० ५. १२] ❀। भक्षयतीत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः स्वम् इत्यादि । गौरिव यथा प्रसूता गौः स्वम् स्वकीयं जरायु गर्भवेष्टनं प्रसवानन्तरं भूमौ पतितं भक्षयति तद्वत् पुरुषशरीरं भक्षयतीत्यर्थः ॥

हे अग्ने ! आपके ज्वालात्मक शरीरकी तीक्ष्णताको मनुष्य पा नहीं सकता पकड़ नहीं सकता । कपिकी समान चञ्चलपूर्वक घूमने वाला और शरीरके जलको पीने वाला आपका ज्वालासमूह, भीतरसे निःसार वेणुकी समान स्थित शरीरको इस प्रकार खाजाता है, जिस प्रकार प्रसूता गौ प्रसवके अनन्तर भूमि में पड़ी हुई अपनी जेलको खाजाती है ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

मे॒ष इ॑व॒ वै सं च॒ वि चो॒र्व॑च्यसे॒ यदु॑त्तर॒द्रावुप॑रश्च॒ खाद॑तः
शी॒र्ष्णा शिरोप्स॒साप्सो॑ अ॒र्दय॑न्न॒ंशून् बभस्ति॒ हरि॑ते-
भिरा॒सभि॑ः ॥ २ ॥

मे॒षःऽइ॑व । वै । सम् । च॒ । वि । च॒ । उ॒रु । अ॒च्य॒से॒ । यत् ।
उ॒त्त॒र॒ऽद्रौ॑ । उप॑रः । च॒ । खाद॑तः ।
शी॒र्ष्णा॑ । शिर॑ः । अप्स॑सा । अप्स॑ः । अ॒र्दय॑न् । अ॒ंशून् । ब॒भ॒स्ति॒ ।
हरि॑तेभिः । आ॒सऽभि॑ः ॥ २ ॥

हे अग्ने त्वं पुरुषशरीरं दाह्यं प्राप्य उरु बहुलं सम् उच्यसे । प्रथमं तावत् तत्तदवयवेन समवैषि संगच्छसे । ❀ उच समवाये इति धातुः ❀ । पश्चाद्व व्युच्यसे च कृत्स्नशरीरं विविधं व्याप्नोषि । दग्धम् अङ्गं विसृज्य अन्यत्र गच्छसि । तत्र दृष्टान्तः मेष इव वा इति । मेषो यथा भक्षणार्थं तृणभूयिष्ठं देशं प्राप्य भक्ष्येण तृणादिना प्रथमं संयुज्यते ततो भक्षणेन तत्रत्यं तृणजातं सर्वं व्याप्नोति तद्वद्व इत्यर्थः । यत् यदा उत्तरद्रौ उपर्यवस्थितकाष्ठयुक्ते दाह्यशरीरे अपरः । चकारात् पूर्वश्च । उभावग्नी खादतः भक्षयतः । यद्वा उत्तरद्रौ उत्कृष्टतरद्रुमे महावृक्षभूयिष्ठे वने संचरन् अपरः दावाग्निः शावाग्निश्च उभौ खादतः भक्षयतः । दाह्यं दहत इत्यर्थः । तदा शीर्ष्णा शिरसा ज्वालाग्रेण तत्रत्यस्य शरीरस्य वृक्षादेर्वा शिरः अर्दयन् हिंसन तथा अप्ससा । रूपनामैतत् । स्वकीयेन भास्वररूपेण कृत्स्नशरीरेण अप्सः दाह्यशरीरस्य यद्वा महीरुहादेः स्वरूपम् अर्दयन् हिंसन् अयम् अग्निः हरितेभिः हरितैर्बभ्रुवर्णैः आसभिः आस्यैः अंशून् सोमलतादिकान् बिभस्ति भक्षयति ॥

हे अग्ने ! तुम भस्म करने योग्य पुरुषशरीरको पाकर उसके अवयवसे मिलते हो, फिर सारे शरीरमें इस प्रकार व्याप्त हो जाते हो, कि-जैसे मेढ़ा भक्षण करनेके लिये बहुतसे तिनकों वाले देशमें जाकर पहिले तृण आदिसे संयुक्त होता है, तदनंतर तहाँके सम्पूर्ण तृणोंमें भक्षण करनेके रूपसे व्याप्त होजाता है । और श्रेष्ठ वृक्षवाले वनमें घूमने वाला दावाग्नि और शवको भस्म करने वाला शावाग्नि जिस समय भस्म करने लगते हैं, उस समय ज्वालाके अग्रभागरूप अपने शिरसे वृक्ष वा पुरुषके शरीर को पीड़ित करते हुए तथा अपने भास्वररूपसे वृक्षके स्वरूपको भस्म करते हुए अपने बभ्रुवर्ण वाले मुखोंसे सोमलता आदिको खा जाते हैं ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

सु॒प॒र्णा॑ वाच॑मक्र॒तोप॒ द्यव्या॑ख॒रे कृष्णा॑ इषि॒रा अ॑नर्तिषुः
नि यन्नि॒यन्त्युप॑रस्य॒ निष्कृ॑तिं पु॒रू रेतो॑ दधिरे सूर्य॒श्रित॑ः

सु॒ऽप॒र्णाः । वाच॑म् । अ॒क्र॒त॒ । उप । द्यवि॑ । आ॒ऽख॒रे । कृष्णाः॑ ।
इ॒षि॒राः । अ॒न॒र्ति॒षुः॒ ।

नि । यत् । नि॒ऽयन्ति॑ । उप॑रस्य । निःऽकृ॑तिम् । पु॒रु । रेतः॑ ।
द॒धि॒रे॒ । सू॒र्य॒ऽश्रि॑तः ॥ ३ ॥

हे अग्ने सुपर्णाः शोभनपतनाः श्येनवत् शीघ्रव्यापनशीलास्त्वदीया ज्वालाः वाचम् अक्रत दाहजन्यं ध्वनिविशेषम् अकृषत । ❀ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् ❀ । आखरे । आखरः आवासस्थानम् । ❀ "डरो वक्तव्यः" इति आङ्पूर्वात् खनेर्डरप्रत्ययः ❀ । आखरे आवासस्थाने कृष्णाः । लुप्तोप-

मम् एतत् । कृष्णमृगा इव दिवि आकाशे इषिराः गमनशीला दीप्तयः उपेत्य अनर्तिषुः नृत्यन्ति स्म । ❀ नृती गात्रविनामे ❀ । ताश्च ज्वाला बहलधूमोत्पादनेन उपरस्य मेघस्य । ❀ उपर उपलो मेघो भवतीति निरुक्तम् [नि० २. २१] ❀ । निष्कृतिम् निर्माणं नितरां यत् यस्माद् नियन्ति निर्गच्छन्ति तस्मात् हे अग्ने त्वदीया एव दीप्तयः सूर्यश्रितः आदित्यमण्डलं प्राप्ताः सत्यः पुरु बहुलं रेतः सर्वप्राण्युपादानभूतं वृष्ट्युदकं दधिरे जगदुत्पादनार्थं धारयन्ति ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आपकी बाजकी समान शीघ्रतासे चलने वाली ज्वालायें दाहसे उत्पन्न होने वालीं ध्वनिको करती हैं और जैसे अपने रहनेके स्थानमें काले मृग उछल कूद मचाते हैं इसी प्रकार आपकी गमनशील लपटें आकाशमें पहुँचकर नाचने लगती हैं। और वे ज्वालाएँ बहुतसे धूमको उत्पन्न करनेके कारण मेघोंका निर्माण करतीहुई चलती रहती हैं, इसकारण हे अग्ने ! आपकी दीप्तियें ही आदित्यमण्डलको पाकर, सब प्राणियोंके उपादानरूप बहुत से रेत (वृष्टिके जल) को जगत्को उत्पन्न करनेके लिये धारण किये रहती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (२२२) ॥

“हतं तर्दम्” इति तृचेन मूषकपतङ्गशलभटिड्डिभकीटहरिणशल्यकगोधादीनां सस्यभक्षकाणां निवृत्तये लोहमयं सीसं घर्षन् एतं तृचं जपन् मूषकादियुक्तं क्षेत्रम् अभिक्रामेत् ॥

तथा अनेन तृचेन शर्करा अभिमन्त्र्य मूषकादिस्थाने परिकिरेत् ॥

तथा मूषकादिमुखं केशेन बद्ध्वा अनेन तृचेन क्षेत्रमध्ये निखनेत् ॥

तथा सरूपवत्साया गोर्दुग्धे शृतं चरुम् अनेन तृचेन अश्विभ्यां जुहुयात् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । “हतं तर्दम् इत्ययःसीसं घर्षन् उर्वरां परिक्रामति तस्मिन्नवकिरति” इत्यादि [कौ० ७. २] ॥

"वायोः पूतः" इति तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगोऽनुसंधेयः ॥

तथा सर्वरोगभैषज्ये अनेन तृचेन आज्यहोमं पलाशादिशान्तवृक्षसमिदाधानं च कुर्यात् ॥

तथा सोमवमनपानादिनिमित्तव्याधिशमनार्थं सोमरसमिश्रिताः पलाशादिसमिध आदध्यात् ॥

सूत्रितं हि "अम्बयो यन्ति [१. ४] वायोः पूतः [६. ५१] इति च शान्ता उत्तरस्य ससोमाः" इति [कौ० ४. १] ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः अनेन तृचेन "पुनन्तु मा" [६. १९] इत्यत्रोक्तानि क्षीरौदनहवनादिकर्माणि कुर्यात् । "अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "पुनन्तु मा [६. १९] सस्रुषीः [६. २३] हिमवतः प्र स्रवन्ति [६. २४] वायोः पूतः पवित्रेण" [६. ५१] इत्यादि "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रम् [कौ० ५. ५] अत्र द्रष्टव्यम् ॥

तथा अस्य तृचस्य अपां सूक्तेषु पाठाद् आसावनादौ विनियोगः । "अवभृथाय व्रजन्त्यपां सूक्तैराप्लुत्य" इति [कौ० ८. ९] सूत्रितम् ॥

सोमातिपूतकर्तृकायां सौत्रामण्यां "वायोः पूतः" इति तृचेन दशापवित्रेण पाव्यमानां सुराम् अनुमन्त्रयेत । "अग्निचित् सोमातिपूतः सोमवामी सौत्रामण्याभिषिच्यते" इति प्रक्रम्य "या बभ्रवः [८. ७] इत्योषधिभिः सुरां संधीयमानां वायोः पूतः [६.५१] इति सोमातिपूतस्य पाव्यमानाम्" इति हि वैतानसूत्रम् [वै०५.३]

'हतं तर्दम्' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे चूहे पक्षी मच्छर टीढ़ी कीड़े हिरन सेही और गोह आदि धान्यका भक्षण करने वालों की निवृत्तिके लिये लोहे मिले सीसेको रेतता हुआ और इस सूक्त को जपता हुआ मूषिक आदिसे युक्त खेतमें घूमे ॥

तथा इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे शर्करा (रेते) को अभिमन्त्रित कर मूषिक आदिके स्थानमें बखेर देवे।

तथा मूषिक आदिके मुखको केशसे बाँधकर इस तृचसे क्षेत्रके बीचमें गाढ़ देय ॥

तथा सरूपवत्सा गौके दूधमें औटाये हुए चरुकी इस तीन ऋचा वाले सूक्त (तृच) से अश्विनीकुमारोंके लिये आहुति देय ॥

इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि–'हतं तर्दं इत्ययः सीसं घर्षन् उर्वरां परिक्रामति तस्मिन्नवकिरति' इत्यादि (कौशिकसूत्र ७। २) ॥

"वायोः पूतः" इस तृचका बृहद्गणमें पाठ है अत एव शान्त्युदक आदिमें इसका विनियोग होता है।

तथा सब रोगोंकी चिकित्सामें इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे घृतका होम तथा पलाश (ढाक) आदि शान्त वृक्षोंकी समिधाओंका रखना आदि कर्म करे।

तथा सोमका वमनरूप और पान करनेसे होने वाली व्याधि को शान्त करनेके लिये सोमरससे मिली हुई ढाककी समिधाओं को रक्खे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अम्बयो यन्ति (१। ४) वायोः पूतः (६। ५१) इति च शान्ता उत्तरस्य ससोमाः" (कौशिकसूत्र ४। १)

तथा धनको उठानेमें होने वाले विघ्नोंको शांत करना चाहने वाला इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे "पुनन्तु मा" इस छठे काण्ड के उन्नीसवें सूक्तमें कहे हुए क्षीरौदनहवन आदि कर्म करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—'अर्थं उत्थास्यन्' इति प्रक्रम्य "पुनन्तु मा (६। १६) सस्रुषीः (६। २३) हिमवतः प्रस्रवन्ति (६। २४) वायोः पूतः पवित्रेण" (६। ५१)

इत्यादि "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रम् (कौशिकसूत्र ५ । ५)॥

इस सूक्तका अपांसूक्तोंमें पाठ है अतः इसका आसावन आदिमें विनियोग होता है । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अव भृथाय अजन्त्यपां सूक्तैरासुत्य" (कौशिकसूत्र ८।६)॥

सोमातिपूतकर्तृका सौत्रामणिमें "वायोः पूतः" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे दशापवित्रके द्वारा पवित्र की जाती हुई सुराका अनुमन्त्रण करे इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"अग्निचित् सोमातिपूतः सोमवामी सौत्रामण्याभिषिच्यते" इति प्रकृत्य "या बभ्रवः (८ । ७) इत्योषधिभिः सुरां संधीयमानां वायोः पूतः (६ । ५१) इति सोमातिपूतस्य पाव्यमानाम्" (वैतानसूत्र ५ । ३)॥

तत्र प्रथमा ॥

ह॒तं त॒र्दं सं॑म॒ङ्कमा॒खुमश्वि॑ना छि॒न्तं शिरो॒ अपि॑ पृ॒ष्टीः
श्रृ॑णीतम् ।
य॑वा॒न्नेददा॒नपि॑ नह्य॒तं मुख॒मथाभ॑यं कृणुतं धा॒न्या॑य

ह॒तम् । त॒र्दम् । स॒म्ऽअ॒ङ्कम् । आ॒खुम् । अश्वि॑ना । छि॒न्तम् ।
शि॑रः । अपि॑ । पृ॒ष्टीः । शृ॒णी॒त॒म् ।
यवान् । न । इत् । अदा॒न् । अपि॑ । न॒ह्य॒त॒म् । मुख॑म् । अथ॑ ।
अभ॑यम् । कृ॒णु॒त॒म् । धा॒न्या॑य ॥ ३ ॥

हे अश्विना अश्विनौ एतत्संज्ञौ देवौ तर्दम् हिंसकम् । ❀ तर्द हिंसायाम् इत्यस्मात् पचाद्यच् ❀। समङ्कम् समञ्चनं बिलं संप्रविश्य गच्छन्तम् । ❀ संपूर्वाद् अञ्चतेः "पुंसि संज्ञायाम्०"

इति घः । “चजोः कु घिण्ण्यतोः” इति कुत्वम् ❀ । एवंभूतम् आखुं हतम् नाशयतम् । ❀ हन्तेर्लोटि अदादित्वात् शपो लुकि “अनुदात्तोपदेश०” इत्यादिना अनुनासिकलोपः । आ समन्तात् खनतीति आखुः । खनु अवदारणे । आङ्पूर्वाद् अस्माद् “आङ्परयोः खनिशॄभ्यां डिच्च” [उ० १, ३३] इति उ प्रत्ययः टिलोपश्च ❀ ।। हननप्रकारः प्रतिपाद्यते छिन्तम् इत्यादिना । तस्याखोः शिरश्छिन्तम् द्विधा कुरुतम् । ❀ छिदिर् द्वैधीकरणे । लोण्मध्यमपुरुषद्विवचने “श्नसोरल्लोपः” इति अकारलोपः ❀ । पृष्टीः पार्श्वास्थीन्यपि तत्संबन्धीनि शृणीतम् हिंस्तं चूर्णीकुरुतम् । ❀ शॄ हिंसायाम् । प्वादित्वाद् ह्रस्वः ❀ । स च आखुः नेत् अदात् नैव भक्षयेत् अस्मदीयं व्रीह्यादिकम् इत्यभिप्रेत्य हे अश्विनौ युवां तदीयं मुखम् आस्यम् अपि नह्यतम् अपिनद्धं पिहितं कुरुतम् । एवं कृत्वा अथ अनन्तरम् अस्मदीयाय धान्याय व्रीहियवादिरूपाय अभयम् तत्कृतभयराहित्यं कृणुतम् कुरुतम् ।।

हे अश्विनीकुमार नामक देवताओं ! तुम बिलमें प्रवेश करके जाने वाले हिंसक चूहेको मार डालो । हे अश्विनीकुमारों ! तुम इसके शिरके दो टुकड़े कर दो, इसकी पसलीकी हड्डियोंको भी चूर्ण कर दो, हे अश्विनीकुमारों ! यह चूहा हमारे धान आदि अन्नको न खा सके इस लिये तुम इसके मुखको ढक दो, ऐसा करके हमारे धान्यको इसके भयसे मुक्त करो ।। १ ।।

द्वितीया ।।

तर्द॒ है पत॑ङ्ग॒ है जभ्य॒ हा उप॑क्वस ।
ब्र॒ह्मेवासं॑स्थितं ह॒विरन॑दन्त इ॒मान् यवा॒नहिं॑सन्तो अ॒पोदि॑त ॥ २ ॥

तर्द । है । पतङ्ग । है । जभ्य । है । उपऽक्वस ।
ब्रह्माऽइव । असम्ऽस्थितम् । हविः । अनदन्तः । इमान् । यवान् ।
अहिंसन्तः । अपऽउदित ॥ २ ॥

हैशब्दः हेशब्दवद् आभिमुख्यकरणे । हे तर्द हिंसक आखो हे पतङ्ग शलभ् हे जभ्य उपद्रवकारित्वाद् अस्माभिर्हिंस्य युष्माकं हननाय इदम् अस्मदीयम् अश्विभ्यां होतव्यं हविः ब्रह्मेव असंस्थितम् "महद् भयं वज्रम् उद्यतम्" [क० व० ६, २] इत्याद्युपनिषत्प्रसिद्धं जगत्कारणं ब्रह्म अपरिसमाप्तं दुष्प्रधर्षं भवति एवम् इदं हविर्वर्तत इत्यर्थः । अतः अस्य हविषो होमात् प्रागेव अपक्वसः अदग्धाः सन्तः इमान् अस्मदीयान् यवान् सस्यविशेषान् अनुदन्तः अप्रेरयन्तः अहिंसन्तः अविनाशयन्तो यूयम् अपोदित अस्मात् स्थानाद् अपगता भवत ॥

हे हिंसक चूहे शलभ ! तुम उपद्रव करने वाले होनेसे मारने योग्य हो अत एव तुम्हारे मारनेके लिये ब्रह्मकी समान भयंकर† अश्विनीकुमारोंको दी जाने वाली यह हवि है, अत एव इस हवि को होमनेसे पहिले ही तुम अदग्ध रहते हुए हमारे इन यवोंको न छेड़तेहुए और नाश न करतेहुए यहाँसे भाग जाओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान्
जम्भयामसि ॥ ३ ॥

---

† कठवल्ली ६ । २ में कहा है, कि–'महद् भयं वज्रं उद्यतम् ॥–ब्रह्म भयदायक बड़े भारी वज्रकी समान सबको नियममें रखनेके लिये उद्यत रहता है'

तर्दऽपते । वघाऽपते । तृष्टऽजम्भाः । आ । शृणोत । मे ।

ये । आरण्याः । विऽअद्वराः । ये । के । च । स्थ । विऽअद्वराः ।

तान् । सर्वान् । जम्भयामसि ॥ ३ ॥

हे तर्दपते तर्दानां हिंसकानाम् आखूनां स्वामिन् हे वघापते । अवघ्नन्ति अवबाधन्त इति वघाः पतङ्गादयः । ❀ अवपूर्वात् हन्तेः "डोन्यत्रापि दृश्यते" इति डप्रत्ययः । "वष्टि भागुरिरल्लोपम्" इति अवशब्दस्य आदिलोपः । पृषोदरादित्वाद् घत्वम् ❀ । वघानां पतङ्गादीनाम् अधिपते तृष्टजम्भाः तीक्ष्णदंष्ट्रा यूयं मे मदीयम् इदं वचनम् आ शृणोत आभिमुख्येन शृणुत । ❀ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तशब्दस्य तबादेशः ❀ । ये यूयम् आरण्याः अरण्ये भवा व्यद्वराः विविधम् अदनशीलाः स्थ भवथ । अन्येपि ये के च ग्रामवर्तिनो यूयं व्यद्वराः विविधम् अदनशीला भवथ तान् सर्वान् युष्मान् जम्भयामसि जम्भयामः अनेन कर्मणा नाशयामः । ❀ जभि नाशने इति धातुः ❀ ॥

हे हिंसक चूहोंके स्वामिन् ! हे पतङ्ग आदिके स्वामिन् ! तीखी डाढ़ वाले तुम मेरे इस वचनको अभिमुख होकर सुनो ! जो तुम अनेक रीतिसे खाने वाले जंगली हो वा ग्राममें रहने वाले हो तो उन सबको हम इस कर्मसे नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १ ॥

वायोः । पूतः । पवित्रेण । प्रत्यङ् । सोमः । अति । द्रुतः ।

इन्द्रस्य । युज्यः । सखा ॥ १ ॥

वायोः संबन्धिना पवित्रेण पवनसाधनेन दशापवित्रेण पूतः शोधितः । यद्वा वायोः सकाशात् पूतः शोधनेन रसवत्तां प्रापितः । सोमरसं प्रस्तुत्य तैत्तिरीयके समाम्नातम् । "तम् एभ्यो वायुरेवास्वदयत् । तस्माद् यत् पूयति तत् प्रवाते विषजन्ति । वायुर्हि तस्य पवयिता स्वदयिता" इति [तै० सं० ६. ४. ७. २]। ईदृशः सोमः प्रत्यङ् प्रतिमुखम् अञ्चन् अतिद्रुतः नाभिदेशम् अतिक्रम्य गतः । तदतिक्रमणं हि सम्यग्जरणपर्यन्तम् अनभिमतम् । तथा च मन्त्रवर्णः । "शिवो मे सप्तऋषीन् उपतिष्ठस्व मा मे वाङ् नाभिम् अति गाः" इति [तै० सं० ३. २. ५. ३]। स च इन्द्रस्य युज्यः योग्यः सखा मित्रभूतः ॥

वायुके द्वारा शोधन करके रसवत्त्वको प्राप्त कराया हुआ सोम† प्रत्येक मुखमें नाभि तक दौड़कर जाता है, वह इन्द्रदेवका योग्य मित्र है ‡ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

आपो॑ अ॒स्मान् मा॒तरः॑ सूदयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु ।

---

† तैत्तिरीयसंहिता ६ । ४ । ७ । २ में कहा है, कि—"तम् एभ्यो वायुरेवास्वदयत् । तस्माद्द यत् पूयति तत् प्रवाते विषजन्ति । वायुर्हि तस्य पवयिता स्वदयिता ॥ इनका वायुने स्वाद लिया है । जब वायु इनको पवित्र करना चाहता है तब यह मिलते हैं, वायु ही इस सोमका स्वाद लेनेवाला और पवित्र करनेवाला है ।

‡ इस सोमकी अप्राप्तिको मनुष्य जरा तक भी नहीं चाहते हैं तैत्तिरीयसंहिता ३ । २ । ५ । ३ में कहा है, कि—'शिनो मे सप्त ऋषीन् उपतिष्ठस्व मा मे वाङ् नाभिं अतिगाः ॥—हे सोम ! तू कल्याणकारी होकर हमारे सप्त ऋषियोंमें रह, मेरी वाणी और नाभिको छोड़ कर न जा ।'

वि॒श्वं हि रि॒प्रं प्र॒वहन्ति देवीरुदिदा॑भ्य॒ः शुचि॒रा पू॒त

ए॑मि ॥ २ ॥

आप॑ः । अ॒स्मान् । मा॒तर॑ः । सू॒द॒य॒न्तु॒ । घृ॒तेन॑ । नः॒ । घृ॒त॒ऽप्व॑ः ।

पु॒न॒न्तु॒ ।

विश्व॑म् । हि । रि॒प्रम् । प्र॒ऽवह॑न्ति । दे॒वीः । उत् । इत् । आ॒भ्य॒ः ।

शुचि॑ः । आ । पू॒तः । ए॒मि॒ ॥ २ ॥

मातरः विश्वस्य जगतो जनन्य आपः अब्देवता अस्मान् सूदयन्तु क्षालयन्तु पापरहितान् शुद्धान् कुर्वन्तु । ❀ सूद क्षरणे ❀ । तथा घृतप्वः क्षरणस्वभाव आत्मीयो रसो घृतम् तेन कृत्स्नं जगत् पुनन्तीति घृतप्वः । तादृश्य आपः घृतेन क्षरणशीलेन सारेण नः अस्मान् पुनन्तु शुद्धान् कुर्वन्तु । ❀ पूञ् पवने । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀। कस्माद् एवं प्रार्थ्येत इति तत्राह विश्वं हीति । हि यस्माद् देवीः देव्यः देवतारूपा आपः विश्वम् सर्वं रिप्रम् । पापनामैतत् । ❀ रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति यास्कवचनात् [नि० ४. २१] ❀ । स्नानाचमनप्रोक्षणादिकारिणां जनानां कृत्स्नं पापं प्रवहन्ति प्रक्षालयन्ति । प्रकर्षेण अपगमयन्तीत्यर्थः । ईदृशीषु अप्सु स्नातोहं शुचिः शुद्धो भूत्वा आभ्य अद्भ्यः सकाशात् पूतः कर्मयोग्यः सन् उदैमि उदागच्छामि । ❀ इत् इति अवधारणे ❀ ॥

सम्पूर्ण विश्वकी जननीरूप जल हमको पापरहित करें—क्षालित करें—पवित्र करें । क्षरणशील रससे जगत्को पवित्र करने वाले जल अपने क्षरणशील जलसे हमको पवित्र करें। (हम इस लिये ऐसी प्रार्थना करते हैं, कि—) क्योंकि—देवतारूप जल स्नान आचमन प्रोक्षण आदि करने वालोंके सम्पूर्ण पापोंको स्नान

आचमन प्रोक्षण आदिसे बहा देती हैं—दूर कर देती हैं। ऐसे जलों में स्नान क के पवित्र हुआ मैं कर्मके योग्य होकर जलोंके पाससे उदय होरहा हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादे-
नसो देव रीरिषः ॥ ३ ॥

यत् । किम् । च । इदम् । वरुण । दैव्ये । जने । अभिऽद्रोहम् ।
मनुष्याः । चरन्ति ।
अचित्त्या । च । इत् । तव । धर्म । युयोपिम । मा । नः । तस्मात् ।
एनसः । देव । रीरिषः ॥ ३ ॥

हे वरुण स्वभवानाम् अपाम् अधिपते दैव्ये देवसंबन्धिनि जने प्राणिजाते विषये यत्किमपि इदम् अभिद्रोहम् अपराधजनितम् एनः मनुष्याश्चरन्ति अनुतिष्ठन्ति । तस्माद् एनस इत्युत्तरत्र संबन्धः । वयमपि मनुष्यान्तःपातित्वाद् अचित्त्या अज्ञानेन चेत् हे वरुण तव धर्मा त्वत्संबन्धीनि धर्माणि कर्माणि युयोपिम व्यामोहयामः । विपर्यस्तानि कुर्म इत्यर्थः । ❀ युप विमोहने ❀ । तस्मात् अज्ञानजनिताद् एनसः पापात् हेतोः हे देव स्वामिन् वरुण नः अस्मान् मा रीरिषः मा हिंसीः । ❀ रिष रुष हिंसायाम् । अस्मात् एयन्ताद्ध माङि लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
षष्ठकांडे पञ्चमोनुवाकः ॥

हे वरुण ! मनुष्य देवताओंके विषयमें जिस पापको मनुष्य करते हैं और हम भी अज्ञानवश आपके जिन धर्मोंका ठीक ठीक पालन न कर मोहमें पड़ उलटे रूपसे पालन करने लग जाते हैं, उस अज्ञानजनित पापके कारण हे वरुण ! आप हमारी हिंसा न करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२२४) ॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डमें पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

षष्ठेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र “उत् सूर्यः” इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन रक्षोग्रहभैषज्यार्थं चित्त्याद्योषधिसहितं पूर्णघटम् अभिमन्त्र्य व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

तथा शमीसहितोदकेन वा शमीबिम्बसहितोदकेन वा शीर्णपर्णसहितोदकेन वा अनेन तृचेन अभिमन्त्रितेन व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । “उत् सूर्य इति शमीबिम्बशीर्णपर्णावधि” इति [कौ० ४. ७] ॥

“द्यौश्च मे” इति तृचेन दुष्टगण्डव्रणभैषज्यार्थं तैलम् अभिमन्त्र्य तेन व्रणम् अवमृज्यात् ॥

तथा एतं तृचं जपन् व्रणदेशं हस्तेन अवमृज्यात् ।
तथा अनेन तृचेन स्थूणायां व्रणदेशं घर्षयेत् ॥

सूत्रितं हि । “द्यौश्च म इत्यभ्यज्य अवमार्ष्टि । स्थूणायां निकषति” इति [कौ० ४. ७] ॥

तथा द्रव्यादिविनाशे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थम् अनेन तृचेन द्यावापृथिव्यौ यजत उपतिष्ठते वा । सूत्रितं हि । “द्यौश्च म इति द्यावापृथिव्यौ वरिष्यन्” इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा सवयज्ञेषु “द्यौश्च मे” इति तृचेन मन्त्रोक्तानि इन्द्रियाण्यनुमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । “बृहता द्यौश्च [६. ५३] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७. ६६] इति प्रतिमन्त्रयते” इति [कौ० ८. ७] ॥

१६८०

तथा मेधाजननकर्मणि "द्यौश्च मे" इत्यनया ऋचा क्षीरौदनं पुरोडाशं रसान् वा संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा अनयैव ऋचा मेधाकाम आदित्यम् उपतिष्ठेत ॥

सूत्रितं हि । "पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य "त्वं नो मेधे [६. १०८] द्यौश्च मे [६, ५३] इति भक्षयति । आदित्यम् उपतिष्ठते" [कौ० २. १] [इति]॥

गोदानकर्मणि "पुनः प्राणः" इत्यनया क्षुरं मार्जयित्वा नापिताय प्रयच्छेत् । "पुनः प्राणः [६. ५३. २] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७. ६६] इति त्रिर्निमृज्य त्वयि महिमानं सादयामि" इति कौशिकसूत्रात् [कौ० ७. ५] ॥

उपनयनकर्मणि "सं वर्चसा" इत्यनया उदपात्रम् अभिमन्त्र्य ब्रह्मचारिणम् अवेक्षयेत् । सूत्रितं हि । "उदपात्रं समवेक्षयेत् सम् इन्द्र णः [७. १०२. २] सं वर्चसा [६. ५३. ३] इति द्वाभ्याम्" इति [कौ० ७. ६] ॥

छठे अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । इनमें "उत् सूर्यः" यह प्रथम सूक्त है । इनमें पहिले तीन ऋचा वाले सूक्तसे चित्ति आदि औषध पड़े हुए पूर्णघटका अभिमंत्रण करके रोगी पर छिड़के ।

तथा शमी पड़े हुए जलसे वा जिसमें शमीका विम्ब पड़ता हो ऐसे जलसे वा पुराने पत्ते पड़े हुए जलसे इस तृचके द्वारा रोगी पर अवसेचन करे ।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यत् सूर्य इति शमीबिम्बशीर्णपर्णावधि" (कौशिकसूत्र ४ । ७)॥

"द्यौश्च मे" इन तीन ऋचाओंसे दुष्टगण्डव्रणकी चिकित्साके लिये तेलको अभिमंत्रित करके उस तेलसे घावको धोवे ।

इस तृचको जपता हुआ व्रणस्थानको हाथसे साफ करे ।

इस तृचको पढ़ता हुा स्थूणासे व्रणस्थानको खुजावे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"द्यौश्च म इत्यभ्यज्य अन्नमार्ष्टि । स्थूणायां निकषति" (कौशिकसूत्र ४ । ७)॥

तथा द्रव्य आदिके विनाशका अवसर आनेपर उसकी निवृत्ति करनेके लिये इन तीन ऋचाओंसे द्यावापृथ्वीका उपस्थान वा यजन करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"द्यौश्च म इति द्यावापृथिव्यौ वरिष्यन्" (कौशिकसूत्र ७ । १०)॥

तथा सवयज्ञोंमें "द्यौश्च मे" इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे मंत्र में कही हुई इन्द्रियोंका अनुमन्त्रण करे । इसका सूत्रप्रमाण भी है, कि—"बृहतां द्यौश्च (६ । ५३) पुनर्मैत्विन्द्रियम् (७।६६) इति प्रतिमन्त्रयते" (कौशिकसूत्र ८ । ७) ॥

तथा मेधाजनन कर्ममें 'द्यौश्च मे' इस ऋचासे क्षीरौदन पुरोडाश वा रसोंका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ।

तथा बुद्धि चाहने वाला इसी ऋचासे सूर्यका उपस्थान करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य "त्वं नो मेधे (६ । १०८) द्यौश्च मे (६ । ५३) इति भक्षयति । आदित्यम् उपतिष्ठते" (कौशिकसूत्र २ । १) ॥

गोदानकर्ममें 'पुनः प्राणः' इस ऋचासे छुरेको साफ करके नाईको देवे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"पुनः प्राणः (६ । ५३ । २) पुनर्मैत्विन्द्रियम् (७ । ६६) इति त्रिर्निमृज्य त्वयि महिमानं सादयामि" (कौशिकसूत्र ७ । ५)॥

उपनयनकर्ममें 'सं वर्चसा' इस ऋचासे जलपूर्ण पात्रका अभिमन्त्रण करके ब्रह्मचारीको देखे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"उदपात्रं समवेक्षयेत् सम् इन्द्रं णः (७ । १०२ । २) सं वर्चसा (६ । ५३ । ३) इति द्वाभ्याम् (कौशिसूत्र ७।८)॥

तत्र प्रथमा ॥

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ १ ॥

उत् । सूर्यः । दिवः । एति । पुरः । रक्षांसि । निऽजूर्वन् ।
आदित्यः । पर्वतेभ्यः । विश्वऽदृष्टः । अदृष्टऽहा ॥ १ ॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः पुरः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि रक्षांसि । ❀ रक्षो रक्षितव्यम् अस्मात् इति यास्कः [नि० ४. १८] ❀ । अस्मदुपद्रवकारिणो रक्षःपिशाचादीन् निजूर्वन् नितरां हिंसन् । ❀ जुर्वी हिंसायाम् । हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । हिंसितुम् इत्यर्थः । दिवः अन्तरिक्षप्रदेशाद् उदेति उद्गच्छति । रात्रौ हि रक्षसां संचारः इदानीं तु उद्यन्नेव सूर्यस्तानि विनाशयतीति भावः । स च आदित्यः विश्वदृष्टः सर्वप्राणिभिः साक्षात्क्रियमाणः अदृष्टहा अदृष्टानाम् अस्माभिरदृश्यमानानामपि रक्षःपिशाचादीनां हन्ता पर्वतेभ्यः उदयाचलप्रदेशेभ्यः । उदेतीति संबन्धः । ❀ आदित्यः अदितेः पुत्रः । "दित्यदित्यादित्य०" इति ण्यप्रत्ययः ❀ ॥

सबके प्रेरक सूर्यदेव पूर्व दिशामें हम पर उपद्रव करने वाले राक्षस पिशाच आदिका संहार करनेके लिये अन्तरिक्षसे उदय होते हैं (तात्पर्य यह है, कि—रात्रिमें राक्षस घूमते रहते हैं, सूर्य उदय होते हुए ही उनका संहार करना आरम्भ कर देते हैं) उन आदित्यदेवको सब प्राणी प्रत्यक्ष देखते हैं, वह हमको न दीखने वाले भी राक्षस पिशाच आदिका संहार कर डालते हैं, वह उदयाचलके शिखरों पर उदय होते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।

न्यू३र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥

नि । गावः । गोऽस्थे । असदन् । नि । मृगासः । अविक्षत ।

नि । ऊर्मयः । नदीनाम् । नि । अदृष्टाः । अलिप्सत ॥ २ ॥

उद्यता सूर्येण रक्षसां हननाद् इदानीं गावो गोष्ठे गोशालायां न्यसदन् भयराहित्येन अस्मदीया गावो निषण्णा अभूवन् । ❀ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। लृदित्त्वात् च्लेः अङ् आदेशः❀॥ तथा मृगासः मृगाः आरण्याः पशवः न्यविक्षत स्वस्वस्थाने निर्भयं निविष्टा अभूवन् । ❀ "नेर्विशः" इति आत्मनेपदम् । "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सः प्रत्ययः ❀ ॥ तथा नदीनाम् सरिताम् ऊर्मयः तरङ्गाः सुखेन निविष्टाः ॥ अदृष्टाः रात्रौ अनुपलब्धाः प्रजाः सूर्यप्रकाशेन न्यलिप्सत नितरां लब्धुम् ऐच्छन् । ❀ लभेः सनि "सनि मीमाघुरभलभ०" इति अचः स्थाने इस् आदेशः ❀ । यद्वा अनुक्रान्तान् गवादीन् सर्वे जनाः सूर्यप्रकाशात् लब्धवन्तः । ❀ लभेलुङि च्लेः सिच् । वर्णव्यत्ययः ❀ ॥

उदय होते हुए सूर्यदेवने राक्षसोंका संहार कर डाला. अत एव गोशालओंमें हमारी गौएँ निर्भय होकर बैठ गई हैं और जंगली पशु भी अपने २ स्थानोंमें निर्भय होकर बैठे हुए हैं, नदियोंकी लहरोंको, कि–जो रात्रिमें नहीं दीखतीं थीं उनको प्रजाओंने प्राप्त कर लिया है अर्थात् सूर्यके प्रकाशसे नदियोंकी लहरें गौएँ आदि पहिले न दीखती हुईं वस्तुएँ मनुष्योंको दीखने लगीं हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।

आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ।३।

आ॒यु॒ःऽदद॑म् । वि॒प॒ःऽचित॑म् । श्रु॒ताम् । कण्व॑स्य । वी॒रुध॑म् ।

आ । अ॒भा॒रि॒ष॒म् । वि॒श्वऽभे॑षजीम् । अ॒स्य । अ॒दृष्टा॑न् । नि । श॒म॒य॒त्

आयुर्ददम् आयुषः शतसंवत्सरपरिमितस्य जीवनस्य दात्रीम् । ❀ दद दाने । "क्विप् च" इति क्विप् ❀ । विपश्चितम् रोगशमनोपायं विदुषीं श्रुताम् विश्रुतां प्रसिद्धां कण्वस्य महर्षेः संबन्धिनीं विश्वभेषजीम् सर्वस्य रोगजातस्य शमनीम् । ❀ "सुमङ्गलभेषजाच्च" इति ङीप् ❀ । ईदृशीम् एवं गुणविशिष्टां वीरुधम् चित्तिः प्रायश्चित्तिरित्येवं कौशिकेनोक्तां शान्तौषधीं शमीं वा अस्य व्याधितस्य रोगनिवृत्तये आभार्षम् आहार्षम् आहरामि । ❀ "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम् ❀ । सा च आहृत्य प्रयुज्यमाना अस्य रोगिणः अदृष्टान् द्रष्टुम् अशक्यान् शरीरमध्यवर्तिनो रोगान् रक्षःपिशाचादिकृतान् नि शमयत् निशमयतु । ❀ शम उपशमने । अस्मात् ण्यन्तात् लेटि अडागमः । "इतश्च लोपः०" इति इकारलोपः ❀ ॥

सौ वर्ष तककी आयुको देने वाली, रोगशमनके उपायको जानने वाली प्रसिद्ध कण्वमहर्षिकी सब रोगोंको शान्त करने वाली कौशिककी कही हुई चित्ति प्रायश्चित्ति औषधिको वा शमीको इस रोगीकी रोगनिवृत्तिके लिये मैं ले आया हूँ, वह लाई हुई औषधि इस रोगीके न दीखने वाले राक्षस पिशाच आदिके किये हुए रोगोंको पूर्ण रीतिसे शान्त कर देय ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

द्यौश्च॑ म इ॒दं पृ॑थि॒वी च॒ प्रचे॑तसौ शु॒क्रो बृ॒हन् दक्षि॑णया पिपर्तु ।
अनु॑ स्व॒धा चि॑कि॒तां सोमो॑ अ॒ग्निर्वा॒युर्नः॑ पातु सवि॒ता भग॑श्च ॥ १ ॥

द्यौः । च॒ । मे॒ । इ॒दम् । पृ॒थि॒वी । च॒ । प्रऽचे॑तसौ । शु॒क्रः । बृ॒हन् ।
दक्षि॑णया । पि॒प॒र्तु॒ ।
अ॑नु । स्व॒धा । चि॒कि॒ता॒म् । सोम॑ः । अ॒ग्निः । वा॒युः । न॒ः । पा॒तु ।
स॒वि॒ता । भग॑ः । च॒ ॥ १ ॥

द्यौश्च पृथिवी च एते देवते मे मह्यं प्रचेतसौ प्रकृष्टज्ञाने अनुग्रहबुद्धियुक्ते इदम् अभिलषितफलम् । प्रयच्छताम् इति शेषः ॥ तथा बृहन् महान् शुक्रः शोचमानो दीप्यमानः सूर्यः दक्षिणया दिशा पिपर्तु पालयतु । यमाधिष्ठिताया दक्षिणस्या दिशो रक्षत्वित्यर्थः । यद्वा दक्षयति पुरुषं वर्धयतीति दक्षिणा । ❀ दक्ष वृद्धौ । द्रुदक्षिभ्याम् इनन् [उ० २.५०] ❀ । [तया] वासोहिरण्यादिरूपया दक्षिणया पिपर्तु पूरयतु । ❀ पॄ पालनपूरणयोः। जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀ । स्वधा पितॄणां संबन्धिनी स्वधाकाराभिमानिनी देवता अनु चिकिताम् अनुजानातु । ❀ कित ज्ञाने । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः ❀ । यद्वा स्वधेत्यन्ननाम । यथा अस्माकम् अन्नं भवति तथा सोमः अग्निश्च अनु चिकिताम् । नः अस्मान् वायुः पातु रक्षतु । निगदसिद्धम् अन्यत् ॥

द्यौ और पृथिवी देवता मुझ पर अनुग्रहमयी बुद्धि करके अभिलषित फल दें। तथा दमकते हुए महान् सूर्यदेव दक्षिण दिशासे मेरी रक्षा करें अर्थात् यमसे अधिष्ठित दक्षिण दिशासे मेरी रक्षा करें और पुरुषको बढ़ाने वाली वस्त्र सुवर्ण आदिकी दक्षिणासे मुझको पूरण करें। पितरोंसे संबंध रखनेवाले स्वधाकारके अभिमानी देवता इस बातकी अनुज्ञा दें, जिस प्रकार हमारे पास अन्न आदि हो सोम और अग्निदेव हमारे लिये वैसा

अनुज्ञा करें, वायु सविता और भग देवता भी इस काममें हमारे अनुकूल सम्मति दें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥ २ ॥

पुनः । प्राणः । पुनः । आत्मा । नः । आ । एतु । पुनः । चक्षुः । पुनः । असुः । नः । आ । एतु ।
वैश्वानरः । नः । अदब्धः । तनूऽपाः । अन्तः । तिष्ठाति । दुःऽइतानि । विश्वा ॥ २ ॥

प्राणः मुखनासिकाभ्यां संचरन् प्राणवायुः जीवावस्थितिहेतुः नः अस्मान् पुनः ऐतु आगच्छतु । तथा आत्मा जीवः पुनरागच्छतु । चक्षुः दर्शनसाधनम् इन्द्रियं पुनरागच्छतु । असुः प्राणः पुनरैतु । प्राधान्यख्यापनाय पुनरभिधानम् । यद्वा पुनः प्राण इति पूर्वं प्राणापानादिवृत्तिमतोऽभिधानम् असुरिति वृत्तिविशेषस्य इति अपौनरुक्त्यम् । व्रणरोगेण गतप्रायत्वात् प्राणादीनां पुनरागमनं प्रार्थ्यत इति बोद्धव्यम् ॥ अपि च वैश्वानरः विश्वनरहितः अदब्धः रोगादिभिः अहिंसितः तनूपाः शरीरस्य पालकः सन् नः अस्माकम् अन्तः शरीरमध्ये तिष्ठातु तिष्ठतु । ❀ लेटि आडागमः ❀ । विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरितानि रोगनिदानभूतानि पापानि । विनाशयन् इति शेषः ॥

मुख और नासिकासे चलने वाला जीवके ठहरनेका हेतु प्राण हममें फिर आवे । जीव भी फिर आजाय । प्राण भी फिर

आजाय †। सब मनुष्योंका हित करने वाले अग्निदेव रोग आदि से अहिंसित और शरीरकी रक्षा करते हुए और सब पापोंको नष्ट करते हुए हमारे शरीरमें स्थित होवें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३
यद् विरिष्टम् ॥ ३ ॥

सम् । वर्चसा । पयसा । सम् । तनूभिः । अगन्महि । मनसा ।
सम् । शिवेन ।
त्वष्टा । नः । अत्र । वरीयः । कृणोतु । अनु । नः । मार्ष्टु ।
तन्वः । यत् । विऽरिष्टम् ।

वर्चसा दीप्त्या शरीरगतया पयसा देहावस्थितिनिमित्तेन पयोवत् सारभूतेन रसेन सम् अगन्महि संगता भवेम । ❀ “समो गम्यृच्छि०” इति आत्मनेपदम् । छान्दसे लुङि “मन्त्रे घस०” इति च्लेर्लुक् । “म्वोश्च” इति मकारस्य नकारः ❀ । तनूभिः शरीरावयवैर्हस्तपादादिभिः संगता भवेम । तथा शिवेन शोभनेन मनसा अन्तःकरणेन संगता भवेम । त्वष्टा देवः नः अस्माकं वरीयः

---

† पहिले जो प्राण शब्द आया है उसका तात्पर्य प्राण अपान आदि वाले प्राणसे और यहाँ प्राणकी किसी एक वृत्तिसे है अत एव पुनरुक्ति दोष नहीं हुआ । व्रणरोगसे पुरुष निष्प्राणसा होजाता है अत एव प्राण आदिके फिर आनेकी इस मन्त्रमें प्रार्थना की गई है ।

उरुतमम् अतिप्रभूतम् अत्र अस्मिन् शरीरे कृणोतु करोतु । ❀ उरुशब्दाद् ईयसुनि “प्रियस्थिर०” इत्यादिना वर् आदेशः । कृवि हिंसाकरणयोश्च । “धिन्विकृण्व्योर च” इति उप्रत्ययः ❀ । नः अस्माकं तन्वः शरीरस्य यद् विरिष्टम् रोगार्तम् अङ्गं तद् अनु मार्ष्टु हस्तेन शोधयतु । ❀ मृजूष् शुद्धौ । अदादित्वात् शपो लुक् । “मृजेर्वृद्धिः” इति वृद्धिः ❀ ॥

[इति] षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हम शरीरकी कान्तिसे और शरीरकी स्थितिके कारण दुग्ध की समान सारभूत रससे संयुक्त होवें, शरीरके अवयव हाथ पैर आदिसे सम्पन्न रहें, शोभन अन्तःकरणसे सम्पन्न रहें, त्वष्टा देवता हमारे शरीरको बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ करें, हमारे शरीरका जो रोगार्त अंग है उसको अपने हाथसे पवित्र करें रोगरहित करें ॥ ३ ॥

छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२२६) ॥

“इदं तद् युजे” इति तृचेन अभिचारकर्मणि पलाशमध्यमपर्णेन फलीकरणान् जुहुयात् [कौ० ६. २] ॥

“अस्मै क्षत्रम्” इत्यनया पौर्णमासयागे अग्नीषोमीयं चरुं जुहुयात् । सूत्रितं हि । “अस्मै क्षत्रम् [२] इति अग्नीषोमाविति अग्नीषोमीयस्य” इति [कौ० १. ४] ॥

“ये पन्थानः” इति तृचेन देशान्तरं गच्छतः पुरुषस्य स्वस्त्ययनकामः समिदाज्यपुरोडाशादित्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् ॥

तथा अनेन तृचेन स्वस्त्ययनार्थं मन्थौदनौ दद्यात् ॥

सूत्रितं हि । “ये पन्थान इति परीत्योपदधीत प्रयच्छति” इति [कौ० ७. ३] ॥

“ग्रीष्मो हेमन्तः” इत्यनया ब्रह्मा प्रयाजान् अनुमन्त्रयेत । “ग्रीष्मो हेमन्त इति प्रयाजान्” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० १. २]॥

१२४।

आभिचारिके कर्मणि व्रतविसर्जनार्थम् "इदावत्सराय" इत्यनया आज्यं जुहुयात् समिधश्च आदध्यात् ॥

'इदं तद् युजे' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे अभिचारकर्ममें ढाकके मध्यम पत्तेसे फलीकरणोंकी आहुति देय। (कौशिकसूत्र ६।२)॥

'अस्मै क्षत्रम्' इस ऋचासे पौर्णमासयागमें अग्नीषोमीय चरुकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'अस्मै क्षत्रम् (२) इति अग्नीषोमाविति अग्नीषोमीयस्य' (कौशिकसूत्र १।४)

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'ये पन्थान इति परीत्योपदधीत प्रयच्छति' (कौशिकसूत्र ७।३)।

तथा इस तृचसे स्वस्त्ययन करनेके लिये मन्थौदन देवे।

'ये पंथानः' इस तृचसे दूसरे देशको जाने वाले पुरुषके स्वस्त्ययनको चाहनेवाला समिधा घृत पुरोडाश आदि तेरह द्रव्योंकी आहुति देय।

'ग्रीष्मो हेमन्तः' इस ऋचासे ब्रह्मा प्रयाजका अनुमन्त्रण करे इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि–'ग्रीष्मो हेमन्त' इति प्रयाजान् (वैतानसूत्र १।२)

आभिचारिक कर्ममें व्रतविसर्जन करनेके लिये 'इदावत्सराय' इस ऋचासे समिधाओंको रक्खे और घृतकी आहुति देय।

तत्र प्रथमा ॥

इ॒दं तद् यु॒ज उत्त॑र॒मिन्द्रं॑ शु॒म्भाम्यष्ट॑ये ।
अ॒स्य क्ष॒त्रं श्रियं॑ म॒हीं वृ॒ष्टिरि॑व वर्धया॒ तृण॑म् १

इ॒दम् । तत् । यु॒जे । उत्ऽत॑रम् । इन्द्र॑म् । शु॒म्भा॒मि॒ । अष्ट॑ये ।

अस्य । क्षत्रम् । श्रियम् । महीम् । वृष्टिःऽइव । वर्धय । तृणम् १

यत् कर्म अभिचारदोषनिर्हरणक्षमं तद् इदम् उत्तरम् उत्कृष्टतरं कर्म युजे योजयामि । कर्म किं पुनस्तद् इत्याह । यद्वा उत्तरम् इत्येतद् इन्द्रविशेषणम् । उत्तरम् उत्कृष्टतरं सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठम् इन्द्रं शुम्भामि अलंकरोमि । स्तुत्यादिभिः प्रीणयामीत्यर्थः । ❀ शुभ शुम्भ शोभार्थे ❀ । किमर्थम् । अष्टये अभिमतफलप्राप्तये । ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्माद् भावे क्तिन् ❀ ॥ परोर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । हे इन्द्र त्वम् अस्य अभिचर्यमाणस्य पुरुषस्य क्षत्रम् बलं महीम् महतीं श्रियम् पुत्रपौत्रधनादिसंपदं वर्धय समृद्धां कुरु । तत्र दृष्टान्तः वृष्टिरिवेति । यथा महती वृष्टिः तृणम् सस्यजातं वर्धयति तद्वद् इत्यर्थः । ❀ वर्धयेत्यस्य "अन्येषामपि दृश्यते" इति सांहितिको दीर्घः ❀ ॥

अभिचारके दोषको दूर करनेवाले जो श्रेष्ठ कर्म है उसका मैं अभिलषित फलकी प्राप्तिके लिये प्रयोग करता हूँ । (वह कर्म यह है, कि—) सब देवोंमें श्रेष्ठ इन्द्रको मैं अलंकृत करता हूँ—स्तुति आदिसे प्रसन्न करता हूँ । जैसे बड़ी भारी वृष्टि तृण धान्य आदिको बढ़ाती है इसी प्रकार हे इन्द्र ! आप इस अभिचारसे दबेहुए पुरुषके बलको और पुत्र पौत्र धन आदि बड़ी भारी सम्पत्तिको बढ़ाइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥ २ ॥

अस्मै । क्षत्रम् । अग्नीषोमौ । अस्मै । धारयतम् । रयिम् ।
इमम् । राष्ट्रस्य । अभिऽवर्गे । कृणुतम् । युजे । उत्ऽतरम् २

हे अग्नीषोमौ । ❀ "ईदग्नेः सोमवरुणयोः" इति पूर्वपदस्य दीर्घः ❀ । अस्मै यजमानाय क्षत्रम् बलं धारयतम् स्थापयतम् । प्रयच्छतम् इति यावत् । तथा रयिम् धनम् अस्मै प्रयच्छतम् । तथा इमं यजमानं राष्ट्रस्य जनपदस्य अभीवर्गे आभिमुख्येनावर्जने कृणुतम् कुरुतम् । ❀ अभिपूर्वाद् वृजेर्भावे घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः । कृणुतम् इति । कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः तत्संनियोगेन अकारान्तादेशश्च । तस्य "अतो लोपः" इति लोपे स्थानिवद्भावात् लघूपधगुणाभावः ❀ । अहमपि अस्य यजमानस्य उक्तफलसिद्धये उत्तरम् उत्कृष्टतरं कर्म युजे योजयामि । करोमीत्यर्थः ॥

हे अग्नि और सोम देवताओं ! इस यजमानमें आप बलको स्थापित करिये,-और इसको धन दीजिये, तथा इस यजमानको राज्यके अभीवर्गमें करिये । और इस यजमानको उक्त फल मिले इस लिये मैं श्रेष्ठ कर्मको करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

सऽबन्धुः । च । असबन्धुः । च । यः । अस्मान् । अभिऽदासति ।
सर्वम् । तम् । रन्धयासि । मे । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

सबन्धुः समानबन्धुः । समानजन्मगोत्रज इत्यर्थः । असबन्धुः तद्विपरीतः । अन्य इत्यर्थः । परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । उभयविधो यः शत्रुः अस्मान् अभिदातिस उपक्षपयति । ❀ दसु उपक्षये । अस्मात् ण्यन्तात् लटि "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ । सर्वं तम् उभयविधं शत्रुं

सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते मे मह्यं यजमानाय हे इन्द्र त्वं रन्धयासि रन्धय वशीकुरु । ❀ रध्यतिर्वशगमने इति हि यास्कः [नि० ६. ३२] । "रधिजभोरचि" इति नुम् । लेटि आडागमः । "शतुरनुमः०" इति सुन्वच्छब्दाद्ध विभक्तिरुदात्ता ❀ ॥

हे इन्द्रदेव! जो गोत्र वाला वा अन्य गोत्र वाला शत्रु हमारा क्षय करना चाहता है, उन दोनों प्रकारके शत्रुओंको हे इन्द्रदेव! आप सोमका अभिषव करनेवाले मेरे यजमानके वशमें करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥ १ ॥

ये । पन्थानः । बहवः । देवऽयानाः । अन्तरा । द्यावापृथिवीइति । सम्ऽचरन्ति ।
तेषाम् । अज्यानिम् । यतमः । वहाति । तस्मै । मा । देवाः । परि । धत्त । इह । सर्वे ॥ १ ॥

देवयानाः देवाः एव यैः पथिभिर्गच्छन्ति ते तथोक्ताः । ❀यातेः करणे ल्युट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । ईदृशा ये पन्थानः मार्गा बहवः कर्मणां वैचित्र्यात् तत्तल्लोकप्राप्त्युपायतया नानाविधाः सन्तः द्यावापृथिवी अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये संचरन्ति वर्तन्ते । संचरणसाधनत्वात् तद्व्यपदेशः । तेषां मध्ये यतमः यज्जातीयः पन्थाः अज्यानिम् ज्यानिर्हानिः तद्विपरीतां समृद्धिं वहाति

वहेत् प्रापयेत् । ❀ यतम इति । “वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०” इति यच्छब्दात् डतमच् । वहातीति । वहेर्लेटि आडागमः ❀ । तस्मै मार्गाय हे देवाः सर्वे यूयम् इह अस्मिन् देशे मा मां परि दत्त । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । रक्षणाय प्रयच्छतेत्यर्थः ॥

विभिन्न कर्मोंके कारण विभिन्न लोकोंकी प्राप्तिके उपायरूप और देवता ही जिनमें जा सकते हैं ऐसे जो देवयान द्युलोक और पृथ्वीलोकके मध्यमें वर्तमान हैं उनमेंसे जो असमृद्धि (वृद्धि) देय उस मार्गको हे देवताओं ! आप सब इस देशमें मुझको (यज्ञ करनेके फलरूपमें) दीजिये ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते
नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम

ग्रीष्मः । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः । शरत् । वर्षाः । सुऽइते । नः । दधात ।
आ । नः । गोषु । भजत । आ । प्रऽजायाम् । निऽवाते । इत् । वः । शरणे । स्याम ॥ २ ॥

ग्रीष्माद्याः षडृतवः प्रसिद्धाः । तदभिमानिनो देवाः स्विते सुष्ठु प्राप्तव्ये धने नः अस्मान् दधात दधतु स्थापयन्तु ॥ हे ऋतवः यूयं नः अस्मान् गोषु आ भजत आभक्तान् भागयुक्तान् कुरुत । प्रजायाम् पुत्रपौत्रादिरूपायामपि आ भजत । किं बहुना । निवाते वायुसंस्पर्शेनापि रहिते । इच्छब्दः अवधारणे । वायूपलक्षितसमस्तदुःखकारणरहिते एव वः युष्माकं संबन्धिनि शरणे गृहे स्थाने स्याम भवेम ॥

ग्रीष्म हेमन्त शिशिर वसन्त शरद और वर्षा छः प्रसिद्ध ऋतुओंके अभिमानी देवता सुगमतासे प्राप्त होने वाले धनमें हम को स्थापित करें। हे ऋतुओं ! तुम हमको गौओंमें भाग वाला करो अर्थात् गौएँ हमारे पास रहें और पुत्रपौत्र आदिरूप प्रजाओं में हमको भाग वाला करो, अधिक क्या वायु आदि समस्त दुःखों के कारणोंसे रहित घरकी समान हम आपकी शरणमें रहें ॥२॥

षष्ठी ॥

इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम

इदाऽवत्सराय। परिऽवत्सराय। सम्ऽवत्सराय। कृणुत। बृहत्। नमः।
तेषाम्। वयम्। सुऽमतौ। यज्ञियानाम्। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम

प्रभवादिषु पञ्चके पञ्चके क्रमेण एताः संज्ञा भवन्ति। तत्र प्रथमस्य संवत्सर इति संज्ञा। द्वितीयादीनां परिवत्सरः इदावत्सरः अनुवत्सरः इद्वत्सरः इति यथाक्रमं संज्ञा भवति। तद् उक्तम् आचार्यैः।

चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे।
संपरीदान्विदित्येतच्छब्दपूर्वास्तु वत्सराः ॥

इति। तदभिमानिदेवाश्च तैत्तिरीये समाम्नाताः। "अग्निर्वाव संवत्सरः। आदित्यः परिवत्सरः। चन्द्रमा इदावत्सरः। वायुरनुवत्सरः" इति [तै० ब्रा० १. ४. १०. १]। हे जनाः तस्मा इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय च बृहत् प्रभूतं नमः कृणुत कुरुत नमस्कारेण तान् प्रीणयत। ❀ "नमः स्वस्ति" इति चतुर्थी ❀। तेषाम् इदावत्सरादीनां यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणाम्। ❀ "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः ❀। सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ वयं स्याम भवेम। अनन्तरं भद्रे

शोभने सौमनसे सौमनस्ये शोभनबुद्धिजन्ये फलेपि स्याम भवेम। अपिशब्दः संभावनायाम् ॥

[इति] षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

प्रभव आदि पाँच २ सम्वत्सरोंमें संवत्सर आदि संज्ञा होती है उनमें पहिलोंकी सम्वत्सर, दूसरे पंचककी परिवत्सर, तीसरे पंचककी इदावत्सर,चौथे पञ्चककी अनुवत्सर और पाँचवें पंचककी इद्वत्सर संज्ञा होता है। इसी बातको आचार्योंने कहा है,कि-‘चांद्राणां प्रभवादीनां पंचके पंचके युगे। संपरादीन्विदित्येतच्छब्दपूर्वास्तु वत्सराः॥’ और इनके अभिमानी देवताओंका भी तैत्तिरीय ब्राह्मणमें वर्णन है, कि–‘अग्निर्वाव सम्वत्सरः। आदित्यः परिवत्सरः। चन्द्रमा इदावत्सरः। वायुरनुवत्सरः॥’ (तैत्तिरीयब्राह्मण १।४।१०।१) हे मनुष्यों! उन इदावत्सर परिवत्सर और सम्वत्सरके लिये बहुत नमस्कार करो अर्थात् नमस्कारसे उनको प्रसन्न करो, हम इन यज्ञके योग्य इदावत्सर आदिकी अनुग्रहरूपा शोभन बुद्धिमें रहें। फिर सौमनसमें अर्थात् शोभनबुद्धिसे उत्पन्न हुए फलमें भी रहें

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (२२८) ॥

“मा नो देवाः” इति तृचेन सर्पवृश्चिकादिभयनिवृत्तये गृहक्षेत्रादिषु सिकता अभिमन्त्र्य परितः परिकिरेत् ॥

तथा अनेन तृणमालां संपात्य गृहनगरादिद्वारे बध्नीयात् ॥

तथा अनेन तृचेन गोमयम् अभिमन्त्र्य गृहे विसर्जनं द्वारि निखननम् अग्नौ होमं वा कुर्यात् ॥

तथा अनेन अपामार्गमञ्जरीं गुडूचीं वा अभिमन्त्र्य पूर्ववद् गृहादिषु विसर्जनादिकं कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि। “युक्तयोः [३. २६. २७] मा नो देवाः [६. ५६] यस्ते सर्पः [१२. १. ४६] इति शयनशालोर्वराः परिकिरति” इत्यादि [कौ० ७. १] ॥

तथा उपाकर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा दधिसक्तुषु संपातान् आनयेत्। सूत्रितं हि। "अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य "आज्यं जुहुयान्मा नो देवा अहिर्वधीत्" इत्यादि [कौ० १४. ३]॥

"इदमिद् वा उ भेषजम्" इति तृचेन मुखरहितव्रणभैषज्यार्थं गोमूत्रेण व्रणं मर्दयेत् ॥

तथा अनेन दन्तमलम् अभिमन्त्र्य प्रलिम्पेत् ॥

तथा अनेन फेनम् अभिमन्त्र्य व्रणं प्रलिम्पेत् ॥

सूत्रितं हि। "इदमिद् वा उ इत्यच्छिन्नं मूत्रफेनेनोद्धिह्य प्रलिम्पति प्रक्षालयति दन्तरजसा" इति [कौ० ४. ७]॥

"शं च नो मयश्च नः" इत्येषा बृहद्गणे पठिता शान्त्युदकादौ विनियुक्ता ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनार्थम् अनया क्षीरौदमहोमादीनि "वायोः पूतः" [६. ५१] इत्यत्रोक्तानि कर्माणि कुर्यात्। सूत्रं च तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥

'मा नो देवाः' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे साँप बीछू आदिके भयको दूर करना चाहने वाला घर खेत आदिमें रेतेको अभिमन्त्रित करके बखेरे।

तथा इस तृचसे तृणमालाका सम्पातन घर वा नगर आदिके द्वार पर बाँधे।

तथा इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे गोवरको अभिमन्त्रित करके घरमें बखेर देय, द्वार पर गाढ़ देय वा अग्निमें होम देय॥

तथा इससे चिरचिटेकी मञ्जरी वा गिलोयका अभिमन्त्रण करके पहिलेकी समान घर आदिमें विसर्जन आदि करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'युक्तयोः (३ । २६ । २७) मा नो देवाः (६ । ५६) यस्ते सर्पः (१२ । १ । ४६) इति शयनशालोर्वरा परिकिरति०' (कौशिकसूत्र १४ । २)

तथा उपाकर्ममें इस तृचसे घृतकी आहुति देकर दही और सत्तुओंमें सम्पातोंको लावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य 'आज्यं जुहुयान्मा नो देवा अहिर्वधीत्' (कौशिकसूत्र १४ । ३) ॥

'इदमिद्वा उ भेषजम्' इस तृचसे मुखरहित व्रणकी चिकित्साके लिये गोमूत्रसे व्रणका मर्दन करे ।

तथा इस तृचसे दाँतके मैलको अभिमन्त्रित करके व्रण पर लेप कर देय ॥

तथा इससे फेनका अभिमन्त्रण करके व्रण पर लेप करदेय ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"इदमिद्वा उ इत्यच्छिन्नं मूत्रफेनेनोद्भिद्य प्रलिम्पति प्रक्षालयति दन्तरजसा" (कौशिक सूत्र ४ । ७) ॥

'शं च नो मयश्च नः' इस ऋचाका बृहद्गणमें पाठ है और शान्त्युदक आदिमें इसका विनियोग होता है ।

तथा धन उठाते समय हो सकने वाले विघ्नोंकी शान्तिके लिये इस ऋचासे दूध भातका होम आदि "वायोः पूतः" इस छठे काण्डके इक्यानवें सूक्तमें कहे हुए कर्म करे सूत्र भी तहाँ ही देखना चाहिये ।

तत्र प्रथमा ॥

मा नो॑ दे॒वा अहि॑र्वधी॒त् सतो॑कान्स॒हपू॑रुषान् ।
संय॑तं॒ न वि ष्प॑र॒द् व्यात्तं॒ न सं य॑म॒न्नमो॑ दे॒वज॒नेभ्य॑ः १

मा । नः॒ । दे॒वाः॒ । अहि॑ः । व॒धा॒त् । सऽतो॑कान् । स॒हऽपु॑रुषान् ।
सम्ऽय॑तम् । न । वि । स्प॒र॒त् । वि॒ऽआत्त॑म् । न । सम् । य॒म॒त् ।
नम॑ः । दे॒व॒ऽज॒नेभ्य॑ः ॥ १ ॥

हे देवाः विषप्रतीकारकुशला अहिः सर्पः नः अस्मान् मा वधीत् मा हिंसीत्। ❀ हन्तेर्माङि लुङि "हनो वध लिङि" "लुङि च" इति वधादेशः। तस्य च अदन्तत्वाद् अतो लोपे स्थानिवद्भावाद् "अतो हलादेर्लघोः" इति वृद्ध्यभावः ❀। कीदृशान्। सतोकान्। तोकम् इति अपत्यनाम। पुत्रपौत्राद्यपत्यसहितान्। ❀ "वोपसर्जनस्य" इति सहशब्दस्य सभावः ❀। सहपूरुषान् भृत्यादिपुरुषसहितान्॥ अपि च संयतम् संश्लिष्टम् अहेरास्यं न विस्फुरत्। दंशनार्थं विष्फारितं विश्लिष्टं न भवतु। ❀ स्फुर संचरणे इत्यस्माद् विपूर्वात् लेटि अडागमः ❀। तथा व्यात्तम् विवृतं तद् आस्यं न सं यमत् संयतं संश्लिष्टं न भवतु। मन्त्रसामर्थ्येन प्रतिबद्धं सत् वर्तताम् इत्यर्थः। ❀ व्यात्तम् इति। व्याङ्पूर्वाद् दाञो निष्ठायाम् "अच उपसर्गात् तः" इति तकारः ❀। देवजनेभ्यः ये सर्पादिविषनिर्हरणसमर्था देवजनास्तेभ्यो नमोस्तु॥

हे विषका प्रतीकार करनेमें कुशल देवताओं! सर्प हमारी हिंसा न कर सके। वह हमारे पुत्र पौत्र और भृत्य आदिकी भी हिंसा न कर सके। सर्पका बन्द हुआ मुख काटनेके लिये न खुल सके और वह खुला मुख मंत्रकी सामर्थ्यसे रुक जावे बन्द न हो। जो सर्प आदिके विषको दूर करनेकी शक्ति रखते हैं, उन देवताओंके लिये नमस्कार हो॥ १॥

द्वितीया॥

नमोस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः॥ २॥

नमः। अस्तु। असिताय। नमः। तिरश्चिऽराजये।
स्वजाय। बभ्रवे। नमः। नमः। देवऽजनेभ्यः॥ २॥

असिताय कृष्णवर्णाय एतन्नाम्ने सर्पाधिपतये नमोस्तु ॥ तथा तिरश्चिराजये तिरश्चीनास्तिर्यग् अवस्थिता राजयः वलयो यस्य स तिरश्चिराजिः । एतत्संज्ञाय सर्पमुख्याय नमोस्तु ॥ बभ्रवे बभ्रुवर्णाय स्वजाय स्वयमेव जायते कारणान्तरनैरपेक्ष्येण उत्पद्यते इति स्वजः । तस्मै एतन्नाम्ने सर्पाय नमोस्तु ॥ एतेषां सर्पाणां नियन्तृभ्यो देवजनेभ्यश्च नमोस्तु । असितादिशब्दानां सर्पविशेषनामत्वं तैत्तिरीयके "समीची नामासि" [तै० सं० ५, ५, १०, १] इत्यादिसर्पाहुतिमन्त्रेषु प्रसिद्धं द्रष्टव्यम् ॥

कृष्णवर्णके असित नाम वाले सर्पराजके लिये नमस्कार हो, जिसके तिरछी अलवेटें पड़ी हुई हैं उस तिरश्चिराजि नामक मुख्य सर्पके लिये नमस्कार हो, बभ्रुवर्ण वाले स्वज नामक सर्पके लिये नमस्कार हो और इन सर्पोंका नियन्त्रण करने वाले देवताओंके लिये भी नमस्कार हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सं ते॑ ह॒न्मि द॒ता द॒तः समु॑ ते॒ हन्वा॒ हनू॑ ।
सं ते॑ जि॒ह्वया॑ जि॒ह्वां सम्वा॒स्नाहे॑ आ॒स्य॑म् ॥ ३ ॥

सम् । ते॒ । ह॒न्मि॒ । द॒ता । द॒तः । सम् । ऊं॒ इति॑ । ते॒ । हन्वा॑ ।
हनू॒ इति॑ ।

सम् । ते॒ । जि॒ह्वया॑ । जि॒ह्वाम् । सम् । ऊं॒ इति॑ । आ॒स्ना । अ॒हे॒ ।
आ॒स्य॑म् ॥ ३ ॥

हे अहे सर्प ते तव दता उपरिपंक्तिवर्तिदन्तेन दतः अधःपंक्तिस्थान दन्तान् सं हन्मि संहतान् संश्लिष्टान् करोमि । तथा ते तव हन्वा हनू सं हन्मि । हनुद्वयमपि परस्परसंश्लिष्टं करोमीत्यर्थः ॥ ते

त्वदीयया जिह्वया जिह्वामपि संहतां करोमि । सर्पस्य हि द्वे जिह्वे । ते अपि परस्परप्रतिबद्धे करोमीत्यर्थः ॥ तथा आस्ना आस्येन आस्यम् त्वदीयं मुखं संहतं करोमि । आस्यस्य उत्तराधरभागावपि संश्लिष्टौ करोमीत्यर्थः । यद्वा सर्पाधिपानां बहुशिरस्कत्वात् तदास्यानि अन्योन्यप्रतिबद्धानि करोमीत्यर्थः । ❀ "पदन्०" इत्यादिना दन्तशब्दस्य दद्भावः । आस्यशब्दस्य च आसन् आदेशः । उशब्दः पूरणः ❀ ॥

हे सर्प ! तेरी ऊपरकी पंक्तिके दाँतोंको नीचेकी पंक्तिमें स्थित दाँतों पर मारता हूँ, अर्थात् उन दोनोंको मिलाता हूँ, तथा मेरी ठोड़ीके ऊपर और नीचेके भागोंको भी सींता हूँ, तेरी जीभसे तेरी दूसरी जीभको भी मिलाता हूँ, तेरे मुखके ऊपरके भागको नीचेके मुखसे मिलाता हूँ वा अनेक फन वाले सर्पोंके बहुतसे फनोंको एक दूसरेमें सींतासा हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इदमिद् वा उं भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥ १ ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । भेषजम् । इदम् । रुद्रस्य । भेषजम् ।
येन । इषुम् । एकऽतेजनाम् । शतऽशल्याम् । अपऽब्रवत् ॥ १ ॥

इदम् इद् वै इदमेव खलु करिष्यमाणं भेषजम् अस्य व्रणरोगस्य निवर्तकम् औषधम् । इदमेव रुद्रस्य भेषजम् । रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति रुद्रः । तस्य देवस्य संबन्धि औषधम् । ❀ रोदेर्णिलुक् च [उ० २. २२] इति रक् प्रत्ययः ❀ । किं पुनरिदन्तया निर्दिष्टम् इति तद् आह येनेति । येन भेषजेन महादेवस्त्रिपुरसंहृतिसमये एकतेजनाम् एकस्तेजनो वेणुकाण्डो यस्याः

सा तथोक्ता । शतशल्याम् शतसंख्याकानि शल्यानि अयोमयानि तीक्ष्णानि प्रोतानि यस्याम् ईदृशीम् इषुम् उपब्रुवत् । वेध्यसमीपं प्राप्य प्रायुङ्क्त । तद् इदम् इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

मैं जिस औषधको करूँगा, वह इस रोगको हटाने वाली औषध है और यह वही अन्तकालमें सबको रुलाने वाले रुद्रदेव की औषध है, जिस (एक बाँसकी गाँठ वाली बाँसमें लोहेके सैंकड़ों कील काटे लगी हुई) एकतेजना शतशल्या इषुको शिवने वेधने योग्यके पास पहुँच कर प्रयोग किया था ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

जा॒ला॒षेणा॒भि षि॑ञ्चत जाला॒षेणोप॑ सिञ्चत ।
जा॒ला॒षमु॒ग्रं भे॑ष॒जं तेन॑ नो मृड जी॒वसे॑ ॥ २ ॥

जा॒ला॒षेण॑ । अ॒भि । सि॒ञ्च॒त॒ । जा॒ला॒षेण॑ । उप॑ । सि॒ञ्च॒त॒ ।
जा॒ला॒षम् । उ॒ग्रम् । भे॒ष॒जम् । तेन॑ । नः॒ । मृ॒ड॒ । जी॒वसे॑ ॥ २ ॥

जलाषम् इति उदकनामसु पठितम् । अत्र च विनियोगानुसारेण गोमूत्रफेनलक्षणम् । हे परिचारकाः तेन जलाषेण अभि षिञ्चत व्रणम् अभितः प्रक्षालयत । ❀ षिच क्षरणे । "तुदादिभ्यः शः" । "शे मुचादीनाम्" इति नुम् । "उपसर्गात् सुनोति०" इति षत्वम् ❀ ॥ तथा तेनैव जलाषेण उप सिञ्चत व्रणसमीपं प्रक्षालयत । तद्धि जलाषम् उग्रम् तीक्ष्णं भेषजम् रोगनिवर्तकम् । हे रुद्र तेन जलाषेण नः अस्मान् मृल सुखय जीवसे जीवनार्थम् । जलाषस्य रुद्रसंबन्धिभेषजत्वं दाशतय्यामपि आम्नातम् । "गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्" इति [ऋ० १. ४३. ४] ॥

हे परिचारकों ! तुम गोमूत्रके फेनरूप जलसे व्रणको चारों ओरसे धोओ और उसी गोमूत्रफेनसे व्रणके आसपास धोओ, यह जलाष (गोमूत्रफेन) ही रोगको दूर करने वाली औषध है हे

रुद्र ! उस जलाषसे जीवित रहनेके लिये आप हमको सुख दीजिये † षष्ठी ॥

शं॑ च॑ नो॒ मय॑श्च नो॒ मा च॑ नः॒ किं च॒नाम॑मत् ।
क्ष॒मा रपो॒ विश्वं॑ नो अस्तु भेष॒जं सर्वं॑ नो अस्तु भेष॒जम्

शम् । च॒ । नः॒ । मयः॑ । च॒ । नः॒ । मा । च॒ । नः॒ । किम् । च॒न । आ॒म॒म॒त् ।

क्ष॒मा । रपः॑ । विश्व॑म् । नः॒ । अ॒स्तु॒ । भे॒ष॒जम् । सर्व॑म् । नः॒ । अ॒स्तु॒ । भे॒ष॒जम् ॥ ३ ॥

हे देव नः अस्माकम् शं च रोगस्य शमनं च भवतु । रोगजनितं दुःखं निवर्तताम् इत्यर्थः । मयश्च । मयं इति सुखनाम । सुखं च नः अस्माकं भवतु । अपि च नः अस्माकं संबन्धि किंचन किमपि प्रजापश्वादिकं मा आममत् रोगग्रस्तं मा भूत् । ❀ अम रोगे । अस्मात् एयन्तात् लुङि चङि रूपम् । रप इति पापनाम । रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति हि यास्कः [नि० ४, २१] । “सुपां सुलुक्०” इति षष्ठ्या लुक् ❀ । रपः रपसो रोगनिदानभूतस्य पापस्य क्षमा क्षान्तिः उपशमो भवतु । ❀ क्षमूष् सहने । “षिद्भिदादिभ्यः०” इति भावे अङ् ❀ । विश्वम् समस्तं स्थावरजङ्गमात्मकं नः अस्माकं भेषजम् औषधम् अस्तु । एतदेव आदरार्थं पुनरुच्यते सर्वं न इति । सर्वम् कृत्स्नं कर्म नः अस्माकं भेषजम् अस्तु ॥

[इति] षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

---

† जलाष अर्थात् गोमूत्रका फेन रुद्रसम्बंधी औषध है इसका ऋग्वेदमें भी वर्णन है, यथा—“गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् ॥” ऋग्वेदसंहिता १ । ४३ । ४

हे देव ! हमारे रोगोंकी शांति हो अर्थात् रोगजनित दुःख दूर होजावें । और हमको सुख भी मिले, और हमारे पशु पुत्र आदि जो कुछ हैं वह रोगग्रस्त न हों और रोगके कारणरूप पापकी शांति हो, स्थावरजङ्गमात्मक समस्त विश्व हमारी औषध हो सम्पूर्ण कर्म हमारी औषधरूप हो ॥ ३ ॥

छठे अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (२३०) ॥

"यशसं मेन्द्रः" इति तृचेन यशस्कामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "यशसं मेन्द्र इति यशस्कामः" इति हि सूत्रम् [कौ० ७. १०] ॥

तथा उत्सर्जनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान् आनयेत् । उत्सर्जनं प्रक्रम्य सूत्रितम् । "यशसं मेन्द्रः [६. ५८] गिरावरगराटेषु [६. ६९]" इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु संपातान् आनीय" इति [कौ० १४. ३] ॥

"अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम्" इति तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि "वायोः पूतः" [६. ५१] इति तृचोक्तानि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "शं च नो मयश्च नः [६. ५७. ३] अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम् [६. ५९] मह्यम् आपः [६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः [६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यसमित्पुरोडाशादीनि शष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं हि । "पातं नः [६. ३] इति पञ्च अनुडुद्भ्यः [६. ५९] यमो मृत्युः [६. ९३] विश्वजित् [६. १०७] शकधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १] ॥

"यशसं मेन्द्रः" इस तृचसे यशको चाहने वाला इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"यशसं मेन्द्र इति यशस्कामः" (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा उत्सर्जनकर्ममें इस तृचसे घृतकी आहुति देकर रसोंमें सम्पातोंको लावे । उत्सर्जनका आरम्भ करके सूत्रमें कहा है, कि–"यशसम् मेन्द्रः (६ । ५८) गिरावरगराटेषु (६ । ६९)" इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु सम्पातान् आनीय" (कौशिकसूत्र १४ । ३) ॥

"अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम्" इस तृचका बृहद्गणमें पाठ है अत एव इसका शान्त्युदक आदिमें विनियोग होता है ।

तथा धन उठाने पर होनेवाले विघ्नोंकी शांतिके कर्ममें 'वायोः पूतः' इस छठे काण्डके इक्यावनवें सूक्तमें कहेहुए क्षीरौदन हवन आदि कर्मोंको करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि— "शं च नो मयश्च नः (६ । ५७ । ३) । अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम् (६ । ५९) मह्यम् आपः (६ । ६१) वैश्वानरी रश्मिभिः (६।६२) इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" (कौशिकसूत्र ५ । ५) ।

तथा स्वस्त्ययनकर्ममें इस तृचसे घृत समिधा पुरोडाश आदि पूरी तकके तेरह द्रव्योंकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"पातं नः (६ । ३) इति पञ्च अनडुद्भ्यः (६।५९) यमो मृत्युः (६ । ९३) विश्वजित् (६ । १०७) शकधूमम् (६ । १२८) भवाशर्वौ (११ । २) "इत्युपदधीत" (कौशिकसूत्र ७ । १) ।

तत्र प्रथमा ॥

य॒श॒सं मेन्द्रो॑ म॒घवा॑न् कृणोतु य॒श॒सं द्यावा॑पृथि॒वी
उ॒भे इ॒मे ।
य॒शसं॑ मा दे॒वः स॑वि॒ता कृ॑णोतु प्रि॒यो दा॒तुर्दक्षि॑णाया
इ॒ह स्या॑म् ॥ १ ॥

यशसम् । मा । इन्द्रः । मघऽवान् । कृणोतु । यशसम् । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति ।

यशसम् । मा । देवः । सविता । कृणोतु । प्रियः । दातुः । दक्षिणायाः । इह । स्याम् ॥ १ ॥

मघवान् । मघम् इति धननाम । तद्वान् इन्द्रः मा मां यशसम् यशस्विनं कीर्तियुक्तं कृणोतु करोतु । ❀ यशःशब्दाद् मत्वर्थीयस्य "लुगकारेकाररेफाश्च वक्तव्याः" इति लुक् । तद्धितान्तत्वेन प्रातिपदिकसंज्ञायाम् फिषोन्त उदात्तः [फि० १.१] इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । इमे परिदृश्यमाने उभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ [मा] मां यशसम् यशस्विनं कृणुताम् । देवः दानादिगुणयुक्तः सविता सर्वप्रेरको देवः मा मां यशसम् यशस्विनं कृणोतु करोतु । एवम् उदीरितरीत्या यशस्वी भूत्वा दक्षिणायाः वासोहिरण्यादिरूपाया इह अस्मिन् ग्रामनगरादौ धातुः दातुः प्रियः स्याम् भवेयम् ॥

धन वाले इन्द्रदेव मुझको कीर्तिसम्पन्न करें, ये दोनों द्यावापृथिवी मुझको यशस्वी करें, दानादिगुणसम्पन्न सर्वप्रेरक सविता देवता मुझको यशस्वी करें । इस प्रकार मैं यशस्वी बनकर वस्त्र धन आदि दक्षिणाको धारण करने वालेका प्रिय होजाऊँ ॥१॥

द्वितीया ॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२॥

यथा । इन्द्रः । द्यावापृथिव्योः । यशस्वान् । यथा । आपः । ओषधीषु । यशस्वतीः ।

एव । विश्वेषु । देवेषु । वयम् । सर्वेषु । यशसः । स्याम ॥२॥

यथा येन प्रकारेण द्यावापृथिव्योः द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । द्यावापृथिव्योः अनयोर्लोकयोर्मध्ये इन्द्रो यशस्वान् वृष्टिप्रदानादिकर्मभिः कीर्तिमान् । यथा च आपः ओषधीषु यशस्वतीः यशस्वत्यः । ❀ "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । "तसौ मत्वर्थे" इति भसंज्ञया पदसंज्ञाया निवर्तनात् रुत्वाभावः ❀ । व्रीहियवादिसस्यवृद्धिहेतुत्वेन लोके प्रख्याता इत्यर्थः । एव एवं विश्वेषु सर्वेषु देवेषु तदुपलक्षितेषु सर्वेषु मनुष्येषु च वयं यशसः यशस्विनः स्याम भवेम ॥

जैसे द्यावापृथिवी इन लोकोंके मध्यमें वृष्टिप्रदान आदि कर्मसे इन्द्रदेव यशस्वी हैं, जैसे जल औषधियोंमें यशस्वी हैं अर्थात् धान जौं आदि धान्योंकी वृद्धि करने वाले होनेसे लोकमें प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार सकल देवता और मनुष्योंमें हम यशस्वी होजावें २

तृतीया ॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥ ३ ॥

यशाः । इन्द्रः । यशाः । अग्निः । यशाः । सोमः । अजायत ।

यशाः । विश्वस्य । भूतस्य । अहम् । अस्मि । यशःऽतमः ॥३॥

"यशा इन्द्रः" इत्येषा तृतीया पूर्ववद् अत्र व्याख्येया । ६.३९.३॥

इन्द्रदेव यश चाहते रहते हैं । अग्नि भी यश चाहते हैं, तथा सोम भी यशको चाहते हुए उत्पन्न हुए हैं । जैसे यह इंद्र आदि

यशस्वी हुए हैं, इसी प्रकार यशको चाहने वाला मैं भी देव मनुष्य आदि सब प्राणियोंसे अधिक यशस्वी होता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १ ॥

अनडुत्ऽभ्यः । त्वम् । प्रथमम् । धेनुऽभ्यः । त्वम् । अरुन्धति ।
अधेनवे । वयसे । शर्म । यच्छ । चतुःऽपदे ॥ १ ॥

हे अरुन्धति अरोधनशीले सहदेव्याख्यौषधे शान्त्युदकादौ प्रयुज्यमाना त्वं प्रथमम् पूर्वम् अनडुद्भ्यः अनसः शकटस्य वाहकेभ्यो बलीवर्देभ्यः शर्म सुखं प्रयच्छ । ❀ "वसुस्रन्सुध्वन्स्वनडुहां दः" इति दत्वम् ❀ । तथा धेनुभ्यः दोग्ध्रीभ्यो गोभ्यः शर्म यच्छ । अधेनवे धेनुव्यतिरिक्ताय वयसे पञ्चवर्षाद् अर्वाचीनाय गवाश्वादिजातीयाय चतुष्पदे चतुष्पान्मात्राय शर्म सुखं प्रयच्छ । वयःशब्दस्य उक्तार्थपरता भगवता आपस्तम्बेन दर्शिता । "एकहायनप्रभृत्या पञ्चहायनेभ्यो वयांसि" इति । ❀ चतुष्पद इति । चत्वारः पादा अस्य । "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दस्य अन्त्यलोपः । "पादः पत्" इति पद्भावः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

हे अरोधनशीले सहदेवी नाम वाली औषधि ! शान्त्युदक आदिमें प्रयोग की जाती हुई तू पहिले शकटोंको-गाड़ियोंको-धारण करनेवाले बैलोंके लिये सुख दे, तथा धेनुओंके लिये सुख दे, और धेनुसे अतिरिक्त पाँच वर्षसे कमके गौ घोड़े आदि चौपायोंको सुख दे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।

करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥ २ ॥

शर्म । यच्छतु । ओषधिः । सह । देवीः । अरुन्धती ।

करत् । पयस्वन्तम् । गोऽस्थम् । अयक्ष्मान् । उत । पुरुषान् २

[सहदेवी] सहदेव्याख्या अरुन्धती अभिलषितफलस्य अवारयित्री ओषधिः शर्म सुखं यच्छतु प्रयच्छतु ॥ अस्मदीयं गोष्ठम् गोनिवासदेशं पयस्वन्तम् प्रभूतपयसा युक्तं करत् करोतु ॥ उत अपि च पूरुषान् पुरुषान् पुत्रभृत्यादीन् अस्मदीयान् अयक्ष्मान् अरोगान् करोतु ॥

हे सहदेवी नाम वाली अरुन्धति ! (अभिलषित फलको न रोकने वाली) ओषधे ! तू मुझको सुख दे । और हमारे गोठको बहुतसे दूधसे सम्पन्न कर और हमारे पुत्र पौत्र भृत्योंको रोगरहित कर ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

विश्वऽरूपाम् । सुऽभगाम् । अच्छऽआवदामि । जीवलाम् ।

सा । नः । रुद्रस्य । अस्ताम् । हेतिम् । दूरम् । नयतु । गोभ्यः

विश्वरूपाम् नानारूपां विश्वस्य कृत्स्नस्य फलस्य निरूपयित्रीं वा सुभगाम् सौभाग्यवतीं जीवलाम् जीवो जीवनं प्राणधारणं तद्धेतुत्वेन तद्वतीम् । ❀ "सिध्मादिभ्यश्च" इति मत्वर्थीयो लः ❀ । यद्वा । ❀ ला दाने । ❀ जीवं जीवनं लाति ददातीति जीवला । ❀ "आतोनुपसर्गे कः" ❀ । ईदृशीं सहदेव्याख्याम् ओषधिम् अच्छ आभिमुख्येन वदामि इष्टफलं प्रार्थये । सा तादृशी ओषधिः

रुद्रस्य हिंसकस्य देवस्य अस्ताम् अस्मदभिमुखं क्षिप्तां हेतिम् आयुधं नः अस्माकं संबन्धिभ्यो गोभ्यः सकाशाद् दूरम् दूरदेशं नयतु प्रापयतु । ❀ अस्ताम् इति । असु क्षेपणे । निष्ठायां "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । हेतिम् इति । हन्तेः करणे क्तिनि "ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च" इति निपातितः । गोभ्य इति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य "न गोश्वन्साववर्ण०" इति प्रतिषेधः ❀ ॥

[इति] षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

अनेक रूप वाली सौभाग्यमयी जीवन प्रदान करने वाली सहदेई औषधिके अभिमुख होकर मैं इष्टफलकी प्रार्थना करता हूँ, वह औषधि हिंसक रुद्रदेवकी फैंकी हुई हेति (आयुध) को हमारी गौ आदिसे दूर लेजावे ॥ ३ ॥

छठे अनुवाक में चतुर्थ सूक्त समाप्त (२३२) ॥

"अयम् आ याति" इति तृचेन पतिलाभकर्मणि काकसंचारात् पूर्वम् आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अयम् आ यातीति पुरा काकसंपातात्" इति [कौ० ४. १०] ॥

"मह्यम् आपः" इति तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम् [६. ५९] मह्यम् आपः [६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः [६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा वापीकूपतटाकादिषु जलागमनकामः अनेन तृचेन इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । सूत्रितं हि । "यशसं मेन्द्रः [६. ५८] इति यशस्कामो मह्यम् आपः [६. ६१] इति व्यचस्कामः" इति [कौ० ७. १०] ॥

'अयं आ याति' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे पतिलाभकर्ममें काकोंके संचारसे पहिले घृतकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्र का प्रमाण भी है, कि-'अयं आ यातीति पुरा काकसम्पातात्' (कौशिकसूत्र ४ । १०) ॥

'मह्यम् आपः' इस तृचका बृहद्गणमें पाठ है अत एव शान्त्युदक आदिमें इसका विनियोग करना चाहिये।

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्ममें क्षीरौदनहवन आदि कर्म इस तृचसे करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम् (६ । ५९) मह्यं आपः (६ । ६१) वैश्वानरो रश्मिभिः (६ । ३२) इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्' (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

तथा कपी कूप तालाव आदिमें जल आनेकी इच्छा करने वाला इस तृचसे इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—

'यशसं मेन्द्रः (६ । ५८) इति। यशस्कामो मह्यम् आप (६ । ६१) इति व्यचस्कामः' (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये ॥ १ ॥

अयम् । आ । याति । अर्यमा । पुरस्तात् । विसितऽस्तुपः ।
अस्यै । इच्छन् । अग्रुवै । पतिम् । उत । जायाम् । अजानये ।१।

पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि विषितस्तुपः विशेषेण सितो बद्धः स्तुपो रश्मीनां समुच्छ्रायो यस्य स तथोक्तः। ईदृशोयम् अर्यमा आदित्यः आ याति आगच्छति। किं कुर्वन्। अस्यै अग्रुवै कन्यायै पतिम् इच्छन्। ❀ "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृ-

प्रत्ययः ❀ । पत्यन्वेषणाद्धेतोरित्यर्थः । ❀ "इषुगमियमां छः" इति छत्वम् ❀ ॥ उत अपि च अजानये जायारहिताय जायाम् भार्याम् । दातुम् इच्छन् इत्यर्थः । ❀ न विद्यते जाया यस्येति विगृह्य "जायाया निङ्" इति निङ् आदेशः ❀ । अर्यम्णो विवाहाधिदेवतात्वम् "अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निम् अयक्षत" [आश्व० गृ० १. ७. १३] इति मन्त्रलिङ्गाद् अवगन्तव्यम् ॥

पूर्वदिशामें जिनकी किरणोंका उठान विशेषरूपसे बँधा हुआ है ऐसे आदित्यदेव इस कन्याके लिये पतिको चाहते हुए और स्त्रीरहितको स्त्रीको देनेकी इच्छा करते हुए आरहे हैं † ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अश्र॑मदि॒यम॑र्यमन्न॒न्यासां॒ सम॑नं य॒ती ।
अ॒ङ्गो न्व॑र्यमन्न॒स्या अ॒न्याः सम॑न॒माय॑ति ॥ २ ॥

अश्र॑मत् । इ॒यम् । अ॒र्य॒म॒न् । अ॒न्यासा॑म् । सम॑नम् । य॒ती ।
अ॒ङ्गो॑ इति॑ । नु । अ॒र्य॒म॒न् । अ॒स्याः । अ॒न्या । सम॑नम् । आ॒ऽअय॑ति २

हे अर्यमन् देव इयम् पतिलाभार्थिनी कन्या अश्रमत् श्रान्ता अभिलषितस्य पत्युरलाभेन खिन्ना । ❀ श्रमु तपसि खेदे च ❀ । किं कुर्वती । अन्यासां पतिव्रतानां स्त्रीणां शमनम् पत्युरावर्जनोपायभूतां शान्ति यती प्राप्नुवती । अङ्ग उ अङ्गो । उशब्दः चार्थे । अङ्गेत्याभिमुख्यकरणे । अङ्ग हे अर्यमन अन्याश्च स्त्रियः अस्याः पतिकामाया अनु पश्चात् शमनम् पतिविषयां शान्तिम् आयति प्राप्नुवन्ति । ❀ व्यत्ययेन एकवचनम् ❀ ॥

---

† अर्यमा (सूर्य) देवता विवाहके अधिदेवता हैं । यह बात आश्वलायननगृह्यसूत्रके १ । ७ । १३ वें मंत्रसे सिद्ध है । यथा—'अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निं अयक्षत ॥—कन्याने अर्यमादेवताकी और अग्निदेवताकी पूजा की' ॥

हे अर्यमा देवता ! यह पतिको पाना चाहने वाली कन्या, अन्य पतिव्रता स्त्रियोंने पति पानेके लिये जिस शान्तिको किया था उसको करते २ अभिलषित पतिको न पानेसे खिन्न हो रही है—श्रान्त हो रही है। हे अयमन् ! दूसरी स्त्रियें भी इस पति चाहने वाली कन्याकी शान्ति कर रही हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

धा॒ता दा॑धार पृथि॒वीं धा॒ता द्यामु॒त सूर्य॑म् ।

धा॒तास्या॑ अ॒ग्रुवै॒ पतिं॒ दधा॑तु प्रतिका॒म्य॑म् ॥ ३ ॥

धा॒ता । दा॒धा॒र॒ । पृ॒थि॒वीम् । धा॒ता । द्याम् । उ॒त । सूर्य॑म् ।

धा॒ता । अ॒स्यै । अ॒ग्रवै॑ । पति॑म् । दधा॑तु । प्र॒ति॒ऽका॒म्य॑म् ॥३॥

धाता सर्वस्य जगतो धारयिता विधाता देवः पृथिवीम् भूमिं दाधार धृतवान् । स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । ❀ तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घः ❀ ॥ तथा स एव धाता द्याम् द्युलोकम् ॥ उतशब्दः चार्थे । सूर्यम् सर्वप्रेरकम् आदित्यं च स्वकीये स्थाने धारितवान् ॥ एवं सर्वस्य जगतो नियन्तृत्वात् धातैव अस्या अग्रवै पतिकामायै कन्यायै प्रतिकाम्यम् आभिमुख्येन कामयितव्यं पतिम् भर्तारं दधातु विदधातु करोतु प्रयच्छतु वा । ❀ डुदाञ् दानधारणयोः ❀ ॥

सब जगत्के धारण करने वाले विधाता देवताने पृथिवीको अपने स्थानमें स्थापित किया है और उन्हीं धाता देवताने द्युलोकको और सबके प्रेरक सविता देवताको उनके स्थानमें धारण किया है। इस प्रकार सब जगत्के नियन्ता होनेसे धाता ही इस पतिको चाहने वाली कन्याको अभिमुख होकर कामना करने वाले स्वामीको दें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

म॒ह्यमापो॒ मधु॑म॒देर॑यन्तां॒ म॒ह्यं सूरो॑ अभर॒ज्ज्योति॑षे॒ कम्
मह्यं॑ दे॒वा उ॒त विश्वे॑ तपो॒जा मह्यं॑ दे॒वा स॑वि॒ता व्यचो॑
धात् ॥ १ ॥

मह्य॑म् । आप॑ः । मधु॑ऽमत् । आ । ई॒रय॒न्ता॒म् । मह्य॑म् । सूर॑ः
अ॒भ॒र॒त् । ज्योति॑षे । कम् ।

मह्य॑म् । दे॒वाः । उ॒त । विश्वे॑ । त॒प॒ःऽजा । मह्य॑म् । दे॒वाः । स॒वि॒ता ।
व्यच॑ः । धा॒त् ॥ १ ॥

आपः उदकानि तदभिमानिदेवताः मधुमत् माधुर्योपेतम् आत्मीयं रसं मह्यं मदर्थे एरयन्ताम् आगमयन्तु ॥ तथा सूरः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः मह्यं मदर्थे कम् सुखकरम् आत्मीयं तेजः ज्योतिषे विषयप्रकाशनाय ,अभरत् अहरत् । उत्पादितवान् इत्यर्थः । यद्वा । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वात् ज्योतिषे इति कर्मणि चतुर्थी ❀ । ज्योतिः आत्मीयं प्रकाशम् अहरत् । प्रापयतीत्यर्थः । अस्मिन् पक्षे कम् इति पदपूरणः । ❀ तद्द उक्तं यास्केन । पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिद्विति [नि० १. ६] ❀ ॥ उत अपि च तपोजाः ब्रह्मणस्तपसो जाताः विश्वे सर्वे देवाः मह्यम् । इष्टफलं प्रयच्छन्तु । इति शेषः । ❀ तपसो जायन्ते इति तपोजाः । “जनसनखनक्रमगमो विट्” । “विड्वनोरनुनासिकस्यात्” इति आत्त्वम् ❀ । सविता सर्वस्य प्रेरको देवः व्यचः व्यापनम् इष्टफलप्रापणं मह्यं धात् दधातु विदधातु करोतु प्रयच्छतु वा । ❀ दधातेश्छान्दसे लुङि “गातिस्था०” इति सिचो लुक् ❀ ॥

जल और जलके अभिमानी देवता अपने मधुरता भरे जल को मेरे निमित्त लावें। तथा सबके प्रेरक सूर्यदेवने मेरे लिये सुखदायक तेजको विषयोंको प्रकाशित करनेके लिये उत्पन्न कर दिया है और ब्रह्माजीके तपसे उत्पन्न हुए सब देवता मुझको इष्टफल दें। सबके प्रेरक सविता देवता इष्टफलप्रापणरूप व्याप्तिको मुझमें स्थापित करें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम्
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च

अहम् । विवेच । पृथिवीम् । उत । द्याम् । अहम् । ऋतून् । अजनयम् । सप्त । साकम् ।

अहम् । सत्यम् । अनृतम् । यत् । वदामि । अहम् । दैवीम् । परि । वाचम् । विशः । च ॥ २ ॥

मन्त्रद्रष्टा स्वात्मनः सर्वगतब्रह्मात्मभावम् अनुसंदधानः सर्वकर्तृत्वम् आविष्करोति। पृथिवीं द्यां च अहं विवेच। परस्परविविक्ते असंकीर्णरूपे कृतवान् अस्मि ॥ तथा अहमेव सप्तसंख्याकान्। वसन्ताद्याः षट् संसर्पांहस्पतिसंज्ञकाधिमासाख्यः सप्तमः। एतान् सप्तसंख्याकान् ऋतून् साकं सह परस्परसंहतान् अजनयम् उत्पादितवान् अस्मि ॥ सत्यम् यथार्थम्। अनृतम् अयथार्थम्। सत्यानृतभेदेन यत् लोके प्रसिद्धं वाक्यजातं तद् अहमेव वदामि उच्चारयामि ॥ तथा दैवीम् देवसंबन्धिनीं वाचम् अहमेव परि विशम् परिप्राप्तवान् अस्मि ॥

(मन्त्रद्रष्टा अपने सर्वगत ब्रह्मात्मभावको धारण करता हुआ सर्वकर्तृत्वको प्रकट करता है, कि–) मैंने पृथिवी और स्वर्गको परस्पर

अलग किया है। और मैंने ही वसन्त आदि छः और संसर्पांहस्पति नामक अधिमासरूप सातवीं इस प्रकार सात ऋतुओंको एक दूसरीसे संयुक्त रूपमें उत्पन्न किया है। संसारके जो सत्य और असत्य वाक्य हैं उन सबको मैं ही उच्चारण करता हूँ और दैवीवाणीको भी मैं ही पाता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनयं सप्त सिन्धून्
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे
सखाया ॥ ३ ॥

अहम् । जजान । पृथिवीम् । उत । द्याम् । अहम् । ऋतून् ।
अजनयम् । सप्त । सिन्धून् ।

अहम् । सत्यम् । अनृतम् । यत् । वदामि । यः । अग्नीषोमौ ।
अजुषे । सखाया ॥ ३ ॥

पूर्ववद् योजना। इयांस्तु विशेषः। जजान उत्पादितवान् अस्मि। सिन्धून् सिन्धवः स्यन्दनशीला गङ्गाद्याः सप्त नद्यः सप्त समुद्रा वा। तानपि अहम् उत्पादितवान् अस्मि। स्वात्मनस्तादृक्सामर्थ्यप्राप्तिम् उपपादयति यो अग्नीषोमाविति। अग्नीषोमात्मकं हीदं सर्वं जगत्। श्रूयते हि। "एतावद् वा इदम् अन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नम् अग्निरन्नादः" इति [बृ० आ० १.४.६]। एवं भोक्तृभोग्यात्मकस्य अखिलजगतः कारणभूतौ अग्नीषोमौ योहं ब्रह्मात्मभावेन सखाया सखायौ समानख्यानौ जगन्निर्माणे सहायभूतौ अजुषे सेवितवान् अस्मि। तादृशस्य मम द्यावापृथिव्यादिसर्जनम् उपपन्नम् इत्यर्थः। ❀ अजुषे इति। जुष प्रीतिसे-

वनयोः । अस्मात् लङि उत्तमैकवचने रूपम् । सखाया । "सुपां सुलुक्॰" इति विभक्तेराकारः ❀ ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे षष्ठोनुवाकः

मैंने ही पृथिवीको उत्पन्न किया है, मैंने ही पृथिवी और स्वर्गको उत्पन्न किया है, और मैंने ही गंगा आदि सात नदियोंको और समुद्रोंको उत्पन्न किया है । (अपनेमें इतनी शक्ति होनेका कारण दिखलाते हैं, कि—यह सब जगत् अग्नीषोमात्मक है । इस विषयमें श्रुतिका प्रमाण भी है, कि—'एतावद् वा इदं अन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नं अग्निरन्नादः ॥—यह सब ही अन्न और अन्नको खाने वाला है । सोम ही अन्न है और अग्नि अन्नको खाने वाला है' [बृहदारण्यक १ । ४ । ६] इस प्रकार भोक्ता और भोग्यरूप सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत) अग्नीषोमोंको मैं ब्रह्मात्मभावसे जगत्के निर्माण करनेके कर्ममें सहायकरूपसे सेवन कर चुका हूँ (अतः ऐसे मेरा द्यावापृथिवीको रचना ठीक ही है) ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२३४) ॥

अथर्ववेदके छठे काण्डमें छठा अनुवाक समाप्त ॥

सप्तमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "वैश्वानरो रश्मिभिः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्यस्य तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणे विनियोगः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि अनेन तृचेन क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "मह्यम् आपः [६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः [६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" इति [कौ॰ ५. ५] ॥

तथा अस्य तृचस्य पवित्रगणे पाठात् सर्वयज्ञेषु प्रोक्षणे विनियोगः । "पवित्रैः संप्रोक्षति" इति [कौ॰ ८, २] सूत्रात ॥

अवकीर्णिप्रायश्चित्तार्थं तमेव ब्रह्मचारिणं दर्भरज्ज्वा कण्ठे बद्ध्वा "यत् ते देवी" इत्यनेन तृचेन व्रीहीन् यवान् तिलान् वा जुहुयात् ॥

तथा अनेन तृचेन उदपात्रं संपात्य दर्भरज्ज्वा अवकीर्णिनं संप्रोक्ष्य दर्भरज्जुं विसृजेत् ॥

ब्रह्मचारिणं प्रक्रम्य सूत्रितम् । "यत् ते देवीत्यावपत्येवं संपातवतोदपात्रेणावसिच्य मन्त्रोक्तं शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य"[कौ०५.१०]

तथा अग्निचयने "यत् ते देवी" इति नैर्ऋतेष्टकोपधानानन्तरं रुक्मपाशसहितां प्रास्ताम् आसन्दीम् अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "यत् ते देवीत्यासन्दीं रुक्मपाशां नैर्ऋत्यां प्रास्ताम्" इति [वै० ५. १] ॥

तथा "नमोस्तु ते" इति नैर्ऋतीम् इष्टकाम् उपधीयमानाम् अनुमन्त्रयते । "नमोस्तु ते निर्ऋते" इति हि वैतानम् [वै०५.१] ॥

तत्रैव अग्निचयने "सं समित्" इत्यनया आनुष्टुभीरिष्टका उपधीयमाना ब्रह्मा अनुमन्त्रयते ॥

सातवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें 'वैश्वानरो रश्मिभिः' यह प्रथम सूक्त है । इसके पहिले तृचका बृहद्गणमें पाठ है अत एव शान्त्युदकके अभिमन्त्रणमें इसका विनियोग होता है ।

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्ममें इस तृचसे क्षीरौदनहवन आदि कर्म करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'मह्यम् आपः (६ । ६१) वैश्वानरो रश्मिभिः (६ । ६२) इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्' (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

इस तृचका पवित्रगणमें पाठ है, अतः सवयज्ञोंके प्रोक्षणमें इसका विनियोग होता है । 'पवित्रैः संप्रोक्षति' (कौशिकसूत्र ८ । २) ॥

अवकीर्णिप्रायश्चित्तके लिये उसी ब्रह्मचारीको दर्भकी रस्सीसे कण्ठमें बाँध कर 'यत् ते देवी' इस तृचसे धान जौं वा तिलोंकी आहुति देय ।

तथा इस तृचसे जलपूर्ण पात्रका सम्पातन करके दर्भकी रस्सीसे अवकीर्णीको प्रोक्षित करके दर्भकी रस्सीको अलग कर देय ।

सूत्रमें ब्रह्मचारीके विषयका आरंभ करके कहा है, कि–'यत् ते देवीत्यावपत्येवं संपातवतोदपात्रेणाभिसिच्य मन्त्रोक्तं शान्त्युदकेन सम्प्रोक्ष्य' (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

तथा अग्निचयनमें 'यत् ते देवी' इस सूक्तसे नैर्ऋतेष्टकाका उपधान करनेके अनन्तर रुक्मपाशसहित फैंकी हुई आसन्दी (आसन) का अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–'यत् ते देवीत्यासन्दीम् रुक्मपाशां नैर्ऋत्यां प्रास्ताम्' (वैतानसूत्र ५ । १) ॥

तथा 'नमोस्तु ते' इस सूक्तसे नैर्ऋतीकी रक्खी जाती हुई ईंटका अनुमन्त्रण करे, इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'नमोस्तु ते निर्ऋते' (वैतानसूत्र ५ । १) ॥

तहाँ ही अग्निचयनमें 'सं समित्' इस ऋचासे रक्खी जाती हुई आनुष्टुभी इष्टकाओंका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे ॥

तत्र प्रथमा ॥

वै॒श्वा॒न॒रो र॒श्मिभि॑र्नः पुनातु॒ वा॒तः॑ प्रा॒णेने॑षि॒रो नभो॑भिः ।
द्यावा॑पृथि॒वी पय॑सा॒ पय॑स्वती ऋ॒ताव॑री य॒ज्ञिये॑ नः
पुनीताम् ॥ १ ॥

वै॒श्वा॒न॒रः । र॒श्मिऽभिः॑ । नः॒ । पु॒ना॒तु॒ । वातः॑ । प्रा॒णेन॑ । इ॒षि॒रः ।
नमः॑ऽभिः ।
द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । पय॑सा । पय॑स्व॒ती इति॑ । ऋ॒ताव॑री॒ इत्यृ॒तऽव॑री ।
य॒ज्ञि॒ये इति॑ । नः॒ । पु॒नी॒ता॒म् ॥ १ ॥

वैश्वानरः विश्वनरसंबन्धी सर्वप्राणिषु जाठरात्मना वर्तमानोग्निः रश्मिभिः स्वकीयैः किरणैः नः अस्मान् पुनातु शोधयतु। यद्वा "वैश्वानरो यतते सूर्येण" [ऋ० १. ९८. १]इति लिङ्गात् सूर्योपि वैश्वानर इत्युच्यते। सोपि स्वरश्मिभिः अस्मान् पुनात्वित्यर्थः ॥ तथा वातः वायुः देहमध्ये संचरन् प्राणेन प्राणनव्यापारेण श्वासोच्छ्वासादिरूपेण अस्मान् पुनातु ॥ तथा इषिरः गमनशीलः अन्तरिक्षे संचरन् स एव नभोभिः नभःप्रदेशैरन्तरिक्षप्रदेशैः अस्मान् शोधयतु। ❀ इषिर इति। इष गतौ इत्यस्माद् औणादिकः किरच् प्रत्ययः ❀। द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः। "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः। "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्। "०अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु" इति पर्युदस्तत्वाद् "नोत्तरपदेनुदात्तादौ०" इति निषेधाभावः ❀। कीदृश्यौ द्यावापृथिव्यौ। पयसा सारभूतेन रसेन पयस्वती पयस्वत्यौ सारवत्यौ। ऋतावरी ऋतम् इत्युदकस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा नामधेयम् तद्वत्यौ। ❀ "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् "वनो र च" इति ङीब्रेफौ। पूर्ववत् पूर्वसवर्णदीर्घः ❀। यज्ञिये यज्ञार्हे यज्ञनिष्पादनसमर्थे। ❀ "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः ❀ ॥ एवं गुणविशिष्टे द्यावापृथिव्यौ नः अस्मान् पुनीताम् शोधयताम्। ❀ पूञ् पवने। क्र्यादित्वात् श्नाप्रत्ययः। "ई हल्यघोः" इति ईत्वम् ❀ ॥

सब प्राणियोंमें जठराग्निके रूपसे वर्तमान अग्निदेव अपनी किरणोंसे हमको पवित्र करें और वैश्वानर सूर्यदेव अपनी किरणोंसे हमको पवित्र करें, वायुदेव प्राणरूपसे देहमें विचरण कर हमको पवित्र करें, और अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले वही वायुदेव हमको अन्तरिक्ष प्रदेशोंसे पवित्र करें। सारभूत रससे सार वाले यज्ञको सिद्ध करने वाले द्यावापृथिवी हमको पवित्र करें ॥१॥

१७२८

द्वितीया ॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो
वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् २

वैश्वानरीम् । सूनृताम् । आ । रभध्वम् । यस्याः । आशाः ।
तन्वः । वीतऽपृष्ठाः ।
तया । गृणन्तः । सधऽमादेषु । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् २

वैश्वानरीम् वैश्वानराग्निसंबन्धिनीं सूनृताम् प्रियसत्यात्मिकां वाचं स्तुतिरूपाम् हे जनाः आ रभध्वम् उपक्रमध्वम् । वीतपृष्ठाः विस्तीर्णोपरिभागा आशाः दिशो यस्याः वैश्वानर्या वाचः तन्वः शरीरभूताः । तया वाचा गृणन्तः तं वैश्वानरम् अग्निं स्तुवन्तो वयम् । ❀ गॄ शब्दे । प्वादित्वात् ह्रस्वः ❀ । सधमादेषु । सह माद्यन्ति हृष्यन्ति एषु इति सधमादाः संग्रामाः । ❀ अधिकरणे घञ् । "सधमादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ❀ । तेषु सधमादेषु रयीणाम् धनानां पतयः स्याम वैश्वानरप्रसादात् स्वामिनो भवेम ॥

हे मनुष्यों ! तुम विश्वानरसंबंधी प्रिय सत्य स्तुतिरूपा वाणी का आरंभ करो, जिस वैश्वानरी वाणीके ऊपरके शरीररूप भाग विस्तीर्ण हैं, उस वाणीसे हम वैश्वानर अग्निकी स्तुति करके उनके प्रसादसे संग्रामोंमें धनके स्वामी बनें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः
पावकाः ।

इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ ३ ॥

वैश्वानरीम् । वर्चसे । आ । रभध्वम् । शुद्धाः । भवन्तः । शुचयः । पावकाः ।

इह । इडया । सधऽमादम् । मदन्तः । ज्योक् । पश्येम । सूर्यम् । उत्ऽचरन्तम् ॥ ३ ॥

वैश्वानरीम् वैश्वानराग्निसंबन्धिनीं स्तुतिरूपां वाचम् हे जनाः आरभध्वम् । किमर्थम् । वर्चसे तेजसे । ब्रह्मवर्चसादितेजःप्राप्त्य इत्यर्थः । ततो वैश्वानराग्निप्रसादाद् वयं शुद्धा भवन्तः निष्कल्मषाः सन्तः शुचयः ब्रह्मवर्चसेन दीप्यमानाः कर्मार्हाः पावकाः अन्यस्यापि शुद्धिहेतवः इलया । अन्ननामैतत् । अन्नेन सधमादं मदन्तः परस्परसाहित्येन मदन्तः माद्यन्तः इह अस्मिन् भूलोके अवस्थाय उच्चरन्तम् उद्गच्छन्तं सूर्यं ज्योक् चिरकालं पश्येम । दीर्घायुषो भवेमेत्यर्थः । ❀ अत्र सधमादम् इति एामुलन्तः । तस्यैव धातोरनुप्रयोगश्च ❀ ॥

हे मनुष्यों ! तुम ब्रह्मवर्चस् आदि तेज पानेके लिये वैश्वानर अग्नि की स्तुतिसे भरी हुई वाणीका बोलना आरम्भ करो, तदनन्तर हम वैश्वानर अग्निके प्रसादसे शुद्ध हो, ब्रह्मतेजसे दमकने लगें और दूसरोंको भी पवित्र करने वाले बन जावें और अन्न से परस्पर प्रसन्न रहते हुए चिरकाल तक उदय होते हुए सूर्यको देखें, अर्थात् दीर्घायु होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्

तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि
प्रसूतः ॥ १ ॥

यत् । ते । देवी । निःऽऋतिः । आऽबबन्ध । दाम । ग्रीवासु ।
अविऽमोक्यम् । यत् ।

तत् । ते । वि । स्यामि । आयुषे । वर्चसे । बलाय । अदोमदन् ।
अन्नम् । अद्धि । प्रऽसूतः ॥ १ ॥

देवी द्योतमाना निर्ऋतिः अनिष्टकारिणी देवता हे पुरुष ते तव यद् दाम सर्वेषु अङ्गेषु आबबन्ध पापरूपं पाशम् आबद्धवती तथा ग्रीवासु कण्ठगतासु धमनीषु अविमोक्यम् विमोक्तुं विस्रष्टुम् अशक्यं यद् दाम आबद्धम् ते तत्र सर्वस्मात् शरीरात् तत् तादृशं दाम पापरूपं निर्ऋतिपाशं वि ष्यामि विमुञ्चामि । ❀ षो अन्तकर्मणि । अत्र उपसर्गवशाद् विमोचनम् अर्थः । स्यतिरुपसृष्टो विमोचने इति हि यास्कः [नि० १. १७] । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः ❀ । किमर्थम् । आयुषे चिरकालजीवनाय वर्चसे । तेजसे बलाय च । एवं निर्ऋतिपाशाद् विमुक्तः प्रसूतः अस्माभिरनुज्ञातः सन् अदः विप्रकृष्टकालव्यापि मदम् मदकरं तृप्तिकरम् अन्नम् अद्धि भुङ्क्ष्व । ❀ अद भक्षणे । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" ❀ ॥

हे पुरुष ! अनिष्ट करने वाले प्रकाशमय निर्ऋति देवताने तेरे सब अङ्गोंमें जो पापरूप पाश बाँध दिया है, कण्ठकी नसोंमें जो न छुड़ा सकने योग्य पाश बाँध दिया है, मैं उस पापरूप रस्सीको तुझे चिरकालतक जीवित रखनेके लिये तथा तेज और बलसम्पन्न रखनेके लिये तेरे इन सकल अंगोंसे अलग करता हूँ, इस प्रकार निर्ऋतिके पाशसे छूटा हुआ तू हमारे अनुज्ञा देने पर इस समय तू इस मदकारी अन्नको खा ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

नमोस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोयस्मयान् वि चृता
बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो
अस्तु मृत्यवे ॥ २ ॥

नमः । अस्तु । ते । निःऽऋते । तिग्मऽतेजः । अयस्मयान् । वि ।
चृत । बन्धऽपाशान् ।
यमः । मह्यम् । पुनः । इत् । त्वाम् । ददाति । तस्मै । यमाय ।
नमः । अस्तु । मृत्यवे ॥ २ ॥

हे तिग्मतेजः तीक्ष्णदीप्ते हे निर्ऋते अनिष्टकारिणि देवते ते तुभ्यं नमोस्तु अस्माभिः कृतो नमस्कारो भवतु । तेन प्रीता त्वम् अयस्मयान् अयोमयान् अतिदृढान् बन्धपाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् वि चृत विमुञ्च । ❀ चृती हिंसाग्रन्थनयोः । तुदादित्वात् शः ❀ ॥ हे साधक पुरुष त्वां निर्ऋतिपाशविमोके सति मह्यं यमः पुनरेव ददाति । निर्ऋतिपाशेन पूर्वं मृतप्रायोभूः इदानीं तद्विमोकेन लब्धजीवनत्वाद् यम एव त्वां पुनर्दत्तवान् इत्यर्थः । तस्मै यमाय मृत्यवे प्राणापहारिणे नमोस्तु ॥

हे अनिष्टकारिणी तीक्ष्ण दीप्तिवाली पापदेवते निर्ऋते ! तुझे हमारा नमस्कार प्राप्त हो, उससे प्रसन्न होकर तू हमारे लोहेके परम दृढ़ बन्धनोंको खोल । हे साधक ! निर्ऋतिके पाशोंसे छुटकारा होने पर तुझको यमदेव मुझे फिर दे रहे हैं अर्थात् तू पहिले निर्ऋतिके पाशोंसे मृतप्राय होरहा था, अब उनसे छुट-

कारा मिलने पर जीवन पानेसे यमने तुझको फिर देदिया है, ऐसे प्राणापहारक यमके लिये–मृत्युके लिये नमस्कार हो ॥२॥

षष्ठी ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्

अयस्मये । द्रुऽपदे । बेधिषे । इह । अभिऽहितः । मृत्युऽभिः । ये । सहस्रम् ।

यमेन । त्वम् । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । उत्ऽतमम् । नाकम् । अधि । रोहय । इमम् ॥ ३ ॥

अयस्मये अयोविकारे शृङ्खलादौ द्रुपदे दारुनिर्मिते पादबन्धने हे निर्ऋते त्वं यदा बेधिषे पुरुषं यदा बध्नासि तदा इह अस्मिन् लोके स पुरुषः मृत्युभिः मृत्युपाशैः अभिहितः बद्धो भवति । ❀ अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते ❀ । मृत्यवो विशेष्यन्ते । ये प्रसिद्धाः ज्वरादिरोगाः रक्षःपिशाचादयश्च सहस्रम् सहस्रसंख्याका मरणहेतुभूताः सन्ति । तैर्मृत्युभिरिति संबन्धः ॥ हे निर्ऋते त्वं यमेन त्वदधिष्ठात्रा पितृभिः पितृदेवताभिश्च संविदाना ऐकमत्यं गता उत्तमम् उत्कृष्टतमं नाकम् दुःखसंस्पर्शशून्यं सुखम् इमं पुरुषम् अधि रोहय प्रापय । ❀ संविदान इति । संपूर्वाद् विदेः "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ❀ ॥

हे निर्ऋते ! जिस समय तू पुरुषको लोहेकी बेड़ी आदिमें और वृक्षसे बने हुए पैरोंको पकड़नेकी बेड़ीमें बांधता है, उस समय इस लोकमें वह पुरुष मृत्युके ज्वर राक्षस आदि सहस्रों पाशोंसे बँधा हुआ होता है । हे निर्ऋते ! तू अपने अधिष्ठात्री

देवता यमसे और पितरोंसे भी एकमत होकर इस पुरुषको दुःख के स्पर्शसे शून्य स्वर्गमें पहुँचा ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

संस॒मिद् यु॑वसे वृष॒न्नग्ने॒ विश्वा॑न्य॒र्य आ ।
इ॒डस्प॒दे समि॑ध्यसे॒ स नो॒ वसू॒न्या भर ॥ ४ ॥

सम्ऽस॑म् । इत् । यु॒व॒से॒ । वृ॒ष॒न् । अग्ने॑ । विश्वा॑नि । अ॒र्यः । आ ।
इ॒डः । प॒दे । सम् । इ॒ध्य॒से॒ । सः । न॒ः । वसू॑नि । आ । भ॒र॒ ४

हे वृषन् कामानां वर्षितः अग्ने अर्यः स्वामी त्वम् आ समन्ताद् विश्वानि सर्वाणि धनानि संसम् इद् युवसे संयुवस एव सर्वथा सम्यक् प्रापयसि । ❀ “प्रसमुपोदः पादपूरणे” इति समो द्विर्वचनम् । युमिश्रणे इति धातुः । “अर्यः स्वामिवैश्ययोः” इति निपातितः अर्यशब्दः । “अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्” [फि० १. १८] इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । स त्वम् इडस्पदे इलाया भूम्याः पदे स्थाने उत्तरवेदिलक्षणे । “एतद् वा इलायास्पदं यद् उत्तरवेदिनाभिः” इति ऐतरेयकम् [ऐ० ब्रा० १, २८] । तत्र समिध्यसे संदीप्यसे । ❀ “आतो धातोः” इत्यत्र आत इति योगविभागाद् इडाशब्दस्य आल्लोपः । “इडाया वा” इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ । स तादृशस्त्वम् । नः अस्मभ्यं वसूनि धनानि आ भर आहर प्रयच्छ ॥

[इति] सप्तमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले स्वामिन् अग्निदेव ! आप सब प्रकारके धनोंको भली प्रकार प्राप्त कराते हैं, ऐसे आप उत्तर-

वेदीरूप ‡ भूमिस्थान (इडास्पद) दिप रहे हैं, ऐसे आप हमको धन दीजिये ॥ १ ॥

सप्तम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२३६) ॥

"सं जानीध्वम्" इति तृचेन सांमनस्यकर्मणि उदकुम्भं सुराकुम्भं वा संपात्य अभिमन्त्र्य सूत्रोक्तप्रकारेण ग्राममध्ये निनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि त्रिवर्षदेशीयाया वत्सतर्या मांसविशेषम् अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य आशयेत् ॥

तथा भक्तम् अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य प्राशयेत् ॥

तथा सुरां प्रपोदकं वा अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

सूत्रितं हि । "सहृदयम् [३. ३०] तद् षु [५. १. ५] सं जानीध्वम् [६. ६४] एह यातु [६. ७३] सं वः पृच्यन्ताम्" [६. ७४] इति प्रक्रम्य "उदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति । एवं सुराकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि पिशितानि आशयति" इत्यादि [कौ० २. ३] ॥

"अव मन्युः" इति तृचेन संग्रामजयकर्माणि कुर्यात् । तानि च आज्यहोमः सक्तुहोमः धनुरिध्मेऽग्नौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मेऽग्नौ शरसमिदाधानम् संपातिताभिमन्त्रितधनुःप्रदानं च प्रत्येतव्यानि । एतेषु कर्मसु अनुष्ठितेषु संग्रामे दृष्टमात्रेण शत्रवः पलायन्ते । तद् उक्तं संहिताविधौ । "अदारसृत् [१. २०] स्वस्तिदाः [१. २१] अव मन्युः [६. ६५]" इति प्रक्रम्य "आज्यसक्तून् जुहोति" इत्यादि [कौ० २. ५] ॥

तथा अस्य तृचस्य अपराजितगणे पाठाद् "अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्" इत्यादिषु [कौ० १४. ३] गणप्रयुक्तो विनियोग उन्नेयः ॥

---

‡ ऐतरेय ब्राह्मण १ । २८ में कहा है, कि—"एतद् वा इलायास्पदं यद् उत्तरवेदीनाभिः ॥—यही पृथ्वीका स्थान है, जो उत्तरवेदीकी नाभि है" ॥

'सं जानीध्वम्' इस तीन ऋचा वाले सूक्तसे सांमनस्य कर्ममें जलपूर्ण कुम्भ वा सुराकुम्भका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके उसको सूत्रोक्तरीतिसे ग्रामके मध्यमें लावे ।

तथा तहाँ ही इस कर्ममें तीन वर्षकी वत्सतरीके मांसविशेषको इस तृचसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके भक्षण करे ।

तथा सुरा वा बावड़ीके जलको इस सूक्तसे संपातन और अभिमन्त्रण करके पिलावे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'सहृदयम् (३ । ३०) तदू षु (५ । १ । ५) सं जानीध्वम् (६ । ६४) एह यातु (६ । ७३) सं वः पृच्यन्ताम्' (६ । ७४) इति प्रक्रम्य 'उदकुलिजं सम्पातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति । एवं सुराकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्या शुक्त्यानि पिशितानि आशयति०' (कौशिकसूत्र २ । ३) ॥

'अव मन्युः' इस तृचसे संग्रामजयके कर्म करे । वे कर्म ये हैं, कि—घृतका होम सत्तुओंका होम, धनुषरूपी ईंधन वाली अग्निमें धनुषरूपी समिधाओंका आधान, बाणरूपी ईंधन वाली अग्निमें बाणरूपी समिधाओंका आधान तथा सम्पातित और अभिमन्त्रित धनुषका प्रदान । इन कर्मोंका अनुष्ठान करने पर देखनेसे ही शत्रु भाग जाते हैं । इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि—'अदारसृत् (१ । २०) स्वस्तिदाः (१ । २१) अव मन्युः (६ । ६५)' इति प्रक्रम्य आज्यसक्तून् जुहोति' (कौशिकसूत्र २ । ५) ॥

तथा इस तृचका अपराजितगणमें पाठ है अत एव 'अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात् ॥—अभयगणके और अपराजित गणके सूक्तोंसे घृतकी आहुति देय' (कौशिकसूत्र १४ । ३) के अनुसार जहाँ इस गणका प्रयोग हो तहाँ इसका भी विनियोग समझना चाहिये ॥

तत्र प्रथमा ॥

स जा॑नीध्वं॒ सं पृ॑च्यध्वं॒ सं वो॒ मनां॑सि जानताम् ।
दे॒वा भा॒गं यथा॒ पूर्वे॑ संजाना॒ना उ॒पास॑ते ॥ १ ॥

सम् । जा॒नी॒ध्व॒म् । सम् । पृ॒च्य॒ध्व॒म् । सम् । वः॒ । मनां॑सि ।
जा॒न॒ता॒म् ।

दे॒वाः । भा॒गम् । यथा॑ । पूर्वे॑ । स॒म्ऽजा॒ना॒नाः । उ॒प॒ऽआस॑ते ॥ १ ॥

हे सांमनस्यकामा जनाः यूयं सं जानीध्वम् समानज्ञानयुक्ता भवत । ज्ञानस्य सर्वव्यवहारमूलत्वात् तद्विगानाभावः प्रथमं प्रार्थ्यते । ❀ ज्ञा अवबोधने । "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इति आत्मनेपदम् । "ज्ञाजनोर्जा" इति जा आदेशः ❀ । एवं समानज्ञानाः सन्तस्ततः सं पृच्यध्वम् संसृष्टकार्या भवत । ❀ पृची संपर्के ❀ । समानज्ञानत्वसिद्धये तत्करणस्यापि एकविषयतां प्रार्थयते । वः युष्माकं मनांसि ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तानि अन्तःकरणानि सं जानताम् समानम् एकविधम् अर्थं जानन्तु । परस्परविरुद्धज्ञानजनकानि मा भूवन्नित्यर्थः । उक्तं अर्थं दृष्टान्तेन द्रढयति देवा भागम् इति । यथा खलु पुरा देवा इन्द्रादयः संजानानाः समानकार्यज्ञानाः सन्तः पूर्वे असुरेभ्यः पूर्वभाविनः भागम् यजमानैः परिकल्पितं हविर्भागम् उपासते प्राप्नुवन्ति । अतो यूयमपि तद्वत् परस्परविद्वेषपरिहारेण सञ्जानाना इष्टफलं भजतेति भावः । तच्च देवानां सांमनस्यं तैत्तिरीयके "देवासुराः संयत्ता आसन् । ते देवा मिथो विप्रिया आसन्" [तै० सं० ६. २. २. १] इत्यादिप्रतिपादिताख्यायिकया अवगन्तव्यम् ॥

हे सांमनस्य (एकसा चित्त होने) की इच्छा करने वालो ! तुम समान ज्ञान वाले होजाओ (ज्ञान सब व्यवहारोंका मूल है

अतः पहिले उसकी एकताकी ही प्रार्थना की है) और समान ज्ञान होने पर परस्पर एक कार्यको करनेमें संलग्न होजाओ (समान ज्ञानत्वकी सिद्धिके लिये उसके करणकी भी एकविषयताकी प्रार्थना करते हैं, कि–) तुम्हारी ज्ञानोत्पत्तिके निमित्त अन्तःकरण एक प्रकारके अर्थको जानें अर्थात् परस्पर विरुद्ध ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले न हों (इस बातको दृष्टान्तसे दृढ़ करते हैं, कि–) जैसे इन्द्र आदि देवता एक ही कार्यका ज्ञान रख कर यजमानोंसे कल्पित हविको असुरोंसे पहिले ही पा जाते हैं। अत एव तुम भी परस्परके विद्वेषको छोड़ कर इष्टफलको प्राप्त करो † ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

स॒मा॒नो मन्त्र॒ः समि॑तिः समा॒नी स॑मा॒नं व्र॒तं स॒ह
चि॒त्तमे॑षाम् ।
स॒मा॒नेन॑ वो ह॒विषा॑ जु॒होमि समा॒नं चेतो॑ अ॒भिसंवि॑शध्वम् ॥ २ ॥

स॒मा॒नः । मन्त्र॒ः । सम्ऽइतिः । स॒मा॒नी । स॒मा॒नम् । व्र॒तम् । स॒ह ।
चि॒त्तम् । ए॒षा॒म् ।
स॒मा॒नेन॑ । व॒ः । ह॒विषा॑ । जु॒हो॒मि । स॒मा॒नम् । चे॑तः । अ॒भि॒ऽसंवि॑शध्वम् ॥ २ ॥

---

† देवताओंके एकमत होनेका वर्णन तैत्तिरीयसंहितामें है, कि 'देवासुरा संयत्ता आसन् । ते देवा मिथो विप्रिया आसन् ॥– देवता और असुर एक कार्य पर तयार होगए थे, परन्तु देवता आपसमें अप्रिय होगए' इत्यादि ।

मन्त्रः गुप्तभाषणं कार्याकार्यपर्यालोचनात्मकम् तदपि समानः एकरूपो भवतु । ❀ मत्रि गुप्तभाषणे । अस्माद् भावे घञ् । “ञ्नित्यादिर्नित्यम्” इति आदिरुदात्तः ❀ ॥ तथा समितिः सङ्गतिः कार्येषु प्रवृत्तिः । सापि समानी एकरूपा भवतु । ❀“केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य०” इति ङीप् । उदात्तनिवृत्तिस्वरेण ङीप उदात्तत्वम् ❀ ॥ तथा व्रतम् । कर्मनामैतत् । कर्मापि समानम् एकरूपं भवतु । चित्तम् अन्तःकरणम् तदपि एषां सह एकविधं भवतु । उक्तफलस्य सिद्धये समानेन साधारणेन ऐक्यजनकेन वः युष्माकं सम्बन्धिना हविषा आज्यादिना जुहोमि । आज्यम् अग्नौ मन्त्रेण प्रक्षिपामीत्यर्थः । ❀ “तृतीया च होश्छन्दसि” इति कर्मणि तृतीया ❀ । यस्माद् एवं तस्मात् समानम् एकरूपं चेतः चित्तम् अभिसंविशध्वम् आभिमुख्येन संप्राप्नुत ॥

इन पुरुषोंका कार्य और अकार्य का विचारनारूप ज्ञान समान अर्थात् एकरूप हो और कार्योंमें प्रवृत्ति भी एकसी हो, और इन का कर्म भी एकसा हो, इनका अन्तःकरण भी एकसा हो, मैं उक्तफलको सिद्ध करनेके लिये ऐक्यजनक घृत आदि तुम्हारी एकसी हविकी आहुति देता हूँ, इससे तुम एकसे चित्तको प्राप्त करो

तृतीया ॥

स॒मा॒नी व॒ आकूतिः समा॒ना हृद॑यानि वः ।
स॒मा॒नम॑स्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ व॒ः सुस॒हास॑ति ॥ ३ ॥

स॒मा॒नी । व॒ः । आऽकू॑तिः । स॒मा॒ना । हृद॑यानि । व॒ः ।

स॒मा॒नम् । अ॒स्तु॒ । व॒ः॑ । मन॑ः । यथा॑ । व॒ः । सु॒ऽसह॑ । अस॑ति ३

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकम् आकूतिः संकल्पः समानी एकरूपा भवतु ॥ तथा वः युष्मदीयानि हृदयानि संकल्पजनकानि

हृत्पुण्डरीकमध्यवर्तीनि अन्तःकरणानि समाना समानानि एकरूपाणि भवन्तु । ❀ "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀ ॥ तथा वः युष्माकं मनः एतत्संज्ञकं सुखाद्यापरोक्ष्यजनकम् इन्द्रियं समानम् एकरूपम् अस्तु । यथा येन प्रकारेण वः युष्माकं सर्वं कार्यं सुष्ठु सह असति भवति । तथा सांमनस्यं करोमीत्यर्थः । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति अस्तेः परस्य शपो लुगभावः ❀ ॥

हे सांमनस्यको चाहने वाले पुरुषों ! तुम्हारा सङ्कल्प एकसा हो और सङ्कल्पोंको उत्पन्न करने वाले हृदयकमलके भीतर रहने वाले तुम्हारे अन्तःकरण एकसे हों, तथा सुख आदिका प्रत्यक्ष कराने वाली तुम्हारी मन नाम वाली इन्द्रिय एकरूप होजाय, जिस प्रकार तुम्हारा सब कार्य शोभनरीतिसे साथ २ हो तिसके लिये मैं सांमनस्य कर्मको करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अव॑ म॒न्युर॒वाय॒ताव॑ बा॒हू म॑नो॒युजा॑ ।
परा॑शर॒ त्वं ते॒षां॑ परा॑ञ्चं॒ शुष्म॑मर्द॒याधा॑ नो र॒यिमा कृ॑धि १

अव॑ । म॒न्युः । अव॑ । आऽय॑ता । अव॑ । बा॒हू इति॑ । म॒नः॒ऽयुजा॑ ।
परा॑ऽशर । त्वम् । तेषा॑म् । परा॑ञ्चम् । शुष्म॑म् । अ॒र्द॒य॒ । अध॑ ।
नः॒ । र॒यिम् । आ । कृ॒धि॒ ॥ १ ॥

शत्रुसंबन्धी मन्युः क्रोधः । "अव मन्युं तनोमि ते" [६. ४२. २] इति अन्यत्राम्नानात् तत इति संबध्यते । अवततः शत्रुपातितस्तिरस्कृतो विनष्टो भवतु ॥ तथा आयता आयतानि आयम्यमानानि धनुःप्रभृतीनि आयुधानि अवततानि स्वस्वकार्यासमर्थानि भवन्तु । ❀ आङ्पूर्वाद् यमे कर्मणि निष्ठा । "अनुदात्तोपदेश०" इति अनुनासिकलोपः । "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति

शेर्लोपः ❀ ॥ तथा बाहू शत्रुसंबन्धिनौ मनोयुजा मनोयुजौ मनःसहितौ अव अवाचीनौ आयुधोद्यमनाशक्तौ । भवताम् इत्यर्थः । हे पराशर परागत्य शृणाति हिनस्ति शत्रून् इति पराशर इन्द्रः । “इन्द्रो बोद्य पराशरीत्” [६. ६६. २] इत्यत्र समाम्नानात् । ०पराशर इति निगमो भवतीति [नि० ६. ३०] यास्कवचनाच्च । ❀ शॄ हिंसायाम् । अस्मात् पचाद्यच् ❀ । हे तादृश । त्वं तेषां शत्रूणां शुष्मम् । बलनामैतत् । शोषकं बलं पराञ्चम् पराङ्मुखम् अस्मदनभिमुखं यथा भवति तथा अर्दय बाधस्व । ❀ अर्द हिंसायाम् ❀ ॥ अथ अनन्तरं रयिम् धनं शत्रूणां स्वभूतं नः अस्माकम् आ कृधि आभिमुख्येन कुरु । प्रयच्छेत्यर्थः । ❀ करोतेरुत्तरस्य विकरणस्य “बहुलं छन्दसि” इति लुक् । “श्रुशृणुपॄकृवृभ्यः०” इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

शत्रुका क्रोध नष्ट होजाय, शत्रुके तानेहुए धनुष आदि आयुध अपने कार्यको करनेमें असमर्थ रहें, शत्रुकी भुजाएँ और मन आयुधोंको उठानेमें असमर्थ होजावें, हे लौट कर शत्रुओंको मारने वाले पराशर इन्द्र ! आप शत्रुओंके बलको हमसे पराङ्मुख करके नष्ट करिये, इसके अनन्तर शत्रुओंके धनोंको हमारे सामने करिये अर्थात् हमको देदीजिये ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

निर्ह॑स्तेभ्यो नैर्ह॒स्तं यं दे॑वा॒ः शरु॒मस्य॑थ ।
वृ॒श्चामि॒ शत्रू॑णां बा॒हून॒नेन॑ ह॒विषा॒हम् ॥ २ ॥

निःऽह॑स्तेभ्यः । नै॒ःऽह॒स्तम् । यम् । दे॒वा॒ः । शरुम् । अस्यथ ।
वृ॒श्चामि॑ । शत्र॑णाम् । बा॒हून् । अ॒नेन॑ । ह॒विषा॑ । अ॒हम् ॥ २ ॥

हे देवाः निर्हस्तेभ्यः निर्गता हस्ता येभ्यस्ते निर्हस्ताः । निर्गत-

हस्तसामर्थ्या इत्यर्थः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । असुराणां निर्हस्तत्वप्राप्तय इत्यर्थः । नैर्हस्तम् निर्हस्तत्वप्रापकं यं शरुम् हिंसकं बाणाद्यायुधम् अस्यथ क्षिपथ । ❀ शॄ हिंसायाम् । शॄस्वृस्निही-त्यादिना [उ० १. १०] उप्रत्ययः ❀ । अनेन शरादिरूपेण हविषा हूयमानेन देवसंबन्धिनैव आयुधेन शत्रूणां बाहून् आयुधग्रहणार्थान् अहं वृश्चामि छिनद्मि । ❀ ओव्रश्चू छेदने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् ❀ ॥

हे देवताओ ! तुम असुरोंकी हस्तशक्तिको क्षीण करनेके लिये जिस हस्तशक्तिको क्षीण करने वाले बाणको फैंकते हो, उस होमी जातीहुई बाणरूप देवताओंकी हविसे मैं आयुध ग्रहण करने में समर्थ शत्रुओंकी भुजाओंको काटता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥

इन्द्रः । चकार । प्रथमम् । नैःऽहस्तम् । असुरेभ्यः ।
जयन्तु । सत्वानः । मम । स्थिरेण । इन्द्रेण । मेदिना ॥ ३ ॥

इन्द्रः देवानाम् अधिपतिः प्रथमम् पूर्वम् असुरेभ्यः शत्रुभ्यो नैर्हस्तम् निर्हस्तत्वं हस्तसामर्थ्यवैकल्यं चकार कृतवान् । तादृशेन इन्द्रेण स्थिरेण युद्धकर्मणि दृढेन मेदिना स्निग्धेन सहायभूतेन मम मदीयाः सत्वानः सादयन्ति विशरणं प्रापयन्तीति योद्धृजनाः सत्वानः । ❀ सदेरन्तर्भावितण्यर्थात् क्वनिप् ❀ । जयन्तु शत्रून् पराजितान् कुर्वन्तु । ❀ मेदिनेति । ञिमिदा स्नेहने । "शमित्यष्टाभ्यः०" इति घिनुण् प्रत्ययः अस्मादपि द्रष्टव्यः । यद्वा "नन्दिग्रहिपचादिभ्यः०" इति ग्रहादेराकृतिगणत्वात् णिनिः ❀ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

देवताओंके अधिपति इन्द्रदेवने पूर्व समयमें असुरोंको हस्त-शक्तिसे हीन कर दिया था, ऐसे दृढ़ रहने वाले मुझसे स्नेह करने वाले इन्द्रके कारण विशीर्ण करने वाले मेरे योधा शत्रुओंको जीतें अर्थात् इन्द्रदेव मेरे मित्र हैं अतः उनके अनुग्रह पर ध्यान रख कर हमारे योधा शत्रुओंको जीतें ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें दूसरा सूक्त समाप्त (२३८) ॥

“निर्हस्तः” इति तृचस्य “अव मन्युः” [६. ६५] इति तृचवत् संग्रामजयकर्मणि विनियोगो द्रष्टव्यः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

“परि वर्त्मानि” इति तृचस्य “निर्हस्तः” [६. ६६] इति तृचवत् संग्रामजयकर्मणि विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा अनेन तृचेन परसेनाया विद्वेषणत्रासनकामो राजा सेनां त्रिः परिगच्छेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन संपातिताभिमन्त्रितसोममणिं चर्मवेष्टितं कृत्वा राज्ञे बध्नीयात् । सूत्रितं हि । “परि वर्त्मानि [६. ६७] इन्द्रो जयाति [६. ९८] इति राजा त्रिः सेनां परियाति । उक्तः पूर्वस्य सोमांशुः” इति [कौ० २. ७] ॥

अनयोस्तृचयोः अपराजितगणे पाठाद् “अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्” [कौ०१४.३]इत्यादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः ॥

“निर्हस्तः” इस तृचका “अव मन्युः” इस छठे काण्डके पैंसठवें तृचके समान संग्रामजयकर्ममें विनियोग करना चाहिये । सूत्र भी तहाँ ही लिखा है ।

तथा शत्रुकी सेनाको डराना चाहनेवाला वा शत्रुकी सेनामें विद्वेष फैलाना चाहने वाला राजा इस तृचसे सेनाकी तीन परिक्रमा करे।

तथा इसी कर्ममें इस तृचसे सम्पातित अभिमन्त्रित सोममणि को चमड़ेसे लपेट कर राजाके बाँध देवे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–“परि वर्त्मानि (६ । ६७) इन्द्रो जयाति

(६ । ९८) इति राजा त्रिः सेनां परियाति । उक्तः पूर्वस्य सोमांशुः” (कौशिकसूत्र २ । ७) ॥

इन दोनों तृचोंका अपराजितगणमें पाठ है । अतः ‘अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात् ॥—अभयगणके और अपराजितगणके सूक्तोंसे घृतकी आहुति देय’ इस कौशिकसूत्र १४ । ३ के अनुसार जहाँ २ अपराजितगणका पाठ हो तहाँ २ सर्वत्र इसका विनियोग करना चाहिये ।

तत्र प्रथमा ॥

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान्
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः १

निःऽहस्तः । शत्रुः । अभिऽदासन् । अस्तु । ये । सेनाभिः । युधम् । आऽयन्ति । अस्मान् ।
सम् । अर्पय । इन्द्र । महता । वधेन । द्रातु । एषाम् । अघऽहारः । विऽविद्धः ॥ १ ॥

अभिदासन् उपक्षपयन् अस्माकं पीडां कुर्वन् शत्रुः निर्हस्तोस्तु निर्गतहस्तसामर्थ्यो भवतु । ❀ शत्रुरिति जातावेकवचनम् ❀ । ये शत्रवः सेनाभिः स्वकीयाभिः युधम् योद्धुम् अस्मान् आयन्ति अभिगच्छन्ति हे इन्द्र तान् शत्रून् महता प्रौढेन वधेन हननसाधनेन आयुधेन वज्रेण समर्पय संयोजय । एषां शत्रूणां मध्ये यः शूरो भटः अघहारः अघस्य मरणलक्षणस्य दुःखस्य प्रापयिता असौ विविद्धः विशेषेण ताडितः सन् द्रातु कुत्सितां गतिं प्राप्नोतु । ❀द्रा कुत्सितायां गतौ । अघहार इति । अघशब्दोपपदात् हरतेर्ण्यन्तात् “कर्मण्यण्” इति अण् प्रत्ययः । विविद्ध इति व्यध ताडने । “ग्रहिज्या०” इत्यादिना संप्रसारणम् ❀ ॥

हमको पीड़ा देता हुआ शत्रु हाथकी शक्तिसे रहित होजावे, जो शत्रु अपनी सेनाके साथ हमसे लड़नेके लिये आरहे हैं हे इन्द्र ! उनको आप घोर संहार करने वाले वज्रसे संयुक्त करिये, इन शत्रुओंमें जो हमको मरणरूप दुःखका देने वाला हो, वह बहुत ही पिट कर कुत्सित गतिको प्राप्त होजावे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ॒त॒न्वा॒ना आ॒यच्छ॒न्तोस्य॑न्तो॒ ये च॒ धाव॑थ ।
निर्ह॑स्ताः शत्रवः स्थ॒नेन्द्रो॑ वो॒द्य परा॑शरीत् ॥ २ ॥

आ॒ऽत॒न्वा॒नाः । आ॒ऽय॑च्छन्तः । अ॒स्य॑न्तः । ये । च॒ । धाव॑थ ।
निःऽह॑स्ताः । श॒त्र॒वः॒ । स्थ॒न॒ । इन्द्रः॑ । व॒ः । अ॒द्य । परा॑ । अ॒श॒री॒त्

आतन्वानाः धनूंषि आततज्यानि कुर्वाणाः आयच्छन्तः शरसंधानेन धनूंषि आकर्षन्तः अस्यन्तः शरान् क्षिपन्तः धनुःसकाशाद् नुदन्तो ये शत्रवः ये च यूयं धावथ अस्मदभिमुखं शीघ्रं गच्छथ । ❀ "पाघ्रा०" इत्यादिना "सर्तेर्वेगितायां गतौ" इति धावादेशः ❀ । ते यूयं शत्रवः निर्हस्ताः निर्वीर्यहस्ताः स्तन भवत । ❀ अस्तेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनानेशः ❀। अद्य इदानीं वः युष्मान् इन्द्रः पराशरीत् पराहतान् अकार्षीत् । ❀ शॄ हिंसायाम् । लुङि रूपम् ❀ ॥

हे शत्रुओं ! धनुष पर प्रत्यञ्चाओंको चढ़ाते हुए और धनुषको तानते हुए और बाणोंको छोड़ते हुए हमारी ओर दौड़ कर आते हुए तुमको इस समय इन्द्रदेव पराजित करके मार डालें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

निर्ह॑स्ताः सन्तु शत्र॒वोऽङ्गै॑षां म्लापयामसि ।

अथै॑षामिन्द्र॒ वेदां॑सि शत॒शो वि भ॑जामहै ॥ ३ ॥

निःऽहस्ताः । स॒न्तु॒ । शत्र॑वः । अङ्गा॑ । ए॒षा॒म् । म्ला॒प॒या॒म॒सि॒ ।

अथ॑ । ए॒षा॒म् । इ॒न्द्र॒ । वेदां॑सि । श॒त॒ऽशः । वि । भ॒जा॒म॒है॒ ॥३॥

अस्मदीयाः शत्रवः निर्हस्ताः सन्तु भवन्तु । एषां शत्रूणाम् अङ्गा अङ्गानि हस्तपादाद्यवयवान् म्लापयामसि म्लापयामः । क्षीणहर्षान् कुर्मः । ❀ ग्लै म्लै हर्षक्षये । णौ आत्वे "अर्तिह्री०" इत्यादिना पुगागमः । "इदन्तो मसिः" ❀ ॥ अथ अनन्तरम् हे इन्द्र त्वत्प्रसादाद् एषां शत्रूणां वेदांसि । धननामैतत् । धनानि शतशः बहुधा वि भजामहै विभज्य प्राप्नुयाम ॥

हमारे शत्रुओंके हाथोंकी शक्ति जाती रहे, इन शत्रुओंके हाथ पैर आदि अंगोंको हम हर्षरहित अर्थात् कुम्हलाये हुए करते हैं, हे इन्द्र ! इसके उपरान्त हम आपके प्रसादसे इन शत्रुओंके धनोंको सैकड़ों प्रकारसे बाँट लें–पालें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प॒रि वर्त्मा॑नि स॒र्वत॒ इन्द्रः॑ पू॒षा च॑ सस्रतुः॑ ।
मुह्य॑न्त्व॒द्यामूः सेना॑ अ॒मित्रा॑णां पर॒स्तराम् ॥ १ ॥

परि॑ । वर्त्मा॑नि । स॒र्वतः॑ । इन्द्रः॑ । पू॒षा । च॒ । स॒स्र॒तुः॒ ।

मुह्य॑न्तु । अ॒द्य । अ॒मूः । सेनाः॑ । अ॒मित्रा॑णाम् । प॒रः॒ऽत॒राम् ॥१॥

इन्द्रः पूषा च इमौ देवौ सर्वतः सर्वासु दिक्षु वर्त्मानि संचरणमार्गान् परि सस्रतुः परितो निरुध्य गच्छताम् । ❀ सृ गतौ । अस्मात् छान्दसो लिट्। "असंयोगाल्लिट् कित्" इति किद्भावाद् गुणाभावे यण् ❀ ॥ अद्य इदानीम् अमूः दूरे दृश्यमाना अमि-

त्राणाम् शत्रूणां सेनाः रथतुरगपदातयः परस्तराम् अतिशयेन मुह्यन्तु । व्यामूढचित्ताः कार्याकार्यज्ञानशून्या भवन्तु । ❀ परः-शब्दाद् अतिशयार्थवाचिनः पुनः प्रकर्षविवक्षायां तरपि "किमेत्तिङव्ययघात्०" इति आमु प्रत्ययः ❀ ॥

इन्द्र और पूषा देवता सब दिशाओंमें घूमनेके मार्गोंको रोकते हुए विचरण करने लगें, यह दूर पर दीखती हुई हाथी घोड़े पैदल वाली शत्रुसेना अतीव मोहमें पड़ जावे-कार्य और अकार्य के ज्ञानसे शून्य होजावे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥

मूढाः । अमित्राः । चरत । अशीर्षाणःऽइव । अहयः ।
तेषाम् । वः । अग्निऽमूढानाम् । इन्द्रः । हन्तु । वरम्ऽवरम् ॥२॥

हे अमित्राः शत्रवः मूढा जयोपायज्ञानशून्याः चरत युद्धभूमौ सञ्चरत । तत्र दृष्टान्तः अशीर्षाण इवाहयः । अशिरस्काश्छिन्नशिरसः सर्पाः केवलं चेष्टन्त एव न तु किंचित् कार्यं कर्तुं शक्नुवन्ति तथा भवतेत्यर्थः । तेषां तादृशानाम् अग्निमूढानाम् अस्मदाहुतितृप्तेन अग्निना व्यामोहं प्रापितानां वः युष्माकं मध्ये वरंवरम् श्रेष्ठंश्रेष्ठं नायकम् इन्द्रो देवो हन्तु मारयतु ॥

हे शत्रुओं ! जैसे फन कट जाने पर सर्प केवल तड़फड़ाते ही हैं परन्तु काटना आदि कोई कार्य नहीं कर सकते, इसीप्रकार तुम भी मूढ़ बन कर—अर्थात् विजय किस प्रकार होगी इस बातका कुछ भी ध्यान न रखते हुए—युद्धभूमिमें खाली घूमते ही रहो । तब हमारी आहुतिसे तृप्त हुए अग्निदेवके द्वारा मोहमें डाले हुए तुम श्रेष्ठ २ पुरुषों—सेनापतियों—को इन्द्रदेव मार डालें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

ऐषुं नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि ।
पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥ ३ ॥

आ । एषु । नह्य । वृषा । अजिनम् । हरिणस्य । भियम् । कृधि ।
पराङ् । अमित्रः । एषतु । अर्वाची । गौः । उप । एषतु ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वृषा कामानां वर्षिता त्वं हरिणस्य कृष्णमृगस्य अजिनम् त्वचं सोममणिवेष्टनम् एषु अस्मदीयेषु भटेषु आ नह्य आबद्धं कुरु । ततः शत्रूणां भियम् भीतिं कृधि कुरु उत्पादय । अमित्रः शत्रुः पराङ् युद्धपराङ्मुखः सन् एषतु गच्छतु । पलायताम् इत्यर्थः । ❀ इष गतौ ❀ । ततः शत्रुसम्बन्धिनी गौः अर्वाची अस्मदभिमुखा उपेषतु उपगच्छतु । शत्रुसम्बन्धि गवादि धनम् अस्मान् प्राप्नोत्वित्यर्थः ॥

[इति] सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इंद्रदेव ! आप सोममणिको लपेटने वाले कृष्णमृगके चर्मको हमारे भटोंमें बाँधियें, तदनन्तर शत्रुओंमें भय उत्पन्न करिये, शत्रु युद्धसे पराङ्मुख होकर लौट जावे । तव शत्रुओंका गौ आदि धन हमको प्राप्त होजावे ॥३॥

सप्तम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (२४०)

“आयमगन्त्सविता क्षुरेण” इति तृचेन गोदानचूडाकरणयोः क्षौरार्थोदकुम्भाभिमन्त्रणं कुर्यात् । अत्र “अदितिः श्मश्रु” [२] इति ऋचा क्षौरार्थम् अभिमन्त्रितोदकेन माणवकस्य शिरः क्लेदयेत् । “येनावपत्” [३] इत्यृचा वपनं कुर्यात् । तद् उक्तं संहिताविधौ “गोदानम्” प्रक्रम्य “आयमगन्त्सविता क्षुरेण [१] इत्युदपात्रम् अनुमन्त्रयते । अदितिः श्मश्रु [२] इत्युन्दति” इत्यादि [कौ० ७.४] ॥

तथा उपनयनकर्मणि अस्यैव तृचस्य क्षौरार्थोदकाभिमंत्रणे विनियोगः । तत्रैव कर्मणि “आयमगन्” इति पादेन क्षुरं मार्जयेत् । “उष्णेन वायो” इति पादेन उदकम् अनुमन्त्रयते । “आदित्या रुद्राः” इति पादेन माणवकस्य शिरःक्लेदनं कुर्यात् । “सोमस्य राज्ञः” इति पादेन “येनावपत्” इत्यृचा च वपनं कुर्यात् । सूत्रितं हि । “उपनयनम् आयमगन्निति मन्त्रोक्तं यत् क्षुरेण [८.२.१७] इत्युक्तम्” इत्यादि [कौ० ७. ६] ॥

“गिरावरगराटेषु” इति तृचेन मेधाजननकामः सुप्तोत्थितः मुखं प्रक्षालयेत् । “प्रातरग्निम् [३. १६] गिरावरगराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः [९. १] इति संहाय मुखं विमार्ष्टि” इति [कौ० २. १] सूत्रात् ॥

तथा कुमारीवर्चस्यकर्मणि दधि मधु एकत्र कृत्वा अनेन तृचेन सम्पात्य अभिमन्त्र्य कुमारीं प्राशयेत् ॥

तथा क्षत्रियवर्चस्यकर्मणि दधिमधुमिश्रम् ओदनम् अनेन तृचेन सम्पात्य अभिमन्त्र्य क्षत्रियं प्राशयेत् ॥

तथा वैश्यशूद्रादिवर्चस्यकर्मणि अनेन तृचेन ओदनं सम्पात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामं वैश्यादिं प्राशयेत् ॥

सूत्रितं हि । “प्रातरग्निम् [३. १६] गिरावरगराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः [९. १] इति दधि मध्वाशयति कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालम् इतरान्” इति [कौ० २. ३]

तथा क्षत्रियादिवर्चस्यकर्मणि स्नातकसिंहव्याघ्रबस्तवृष्णिवृषभराज्ञां सूत्रोक्तानां सप्तानाम् अन्यतमस्य मर्म स्थालीपाके प्रक्षिप्य अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन जलं सम्पात्य अभिमन्त्र्य आप्लावयेत् अवसिञ्चेद्वा ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । “प्रातरग्निम् [३. १६] गिरावर-

गराटेषु [६. ६९] दिवस्पृथिव्याः [९. १] इति सप्त मर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्नाति। अकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितम् अश्नीयाद् इति गार्ग्यः। उक्तो लोममणिः। सर्वैरासावयति। अवसिञ्चति" इति [कौ० २. ४]॥

तथा उत्सर्जनाख्ये कर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा रसेषु सम्पातान् आनयेत्। सूत्रितं हि। "यशसं मेन्द्रः [६. ५८] गिरावरगराटेषु [६. ६९] यथा सोमः प्रातःसवने" [९. १. ११] इत्यादि [कौ० १४. ३]॥

तथा अग्निचयने स्वयम् आतृण्णाम् आसिच्यमानां ब्रह्मा अनेन अनुमन्त्रयेत। "पुनन्तु मा [६. १९] गिरावरगराटेषु [६. ६९] यद् गिरिषु [९. १. १८] इति शतातृण्णाम् आसिच्यमानाम्" इति वैतानं सूत्रम् [वै० ५. ३]॥

स्वर्गौदनब्रह्मौदनयोस्तन्त्रसंनिपाते तण्डुलानाम् अवसेकप्रायश्चित्तार्थं "मयि वर्चो अथो यशः" [६९. ३] इति ऋचं ब्रह्मा यजमानं वाचयेत्। सूत्रितं हि। "स्वर्गब्रह्मौदने तन्त्रसंनिपाते ब्रह्मौदनमितम् उदकम् आसेचयेद् विभागं यावन्तस्तण्डुलाः स्युर्नावसिञ्चेन्न प्रतिषिञ्चेत् यद्यवसिञ्चेन्मयि वर्चो अथो यश इति ब्रह्मा यजमानं वाचयति" इति [कौ० ८. ९]॥

"आयमगन्त्सविता क्षुरेण" इस तृचसे गोदान और चूडाकरण में क्षौर करनेके जलके कुंभका अभिमन्त्रण करे। यहाँ "अदितिः श्मश्रुः" इस दूसरी ऋचासे क्षौर करनेके लिये अभिमंत्रित जल से बालकके शिरको गीला करे और 'येनावपत्' इस तीसरी ऋचासे मुण्डन करे इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि-"गोदानम्" प्रक्रम्य "आयमगन्त्सविता क्षुरेण (१) इत्युदपात्रं अनुमन्त्रयते। अदितिः श्मश्रु (२) इत्युन्दति"। कौशिकसूत्र ७।४)॥

तथा इसी तृचका उपनयनकर्ममें क्षौरके लिये रक्खे हुए जल

के अभिमंत्रणमें विनियोग होता है। तहाँ ही इस कर्ममें "आयमगन्" इस पादसे छुरेका मार्जन करे। "उष्णेन वायो" इस पादसे जलका अनुमन्त्रण करे। "आदित्या रुद्राः" इस पादसे बालकके शिरको गीला करे। 'सोमस्य राज्ञः' इस पादसे और "येनावपत्" इस ऋचासे भी मुण्डन करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'उपनयनम् आयमगन्नितिमन्त्रोक्तं यत् क्षुरेण (८।२।१७) इत्युक्तम्' इत्यादि (कौशिकसूत्र ७।६)॥

बुद्धिको चाहने वाला पुरुष सोकर उठनेके अनन्तर 'गिरावरगराटेषु' इस तृचसे मुखको धोवे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी हैं, कि—'प्रातरग्निम् (३।१६) गिरावरगराटेषु (६।६९) दिवस्पृथिव्याः (९।१) इति संहाय मुखं विमार्ष्टि' (कौशिकसूत्र २।१)॥

तथा कुमारीवर्चस्यकर्ममें दही और मधुको एकत्रित कर इस तृचसे सम्पातन और अभिमन्त्रण करके कुमारीको खिला देवे।

तथा क्षत्रियवर्चस्यकर्ममें दही और मधु मिले हुए भातको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके क्षत्रियको खिला देवे।

तथा वैश्य शूद्र आदिके वर्चस्यकर्ममें इस तृचसे ओदनको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके वर्चस् (तेज) चाहने वाले वैश्य आदिको खिला देवे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'प्रातरग्निम् (३।१६) गिरावरगराटेषु (६।६९) दिवस्पृथिव्याः (९।१) इति दधिमध्वाशयति कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालं इतरान् (कौशिकसूत्र २।३)॥

तथा क्षत्रिय आदिके वर्चस्यकर्ममें स्नातक सिंह वस्त वृष्णि वृषभ राजा—इन सूत्रमें कहे हुए सातमेंसे एकके मर्मको स्थालीपाकमें डालकर इस तृचसे सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे।

तथा तहाँ ही इस तृचसे जलका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके आप्लावन वा अवसिञ्चन करे ।

इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि–'प्रातरग्निम् (३।१६) गिरावरगराटेषु (६।६९) दिवस्पृथिव्याः (९।१) इति सप्तमर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्नाति । अकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितम् अश्नीयाद्ध इति गार्ग्यः । उक्तो लोममणिः । सर्वैराप्लावयति । अवसिञ्चति' (कौशिकसूत्र २ । ४) ॥

तथा उत्सर्जन नाम वाले कर्ममें इस तृचसे घृतकी आहुति देकर रसोंमें सम्पातोंको लावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'यशसं मेन्द्रः (६ । ५८) गिरावरगराटेषु (६ । ६९) यथा सोमः प्रातः सवने (९ । १ । १)०' (कौशिकसूत्र १४ । ३)॥

तथा अग्निचयनमें ब्रह्मा स्वयं ही आसिच्यमान शतातृण्णा (अनुमानतः चलनी) का इस तृचसे अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"पुनन्तु मा (६ । १९) गिरावरगराटेषु (६ । ६९) यद् गिरिषु (९ । १ । १८) इति शतातृण्णां आसिच्यमानाम्" (वैतानसूत्र ५ । ३) ॥

तथा स्वर्गौदन और ब्रह्मौदनके तंत्रसंनिपातमें तण्डुलोंके अवसेकके प्रायश्चित्तके लिये 'मयि वर्चो अथो यशः' इस उनहत्तरवें सूक्तकी तीसरी ऋचाको ब्रह्मा यजमानसे उच्चारण करावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–'स्वर्गब्रह्मौदने तन्त्रसन्निपाते ब्रह्मौदनमितं उदकं आसेचयेद् विभागं यावन्तस्तण्डुलाः स्युर्नावसिञ्चेन्न प्रतिषिञ्चेत् । यद्यवसिञ्चेन्मयि वर्चो अथो यश इति ब्रह्मा यजमानं वाचयति' (कौशिकसूत्र ८ । ९) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आयमंगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑व उन्द॒न्तु सचे॑तस॒: सोम॑स्य॒ राज्ञो॑
वप॑त॒ प्रचे॑तसः ॥ १ ॥

आ । अ॒यम् । अ॒ग॒न् । स॒वि॒ता । क्षु॒रेण॑ । उ॒ष्णेन॑ । वा॒यो॒ इति॑ ।
उ॒द॒केन॑ । आ । इ॒हि॒ ।

आ॒दि॒त्याः । रु॒द्राः । वस॑वः । उ॒न्द॒न्तु॒ । स॒ऽचे॑तसः । सोम॑स्य ।
राज्ञः॑ । व॒प॒त॒ । प्र॒ऽचे॑तसः ॥ १ ॥

अयं नभसि दृश्यमानः सविता सर्वस्य प्रेरको देवः क्षुरेण वपनसाधनेन शस्त्रेण सह आगन् आगमत् आगतवान् । ❀ गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ❀ । हे वायो उन्दनार्थम् उष्णेन उदकेन सह त्वमपि एहि आगच्छ । आदित्याः द्वादशसंख्याकाः एकादश रुद्राः अष्टौ वसवः इत्येते देवगणाः सचेतसः समानज्ञानाः सन्तः तेन उदकेन माणवकस्य शिर उन्दन्तु आर्द्रीकुर्वन्तु । ❀ उन्दी क्लेदने ❀ । हे परिचारकाः प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः सन्तः । यद्वा प्रचेतसः वरुणस्य सोमस्य राज्ञश्च संबन्धिना क्षुरेण वपत क्लिन्नान् केशान् वपनेन वर्जयत

यह आकाशमें दीखते हुए सर्वप्रेरक सविता देवता मूँडन करने वाले छुरेके साथआये हैं, हे वायो ! आप भी गीला करने के लिये उष्ण जलके साथ आइये, बारह आदित्य ग्यारह रुद्र, और आठ वसु ये एकसा ज्ञान रखकर जलसे इस बालकके शिर को गीला करें, हे परिचारकों ! तुम वरुणसे और सोमसे संबंध रखने वाले छुरेसे गीले केशोंको मुण्डन करके अलग कर दो ॥१॥

द्वितीया ॥

अदि॑ति॒: श्मश्रु॑ वप॒त्वाप॑ उन्द॒न्तु वर्च॑सा ।

चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २ ॥

अदितिः । श्मश्रु । वपतु । आपः । उन्दन्तु । वर्चसा ।

चिकित्सतु । प्रजाऽपतिः । दीर्घायुऽत्वाय । चक्षसे ॥ २ ॥

अदितिः सा अदीना देवमाता । अस्य पुरुषस्य श्मश्रु वपतु । मुखस्य परितो वर्तमानानि रोमाणि श्मश्रूणि । तानि वपतु वर्जयतु ॥ आपः अब्देवता वर्चसा तेजसा स्वकीयेन उन्दन्तु क्लेदयन्तु ॥ तथा [प्रजापतिः] प्रजानां देवमनुष्यादीनां पतिः स्रष्टा चिकित्सतु भिषज्यतु । अस्मिन् संभवद्रोगादिकम् इति शेषः । ❀ कित ज्ञाने । “गुप्तिज्किद्भ्यः सन्” । “निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते” इति स्मरणात् ❀ । किमर्थम् । दीर्घायुत्वाय । दीर्घम् आयुश्चिरकालजीवनम् अस्य यथा स्याद् इत्येवमर्थम् । चक्षसे दर्शनाय । अविशेषात् सर्वस्य श्रेयसे इति शेषः । ❀ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । “असनयोश्च प्रतिषेधः” इति स्मरणात् ख्याञादेशाभावः ❀ ॥

अदीना देवमाता अदिति इस पुरुषकी डाढ़ी मूँछोंको अलग करें, जल देवता इस पुरुषके बालोंको अपने तेजसे गीला करें, तथा देवता और मनुष्य आदिके स्वामी प्रजापति स्रष्टा देवता इसकी चिकित्सा करें। (ये सब देवता इसकी) दीर्घायु और दर्शनशक्तिके लिये (इस पर ऐसा अनुग्रह करें) ॥ २ ॥

तृतीया ॥

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

येन । अवपत् । सविता । क्षुरेण । सोमस्य । राज्ञः । वरुणस्य । विद्वान्

ते॑न । ब्र॒ह्मा॒णः॒ । व॒प॒त॒ । इ॒दम् । अ॒स्य । गोऽमा॑न् । अश्व॑ऽवान् ।

अ॒यम् । अ॒स्तु॒ । प्र॒जाऽवा॑न् ॥ ३ ॥

सविता देवः विद्वान् जानन् सोमस्य राज्ञो वरुणस्य च संबन्धिना येन क्षुरेण अवपत् वपनं कृतवान् । ❀ यद्वा कर्मणि षष्ठी ❀ । सोमं राजानं वरुणं च येन क्षुरेण अवपद् इत्यर्थः । हे ब्रह्माणः ब्राह्मणाः तेन तादृशेन क्षुरेण अस्य पुरुषस्य इदं केशश्मश्रु वपत । तेन विशिष्टवपनसंस्कारेण अयं पुरुषः गोमान् बह्वीभिर्गोभिर्युक्तः अश्ववान् अश्वैर्युक्तः प्रजावान् पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तश्च अस्तु भवतु

विद्वान् सवितादेवताने राजा सोम और वरुणसे सम्बन्ध रखने वाले जिस छुरेसे वपन (मुण्डन) किया था । वा—सविता देवता जिस छुरेसे राजा वरुण और सोमका मुण्डन किया था, हे ब्राह्मणों ! ऐसे छुरेसे तुम इस पुरुषके डाढ़ी मूँछ और बालोंको मूँडो । इस श्रेष्ठसंस्कारके द्वारा यह पुरुष बहुतसी गौए घोड़े और पुत्र पौत्र आदि सन्तानसे समृद्ध होजावे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

गि॒राव॑र॒गरा॑टेषु॒ हिर॑ण्ये॒ गोषु॒ यद् यशः॑ ।
सुरा॑यां सि॒च्यमा॑नायां की॒ला॒ले॑ मधु॒ तन्मयि॑ १

गि॒रौ । अ॒र॒ग॒रा॑टेषु । हिर॑ण्ये । गोषु॑ । यत् । यशः॑ ।

सुरा॑याम् । सि॒च्यमा॑नायाम् । की॒ला॒ले॑ । मधु॑ । तत् । मयि॑ १

गिरौ पर्वते हिमवदादौ यद् यशः कीर्तिरस्ति । तथा अरगराटेषु रथचक्रावयवाः कीलका अराः । तान् गिरति आत्मना संश्लेषयतीति अरगरो रथः । तेन अटन्ति संचरन्तीति अरगराटाः रथिनो यशस्विनो राजानः । यद्वा अराः अरयः तान् गच्छन्तीति

अरगाः वीरा भटाः तेषां राटाः जयघोषाः । ❀ रट परिभाषणे । भावे घञ् । व्युत्पत्त्यनवधारणाद् नावगृह्यते ❀ । तेषु अरगराटेषु यद् यशोस्ति हिरण्ये सुवर्णे गोषु वहनदोहनसमर्थेषु च यद् यशोस्ति तन्मयि । भवत्वित्यर्थः । अपि च सिच्यमानायां पात्रेषु आसिच्यमानायां सुरायां कीलाले अन्ने च यद् मधु मदकरं माधुर्योपेतं रसं जनाः प्रशंसन्ति तन्मयि भवतु ॥

हिमवान् आदि पर्वतमें जो यश है, रथके पहियोंके अवयव अरों को अपनेसे मिलाने वाले रथमें बैठकर घूमने वाले यशस्वी रथी राजाओंमें शत्रुओंके सामने जाने वाले रथियोंके जयघोषोंमें—जो यश है सुवर्णमें और ढोना दूध देना आदिमें समर्थ गोजातिमें जो यश है, वह यश मुझमें हो । सिच्यमान पात्रोंमें खेंची जाती हुई सुरामें और अन्नमें जिस मधुरता भरे हुए रसकी मनुष्य प्रशंसा करते हैं, वह मुझमें हो ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अश्वि॑ना सार॒घेण॑ मा॒ मधु॑नाङ्क्तं शुभस्पती ।
य॒था भर्ग॑स्वतीं॒ वाच॑मा॒वदा॑नि॒ जनाँ॒ अनु॑ ॥ २ ॥

अश्विना । सा॒र॒घेण॑ । मा॒ । मधु॑ना । अ॒ङ्क्तम् । शु॒भः॒ । प॒ती॒ इति॑ ।
य॒था॑ । भर्ग॑स्वतीम् । वाच॑म् । आ॒ऽवदा॑नि । जना॑न् । अनु॑ ॥२॥

हे अश्विना अश्विनौ शुभस्पती शोभमानायाः सूर्यायाः शोभाहेतोरलंकारस्य वा पती भर्तारौ मा मां सारघेण सरघा मधुमक्षिका तत्संपादितेन मधुना अङ्क्तम् अभिषिञ्चतं संयोजयतम् । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु । अस्मात् लोण्मध्यमे श्नसोरल्लोपे श्नान्नलोपे च कृते रूपम् ❀ । यथा खल्वहं भर्गस्वतीम् दीप्तिमतीं मधुरां वाचं जनान् मनुष्यान् अनुलक्ष्य आवदामि अभिलक्ष्य उच्चारयामि । तथा मां मधुना सिञ्चतम् इत्यर्थः ॥

हे शोभाके लिये धारण किये जाने वाले अलंकारोंके स्वामिन् अश्विनीकुमारों ! आप मुझको मधुमक्षिकाओंके इकट्ठे किये हुए रससे सम्पन्न करो जिस प्रकार मैं दीप्तिमयी मधुर वाणी को मनुष्योंसे कहूँ, तिस प्रकार आप मुझको मधुसे सींचिये ॥२॥

षष्ठी ॥

मयि वर्चो अथो यशोथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ ३ ॥

मयि । वर्चः । अथो इति । यशः । अथो इति । यज्ञस्य । यत् । पयः ।
तत् । मयि । प्रजाऽपतिः । दिवि । द्याम्ऽइव । दृंहतु ॥ ३ ॥

मयि साधके यद्ध वर्चः तेजोस्ति अथो अपि च यद् यशः अन्नं कीर्तिर्वा । अपि च यज्ञस्य क्रियमाणस्य यागस्य यत् पयः सारभूतं फलं तत् सर्वं मयि यजमाने प्रजापतिः प्रजानाम् अधिपतिर्विधाता दृंहतु दृढीकरोतु । तत्र दृष्टान्तः । दिवि अन्तरिक्षे निराधारे स्थाने द्याम् दीप्यमानं ज्योतिर्मण्डलं यथा दृढीकृतवान् तथा दृंहत्वित्यर्थः । ❀ दृह दृहि वृद्धौ ❀ ॥

[इति] षष्ठकाण्डे सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

मुझ साधकमें जो तेज है और जो यश अन्न और यज्ञका फलरूप दुग्ध आदि है उस सबको मुझ यजमानमें प्रजाओंके अधिपति इस प्रकार दृढ़ करें जिस प्रकार उन्होंने निराधार अन्तरिक्षमें दीप्यमान ज्योतिर्मण्डलको दृढ़ किया है ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (२४२) ॥

"यथा मांसम्" इति सूक्तेन गोवत्सयोरन्योन्यविरोधशान्तिरूपे सांमनस्यकर्मणि वत्सं संस्नाप्य गोमूत्रेण अवसिच्य वत्सं त्रिः परिभ्राम्य अभिमन्त्र्य स्तनपानार्थं मुञ्चेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन गोः शिरः कर्णं च अनुमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि । “यथा मांसम् इति वननम् । वत्सं संधाव्य गोमूत्रेणावसिच्य त्रिः परिणीय उपचृतति । शिरः कर्णम् अनुमन्त्रयते” इति [कौ० ५. ५] ॥

“यद् अन्नम्” इति तृचेन दुष्टादुष्टप्रतिग्रहजनितदोषशान्त्यर्थं प्रतिग्राह्यं वस्तु अभिमन्त्र्य गृह्णीयात् । “क इदं कस्मा अदात् [३. २९. ७] कामस्तद् अग्रे [१९. ५२] यद् अन्नम् [६,७१] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७. ६९] इति प्रतिगृह्णाति” इति सूत्रात् [कौ० ५. ६] ॥

तथा अनेन अग्निकार्ये ब्रह्मचारी भैक्षम् अहरहर्जुहुयात् । “यद् अन्नम् इति तिसृभिर्भैक्षस्य जुहोति” इति [कौ० ७. ८] सूत्रात् ॥

दर्शपूर्णमासयोः पुरोडाशभागम् “यद् अन्नम्” इत्यनया ब्रह्मा अश्नीयात् । “यद् अन्नम् इति भागं प्राश्नाति” इति सूत्रात् [वै० १. ४] ॥

“यथासितः” इति तृचेन वाजीकरणकामः एकशाखार्कमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नीयात् ॥

तत्रैव कर्मणि “यावदङ्गीनम्” इत्यृचा कृष्णचर्ममणिं संपात्य अभिमन्त्र्य कृष्णमृगवालेन बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । “यथासितः [६. ७२] इत्येकार्कसूत्रम् आर्कं बध्नाति यावदङ्गीनम् [६. ७२. ३] इति असितस्तम्भम् असितवालेनेति” [कौ० ५. ४] ॥

“यथा मांसम्” इस सूक्तसे गौ और बछड़ेके आपसके विरोधको शान्त करनेके लिये सांमनस्यकर्ममें वत्सको स्नान करा कर और गोमूत्रसे भली प्रकार सींच कर बछड़ेको तीन वार घुमा कर अभिमन्त्रित करके दूध पीनेके लिये छोड़ देवे ।

तथा तहाँ ही इस कर्ममें गौके शिर और कानका भी इस तृच से अनुमन्त्रण करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“यथा मांसम् इति वननम्। वत्सं संधाव्य गोमूत्रेणावसिच्य त्रिः परिणीय उपचृतति। शिरः कर्णौ अनुमन्त्रयते” (कौशिकसूत्र ५ । ५)॥

“यद् अन्नम्” इस तृचसे दूषित वा अदूषित प्रतिग्रह करनेसे उत्पन्न हुए दोषकी शांतिके लिये दान ली जाने वाली वस्तुको अभिमन्त्रित करके ग्रहण करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—‘क इदं कस्मा अदात् (३ । २९ । ७) कामस्तद् अग्रे (१९ । ५२) यद् अन्नम् (६ । ७१) पुनर्मैत्विन्द्रियम् (७ । ६९) इति प्रतिगृह्णाति’ (कौशिकसूत्र ५ । ९) कौशिकसूत्र ५ । ९)॥

तथा इससे ब्रह्मचारी अग्निकार्यमें प्रतिदिन भिक्षाकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“यद् अन्नं इति तिसृभिर्भैक्षस्य जुहोति” (कौशिकसूत्र ७ । ८)॥

दर्श और पूर्णमासके पुरोडाश भागको “यद् अन्नम्” इस ऋचासे ब्रह्मा भक्षण कर लेय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“यद् अन्नं इति भागं प्राश्नाति” (वैतानसूत्र १ । ४)॥

“यथासितः” इस तृचसे वाजीकरणको चाहने वाला एक शाखा वाले अर्कवृक्षकी मणिका संपातन अभिमन्त्रण करके अर्कसूत्रसें बाँध देवे।

तथा इसी कर्ममें ‘यावदङ्गीनम्’ इस ऋचासे कृष्णचर्ममणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके कृष्णमृगके बालसे बाँधे॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“यथासितः (६ । ७२) इत्येकार्कसूत्रं आर्कं बध्नाति यावदङ्गीनम् (६ । ७२ । ३) इति असितस्तम्भम् असितवालेनेति” (कौशिकसूत्र ५ । ४)॥

तत्र प्रथमा॥

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।

यथा॑ पुं॒सो वृ॑षण्य॒त स्त्रि॒यां नि॑ह॒न्यते॒ मनः॑ ।
ए॒वा ते॑ अघ्न्ये॒ मनोधि॑ व॒त्से नि ह॑न्यताम् ॥ १ ॥

यथा॑ । मां॒सम् । यथा॑ । सुरा॑ । यथा॑ । अ॒क्षाः । अ॒धि॒ऽदे॑वने ।
यथा॑ । पुं॒सः । वृ॒ष॒ण्य॒तः । स्त्रि॒याम् । नि॒ऽह॒न्यते॑ । मनः॑ ।
ए॒व । ते॒ । अ॒घ्न्ये॒ । मनः॑ । अधि॑ । व॒त्से । नि । ह॒न्य॒ता॒म् ॥१॥

यथा मांसं पुरुषस्य भोक्तुः प्रेमास्पदम् । यथा च सुरा प्रियतमा । यथा च अक्षाः द्यूतकरणानि अधिदेवने । अधि उपरि दीव्यन्त्यस्मिन् कितवा इति अधिदेवनम् द्यूतस्थानं तत्र प्रियतमाः । यथा च पुंसः पुरुषस्य वृषण्यतः वृषाणं सेक्तारम् आत्मानम् इच्छतः सुरतार्थिनो मनः मानसं स्त्रियां निहन्यते स्त्रीविषये प्रह्वीभवति । ❀ "दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति" इति क्यचि निपातितः ❀ । एव एवम् हे अघ्न्ये अहन्तव्ये धेनो ते तव मनः वत्से अधि उपरि नि हन्यताम् प्रह्वीभूतम् अस्तु । अयं वत्सो मांसादिवत् मनसः प्रेमास्पदं भवत्वित्यर्थः ॥

जैसे मांस भोक्ता—खाने वाले—पुरुषके प्रेमका पात्र होता है और जैसे सुरा पीने वालेको परम प्रिय होती है और जैसे फाँसे जुएमें प्यारे होते हैं और जैसे वीर्यकी वर्षा करना चाहने वालेका मन स्त्री पर प्रसन्न होता है। इसी प्रकार हे न मारने योग्य धेनो ! तेरा मन बछड़े पर प्रसन्न होवे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यथा॑ ह॒स्ती हा॑स्ति॒न्याः प॒देन॑ प॒दमु॑द्यु॒जे ।
यथा॑ पुं॒सो वृ॑षण्य॒त स्त्रि॒यां नि॑ह॒न्यते॒ मनः॑ ।

एवा ते अघ्न्ये मनोधि वत्से नि हन्यताम् ॥ २ ॥

यथा । हस्ती । हस्तिन्याः । पदेन । पदम् । उत्ऽयुजे ।
यथा । पुंसः । वृषण्यतः । स्त्रियाम् । निऽहन्यते । मनः ।
एव । ते । अघ्न्ये । मनः । अधि । वत्से । नि । हन्यताम् ।२।

यथा हस्ती गजः पदेन स्वकीयेन पादेन हस्तिन्याः करेण्वाः पदम् पादं प्रेम्णा उद्युजे उन्नमयति । यथा पुंस इत्यादि पूर्ववद्व योज्यम् । ❀ उद्युजे इति । युजिर्योगे । छान्दसो विकरणस्य लुक् । "लोपस्त आत्मने पदेषु" इति तलोपः । "हस्ताज्जातौ" इति णिनिः ❀ ॥

जैसे हाथी अपने पैरसे हथिनीके पैरको प्रेमपूर्वक ऊपरको उठानेका उद्योग करता है और जैसे वीर्यकी वर्षा करना चाहने वालेका मन स्त्री पर प्रसन्न होता है । इसी प्रकार हे न मारने योग्य धेनो ! तेरा मन बछड़े पर प्रसन्न होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

यथा । प्रऽधि । यथा । उपऽधिः । यथा । नभ्यम् । प्रऽधौ । अधि ।
यथा । पुंसः । वृषण्यतः । स्त्रियाम् । निऽहन्यते । मनः ।
एव । ते । अघ्न्ये । मनः । अधि । वत्से । नि । हन्यताम् ॥३॥

प्रधीयत इति प्रधिः रथचक्रस्य नेमिः। उपधिः उप तत् समीपे धीयत इत्युपधिः नेमिसंबद्धः अराणां संबन्धको वलयः। ❀ "उपसर्गे घोः किः" इति धाञः किप्रत्ययः ❀। यथा प्रधिः उपधिना सम्बध्यते। उपधिश्च यथा प्रधिना। यथा च नभ्यम् नाभये हितं रथचक्रमध्यफलकं प्रधावधि नेमिदेशे सम्बध्नाति। ❀ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀। यथा उक्तरूपा रथचक्रावयवाः परस्परं दृढसम्बन्धाः हे धेनो त्वदीयं मनः वत्से तथा दृढसंबन्धम् अस्तु॥

जैसे रथचक्रकी (नेमि) प्रधि उपधि (अरोंके मुट्ठे) से दृढ़ता से बँधी हुई रहती है और जैसे रथचक्रका मध्यफलक नेमिमें बँधा हुआ होता है, इसी प्रकार तेरा मन बछड़ेसे बँधा रहे, और जैसे वीर्यकी वर्षा करना चाहने वालेका मन स्त्री पर प्रसन्न होता है। इसी प्रकार हे न मारने योग्य धेनो! तेरा मन बछड़े पर प्रसन्न होवे॥ ३॥

चतुर्थी॥

यदन्न॒मद्मि॑ बहु॒धा विरू॑पं॒ हिर॑ण्य॒मश्व॑मु॒त गाम॒जा-
मवि॑म्।
यदे॒व किं च॑ प्रति॒जग्र॒हाह॒मग्निष्टद्धो॒ता सुहु॑तं कृणोतु १

यत्। अन्न॑म्। अद्मि॑। ब॒हु॒ऽधा। विऽरू॑पम्। हिर॑ण्यम्। अश्व॑म्।
उ॒त। गाम्। अ॒जा॑म्। अविम्।
यत्। ए॒व। किम्। च॒। प्र॒ति॒ऽज॒ग्रह। अ॒हम्। अ॒ग्निः। तत्।
हो॑ता। सुऽहु॑तम्। कृ॒णो॒तु॒॥ १॥

निरूपम् विविधाकारं यद् अन्नं बहुधा बहुप्रकारेण अद्मि

भक्षयामि । क्षुत्पीडावशेन भोज्याभोज्यविभागम् अन्तरेण भक्षितवान् अस्मीत्यर्थः । उत अपि च हिरण्यादिकं यदेव किं च किमपि द्रव्यजातं दारिद्र्यवशाद् अहं प्रतिजग्राह प्रतिगृहीतवान् अस्मि । तत् सर्वम् अन्नं हिरण्यादि द्रव्यं च होता होमनिष्पादकः अयम् अग्निः सुहुतम् सुष्ठु हुतं कृणोतु करोतु । यथा मम अन्नदोषः प्रतिग्रहदोषश्च न भवति तथा करोत्वित्यर्थः ॥

अनेक प्रकारके आकार वाले अन्नको मैंने जो अनेक प्रकार से भक्षण कर लिया है अर्थात् क्षुधासे व्याकुल होकर यह वस्तु खाने योग्य वा खानेके अयोग्य है—इसका कुछ विचार न करके मैंने जो भक्ष्य अभक्ष्यको खाया है और दरिद्रतावश सुवर्ण आदि का प्रतिग्रह किया है उन सब अभक्ष्यभक्षण और सुवर्ण आदि के प्रतिग्रहको यह होमनिष्पादक अग्नि सुहुत करें अर्थात् जिस प्रकार मुझको अन्नदोष और प्रतिग्रहदोष न लगे तैसा करें ॥१॥

पञ्चमी ॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु

यत् । मा । हुतम् । अहुतम् । आऽजगाम । दत्तम् । पितृऽभिः ।
अनुऽमतम् । मनुष्यैः ।
यस्मात् । मे । मनः । उत्ऽइव । रारजीति । अग्निः । तत् ।
होता । सुऽहुतम् । कृणोतु ॥ २ ॥

हुतम् होमसंस्कृतम् अहुतम् तद्विपरीतम् उभयविधं यद् द्रव्यं मा माम् आजगाम प्रतिग्रहादिना प्राप्तम् अभूत् । कीदृशम् इति पुनर्विशिनष्टि । पितृभिः पितृदेवताभिः अस्मभ्यं भोगार्थं दत्तम्

वितीर्णं मनुष्यैः मनुष्यजातीयैः अनुमतम् अनुज्ञातम् । यस्मात् प्रतिगृहीताद् द्रव्याद्धेतोः मे मदीयं मनः उदिव रारजीतु हर्षातिशयेन भृशम् उद्दीप्यत इव । ❀ राजृ दीप्तौ । अस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि छान्दसम् उपधाह्रस्वत्वम् ❀ । यद्वा उत्कर्षेण भृशं रागयुक्तम् अभूद् इत्यर्थः । ❀ रञ्ज रागे । इत्यस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि रूपम् ❀ । अग्निष्टद् इत्यादि पूर्ववत् ॥

होमसे संस्कृत वा होमसे असंस्कृत दोनों प्रकारका जो द्रव्य प्रतिग्रह आदिसे मेरे पास आगया है। पितर और देवताओंसे हमारे भोगके लिये दिये हुये और मनुष्योंके द्वारा अनुमत प्रतिग्रहके द्रव्यसे जो मेरा मन हर्षातिरेकसे उद्दीप्त सा होरहा है उसको यह होमका निष्पादक अग्नि सुहुत करें अर्थात् जिस प्रकार मुझको प्रतिग्रह आदिका दोष न लगे, तैसा करें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यदन्न॒मद्म्यनृ॑तेन दे॒वा दा॒स्यन्नदा॑स्यन्नु॒त सं॑गृ॒णामि॑ ।
वै॒श्वा॒न॒रस्य॑ म॒हतो॑ म॑हि॒म्ना शि॒वं मह्यं॒ मधु॑मद॒स्त्वन्न॑म् ॥

यत् । अन्न॑म् । अद्मि॑ । अनृ॑तेन । दे॒वाः॒ । दा॒स्यन् । अदा॑स्यन् ।
उ॒त । स॒म्ऽगृ॒णामि॑ ।

वै॒श्वा॒न॒रस्य॑ । म॒ह॒तः । म॒हि॒म्ना । शि॒वम् । मह्य॑म् । मधु॑ऽमत् ।
अ॒स्तु॒ । अन्न॑म् ॥ ३ ॥

हे देवाः अनृतेन असत्यवदनेन अन्यदीयम् अपहृत्य यद् अन्नम् अद्मि भक्षयामि । उत्तमर्णाय पुनर्दास्यन् अदास्यन् पुनः प्रदानम् अकरिष्यंश्च संगृणामि दास्यामीति केवलं प्रतिजानामि । ❀ संपूर्वो गृणातिः प्रतिज्ञायां वर्तते । गॄ शब्दे । प्वादित्वात् ह्रस्वः ❀ । तत

सर्वम् अन्नं वैश्वानरस्य विश्वनरहितस्य महतः अतिशयितप्रभावस्य देवस्य महिम्ना माहात्म्येन मह्यं शिवम् सुखकरं मधुमत् माधुर्यवद् अस्तु भवतु ॥

हे देवताओं ! मैं जो झूँठ बोल दूसरेका भाग छीनकर जिस अन्नको खागया हूँ और धनीको धनीका रुपया देनेको ही कहता रहा हूँ, दे नहीं सका हूँ । वह वैश्वानर अग्निदेवके प्रभावसे मुझे सुख देनेवाला और मधुर हो ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

यथा॑सि॒तः प्र॒थय॑ते॒ वशाँ॒ अनु॒ वपूं॑षि कृ॒ण्वन्नसु॑रस्य
मा॒यया॑ ।
ए॒वा ते॒ शेप॒ः सह॑सा॒यम॒र्कौऽङ्गे॒नाङ्गं॒ संस॑मकं कृणोतु १

यथा॑ । अ॒सि॒तः । प्र॒थय॑ते । वशा॑न् । अनु॑ । वपूं॑षि । कृ॒ण्वन् ।
असु॑रस्य । मा॒यया॑ ।
ए॒व । ते॒ । शेपः॑ । सह॑सा । अ॒यम् । अ॒र्कः । अङ्गे॑न । अङ्ग॑म् ।
सम्ऽस॑मकम् । कृ॒णो॒तु॒ ॥ १ ॥

यथा सितः बद्धः पुरुषः वशान् स्ववशान् आत्मीयान् पुरुषान् अनुलक्ष्य प्रथयते स्वात्मानं प्रसारयति । किं कुर्वन् । असुरस्य क्षेप्तुर्देवस्य मायया मायाशक्त्या वपूंषि शरीराणि कृण्वन् कुर्वन् । एव एवम् अयम् अर्कः अर्कवृक्षविकारो मणिः सहसा शीघ्रं ते त्वदीयं शेपः पुंव्यञ्जनलक्षणम् अङ्गम् अङ्गेन तद्व्यतिरिक्तेन हस्तपादादिना सम्यक् समगम् समानगमनं कृणोतु करोतु । यद्वा स्त्रिया अङ्गेन योनिदेशेन समानगमनम् । उपभोगक्षमं करोत्वित्यर्थः ॥

जैसे बँधा हुआ पुरुष, असुरकी मायासे रूपोंको दिखाता हुआ अपने पुरुषोंके सामने फैल जाता है, इसी प्रकार यह अर्कमणि तेरे शिश्नांगको स्त्रीके अंगसे भली प्रकार गमन वाला करे ॥१॥

अष्टमी ॥

य॒था पस॑स्ताया॒दरं वाते॑न स्थू॒लभं कृ॒तम् ।
याव॒त् पर॑स्वत॒ः पस॒स्ताव॑त् ते वर्ध॒तां पस॑ः ॥ २ ॥

यथा॑ । पस॑ः । ता॒या॒द॒रम् । वाते॑न । स्थू॒ल॒भम् । कृ॒तम् ।
याव॑त् । पर॑स्वतः । पस॑ः । ताव॑त् । ते॒ । व॒र्ध॒ता॒म् । पस॑ः ॥ २ ॥

तायोदरम् तयोदरः प्राणिविशेषः तत्संबन्धि पसः पुंव्यञ्जनं वातेन वायुना यथा स्थूलभं कृतम् । स्थौल्येन भासमानं क्रियत इत्यर्थः । परस्वतः एतत्संज्ञस्य मृगविशेषस्य पसः पुंव्यञ्जनं यावत् यत्परिमाणविशिष्टं भवति हे साधक ते तव पसः पुंव्यञ्जनं तावत् तत्परिमाणविशिष्टं वर्धताम् ॥

जैसे तायोदर नाम वाले प्राणीका उपस्थ वायुके द्वारा स्थूलतासे दमकता हुआ किया गया है। परस्वत् नाम वाले मृगका शिश्न जैसा होता है, हे साधक! तेरा शिश्न भी इसी प्रकार बढ़े ॥ २ ॥

नवमी ॥

या॒व॒द॒ङ्गीनं॒ पार॑स्वतं॒ हास्ति॑नं॒ गार्द॑भं च॒ यत् ।
याव॒दश्व॑स्य वा॒जिन॒स्ताव॑त् ते वर्ध॒तां पस॑ः ॥ ३ ॥

या॒व॒त्ऽअ॒ङ्गीन॑म् । पार॑स्वतम् । हास्ति॑नम् । गार्द॑भम् । च॒ । यत् ।
याव॑त् । अश्व॑स्य । वा॒जिन॑ः । ताव॑त् । ते॒ । व॒र्ध॒ता॒म् । पस॑ः ।३।

अङ्गीनम् अङ्गेभ्यः समुद्भूतं पारस्वतम् परस्वतः संबन्धि प्रजननं यावत् यत्परिमाणविशिष्टं भवति। तथा हास्तिनम् हस्तिसंबन्धि। गार्दभम् गर्दभसंबन्धि च प्रजननं यत् यादृगाकारवद् भवति। अश्वस्य वाजिनः यौवनावस्थस्य वडवासंगमने यावद् भवति ते तव पसः पुंव्यञ्जनं तावत्परिमाणं वर्धताम्। ❀ हास्तिनम् इति। हस्तिन्शब्दात् "तस्येदम्" इति अण्। "इनण्यनपत्ये" इति प्रकृतिभावः ❀॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
षष्ठकाण्डे सप्तमोनुवाकः॥

अंगोंसे प्रकट हुआ परस्वत् (प्राणी) का प्रजनन (शिश्न) जितने परिमाण वाला होता है और हाथी तथा गधेका शिश्न जितने परिमाण वाला होता है। और अश्वका शिश्न जितना होता है तेरा शिश्न भी उतना ही बढ़ जावे ॥ ३ ॥

पञ्चमसूक्त समाप्त (२४५)॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डका सप्तम अनुवाक समाप्त ॥

अष्टमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "एह यातु वरुणः" इति प्रथमं सूक्तम्। अत्र आद्यस्य तृचस्य "सं वः पृच्यन्ताम्" इति द्वितीयस्य च सांमनस्यकर्मणि "सं जानीध्वम्" [६. ६४] इति तृचोक्तेषु उदकुम्भनिनयनादिषु विनियोगः। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम्॥

तत्र आद्यस्य तृचस्य वास्तोष्पत्यगणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः। सूत्रितं हि। "इहैव ध्रुवाम् [३. १२] एह यातु [६. ७३] यमो मृत्युः [६. ९३] सत्यं बृहत् [१२. १] इत्यनुवाको वास्तोष्पत्यानि" इति [कौ० १. ८]॥

अत्र "इहैव" [३] इत्यनया ऋचा नवशालाप्रवेशकर्मणि उदपात्रनिनयनानन्तरं यजमानो वाचं विसृजेत्। "यजूंषि यज्ञे

[५. २६] इति नवशालायाम्" इति प्रक्रम्य "इहैव स्त [३] इति वाचं विसृजते" इति [कौ० ३. ६] सूत्रितत्वात् ॥

आठवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं। उनमें 'एह यातु वरुणः' यह पहिला सूक्त है। इसमें 'एह यातु वरुणः' इस पहिले तृचका और 'सं वः पृच्यन्ताम्' इस दूसरे तृचका सांम्मनस्य कर्ममें और छठे काण्डके चौंसठवें तृचमें कहे हुए जलपूर्ण कलशके लाने आदिमें विनियोग होता है। सूत्र भी तहाँ ही लिख दिया है।

इनमें पहिले तृचका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ है, अतः शान्त्युदकके अभिमन्त्रण आदिमें जहाँ वास्तोष्पत्यगणका विनियोग होगा, तहाँ इसका विनियोग होगा। कौशिकसूत्र १। ८ में वास्तोष्पत्यगणकी सूची इस प्रकार दी है, कि-'इहैव ध्रुवाम् (यह तृतीयकांडका तिहत्तरवाँ तृच) एह यातु (यह छठे काण्डका तिहत्तरवाँ तृच) यमो मृत्युः (यह छठे काण्डका तिरानवेंवाँ तृच) और सत्यं बृहत् (यह बारहवें काण्डका प्रथम अनुवाक) यह वास्तोष्पत्यगण हैं' ॥

यहाँ 'इहैव' इस तीसरी ऋचासे नवशालाप्रवेश कर्ममें जलपूर्ण पात्रको लानेके पीछे यजमान वाणीका विसर्जन करे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-'यजूंषि यज्ञे (५। २६) इति नवशालायाम्' इति प्रक्रम्य 'इहैव स्तः (३) इति वाचं विसृजते' (कौशिकसूत्र ३। ६) ॥

तत्र प्रथमा ॥

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः

आ। इह। यातु। वरुणः। सोमः। अग्निः। बृहस्पतिः। वसुऽभिः। इह। यातु।

अ॒स्य । श्रिय॑म् । उ॒प॒ऽसं॑यात । सर्वे॑ । उ॒ग्रस्य॑ । चे॒त्तुः । सम्ऽम॑नसः । सु॒ऽजा॒ता॒ः ॥ १ ॥

इह अस्मिन् देशे वरुणः सोमः अग्निश्च प्रत्येकम् आ यातु सांमनस्यकरणार्थम् आगच्छतु । बृहस्पतिः बृहतां देवानाम् अधिपतिर्देवः वसुभिः अष्टसंख्याकैर्गणदेवैः सह इह अस्मिन् देशे आ यातु आगच्छतु । एते खलु सांमनस्यकारिणो देवाः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः" इति [तै० सं० ६. २. २. १] । हे सजाताः समानजन्मानो बान्धवाः ते सर्वे यूयं संमनसः समानमनस्काः सन्तः उग्रस्य उद्गूर्णबलस्य चेत्तुः कार्याकार्यविभागं सम्यग्जानानस्य अस्य यजमानस्य श्रियम् संपदम् उपसंयात उपसंप्राप्नुत । उपजीवका भवतेत्यर्थः ॥

वरुण और सोमदेवता तथा अग्निदेव भी इस स्थानमें सांमनस्य कर्म करनेके लिये आवें और बड़े २ देवताओंके अधिपति बृहस्पति भी आठ वसुओंके साथ आवें । हे समान जन्म वाले बांधवों ! तुम एकसे मन वाले बन कर इस प्रचण्ड बल वाले और कार्य तथा अकार्यको भली प्रकार जानने वाले यजमानकी लक्ष्मीमें आओ †, अर्थात् इसके उपजीवी होजाओ ॥ १ ॥

---

† तैत्तिरीयसंहितामें सांमनस्य कर सकने वाले देवताओंका इस प्रकार वर्णन किया है, कि–"अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिंद्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः ॥–वसुओं सहित अग्निदेव, रुद्रों सहित सोमदेव, मरुतोंसहित इन्द्रदेव, आदित्योंसहित वरुणदेव और विश्वेदेवताओंसहित बृहस्पति [ये सब सांमनस्य करने वाले देवता हैं]" तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । २ । १ ॥

द्वितीया ॥

यो व॒ः शुष्मो॒ हृद॑येष्व॒न्तराकू॑ति॒र्या वो॒ मन॑सि॒ प्रवि॑ष्टा ।
तान्त्सी॑वयामि ह॒विषा॑ घृ॒तेन॒ मयि॑ सजाता र॒मति॑र्वो
अस्तु ॥ २ ॥

यः । व॒ः । शुष्म॑ः । हृद॑येषु । अ॒न्तः । आऽकू॑तिः । या । व॒ः ।
मन॑सि । प्रऽवि॑ष्टा ।
तान् । सी॒व॒या॒मि॒ । ह॒विषा । घृ॒ते॑न । मयि॑ । स॒ऽजा॒ता॒ः । र॒मति॑ः ।
व॒ः । अ॒स्तु॒ ॥ २ ॥

हे सजाताः वः युष्माकं हृदयेषु यः शुष्मः शोषकं बलम् अस्ति। तथा वः युष्माकं हृदयमध्यवर्तिनि मनसि अन्तःकरणे या आकूतिः इदं मे स्याद् इदं मे स्याद् इति कल्पना अन्तः प्रविष्टा तां विविधाम् आकूतिं बलं च हूयमानेन घृतेन हविषा सीवयामि परस्परसंबद्धां करोमि। हे सजाताः वः युष्माकं रमतिः रमणम् अनुकूलप्रवृत्तिः मयि मदीये सांमनस्यकामे पुरुषे अस्तु भवतु ॥

हे बांधवों ! तुममें जो शोषक बल है तथा तुम्हारे हृदयके मध्यके अन्तःकरणमें 'यह मेरा होजाय यह पदार्थ मेरा होजाय' ऐसे जो संकल्प हैं उन सबको मैं इस आहुति दी जाने वाली हवि और घृतसे परस्पर संबद्ध करता हूँ, हे समान जन्म वाले बांधवों ! मुझ सांमनस्यको चाहने वालेमें तुम्हारी अनुकूलप्रवृत्ति -रति-रहे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इ॒हैव स्त॒ माप॑ या॒ताध्य॒स्मत् पू॒षा प॒रस्ता॒दप॑थं वः कृणोतु

वास्तो॒ष्पति॒रनु॑ वो जोहवीतु॒ मयि॑ सजाता॑ र॒मति॑र्वो॑
अस्तु ॥ ३ ॥

इ॒ह । ए॒व । स्त॒ । मा । अप॑ । या॒त॒ । अधि॑ । अ॒स्मत् । पू॒षा ।
प॒रस्ता॑त् । अप॑थम् । व॒ः । कृ॒णो॒तु॒ ।

वा॑स्तोः । पतिः । अनु॑ । व॒ः । जो॒ह॒वी॒तु॒ । मयि । स॒ऽजा॒ता॒ः ।
र॒मति॑ः । व॒ः । अ॒स्तु॒ ॥ ३ ॥

हे सजाताः इह अस्मदीये गृहे एव स्त भवत अनुरागेण वर्तध्वम् । अध्यस्मत् । ❀ अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी ❀। अस्मत्तोधि माप यात अपसरणं मा कुरुत । अस्मत्तः परस्ताद् अन्यत्र प्रातिकूल्येन वर्तमानानां वः युष्माकं पूषा मार्गरक्षको देवः अपथम् अमार्गं कृणोतु करोतु । अपसरणाय मार्गं न ददात्वित्यर्थः । ❀ न पन्थाः अपथम् । "नञस्तत्पुरुषात्" इति समासान्तनिषेधस्य "पथो विभाषा" इति विकल्पनात् "ऋक्पूरब्धूः०" इति अकारः समासान्तः । "अपथं नपुंसकम्" इत्यनुशासनात् नपुंसकत्वम् ❀ । वास्तोष्पतिः एतत्संज्ञको गृहाणां पालको देवः वः युष्मान् अनु जोहवीतु अनुसृत्य पुनः पुनरस्मदर्थम् आह्वयतु । ❀ ह्वयतेर्यङ्लुकि "अभ्यस्तस्य च" इति संप्रसारणम् ❀ । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

हे बांधवों ! तुम मेरे घरसे अनुराग भरा वर्ताव करो मुझसे अलग न जाओ, यदि तुम मुझसे प्रतिकूल चलने लगो, तो मार्गरक्षक पूषा देवता तुमको मुझसे प्रतिकूल चलने न देवे और घरके पालक वास्तोष्पतिनामक देवता मेरे लिये तुम्हारा वारंवार आह्वान करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

सं वः पृच्यन्तां तन्व१ः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

सम् । वः । पृच्यन्ताम् । तन्वः । सम् । मनांसि । सम् । ऊं इति । व्रता ।

सम् । वः । अयम् । ब्रह्मणः । पतिः । भगः । सम् । वः । अजीगमत् १

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकं तन्वः शरीराणि सं पृच्यन्ताम् परस्परानुरागेण संसृज्यन्ताम् । ❀ पृची संपर्के ❀ । तथा मनांसि शरीरान्तर्वर्तीनि अन्तःकरणानि संसृज्यन्ताम् । सम् उ । उशब्दः चार्थे । व्रता व्रतानि । कर्मनामैतत् । ❀ "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ❀ । कृषिवाणिज्यादीनि कर्माणि च संसृज्यन्ताम् । अपि च ब्रह्मणस्पतिः एतत्संज्ञको वेदराशेः पालयिता अयं देवः वः युष्मान् समजीगमत् संगतमनस्कान् करोतु । तथा भगः एतत्संज्ञो देवः वः युष्मान् समजीगमत् सङ्गतमनस्कान् करोतु । ❀ गमेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

हे साम्मनस्यको चाहने वालों ! तुम्हारे शरीर और मन पारस्परिक अनुरागसे बँध जावें, तुम्हारे कृषि और वाणिज्य आदि कर्म भी पारस्परिक अनुरागसे भरे हुए हुआ करें, भग और ब्रह्मणस्पति देवता तुमको हमारे लिये बारंबार बुलावें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

संज्ञपनं वो मनसोथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ २ ॥

सम्ऽज्ञपनम् । वः । मनसः । अथो इति । सम्ऽज्ञपनम् । हृदः ।

अथो इति । भगस्य । यत् । श्रान्तम् । तेन । सम्ऽज्ञपयामि । वः २

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकं मनसः ज्ञानसाधनस्य इन्द्रियस्य संज्ञपनम् सम्यग्ज्ञानजननम् । येन कर्मणा भवति तत् कर्म करोमीत्यर्थः । ❀ संजानानाम् प्रयुंक्त इत्यस्मिन्नर्थे "हेतुमति च" णिच् । ततः पुकि "मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा" इति मित्त्वात् "मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् । "नन्दिग्रहिपचादिभ्यः०" इति ल्युप्रत्ययः ❀ । अथो अपि च हृदः हृदयस्य मनसोपि आधारभूतस्य संज्ञपनम् समानज्ञानजननं करोमि ॥ अथो अपि च भगस्य एतत् संज्ञस्य सौभाग्यकरस्य देवस्य यच्छ्रान्तम् श्रमजनितं तपोस्ति । ❀ श्राम्यत्यस्मिन्निति श्रान्तम् । अधिकरणे क्तः । "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । "अनुनासिकस्य क्विझलोः०" इति दीर्घत्वम् ❀ । तेन श्रमजनिततपसा वः युष्मान् सांमनस्यकामान् संज्ञपयामि समानज्ञानान् करोमि ॥

हे एकचित्तताको चाहने वाले मनुष्यों ! जिस कर्मसे तुम्हारी ज्ञानकी मन इन्द्रिय श्रेष्ठ ज्ञानको उत्पन्न करने वाली हो, तिस कर्मको मैं करता हूँ और तुम्हारे हृदयको भी समान ज्ञानको उत्पन्न करने वाला करता हूँ और सौभाग्यदायक भगदेवताका जो श्रमसे किया हुआ तप है उससे मैं तुमको समान ज्ञान वाला करता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥ ३ ॥

य॑था । आ॒दि॒त्याः । वसु॑ऽभिः । स॒म्ऽब॒भू॒वुः । म॒रुत्ऽभि॑ः । उ॒ग्राः ।

अहृ॑णीयमानाः ।

ए॒व । त्रि॒ऽना॒म॒न् । अहृ॑णीयमानः । इ॒मान् । जना॑न् । सम्ऽम॑नसः ।

कृ॒धि॒ । इ॒ह ॥ ३ ॥

आदित्याः अदितेः पुत्रा मित्रवरुणादयः यथा येन प्रकारेण वसुभिः अष्टसंख्याकैर्गणदेवैः संबभूवुः समानज्ञाना अभूवन् । यथा च मरुद्भिः एकोनपञ्चाशत्संख्याकैः सह उग्राः उद्गूर्णबला रुद्रा अहृणीयमानाः अक्रुध्यन्तः समानज्ञाना अभूवन् । ❁ हृणीयतिः कण्ड्वादिः । अत्र क्रुध्यतिकर्मा ❁ । एव एवं हे त्रिणामन् त्रिषु भूम्यन्तरिक्षद्युस्थानेषु पार्थिववैद्युतसूर्यात्मना सर्वेषां नमयितः । यद्वा त्रीणि गार्हपत्यादीनि नामानि यस्य स तथोक्तः । तादृश हे अग्ने अहृणीयमानः अक्रुध्यंस्त्वम् इमान् सांमनस्यकामान् जनान् इह अस्मिन् ग्रामनगरादौ संमनसः समानमनस्कान् परस्परानुरक्तचित्तान् कृधि कुरु । ❁ "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ❁ ॥

[इति] अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अदितिके पुत्र मित्र वरुण आदि जिस प्रकार आठ वसुओंके साथ समान ज्ञान वाले होगए हैं और प्रचण्ड बली रुद्र जिस प्रकार क्रोधभावको त्याग कर उञ्चास मरुतोंके साथ समान ज्ञान वाले होगए हैं । हे भूमि अन्तरिक्ष और द्युस्थानमें पार्थिव वैद्युत और सूर्यरूपमें सबसे नमन कराने वाले और गार्हपत्य आदि तीन नामों वाले अग्निदेव ! आप क्रोधको त्याग कर इन साम्मनस्य चाहने वाले मनुष्योंको इस ग्राम वा नगरमें परस्पर अनुरक्त चित्त वाले करिये ॥ ३ ॥

अष्टम अनुवाकेमें प्रथम सूक्त समाप्त (२४७) ॥

"निरमुं नुदे" इति तृचेन आभिचारिके तन्त्रे दर्भास्तरणं कुर्यात्

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन सूक्तेन अभ्यातानान्ते इङ्गिडं जुहुयात् ॥ [कौ० ६. २] ॥

तस्मिन्नेव तन्त्रे अनेन तृचेन संस्थितहोमान् जुहुयात् ॥

"य एनं परिषीदन्ति" इति चतुर्ऋचेन विजयस्वस्त्ययनकामः खड्गाद्यसाधारणं शस्त्रं संपात्य हस्तेन विमृज्य अभिमन्त्र्य धारयेत्

तथा रात्रिस्वस्त्ययनकामः एतं चतुर्ऋचं जपित्वा प्रादेशेन मुखं विमाय स्वप्यात् ॥

तथा देशान्तरं जिगमिषुः स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थं सुप्तोत्थित एतं चतुर्ऋचं जपन् त्रीणि पदानि प्रक्रम्य उद्दिष्टं देशं गच्छेत् ॥

तत्रैव कर्मणि भूमौ त्रीन् प्रादेशान् मित्वा गच्छेत् ॥

सूत्रितं हि । "य एनं परिषीदन्तीति यदायुधं दण्डेन व्याख्यातम् । दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति । त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो दिष्टीः" इति [कौ० ७. १] ॥

"निरमुं नुदे" इस तृचसे आभिचारिक तन्त्रमें दर्भोंको फैलावे।

तथा इसी कर्ममें इस सूक्तसे अभ्यातानके अंतमें इङ्गिडकी आहुति देय । (कौशिकसूत्र ६ । २) ॥

इसी तन्त्रमें इस तृचमें संस्थित होमोंको करे ॥

चार ऋचा वाले सूक्त 'य एनं परिषीदन्ति' विजयमें स्वस्त्ययन चाहने वाला पुरुष इससे खड्ग आदि असाधारण शस्त्रका सम्पातन कर उसको हाथसे स्वच्छ कर अभिमन्त्रित करके धारण करे ।

तथा रात्रिमें स्वस्त्ययनको चाहने वाला पुरुष इस चार ऋचा वाले सूक्तको जप कर मुख पर प्रादेशको फेर कर सो जावे ।

और परदेशको जाना चाहनेवाला पुरुष अपने प्रयोजनकी सिद्धि के लिये सोकर उठते ही इस चार ऋचावाले सूक्तको जपता हुआ तीन पैर रख कर अपने अभिलषित स्थानको चल देय ।

तहाँ ही भूमिमें तीन प्रादेशोंको नाप कर चल देय ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'य एनं परिषीदन्तीति यदायुधं दण्डेन व्याख्यातम् । दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति । त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो दिष्टीः (कौशिकसूत्र ७।१)॥

तत्र प्रथमा ॥

निर॒मुं नु॑द॒ ओक॑सः स॒पत्नो॒ यः पृ॑त॒न्यति॑ ।
नै॒र्बा॒ध्ये॑न ह॒विषेन्द्र॑ एनं॒ परा॑शरीत् ॥ १ ॥

निः । अ॒मुम् । नु॒दे॒ । ओक॑सः । स॒ऽपत्नः॑ । यः । पृ॒त॒न्यति॑ ।
नैः॒ऽबा॒ध्ये॑न । ह॒विषा॑ । इन्द्रः॑ । ए॒न॒म् । परा॑ । अ॒श॒री॒त् ॥१॥

अमुं शत्रुम् ओकसः स्वनिवासस्थानाद् निर्नुदे निर्गमयामि । मन्त्रसामर्थ्येन स्वस्थानात् प्रच्यावयामीत्यर्थः । ❀ कः पुनरसौ इत्याह । यः सपत्नः शत्रुः पृतन्यति अस्मान् बाधितुं पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छति । ❀ "कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः" इति क्यचि पृतनाशब्दस्य अन्तलोपः ❀ । निर्णोदनप्रकारम् आह नैर्बाध्येनेति । निःशेषेण बाधो निर्बाधः तम् अर्हतीति निर्बाध्यो हन्तव्यः शत्रुः तद्विषये प्रयुज्यमानं हविः नैर्बाध्यम् । ❀ "तस्येदम्" इति अण् ❀ । निर्बाधनक्षमेण हविषा आज्यादिना हूयमानेन परितुष्ट इन्द्रः एनं शत्रुं पराशरीत् पराशृणातु । यथा न पुनरावर्तते तथा पराङ्मुखं हिनस्तु इत्यर्थः । ❀ शॄ हिंसायाम् । अस्मात् "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति प्रार्थनायां लुङ् ❀ ॥

जो शत्रु हमको पीड़ा देनेके लिये सेना एकत्रित करना चाहता है उस शत्रुको हम मंत्रशक्तिसे स्थान च्युत करते हैं । शत्रुका वध करनेके लिये प्रेरित घृतकी हविके होमनेसे प्रसन्न हुए इन्द्र इस शत्रुको इस प्रकार मारे" कि-जिससे यह फिर लौटकर न आसके॥

द्वितीया ॥

प॒र॒मां॑ तं प॑रा॒वत॒मिन्द्रो॑ नुदतु वृत्र॒हा ।

य॒तो॑ न पुन॒राय॑ति शश्व॒तीभ्यः॒ स॒मा॑भ्यः ॥ २ ॥

प॒र॒माम् । तम् । प॒रा॒ऽवत॑म् । इन्द्र॑ः । नु॒द॒तु॒ । वृ॒त्र॒ऽहा ।

यत॑ः । न । पुन॑ः । आ॒ऽअय॑ति । श॒श्व॒तीभ्य॑ः । स॒मा॑भ्यः ॥२॥

वृत्रहा वृत्रम् असुरं हतवान् इन्द्रः तं शत्रुं परमां परावतम् । परावत् इति दूरनाम । अतिशयितदूरदेशं नुदतु प्रेरयतु । तं दूरदेशं विशिनष्टि । यतः यस्माद् दूरात् प्रणुत्तः शत्रुः शश्वतीभ्यः समाभ्यः बहुसम्वत्सरकालादपि न पुनरायति पुनर्नावर्तते । तादृशम् अत्यन्तदूरं [देशं] शत्रुं गमयत्वित्यर्थः । ❀ परावतम् इति । "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः ❀ ॥

वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र उस शत्रुको ऐसे दूर देशमें भेज दें, कि–जहाँसे वह सैंकड़ों वर्षोंमें भी फिर न आ सके ॥२॥

तृतीया ॥

एतु ति॒स्र प॑रावत॒ एतु॒ पञ्च॒ जना॒ँ अति॑ ।

एतु॑ ति॒स्रोति॑ रोच॒ना यतो॒ न पुन॒राय॑ति

शश्व॒तीभ्य॒ः समा॑भ्यो॒ याव॒त् सूर्यो॑ अस॑द् दि॒वि॒ ३

एतु॑ । ति॒स्रः । प॒रा॒ऽवत॑ः । एतु॑ । पञ्च॑ । जना॑न् । अति॑ ।

एतु॑ । ति॒स्रः । अति॑ । रोच॒ना । यत॑ः । न । पुन॑ः । आ॒ऽअय॑ति ।

श॒श्व॒तीभ्य॑ः । स॒मा॑भ्यः । याव॑त् । सूर्य॑ः । अस॑त् । दि॒वि ॥३॥

इन्द्रेण नुन्नः अस्मच्छत्रुः परावतः दूरवर्तिनीः तिस्रो भूमीः अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु । "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ऐ० ब्रा० २. १७] इति वाक्यशेषात् "तिस्रो भूमीर्धारयन्" इति [ऋ० २. २७. ८] मन्त्रवर्णाच्च तिस्रः परावत इत्युक्तम् । तथा पञ्च जनान् । निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः । तान् अत्येतु । मनुष्यसंचारदेशं विहाय दूरं गच्छत्वित्यर्थः । तथा तिस्रः त्रिसंख्याका रोचनाः सूर्यचन्द्राग्नीनां रोचमानाः प्रभा अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु । सूर्यादीनां प्रभा यत्र न सन्ति तं देशं गच्छत्वित्यर्थः । ❀ रुच दीप्तौ । ' अनुदात्तेतश्च हलादेः" इति युच् ❀। यतो न पुनरायतीत्यादि व्याख्यातम् । उक्तं कालबहुत्वं विशिनष्टि यावत् सूर्य इति । यावत्कालपर्यन्तं दिवि द्युलोके सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः असत् भवेत् । ❀ अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ । तावत्कालपर्यन्तं शत्रुः पुनर्नावर्तताम् इत्यर्थः ॥

इन्द्रसे भेजा हुआ हमारा शत्रु दूरवर्तित तीनों भूमियोंके भी पार पहुँच जावे, निषाद आदि पाँच जनोंके भी पार जावे अर्थात् मनुष्योंके घूमनेके स्थानको लाँघकर दूर चला जावे । और चन्द्रमा सूर्य और अग्निकी जहाँ कान्ति नहीं हो तहाँ पहुँचे, और जब तक द्युलोकमें सूर्य रहे तब तक सैंकड़ों वर्षों तक लौट कर न आ सके ३

चतुर्थी ॥

य॒ एनं॑ परि॒षीद॑न्ति समा॒दध॑ति॒ चक्ष॑से ।
सं॒प्रेद्धो॑ अ॒ग्निर्जि॒ह्वाभि॒रुदे॑तु॒ हृद॑या॒दधि॑ ॥ १ ॥

ये । ए॒न॒म् । प॒रि॒ऽसीद॑न्ति । स॒म्ऽआ॒दध॑ति । चक्ष॑से ।
स॒म्ऽप्रे॑द्धः । अ॒ग्निः । जि॒ह्वाभिः । उत् । ए॒तु॒ । हृद॑यात् । अधि १

एनं स्वस्त्ययनकामं ये रक्षःप्रभृतयो हिंसकाः परिषीदन्ति

हिंसितुं परित उपविशन्ति ततः चक्षसे हिंसायै समादधति समाहिताः संनद्धा भवन्ति । ❀ नृचक्षाः राक्षसः इतिवत् चष्टिरत्र हिंसाकर्मा । तस्माद् असुनि "असनयोश्च" इति ख्याञादेशाभावः ❀ । यद्वा एनम् अग्निं परिचरितुं ये जनाः पर्युपविशन्ति चक्षसे दर्शनाय समादधति इध्मप्रक्षेपेण प्रज्वलयन्ति । तैः संप्रेद्धः प्रकर्षेण संदीपितोग्निः स्वकीयाभिर्जिह्वाभिः सह हृदयादधि अस्मदीयाद्धृदयाद् उदेतु उद्गच्छतु । उत्पद्यताम् इत्यर्थः । "अहं त्वद् अस्मि मद् असि त्वम् एतत् । ममासि योनिस्तव योनिरस्मि" इति हि निगमः [तै० ब्रा० १. २. १. २०] । यद्वा पर्युपविशतां रक्षःप्रभृतीनां हृदयात् संप्रवृद्धोग्निः उदेतु । तान् प्रदग्धुम् इत्यर्थः ॥

जो राक्षस आदि इस स्वस्त्ययन चाहने वाले पुरुषको मारने के लिये इसके चारों ओर बैठ जाते हैं और हिंसा करनेके लिये उद्यत होजाते हैं उन घेर कर बैठने वाले राक्षस आदिके हृदयमें उनको भस्म करनेके लिये प्रचण्ड अग्नि अपनी जिह्वाओं सहित उदय होजावें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒ग्नेः सां॑तप॒नस्या॒हमायुषे प॒दमा र॑भे ।
अ॒द्धा॒तिर्य॑स्य॒ पश्य॑ति धूममु॒द्यन्तं॑मास्य॒तः ॥ २ ॥

अ॒ग्नेः । सा॒म्ऽत॒प॒नस्य॑ । अ॒हम् । आयु॑षे । प॒दम् । आ । र॒भे॒ ।
अ॒द्धा॒तिः । यस्य॑ । पश्यति । धू॒मम् । उ॒त्ऽयन्त॑म् । आ॒स्य॒तः २

सांतपनस्य अत्यर्थं तपनं संतपनम् तत्संबन्धिनः अग्नेः पदम् स्थानं तद्वाचिपदात्मकं शब्दम् वा आयुषे जीवनाय अहम् आ रभे उपक्रमे । यस्याग्नेः आस्यतः आस्याद् मुखाद् उद्यन्तम् उद्गच्छन्तं धूमम् अद्धातिः । अद्धा प्रत्यक्षम् अतति सततं ध्यानेन प्राप्नोतीति

अद्धातिः एतत्संज्ञो महर्षिः पश्यति साक्षात्करोति । यद्वा यस्याग्नेर्धूमं तपःप्रभावात् स्वस्माद् आस्याद् उद्गच्छन्तं पश्यति तादृशस्याग्नेः पदम् इति संबन्धः ॥

अद्धाति ऋषि जिस अग्निके धूमको तपःप्रभाववश अपने मुखमेंसे निकलता हुआ देख चुके हैं, उस परम सन्तप्त करनेवाले अग्निके वाचक शब्दको मैं जीवन पानेके लिये आरम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥ ३ ॥

यः । अस्य । सम्ऽइधम् । वेद । क्षत्रियेण । सम्ऽआहिताम् ।
न । अभिऽह्वारे । पदम् । नि । दधाति । सः । मृत्यवे ॥ ३ ॥

क्षत्रियेण क्षत्रजातीयेन विजयकामेन पुंसा समाहिताम् सम्यग् आहितां क्षिप्ताम् अस्य अग्नेः समिधम् संदीपनीम् आहुतिं यः पुरुषो वेद जानाति स वेदिता मृत्यवे मृत्युं गन्तुम् अभिह्वारे अभितः कुटिले मृत्युप्राप्तिनिमित्ते गजव्याघ्रादिभूयिष्ठे स्थाने पदं न नि दधाति न निक्षिपति । इत्थं वेदितुर्मरणशङ्कापि नैवोदेतीत्यर्थः ॥

विजयाभिलाषी क्षत्रिय पुरुषसे भली प्रकार रक्खी हुई इन अग्निकी सन्दीपनी आहुतिको जो पुरुष जानता है, वह ज्ञाता पुरुष परम कुटिल मृत्युप्राप्तिके निमित्त गज व्याघ्र आदिसे भरे हुए स्थानमें पैरको नहीं रखता है ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

न । एनम् । घ्नन्ति । परिऽआयिनः । न । सन्नान् । अव । गच्छति । अग्नेः । यः । क्षत्रियः । विद्वान् । नाम । गृह्णाति । आयुषे । ४॥

एनं स्वस्त्ययनकामं पर्यायिणः परित आगन्तारः शत्रवो न घ्नन्ति न हिंसन्ति । [सन्नान्] समीपस्थानपि तान् अयं नावगच्छति नावबुध्यते । अस्य ज्ञानविषयेपि शत्रवो नावस्थातुं शक्नुवन्तीत्यर्थः । कः पुनरसौ इत्याह । यः क्षत्रियः विद्वान् उक्तप्रकारेण माहात्म्यं जानन् अग्नेर्नाम स्तावकं नामधेयम् आयुषे चिरकालजीवनाय गृह्णाति उच्चारयति । नैवैनं घ्नन्तीति संबन्धः ॥

[इति] अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जो विद्वान् क्षत्रिय ऐसे माहात्म्यको जानकर अग्निके स्तोत्रका चिरकाल तक जीवित रहनेकी कामना करके उच्चारण करता है उस स्वस्त्ययन चाहने वालेको चारों ओरसे आने वाले शत्रु नहीं मारते, यदि शत्रु पासमें खड़े हों तब भी यह उनको नहीं जानता अर्थात् इसके ज्ञानविषयमें शत्रु टिकनेको समर्थ नहीं होते ॥ ४ ॥

अष्टम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (२४२) ॥

"अस्थाद् द्यौः" इति तृचेन पलायनशीलायाः स्त्रिया निरोधनकर्मणि रज्जुवेष्टनम् अभिमन्त्र्य मध्यमस्थूणायां बध्नीयात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि स्त्रीखट्वायाः पादम् अनेन तृचेन अभिमन्त्र्य उपले बध्नीयात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन तिलान् जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि । "अस्थाद् द्यौरिति निवेष्टनम् । आवेष्टनेन वंशाग्रम् अवबध्य मध्यमायां बध्नाति" इत्यादि [कौ० ४. १२] ॥

"तेन भूतेन" इति तृचेन विवाहे आज्यं हुत्वा वरवध्वोर्मूर्ध्नि संपातान् आनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि तेनैव तृचेन रसान् स्थालीपाकं च संपात्य अभिमन्त्र्य भोजनसमये जायापती प्राशयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन आज्यमिश्रैर्यवैः अञ्जलिं परिपूर्य जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि विवाहप्रकरणे । "तेन भूतेनेति [६. ७८] तुभ्यम् अग्रे [१४. २] शुम्भनी" [७. ११७] इति प्रक्रम्य "मूर्ध्नोः संपातान् आनयति । तेन भूतेन समशनं रसान् आशयति स्थालीपाकं च । यवानाम् आज्यमिश्राणां पूर्णाहुतिं जुहोति" इति [कौ० १०. ४] ॥

'अस्थाद् द्यौः' इस तृचसे भाग जानेके स्वभाव वाली स्त्रीके रोकनेके कर्म में रज्जुवेष्टन (रस्सीके लपेटन) को अभिमन्त्रित करके मध्यमस्थूणामें बाँध देवे ।

तथा इसी कर्म में स्त्रीके खाटके पायेको इस तृचसे अभिमन्त्रित करके पत्थरमें बाँध देवे ।

तथा इसी कर्म में इस तृचसे तिलोंकी आहुति देय

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'अस्थाद् द्यौरिति निवेष्टनम् । आवेष्टनेन वंशाग्रम् अवबध्य मध्यमायां बध्नाति ।०' (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

'तेन भूतेन' इस तृचसे विवाहमें घृतकी आहुति देकर वर और वधूके मस्तक पर सम्पातोंको लावे ।

तथा तहाँ ही कर्म में रसोंको और स्थालीपाकको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भोजनके समय पति पत्नीको खिला देवे ।

तथा इसी कर्ममें इस तृचसे घृत मिले हुए यवों (जौं) की अञ्जलिको भर कर आहुति देय ।

विवाहप्रकरणके सूत्रोंमें कहा है, कि-'तेन भूतेनेति (६।७८) तुभ्यम् अग्रे (१४ । २) शुम्भनी' (७ । ११७) इति प्रक्रम्य "मूर्ध्नोः सम्पातान् आनयति । तेन भूतेन समशनं रसान् आशयति स्थालीपाकं च । यवानां आज्यमिश्राणां पूर्णाहुतिं जुहोति" (कौशिकसूत्र १० । ४)

तत्र प्रथमा ॥

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥१॥

अस्थात् । द्यौः । अस्थात् । पृथिवी । अस्थात् । विश्वम् । इदम् । जगत् ।
आऽस्थाने । पर्वताः । अस्थुः । स्थाम्नि । अश्वान् । अतिष्ठिपम् १

नियन्तुरीश्वरस्य आज्ञया यथा द्यौरस्थात् अप्रचलिता स्वस्थाने तिष्ठति । पृथिव्यपि यथा अस्थात् निश्चलं तिष्ठति । तयोर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानं विश्वम् सर्वम् इदं जगत् स्वे स्वे स्थाने अस्थात् तिष्ठति । पर्वता मेरुमन्दरादयोऽपि आस्थाने ईश्वरेण कल्पिते स्थाने अस्थुः तिष्ठन्ति । एवमेव हे योषित् स्थाम्नि । तिष्ठत्यस्मिन् गृहं सर्वम् इति स्थामा स्थूणा । ❀ "आतो मनिन्०" इति मनिन् प्रत्ययः ❀ । तत्र त्वाम् अतिष्ठिपम् बन्धनेन स्थापयामि । अश्वान् इति लुप्तोपमम् । यथा दुष्टान् अश्वान् सादिनो रज्जुभिर्बध्नन्ति तद्वत् । यद्वा स्थाम्नि स्थाने गृहे अश्वानिव त्वाम् अनेन कर्मणा स्थापयामि । ❀ तिष्ठतेर्ण्यन्ताच्छान्दसे लुङि चङि "तिष्ठतेरित्" इति इत्वम् ❀ ॥

नियन्ता ईश्वरकी आज्ञासे जिस प्रकार द्यौः अपने स्थानमें अचलरूपसे खड़ा हुआ है और पृथिवी अपने स्थान पर निश्चल खड़ी हुई है और इन द्यावापृथिवीके मध्यमें वर्तमान सब जगत् अपने २ स्थान पर प्रतिष्ठित है, मेरु मन्दर आदि पर्वत भी ईश्वरके द्वारा निर्दिष्ट अपने स्थानमें स्थित हैं, इसी प्रकार हे स्त्रि ! जिसके आधार पर सारा घर ठहरा हुआ है उस खंभेमें तुझको बन्धनके द्वारा मैं बाँधता हूँ जैसे दुष्ट घोड़ोंको सवार रस्सियोंसे बाँध लेते हैं, इसी प्रकार मैं तुझको इस कर्मसे बाँधता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

य उ॒दान॑ट् प॒राय॑णं॒ य उ॒दान॒ण्न्याय॑नम् ।
आ॒वर्त॑नं नि॒वर्त॑नं॒ यो गो॒पा अपि॒ तं हु॑वे ॥ २ ॥

यः । उ॒त्ऽआन॑ट् । प॒रा॒ऽअय॑नम् । यः उ॒त्ऽआन॑ट् । नि॒ऽअय॑नम् ।
आ॒ऽवर्त॑नम् । नि॒ऽवर्त॑नम् । यः । गो॒पाः । अपि॑ । तम् । हु॒वे॒ ॥२॥

यो देवः परायणम् पराङ्मुखगमनम् उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति तथा न्ययनम् नितरां नीचीनं वा गमनं यो देवः उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति । ❀ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । अस्मात् छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "छन्दस्यपि दृश्यते" इति आडागमः । षत्वष्टुत्वे ❀ । यश्च देवः गोपाः गोपायिता पलायमानानाम् आवर्तनम् आगमनं निवर्तनम् गतिप्रतिरोधं च कर्तुं शक्नोति । अपिः संभावनायाम् । इत्थं संभाव्यमानं तं देवं हुवे आह्वयामि । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणम् ❀ ॥

जो देवता पराङ्मुखरूप गमनमें व्याप्त रहते हैं और जो देवता नीचेको छिप कर चलनेमें व्याप्त होगए हैं और जो देवता भागते हुओंकी आने जानेकी गतिको रोकनेमें समर्थ हैं, उन देगताका मैं आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

जात॑वेदो॒ नि व॑र्तयः श॒तं ते॑ सन्त्वा॒वृत॑ः ।
स॒हस्रं॑ त उ॒पावृ॒त॒स्ताभि॑र्नः॒ पुन॒रा कृ॑धि ॥ ३ ॥

जात॑ऽवेदः । नि॑ । व॒र्त॒य॒ । श॒तम् । ते॒ । स॒न्तु॒ । आ॒ऽवृत॑ः ।
स॒हस्र॑म् । ते॒ । उ॒प॒ऽआ॒वृत॑ः । ताभि॑ः । न॒ः । पुन॑ः । आ । कृ॒धि॒ ॥३॥

हे जातवेदः जातानां वेदितः अग्ने पलायनशीलाम् इमां स्त्रियं निवर्त्तय पलायनात् प्रच्यावय । गृहे स्थापयेत्यर्थः । ते तव आवृतः आवर्तनोपायाः शतम् शतसंख्याकाः अस्मिन् विषये सन्तु भवन्तु । तथा सहस्रम् । सहस्रसंख्याकाः ते त्वदीया उपावृतः समीपदेशप्राप्त्युपायाः सन्तु भवन्तु । ताभिरावृद्भिः उपावृद्भिश्च नः अस्माकम् इमां स्त्रियं पुनरा कृधि अभिमुखीं कुरु ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप भागनेकी प्रकृति वाली इस स्त्रीको भागनेसे हटाइये—घरमें ही स्थित रखिये । आपके लौटानेके सैंकड़ों उपाय इस समय प्रयोगमें आवें । और आपके समीपमें रखनेके जो हजारों उपाय हैं—वे भी इस समय दीखें, उन उपायों से इस स्त्रीको आप हमारे अभिमुख करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

तेन॑ भू॒तेन॑ ह॒वि॒षायमा प्या॑य॒तां पुन॑ः ।
जा॒यां याम॑स्मा॒ आवा॑क्षु॒स्तां रसे॑ना॒भि वर्धताम् १

तेन॑ । भू॒नेन॑ । ह॒विषा॑ । अ॒यम् । आ । प्या॒य॒ता॒म् । पुन॑ः ।

जा॒याम् । याम् । अ॒स्मै॒ । आ॒ऽअवा॑क्षुः । ताम् । रसे॑न । अ॒भि । व॒र्ध॒ता॒म्

तेन प्रसिद्धेन भूतेन समृद्धिकरेण हूयमानेन हविषा अयं पतिः पुनरा प्यायताम् । पुनःपुनः प्रजापश्वादिभिः समृद्धो भवतु । अस्मै पत्ये यां स्त्रियं जायाम् आवाक्षुः जायात्वेन समीपम् आनयिषुः विवाहकर्तारः पितृमात्रादयः । ❀ वह प्रापणे । लुङि सिचि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः ❀ । तां जायां रसेन दधिमधुघृतादिना अभि वर्धताम् अयं हूयमानोग्निरभिवर्धयतु । ❀ "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ ॥

द्वितीया ॥

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ २ ॥

यः । उत्ऽआनट् । पराऽअयनम् । यः उत्ऽआनट् । निऽअयनम् ।
आऽवर्तनम् । निऽवर्तनम् । यः । गोपाः । अपि । तम् । हुवे ॥२॥

यो देवः परायणम् पराङ्मुखगमनम् उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति तथा न्ययनम् नितरां नीचीनं वा गमनं यो देवः उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति । ❀ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । अस्मात् छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "छन्दस्यपि दृश्यते" इति आडागमः । षत्वष्टुत्वे ❀ । यश्च देवः गोपाः गोपायिता पलायमानानाम् आवर्तनम् आगमनं निवर्तनम् गतिप्रतिरोधं च कर्तुं शक्नोति । अपिः संभावनायाम् । इत्थं संभाव्यमानं तं देवं हुवे आह्वयामि । ❀ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणम् ❀ ॥

जो देवता पराङ्मुखरूप गमनमें व्याप्त रहते हैं और जो देवता नीचेको छिप कर चलनेमें व्याप्त होगए हैं और जो देवता भागते हुओंकी आने जानेकी गतिको रोकनेमें समर्थ हैं, उन देवताका मैं आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

जातवेदो नि वर्तयः शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥ ३ ॥

जातऽवेदः । नि । वर्तय । शतम् । ते । सन्तु । आऽवृतः ।
सहस्रम् । ते । उपऽआवृतः । ताभिः । नः । पुनः । आ । कृधि ॥३॥

हे जातवेदः जातानां वेदितः अग्ने पलायनशीलाम् इमां स्त्रियं निवर्तय पलायनात् प्रच्यावय । गृहे स्थापयेत्यर्थः । ते तव आवृतः आवर्तनोपायाः शतम् शतसंख्याकाः अस्मिन् विषये सन्तु भवन्तु । तथा सहस्रम् । सहस्रसंख्याकाः ते त्वदीया उपावृतः समीपदेशप्राप्त्युपायाः सन्तु भवन्तु । ताभिरावृद्भिः उपावृद्भिश्च नः अस्माकम् इमां स्त्रियं पुनरा कृधि अभिमुखीं कुरु ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप भागनेकी प्रकृति वाली इस स्त्रीको भागनेसे हटाइये—घरमें ही स्थित रखिये । आपके लौटानेके सैंकड़ों उपाय इस समय प्रयोगमें आवें । और आपके समीपमें रखनेके जो हजारों उपाय हैं—वे भी इस समय दीखें, उन उपायों से इस स्त्रीको आप हमारे अभिमुख करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

तेन॑ भू॒तेन॑ ह॒विषा॒यमा प्या॑यतां॒ पुन॑ः ।
जा॒यां याम॑स्मा॒ आवा॑क्षु॒स्तां रसे॑ना॒भि वर्धताम् १

तेन॑ । भू॒नेन॑ । ह॒विषा॑ । अ॒यम् । आ । प्या॒य॒ता॒म् । पुन॑ः ।

जा॒याम् । याम् । अ॒स्मै॒ । आ॒ऽअवा॑क्षुः । ताम् । रसे॑न । अ॒भि । व॒र्ध॒ता॒म्

तेन प्रसिद्धेन भूतेन समृद्धिकरेण हूयमानेन हविषा अयं पतिः पुनरा प्यायताम् । पुनःपुनः प्रजापश्वादिभिः समृद्धो भवतु । अस्मै पत्ये यां स्त्रियं जायाम् आवाक्षुः जायात्वेन समीपम् आनयिषुः विवाहकर्तारः पितृमात्रादयः । ❀ वह प्रापणे । लुङि सिचि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः ❀ । तां जायां रसेन दधिमधुघृतादिना अभि वर्धताम् अयं हूयमानोग्निरभिवर्धयतु । ❀ "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ❀ ॥

इस समृद्धि करने वाली होमी जाने वाली प्रसिद्ध इक्सि यह पति वारंवार प्रजा पशु आदिसे समृद्ध होवे । इस पतिके लिये विवाह करने वाले माता पिता जिस स्त्रीको स्त्रीरूपसे समीपमें लाये हैं, उस जायाको यह आहूयमान (जिनके लिये आहुति दी जारही है वह) अग्निदेव दधि मधु घृत आदिसे बढ़ावें अर्थात् इसके घरमें दही शहद घी आदि सदा बढ़ता रहे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒भि व॑र्ध॒तां पय॒साभि रा॒ष्ट्रेण॑ वर्धताम् ।
र॒य्या स॒हस्र॑वर्चसे॒मौ स्ताम॑नुपक्षितौ ॥ २ ॥

अ॒भि । व॒र्ध॒ता॒म् । पय॑सा । अ॒भि । रा॒ष्ट्रेण॑ । व॒र्ध॒ता॒म् ।
र॒य्या । स॒हस्र॑ऽवर्चसा । इ॒मौ । स्ता॒म् । अनु॑पऽक्षितौ ॥ २ ॥

पूर्वमन्त्रोक्त एवार्थः अनया विव्रियते । अयं वरो वधूश्च पयसा क्षीरेण अभि वर्धताम् । गोभिः समृध्यताम् इत्यर्थः ॥ तथा राष्ट्रेण अभि वर्धताम् । ग्रामादिसमृद्धिर्भवत्वित्यर्थः ॥ सहस्रवर्चसा अपरिमिततेजसा रय्या धनेन इमौ जायापती अनुपक्षितौ अनुपक्षीणौ संपूर्णकामौ स्ताम् भवताम् ॥ ❀ अस्तेर्लोटि तसस्तामादेशे "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः ❀ ॥

यह वधू और वर क्षीरसे समृद्ध रहें–अर्थात् इनके घरमें गोसम्पत्ति रहे । और इनका राज्य (ग्राम आदि) बढ़ता रहे । अपरिमित तेज वाले धनसे यह दम्पती पूर्णकाम रहें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

त्वष्टा॑ जा॒याम॑जनय॒त् त्वष्टा॑स्यै॒ त्वां पति॑म् ।
त्वष्टा॑ स॒हस्र॒मायूं॑षि दी॒र्घमायुः॑ कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

त्वष्टा । जा॒याम् । अजनयत् । त्वष्टा । अ॒स्यै॒ । त्वाम् । पति॑म् ।

त्वष्टा॑ । स॒ह॑स्रम् । आयूं॑षि । दी॒र्घम् । आयु॑ः । कृणोतु । वाम् ३

त्वष्टा तनूकर्ता शिल्पकारी एतत्संज्ञो देवः जायाम् स्त्रियम् अजनयत् उदपादयत् । जायतेऽस्याम् अपत्यरूपेण पतिरिति जाया। श्रूयते हि । "तज्जाया जाया भवति यद् अस्यां जायते पुनः" इति [ऐ० ब्रा० ७. १३] । ईदृक्सामर्थ्योपेतं स्त्रीजन्म कृतवान् इत्यर्थः । हे वर अस्यै अस्या जायायास्त्वां पतिम् भर्तारं त्वष्टैव अजनयत् । स्त्रीपुंससृष्टेस्त्वष्टैव कर्तेत्यर्थः । श्रूयते हि तैत्तिरीयके । "त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां प्रजनयिता" इति [तै० सं० २. १. ८. ४] । यस्माद् एवं तस्मात् हे जायापती वां युवयोः त्वष्टा देवः सहस्रसंवत्सरपरिमितानि आयूंषि एवमात्मकम् दीर्घम् आयुः कृणोतु करोतु । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः । "युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः०" इति युष्मदो वाम् आदेशः । स च "अनुदात्तं सर्वम् अपादादौ" इत्यनुवृत्तेरनुदात्तः ❀ ॥

[इति] अष्टमेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

शरीरकी रचना करने वाले शिल्पकारी त्वष्टा देवताने जाया (स्त्री) को उत्पन्न किया है † । हे वर ! इस जायाके पति

---

† "जायतेऽस्यां अपत्यरूपेण पतिरिति जाया–पति जिसमें सन्तानरूपसे उत्पन्न होता है वह जाया कहलाती है" इस व्याकरणके अनुसार की हुई पतिशब्दकी व्युत्पत्तिका ऐतरेयब्राह्मण में भी समर्थन किया है, कि–"तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः । जो इसमें पुनर्वार उत्पन्न होता है यही जायाका जायापन है" (ऐतरेयब्राह्मण २ । १ । ८ । ४)

(भर्ता) तुमको भी त्वष्टा देवताने ही उत्पन्न किया है अर्थात् स्त्री और पुरुषसृष्टिके त्वष्टा ही रचनेवाले हैं ‡। इस कारण हे वधू वरो! त्वष्टा देवता तुम्हारी सहस्र वर्ष तककी दीर्घायु करें ३

अष्टम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (२५१)॥

"अयं नो नभसस्पतिः" इति तृचेन धान्यस्फातिकामः अश्मानं संप्रोक्ष्य अभिमन्त्र्य कुसूलादिधान्यनिधानस्थानेषु निधाय तस्योपरि अन्वृचं तिस्रो धान्यमुष्टीर्निदध्यात्। सूत्रितं हि। "अयं नो नभसस्पतिरिति पल्येऽश्मानं संप्रोक्ष्य अन्वृचं काशीन् ओप्य आवापयति" इति [कौ० ३, ४]॥

"अन्तरिक्षेण पतति" इति तृचेन काककपोतश्येनादिपक्षिहतम् अङ्गं श्वपदस्थानमृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य प्रलिम्पेत्॥

तथा तत्रैव कर्मणि शुनोऽङ्गस्था मक्षिका अनेन अभिमन्त्र्य अग्नौ प्रक्षिप्य तथाविधम् अङ्गं धूपयेत्॥

"अन्तरिक्षेण इति पक्षहतम् अङ्गं मन्त्रोक्तमृत्तिकया। कीटेन धूपयति" इति सूत्रात् [कौ० ४. ७]॥

"अयं नो नभसस्पतिः" इस तृचसे धान्यकी वृद्धिको चाहनेवाला पुरुष पत्थरका प्रोक्षण करके और अभिमन्त्रित करके कुठिया आदि धान्यके रखनेके स्थानोंमें रख कर उसके ऊपर प्रत्येक ऋचासे धान्यकी एक २ (तीन) मुट्ठियें रक्खे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'अयं नो नभसस्पतिरिरि पल्येऽश्मानं सम्प्रोक्ष्य अन्वृचं काशीन् ओप्य आवापयति" (कौशिकसूत्र ३।४)

"अन्तरिक्षेण पतति" इस तृचसे कौआ कबूतर बाज आदिसे चुटीले हुए अङ्ग पर कुत्तेके पैरके स्थानकी मृत्तिकाको अभिमंत्रित करके लेप करे।

---

‡ तैत्तिरीयसंहिता २।१।८।४ में कहा है, कि-त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां प्रजनयति ॥-त्वष्टा देवता अज्ञानी जीवोंके जोड़ोंको उत्पन्न करते हैं" ॥

तथा तहाँ ही इसी कर्ममें कुत्तेके अङ्ग पर स्थित मक्खियोंको इससे अभिमन्त्रित करके उनको अग्निमें डाल उस अंगको धूप (धुआँ) देवे ।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–'अन्तरिक्षेण इति पक्षहतं अंगं मन्त्रोक्तमृत्तिकया । कीटेन धूपयति' (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

अ॒यं नो॒ नभ॑स॒स्पति॑ः सं॒स्फानो॑ अ॒भि र॑क्षतु ।
अस॑मातिं गृ॒हेषु॑ नः ॥ १ ॥

अ॒यम् । नः॒ । नभ॑सः । पति॑ः । स॒म्ऽस्फान॑ः । अ॒भि । र॒क्ष॒तु॒ ।
अस॑मातिम् । गृ॒हेषु॑ । नः॒ ॥ १ ॥

अयं परिदृश्यमानोग्निः नभसः द्युलोकस्य पतिः हविःप्रदानादिना पालयिता । यद्वा नभ इति आदित्यनाम । अग्निस्तस्यापि आहुतिद्वारा पालयिता । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते" इति स्मृतेः [म० स्मृ० ३. ७६] । ईदृशोग्निः संस्फानः धान्यराशेर्वर्धयिता सन् नः अस्मान् अभि रक्षतु । तथा नः अस्माकं गृहेषु असमातिम् । ❀ मा माने इत्यस्माद् औणादिकस्तिप्रत्ययः ❀ । मातिर्मानं परिच्छेदस्तेन सह वर्तत इति समातिः तद्वैपरीत्यम् असमातिः । कुसूलस्थानां धान्यानां परिच्छेदराहित्यं करोतु इत्यर्थः । अस्य तृचस्य क्रमाद् अग्निवाय्वादित्यपरत्वं तैत्तिरीयब्राह्मणाद् अवगन्तव्यम् । तत्र हि एवम् आम्नायते । "अयं नो नभसा पुर इत्याह । अग्निर्वै नभसा पुरः । अग्निमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति । स त्वं नो नभसस्पत इत्याह । वायुर्वै नभसस्पतिः । वायुमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति । देव संस्फा-

नेत्याह । असौ वा आदित्यो देवः संस्फानः । आदित्यमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति" इति [तै० सं० ३. ३. ८. ६] ॥

यह दीखते हुए अग्निदेव हवि पहुँचाने आदिके कारण द्युलोकका पालन करने वाले हैं । वा–आहुतिके द्वारा आदित्यका पालन करने वाले हैं ‡ । ऐसे अग्निदेव धान्योंकी रक्षा करते हुए हमको बढ़ावें । और हमारे घरमें कुसूल (कुठिया) आदि की गिनती न रक्खें अर्थात् हमारे घरमें अनगिनती कुठियें होवें १ †

---

‡ मनुस्मृति ३ । ७६ में कहा है, कि "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥–अग्निमें होमी हुई आहुति सूर्यदेवके पास भली प्रकार पहुँचती है।"

† इस तृचके अग्नि वायु और आदित्यपरक होनेका तैत्तिरीय ब्राह्मणमें वर्णन है । यथा–"अयं नो नमसापुर इत्याह। अग्निर्वै नभसा पुरः । अग्निमेव तद् अह एतन्मे गोपायेति । स त्वं नो नभस्पत इत्याह । वायुर्वै नभस्पतिः । वायुमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति । देव संस्फानेत्याह । असौ वा आदित्यो देवसंस्फानः । आदित्यमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति ।–जो आकाशके द्वारा पुरस्कृत है वही यह हमारा है । अग्नि ही आकाशके द्वारा पुरष्कृत है । अत एव अग्निके विषयमें कहा, कि–यह मेरी रक्षा करें । फिर कहा, कि–आकाशके स्वामिन् ! आप हा हमारे हैं । वायु ही नभसस्पति हैं । तब उसने वायुके विषयमें ही कहा, कि–यह मेरी रक्षा करें, फिर उसने विचारा, कि–धनकी वृद्धि करने वाले देवता ही मेरी रक्षा कर सकते हैं । तव यह निश्चय हुआ, कि–आदित्यदेव ही अन्नकी वृद्धि करने वाले हैं, तब उसने आदित्यके विषयमें ही कहा, कि–यही मेरी रक्षा करें"। (तैत्तिरीय-ब्राह्मण ३ । ३ । ८ । ६) ॥

द्वितीया ॥

त्वं नो॑ नभसस्पत॒ ऊर्जं॑ गृ॒हेषु॑ धारय ।
आ पु॒ष्टमे॒त्वा वसु॑ ॥ २ ॥

त्वम् । न॒ः । न॒भ॒स॒ः । प॒ते॒ । ऊर्ज॑म् । गृ॒हेषु॑ । धा॒र॒य॒ ।
आ । पु॒ष्टम् । ए॒तु॒ । आ । वसु ॥ २ ॥

हे नभसस्पते अन्तरिक्षस्य पालयितर्वायो त्वं नः अस्माकं गृहेषु ऊर्जम् बलकरं रसवद् अन्नं धारय स्थापय ॥ तथा पुष्टम् प्रजापश्वादिकम् ऐतु आगच्छतु । वसु धनं च ऐतु आगच्छतु ॥

हे अन्तरिक्षका पालन करने वाले वायुदेव ! आप हमारे घरों में बलप्रद रसमय अन्नको स्थापित करिये । प्रजा पशु आदि पुष्टिरूप धन मेरे पास आवे और धन भी मेरे पास आवे ॥२॥

तृतीया ॥

दे॑व संस्फान सहस्रापो॒षस्ये॑शिषे ।
तस्य॑ नो रास्व॒ तस्य॑ नो धेहि॒ तस्य॑ ते भक्ति॒वांसः॑
स्याम ॥ ३ ॥

देव॑ । स॒म्ऽस्फा॒न॒ । स॒ह॒स्र॒ऽपो॒ष॒स्य॑ । ई॒शि॒षे॒ ।
तस्य॑ । नः । रा॒स्व॒ । तस्य॑ । न॒ः । धे॒हि॒ । तस्य॑ । ते॒ । भ॒क्ति॒ऽवांसः॑ ।
स्या॒म॒ ॥ ३ ॥

हे देव दानादिगुणयुक्त हे संस्फान प्रवृद्ध एवंभूत हे आदित्य सहस्रपोषस्य सहस्रसंख्याकानां प्रजानां पोषकस्य बहुलस्य धनस्य त्वम् ईशिषे ईश्वरो भवसि । ❀ ईश ऐश्वर्ये । अदादित्वात् शपो

लुक् । "ईशः से" इति इडागमः । "अधीगर्थदयेशाम्०" इति कर्मणि षष्ठी ❀ । तस्य तथाविधस्य धनस्य । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । तथाविधं धनं नः अस्मभ्यं रास्व प्रयच्छ । ❀ रा दाने ❀ । यद्वा भागपदाध्याहारेण योज्यम् ॥ तथा तस्य धनस्य भागं नः अस्माकं धेहि भोगार्थं धारय पोषय वा । ते त्वदीयस्य तस्य धनस्य भक्तिवांसः भागवन्तस्त्वत्प्रसादात् स्याम भवेम । ❀ भक्तिशब्दात् "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् । सकारोपजनश्छान्दसः ❀ ॥

हे दानादिगुणसम्पन्न प्रवृद्ध आदित्य देव ! आप सहस्रों प्रजाओंके पोषक धनोंके ईश्वर हैं, आप ऐसा धन हमको दीजिये । वा उस धनके भागको आप हममें भोगके लिये स्थापित करिये । हम आपके उस धनके आप प्रसादसे भागी हों ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अ॒न्तरि॑क्षेण पत॑ति॒ विश्वा॑ भू॒ताव॒चाक॑शत् ।
शुनो॑ दि॒व्यस्य॒ यन्मह॒स्तेना॑ ते ह॒विषा॑ विधेम ॥ १ ॥

अ॒न्तरि॑क्षेण । प॒त॒ति॒ । विश्वा॑ । भू॒ता । अ॒व॒ऽचाक॑शत् ।
शुनः॑ । दि॒व्यस्य॑ । यत् । महः॑ । तेन॑ । ते॒ । ह॒विषा॑ । वि॒धे॒म॒ ॥ १ ॥

अन्तरिक्षेण, आकाशमार्गेण काककपोतादिः पक्षी पतति पुरुषस्य अङ्गे निपतति । किं कुर्वन् । विश्वा विश्वानि सर्वाणि भूता भूतानि भूतजातानि अवचाकशत् । ❀ अवचाकशत् पश्यतिकर्मा ❀ । जिघत्सया पुनःपुनः पश्यन् । तद्दोषशान्त्यर्थं दिव्यस्य दिवि भवस्य शुनः यत् महः तेजोस्ति तेन हविषा हे अग्ने ते त्वां विधेम परिचरेम । आन्तरिक्षपक्ष्युपघातजं दोषं दिव्यस्य शुनो महसा तुष्टोऽग्निर्निवर्तयतु इत्यर्थः ॥

अन्तरिक्षके मार्गसे काक कपोत आदि पक्षी खानेकी इच्छासे सब भूतोंको बारम्बार देखता हुआ पुरुषके अंग पर गिरता है, उसके दोषकी शान्तिके लिये स्वर्गमें होने वाले श्वानका जो तेज है, उस हविसे हे अग्ने ! हम आपकी सेवा करते हैं । तात्पर्य यह है, कि—अन्तरिक्षसे गिरने वाले पक्षीके उपघातसे उत्पन्न हुए दोषको दिव्य श्वानके तेजसे तुष्ट हुए अग्निदेव हटा देवें ॥१॥

पञ्चमी ॥

ये त्रय॑ः का॒लका॑ञ्जा दि॒वि दे॒वा इ॑व॑ श्रि॒ताः ।
तान्त्सर्वा॑नह्व ऊ॒तये॒स्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये ॥ २ ॥

ये । त्रय॑ः । का॒ल॒का॒ञ्जाः । दि॒वि । दे॒वाःऽइ॑व । श्रि॒ताः ।
तान् । सर्वा॑न् । अ॒ह्वे॒ । ऊ॒तये॑ । अ॒स्मै । अ॒रि॒ष्टऽता॑तये ॥ २ ॥

कालकाञ्जाख्या ये त्रयः असुराः सत्कर्मवशाद् दिवि देवा इव श्रिताः आश्रिता वर्तन्ते। तथा च तैत्तिरीयकम् । "कालकञ्जा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय लोकायाग्निम् अचिन्वत" इति प्रक्रम्य "स इन्द्र इष्टकाम् आवृहत् । तेवाकीर्यन्त । येवाकीर्यन्त त ऊर्णनाभयोभवन् । द्वावुदपतताम् । तौ दिव्यौ श्वानावभवताम्" इति [तै० ब्रा० १. १. २. ६] तान् तथाविधान् सर्वान् कालकाञ्जान् अह्वे आह्वयामि । ❀ ह्वयतेश्छान्दसे लुङि "लिपिसिचिह्वश्च" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । किमर्थम् आह्वानम् । ऊतये रक्षणार्थम् अस्मै अस्य पुरुषस्य । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀। अरिष्टतातये । रिष्टं हिंसा तदभावः अरिष्टम् । तस्य करणाय काककपोतादिपक्ष्युपघातजनितदोषशान्तये इत्यर्थः । ❀ "शिवशमरिष्टस्य करे" इति अरिष्टशब्दात् करोत्यर्थे तातिल् प्रत्ययः । "लिति" इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् ❀ ॥

१७८५

कालकञ्ज नाम वाले जो तीन असुर सत्कर्मके कारण स्वर्गमें देवताओंकी समान आश्रय पाकर रहते हैं ‡ उन सब कालकञ्जों की मैं काक कपोत आदिके उपघातसे उत्पन्न होने वाले दोषकी शान्तिके लिये-इस पुरुषकी रक्षाके लिये आह्वान करता हूँ।।२।।

षष्ठी ॥

अ॒प्सु ते॒ जन्म॑ दि॒वि ते॑ स॒धस्थं॑ समु॒द्रे अ॒न्तर्म॑हि॒मा
ते॑ पृथि॒व्याम् ।
शुनो॑ दि॒व्यस्य॒ यन्म॒हस्तेना॑ ते ह॒विषा॑ विधेम ॥३॥

अ॒प्ऽसु । ते॒ । जन्म॑ । दि॒वि । ते॒ । स॒धऽस्थ॑म् । स॒मु॒द्रे । अ॒न्तः ।
म॒हि॒मा । ते॒ । पृ॒थि॒व्याम् ।
शुन॑ः । दि॒व्यस्य॑ । यत् । मह॑ः । तेन॑ । ते॒ । ह॒विषा॑ । वि॒धे॒म॒ ।३।

हे अग्ने ते तव अप्सु उदकेषु जन्म और्ववैद्युतादिरूपेण दृश्यते। दिवि द्युलोके ते तव आदित्यात्मनः सधस्थम् सहस्थानम् । तथा समुद्रे अन्तः मध्ये पृथिव्यां च ते तव महिमा माहात्म्यं दृश्यते।

---

‡ तैत्तिरीयब्राह्मणमें कालकञ्ज नामक असुरोंके विषयमें कहा है, कि-"कालकञ्जा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय लोकायाग्निम् अचिन्वत ॥-कालकञ्ज नाम वाले असुर थे, उन्होंने स्वर्गलोकके लिये अग्निका चयन किया।" इसका आरम्भ करके आगे कहा है, कि-"स इन्द्र इष्टकां आवृहत् । येऽवाकीर्यन्त त ऊर्ध्वनाभयोऽभवन् । द्वावुदपतताम् । तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् ॥-इन्द्रने उनके ऊपर ईंट फैंकी, वह ईंट जिनके लगी वे मकड़ी होगए। उस ईंटसे दो बच गए थे-उछल गए थे। वे दिव्य कुत्ते हुए" (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । १ २ । ६)।।

"दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः । तृतीयम् अप्सु नृमणा अजस्रम्" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० १०. ४५. १] । शुनो दिव्यस्य इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इत्यष्टमेनुवाके] चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आपकी जलमें और्व वैद्युतरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है, द्युलोकमें आपका आदित्यात्मभावसे सहस्थान है और समुद्रमें तथा पृथिवीमें आपकी महिमा दीखती है † हे अग्ने ! ऐसे आपकी हम दिव्य श्वानके तेजोरूप हविसे सेवा करते हैं २

आठवें अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (२५३)

"यन्तासि" इति तृचेन गर्भाधाने कंकणादिकं संपात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया हस्ते बध्नीयात् । "यन्तासीति मन्त्रोक्तं बध्नाति" इति सूत्रात् [कौ० ४. ११] ॥

"आगच्छतः" इति तृचेन विवाहकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "आगच्छत इति जायाकामः" इति [कौ० ७. १०] सूत्रात् ॥

तथा विवाहे अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा वरवध्वोर्मूर्ध्नि संपातान् आनयेत् । "आगच्छतः [६. ८२] सविता प्रसवानाम् [५. २४] इति मूर्ध्नोः संपातान् आनयति" इति [कौ० १०. ४] सूत्रम् ॥

"यन्तासि" इस तृचसे गर्भाधानमें कंकण आदिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके स्त्रीके हाथमें बाँध देय । इस विषय सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"यन्तासीति मन्त्रोक्तम् बध्नाति" (कौशिकसूत्र (४ । ११) ॥

---

† ऋग्वेदसंहिता १० । ४५ । १ भी कहा है, कि-'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः । तृतीयं अप्सु नृमणा अजस्रम् ।।-अग्नि पहिले स्वर्गमें प्रादुर्भूत हुए, फिर वह जातवेदा अग्नि हममें दूसरे रूपमें प्रकट हुए । तीसरे रूपमें वह धनी सदा जलोंमें प्रकट रहते हैं" ऋग्वेदसंहिता १० । ४५ । १

विवाहकी इच्छा करने वाला पुरुष "आगच्छतः" इस तृच से इन्द्रका याग वा उपस्थान करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-"आगच्छत इति जायाकामः" ॥ (कौशिकसूत्र ७।१०)॥

तथा विवाहमें इस तृचसे घृतकी आहुति देकर वर और वधू के मूर्धा पर सम्पातोंको लगावे। इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि-"आगच्छतः (६ । ८२) सविता प्रसवानाम् (५ । २४) इति मूर्ध्नो सम्पातान् आनयति" (कौशिकसूत्र १० । ४)॥

तत्र प्रथमा ॥

य॒न्तासि॒ यच्छ॑से॒ हस्ता॒वप॒ रक्षां॑सि सेधसि ।
प्र॒जां धनं॑ च गृ॒ह्णानः॒ प॑रिह॒स्तो अ॑भूद॒यम् ॥ १ ॥

य॒न्ता । अ॒सि॒ । यच्छ॑से । हस्तौ॑ । अप॑ । रक्षां॑सि । से॒ध॒सि॒ ।

प्र॒ऽजा॑म् । धनम् । च॒ । गृ॒ह्णा॒नः । प॒रि॒ऽह॒स्तः । अ॒भू॒त् । अ॒यम् १

हे अग्ने त्वं यन्तासि गर्भव्यापत्कराणां रक्षःप्रभृतीनां नियामको भवसि। अत एव आत्मीयौ हस्तौ यच्छसे आयतौ प्रसारयसि। ताभ्यां हस्ताभ्यां रक्षांसि गर्भधारणविघातकानि अप सेधसि अपगमयसि। प्रजाम् पुत्रादिरूपां तद्भोगार्थं धनं च कृण्वानः कुर्वाणः अयम् अग्निः परिहस्तः हस्तं परिवेष्ट्य वर्तमानः रक्षाकरः प्रतिसरः अभूत् ॥

हे अग्निदेव! आप गर्भको नष्ट करने वाले राक्षस आदिको वशमें रख सकते हैं अत एव आप अपने हाथोंको फैलाते रहते हैं और उन हाथोंसे गर्भधारणविघातक राक्षसोंको नष्ट करते रहते हैं यह हाथोंको घुमा कर दिखाते हुए अग्निदेव पुत्र पौत्र

आदिरूप प्रजाको और उसके भोगके लिये धनको देते हुए प्राणियोंके रक्षक परिसर (कंकण) हुए हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥

परिऽहस्त । वि । धारय । योनिम् । गर्भाय । धातवे ।
मर्यादे । पुत्रम् । आ । धेहि । तम् । त्वम् । आ । गमय । आऽगमे

हे परिहस्त कङ्कणादिरूप प्रतिसर योनिम् गर्भाशयस्थानं वि धारय विवृतम् अवस्थापय । किमर्थम् । गर्भाय धातवे गर्भं धातुं धारयितुम् । ❀ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । धाञस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ❀ । मर्यादे मर्याः मरणधर्माणो मनुष्याः तैरादीयमाने स्वोत्पत्त्यर्थं स्वीक्रियमाणे स्थाने गर्भाशये हे जाये त्वं पुत्रम् आ धेहि अभिमुखं धारय । यद्वा हे मर्यादे। मर्येण मनुष्येण स्वभोगार्थम् आदीयमाने । जायायाः संबोधनम् । हे जाये त्वं पत्युर्मम आगमे आगमने सति तम् अभीष्टं पुत्रम् आ गमय । उत्पादयेत्यर्थः ॥

हे कंकण आदिरूप परिसर ! (हाथ पर लिपटने वाले रक्षा करने वाले पदार्थ) आप गर्भको स्थापित करनेके लिये गर्भाशय स्थानको विवृत करिये । हे जाये ! तू मरणधर्मी प्राणियोंके द्वारा अपनी उत्पत्तिके लिये स्वीकार किये जाने वाले गर्भाशयमें पुत्रको स्थापित कर । अथवा—हे मनुष्यके द्वारा अपने भोगके लिये स्वीकार की जाने वाली जाये ! तू मुझ पतिका आगमन होने पर अभीष्ट पुत्रको उत्पन्न कर ॥ २ ॥

तृतीया ॥

प॑रि॒हस्तमबि॑भ॒रदि॑तिः पुत्रका॒म्या॑ ।

त्व॒ष्टा तम॑स्या॒ आ ब॑ध्ना॒द् यथा॑ पु॒त्रं जना॒दिति॑ ३

यम् । प॒रि॒ऽह॒स्तम् । अबि॑भः । अदि॑तिः । पु॒त्र॒ऽका॒म्या ।

त्वष्टा॑ । तम् । अ॒स्यै॒ । आ । ब॒ध्ना॒त् । यथा॑ । पु॒त्रम् । जना॑त् । इति॑ ।३।

अदितिः देवमाता पुत्रकाम्या पुत्रं आत्मन इच्छन्ती यं परिहस्तम् हस्तं परिवेष्ट्य वर्तमानं कंकणादिरूपं प्रतिसरम् अबिभः धृतवती । ❀ पुत्रशब्दात् कर्मण इच्छार्थे "काम्यच्च" इति काम्यच् । ["सनाद्यन्ताः०" इति] धातुसंज्ञायां पचाद्यच् । अबिभरिति । डुभृञ् धारणपोषणयोः । अस्मात् लङि "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिलोपे "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । तं तथाविधं प्रतिसरम् अस्यै अस्या जायायाः । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । त्वष्टा आ बध्नात् आबध्नातु । यथा येन प्रकारेण एषा पुत्रं जनात् जनयेत् इति अनेन अभिप्रायेण । त्वष्टा बध्नातु इति सम्बन्धः । ❀ जनात् इति । जनेर्ण्यन्तात् लेटि आडागमः । "छन्दस्युभयथा" इति आर्धधातुकत्वात् णिलोपः ❀ ॥

देवमाता अदितिने पुत्रकी इच्छासे जिस कंकण आदिरूप रक्षाकर वलयको हाथके चारों ओर धारण किया था। उस प्रतिसरको इस स्त्रीके त्वष्टा देवता बाँधें, कि-जिससे यह पुत्रको उत्पन्न करे ३

चतुर्थी ॥

आ॒गच्छ॑त॒ आग॑तस्य॒ नाम॑ गृह्णाम्या॒यतः ।

इन्द्र॑स्य वृत्र॒घ्नो व॑न्वे वा॒स॑वस्य श॒त॑क्रतोः ॥ १ ॥

आ॒ऽगच्छ॑तः । आऽग॑तस्य । नाम॑ । गृ॒ह्णा॒मि॒ । आ॒ऽय॒तः ।

इन्द्र॑स्य । वृ॒त्र॒ऽघ्नः । व॒न्वे॒ । वा॒स॒वस्य॑ । श॒तऽक्र॑तोः ॥ १ ॥

आगच्छतः वर्तमानागमनस्य आगतस्य अस्मदन्तिकं प्राप्तस्य इन्द्रस्य नाम प्रीतिकरं वृत्रहादिनामधेयं गृह्णामि उच्चारयामि आयतः नियतोहं विवाहकामः। यद्वा आयत इत्यपि षष्ठी उत्तरवाक्ये संबध्यते। आयतः आगच्छतः वृत्रघ्नः वृत्रं हतवतः इन्द्रस्य वासवस्य वसुभिरुपास्यमानस्य शतक्रतो।❀वर्णविकारश्छांदसः❀। शतं क्रतवः कर्माणि वीर्यप्रख्यापकानि वृत्रवधादीनि यस्य स तथोक्तः। ❀ सर्वत्र कर्मणि षष्ठी ❀। एवंविधम् इन्द्रं वन्वे अहम् अभिमतफलं याचामि। ❀वनु याचने। तनादित्वादु प्रत्ययः❀॥

आते हुए और हमारे पास आये हुए इन्द्रको प्रसन्न करनेवाले वृत्रासुरसंहारक आदि नामोंका उच्चारण करता हूँ। और विवाहकी इच्छा करनेवाला मैं वृत्रासुरसंहारक वसुओंसे उपासित आते हुए शतक्रतु इन्द्रसे अभिलषित फलकी याचना करता हूँ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

येन॑ सू॒र्यां॑ सा॑वि॒त्रीम॒श्विनो॒हतु॑ः प॒था ।
ते॒न माम॑ब्र॒वीत् भगो॑ जा॒यामा व॑ह॒तादिति॑ ॥ २ ॥

येन॑ । सू॒र्याम् । सा॒वि॒त्रीम् । अ॒श्विना॑ । ऊ॒हतु॑ः । प॒था ।
तेन॑ । माम् । अ॒ब्र॒वी॒त् । भग॑ः । जा॒याम् । आ । व॒ह॒ता॒त् । इति॑ ।२।

येन पथा अध्वना अश्विना अश्विनौ एतत्संज्ञौ देवौ सावित्रीम् सवितुः पुत्रीं सूर्याख्यां स्त्रियम् ऊहतुः ऊढवन्तौ। विवाहकर्मणा जायात्वेन लब्धवन्तौ इत्यर्थः। तद्विवाहप्रकारश्च दाशतय्यां “सत्येनोत्तभिता” इति सूक्ते [ऋ० १०, ८५]प्रपञ्चितः। ऐतरेयकब्राह्मणे च “प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्य

सावित्रीम् । तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन् । तस्या एतत् सहस्रं वहतुम् अन्वाकरोत् । तद्द एतद् आश्विनम् इत्याचक्षते” इत्यादिना प्रतिपादितः [ऐ० ब्रा० ४. ७] ॥ ❀ ऊहतुरिति । वह प्रापणे इत्यस्मात् लिटि यजादित्वात्संप्रसारणद्विर्वचनादिकार्ये रूपम् । पथेति । पथिन्शब्दात् तृतीयैकवचने “भस्य टेर्लोपः” इति टिलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । तेन पथा जायाम् भार्याम् आ वहतात् आवह आनयेति भगो देवः मां विवाहार्थिनं प्रत्यब्रवीत् । विवाहोपायम् उपदिष्टवान् इत्यर्थः ॥

“जिस मार्गसे अश्विनीकुमारोंने सूर्या सावित्री नामक स्त्रीको विवाहकर्मसे स्त्रीरूपमें प्राप्त किया था † उस मार्गसे तू स्त्रीको ला” इस प्रकार भगदेवताने मुझ विवाहाभिलाषीको विवाह करनेके उपायका उपदेश दिया है ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

य॒स्ते॑ङ्कु॒शो व॑सु॒दानो॑ बृ॒हन्नि॑न्द्र हि॒रण्यय॑ः ।
तेना॑ जनीय॒ते जा॒यां मह्यं॑ धेहि॑ शचीपते ॥ ३ ॥

---

† अश्विनीकुमारोंके इस विवाहका वर्णन ऋग्वेदसंहिताके ‘सत्येनोत्तभिता’ सूक्त १०। ८५ में है। ऐतरेयब्राह्मण ४ । ७ में भी कहा है, कि–‘प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीं तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन् तस्या एतत् सहस्रं वहतुं अकरोत् । तद्द एतद् आश्विनं इत्याचक्षते ॥–प्रजापतिने सूर्या सावित्रीको राजा सोमको देनेका विचार किया, उस सूर्याके लिये सब देवता वर बन कर आये । तब प्रजापतिने उस सूर्याके लिये यह ऋचाएँ वहतु (वरके सत्कारकी वस्तुएँ) कीं । इस लिये ये सहस्र ऋचाएँ आश्विन कहलाती हैं।” (ऐतरेय ब्राह्मण ४ । ७)॥

यः । ते । अङ्कुशः । वसुऽदानः । बृहन् । इन्द्र । हिरण्ययः ।
तेन । जनिऽयते । जायाम् । मह्यम् । धेहि । शचीऽपते ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ते तव योऽङ्कुशः अङ्कुशवद् आकर्षको हस्तः वसुधानः वसूनि धनानि धीयन्ते धार्यन्ते अस्मिन्निति वसुधानः । ❀ अधिकरणे ल्युट् ❀ । अत एव बृहन् महान् हिरण्ययः हिरण्मयः अत्र हिरण्यप्रचुरः । ❀ "ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि" इति हिरण्यशब्दान्मयटि निपात्यते ❀ । एवंविधो यो हस्तः अङ्कुश एव वा तेन साधनेन हे शचीपते शचीदेव्या पते इन्द्र जनीयते । जायन्तेस्याम् अपत्यानीति जनिर्जाया । ताम् आत्मन इच्छतेः । यद्वा पुत्रेणोत्पत्तिर्जनिः तत्कामाय मह्यं जायाम् भार्यां धेहि देहि प्रयच्छ ॥

पञ्चमं सूक्तम्

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकांडे अष्टमोनुवाकः

हे इन्द्र ! आपका जो अंकुशकी समान आकर्षक धनधारी बहुतसे सुवर्ण वाला हाथ है, उससे हे शचीपते ! आप मुझ पुत्रोत्पत्ति चाहने वालेको जाया–स्त्री–दीजिये ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२५१) ॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डमें आठवाँ अनुवाक समाप्त ॥

नवमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । "अपचितः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र "अपचितः" इति तृचेन गण्डमालाभैषज्यकर्मणि शङ्खं घृष्ट्वा अभिमन्त्र्य शुनकलालां वा अभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन जलूकां गृहगोधिकां वा अभिमन्त्र्य रुधिरमोक्षार्थं गण्डमालास्थाने संश्लेषयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि सैन्धवलवणं चूर्णयित्वा अभिमन्त्र्य गण्डमालायां विकीर्य तूष्णीं निष्ठीवेत् ॥

सूत्रितं हि । "अपचितः [६. ८३] आ सुस्रसः [७. ८०] इति किंस्त्यादीनि लोहितलवणं संक्षुद्य अभिनिष्ठीवति" इति [कौ० ४. ७] ॥

तत्रैव कर्मणि "ग्लौरितः प्र पतिष्यति" इत्यर्धर्चं जपन् गोमूत्रेण गण्डं मर्दयेत् प्रक्षालयेद् वा ॥

तथा अनेनैव दन्तमलम् अभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पेत् ॥

"ग्लौरित्यर्धर्चेन" इति [कौ० ४. ७] सूत्रात् ॥

"वीहि स्वाम्" इति चतुर्ऋचेन चतुष्पाद्गण्डभैषज्यार्थं शान्त्युदकम् अभिमन्त्र्य व्रणं प्रोक्षेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन चतुर्ऋचेन आज्यं हुत्वा मनसा संकल्प्य व्रणे संपातान् आनयेत् ॥

सूत्रितं हि । "वीहि स्वाम् इत्यज्ञातारुः शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य मनसा संपातवता" इति [कौ० ४. ७] ॥

नवम अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । उनमें "अपचितः" यह प्रथम सूक्त है । इसमें "अपचितः" इस तृचसे गण्डमालाकी चिकित्सा के कर्ममें शंखको घिस कर और अभिमन्त्रित करके वा कुत्तेकी लारको अभिमंत्रित करके उसका गण्डमाला पर लेप करे ।

तथा इसी कर्ममें इस तृचसे जौंक वा छपकलीको अभिमंत्रित करके रुधिरमोक्षके लिये गण्डमालाके स्थानमें लगावे ।

तथा इसी कर्ममें सैंधे नमकका चूरा कर अभिमंत्रित करके गण्डमालामें बुरक कर चुपचाप थूके ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अपचितः (६ । ८३) आ सुस्रसः (७ । ८०) इति किंस्त्यादीनि लोहितलवणं संक्षुद्य अभिनिष्ठीवति" (कौशिकसूत्र ४ । ७)

तथा इसी कर्ममें "ग्लौरितः प्रपतिष्यति" इस आधी ऋचाको जपता हुआ गोमूत्रसे गण्ड पर मालिश करे या धोवे ।

तथा इसी तृचसे दन्तमलको अभिमन्त्रित करके गण्डमाला पर लगावे।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–"ग्लौरित्यर्धर्चेन (कौशिकसूत्र ४ । ७)॥

"वीहि स्वाम्" इस चार ऋचा वाले सूक्तसे चतुष्पाद्द गण्डकी चिकित्साके लिये शान्त्युदकका अभिमन्त्रण करके गण्डको धोवे।

तथा इसी कर्म में इस चार ऋचा वाले सूक्तसे घृतकी आहुति दे मनसे संकल्प करके व्रणमें सम्पातोंको लावे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"वीहि स्वां इत्यङ्गातारुः शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य मनसा सम्पातवता" (कौशिकसूत्र४।७)

तत्र प्रथमा ॥

अप॑चित॒ः प्र प॑तत सुप॒र्णो व॑स॒ते॑रिव ।
सूर्यः॑ कृ॒णोतु॑ भेष॒जं च॒न्द्रमा॒ वोपो॑च्छतु ॥ १ ॥

अप॑ऽचितः । प्र । प॒त॒त॒ । सु॒ऽप॒र्णः । व॒स॒तेः॑ऽइव ।
सूर्यः॑ । कृ॒णोतु॑ । भे॒ष॒जम् । च॒न्द्रमाः॑ । व॒ः । अप॑ । उ॒च्छ॒तु॒ १

हे अपचितः दोषवशाद्द अपाक् चीयमानाः गलाद्द आरभ्य अधस्तात् प्रसृता गण्डमालाः प्र पतत अस्मात् शरीरात् प्रकर्षेण निर्गच्छत। तत्र दृष्टान्तः सुपर्ण इति। सुपर्णः शोभनपतनः श्येनः वसतेरिव आवासस्थानाद्द नीडाद्द यथा शीघ्रं प्रपतति तथा पुरुषस्य गण्डस्याधस्तात्प्रदेशम् आशु विसृज्य धावतेत्यर्थः। ❀ अपचित् इति। अपपूर्वाच्चिनोतेः कर्मणि क्विप् ❀। हे अपचितः वः युष्माकं भेषजम् चिकित्सनं सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः कृणोतु करोतु। [चन्द्रमाः] अमृतमयश्चन्द्रो वः युष्मान् अपोच्छतु अपवासयतु। अपवर्जयत्वित्यर्थः। ❀ उछी विवासे ❀॥

हे दोषवश गलेसे लेकर नीचेको फैलने वाली गण्डमालाओं ! इस शरीरसे तुम पूर्णरीतिसे निकल जाओ । जिस प्रकार शोभन उड़ानवाला बाज अपने घोंसलेसे निकलकर शीघ्रतापूर्वक दौड़ता है, इसी प्रकार तुम गण्डके नीचेके प्रदेशको छोड़कर शीघ्रतासे भाग जाओ । हे गण्डमालाओं ! सबके प्रेरक आदित्य तुम्हारी चिकित्सा करें, अमृतमय चन्द्रमा तुमको दूर करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥ २ ॥

एनी । एका । श्येनी । एका । कृष्णा । एका । रोहिणी इति ।

द्वे इति ।

सर्वासाम् । अग्रभम् । नाम । अवीरऽघ्नीः । अप । इतन ॥२॥

अनया अपचितप्रभेदानां नामग्रहणेन तासाम् अपगमनं प्रार्थ्यते । एका गण्डमाला एनी एतवर्णा । ईषद्रक्तमिश्रश्वेतः एतवर्णः । एका अपरा श्येनी श्येतवर्णा । अत्यन्तशुभ्रेत्यर्थः । ❀ एतश्येतशब्दाभ्यां “वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः” इति ङीप् तकारस्य च नकारः ❀ । एका अन्या गण्डमाला कृष्णा कृष्णवर्णा । अन्ये द्वे गण्डमाले रोहिणी रोहिण्यौ लोहितवर्णे । ❀ रोहितशब्दात् पूर्ववद् ङीम्नकारौ ❀ । वातपित्तश्लेष्मवशाद् वर्णनानात्वाद् एतासां नानात्वम् । सर्वासाम् अपचिताम् । उदीरितवर्णव्यतिरेकाभावात् । नाम प्रीतिकरं नामधेयम् अहम् अग्रभम् अग्रहीषम् उच्चारयामि । ❀ छान्दसश्च्लेर्लुक् । “हृग्रहोर्भः” इति भत्वम् ❀ । हे अपचितः यूयम् अस्मान्नामग्रहणात् प्रीताः सत्यः अवीरघ्नीः वीरम् इमं पुरुषं गण्डमालाग्रस्तम् अहन्त्यः अपे-

तन अपगच्छत । ❀ एतेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः । अवीरघ्नीरिति । वीरशब्दोपपदात् हन्तेः "बहुलं छन्दसि" इति क्विप् । "ऋन्नेभ्यः०" इति ङीप् । "अल्लोपोनः" इति अकारलोपः । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् ❀ ॥

एक गण्डमाला कुछ रक्तवर्ण मिले श्वेत वर्ण वाली होती है, दूसरी एक परम शुभ्र वर्ण वाली होती है, दूसरी एक काले वर्ण वाली होती है और दो लाल वर्ण वाली होती हैं । वात पित्त श्लेष्म भेदसे अनेक वर्ण वाली इन सब अपचितों (गण्डमालाओं) के प्रीतिकर नामोंका मैं उच्चारण कर रहा हूँ हे अपचितों ! तुम नाम ग्रहण करनेसे प्रसन्न हो इस वीर पुरुषका संहार न करती हुई भाग जाओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अ॒सूति॑का रामा॒यण्य॑प॒चित् प्र प॑तिष्यति ।
ग्लौरि॒तः प्र प॑तिष्यति॒ स ग॑लु॒न्तो न॑शिष्यति ॥३॥

अ॒सूति॑का । रा॒मा॒य॒णी । अ॒प॒ऽचित् । प्र । प॒ति॒ष्य॒ति॒ ।
ग्लौः । इ॒तः । प्र । प॒ति॒ष्य॒ति॒ । सः । ग॒लु॒न्तः । न॒शि॒ष्य॒ति॒ ॥३॥

असूतिका पूयस्रावम् अजनयन्ती । चिरपरिपाकेत्यर्थः । रामायणी रमते आसु प्राणवायुरिति रामा नाड्यः ता अयनं प्रधावनमार्गो यस्याः सा रामायणी नाडी । व्रणात्मिकेत्यर्थः । एवंभूता अपचित् प्र पतिष्यति अस्मात् शरीरात् प्रगता अन्यत्र गमिष्यति । मन्त्रसामर्थ्याद् इत्यर्थः ॥ ग्लौः व्रणजनितो हर्षक्षयः इतः अस्माद् अङ्गात् प्र पतिष्यति व्याध्यपगमे तज्जनितदुःखानुभवोपि प्रकर्षेण निर्गमिष्यतीत्यर्थः । यद्वा ग्लौश्चन्द्रमाः इतः अस्माद् गोमूत्रजलावसेकाद् अपचितं प्र पतिष्यति । ❀ पतिरत्र अन्तर्णीतण्यर्थः ❀ ।

प्रगमयिष्यति । चन्द्रमा वोपोच्छतु इत्युक्त एवार्थोऽनूद्यते । स चन्द्रमाः गलुन्तः गण्डमालोद्भवविकारेण तत्रतत्र हस्तपादादिसंधिषु उद्भूतान् गडून् तस्यति उपक्षपयतीति गडुन्तः । ❀ तसु उपक्षये । अस्माद् औणादिकः क्विप् । नकारोपजनश्छान्दसः❀ । न शिष्यति नावशेषयति । सर्वं व्रणविकारं निवर्तयतीत्यर्थः ॥

वी॒हि स्वामाहु॑तिं जुषा॒णो मन॑सा॒ स्वाहा॒ मन॑सा॒
यदि॒दं जु॒होमि॑ ॥ ४ ॥

वी॒हि । स्वाम् । आ॒ऽहु॑तिम् । जु॒षा॒णः । मन॑सा । स्वाहा॑ । मन॑सा ।
य॒त् । इ॒दम् । जु॒होमि॑ ॥ ४ ॥

यस्या॑स्त आ॒सनि॑ घो॒रे जु॒होम्ये॒षां ब॒द्धाना॑मव॒सर्ज॑नाय॒
कम् ।
भूमि॒रिति॑ त्वाभि॒प्रम॑न्वते॒ जना॒ निर्ऋ॑ति॒रिति॑ त्वा॒हं
परि॑ वेद स॒र्वत॑ः ॥ १ ॥

यस्या॑ः । ते॒ । आ॒सनि॑ । घो॒रे । जु॒होमि॑ । ए॒षाम् । ब॒द्धाना॑म् ।
अ॒व॒ऽसर्ज॑नाय । कम् ।

भूमि॑ः । इति॑ । त्वा॒ । अ॒भि॒ऽप्रम॑न्वते । जना॑ः । निःऽऋ॑तिः ।
इति॑ । त्वा॒ । अ॒हम् । परि॑ । वे॒द॒ । स॒र्वत॑ः ॥ १ ॥

भूते॑ ह॒विष्म॑ती भवै॒ष ते॑ भा॒गो यो॑ अ॒स्मासु॑ ।
मु॒ञ्चेमान॒मूनेन॑स॒ः स्वाहा॑ ॥ २ ॥

५७२८

भूते । हविष्मती । भव । एषः । ते । भागः । यः । अस्मासु ।
मुञ्च । इमान् । अमून् । एनसः । स्वाहा ॥ २ ॥

चतुर्थी । हे व्रण रोगाभिमानिन् देव त्वं स्वाम् स्वकीयाम् आहुतिं मनसा जुषाणः सेवमानो वीहि भक्षय । स्वाहा स्वाहुतम् इदं हविरस्तु । अहमपि मनसैव यद् इदं हविर्जुहोमि हे रोगाभिमानिनि पापदेवते यस्यास्ते तव घोरे क्रूरे आसनि आस्ये जुहोमि हविः प्रक्षिपामि सा त्वं मनसा हूयमानं तद्धविः सेवस्वेत्यर्थः । किमर्थम् । एषां व्रणरोगजनितानां बन्धानाम् अवसर्जनाय विमोचनार्थम् । कम् इति पदपूरणः । यद्वा कम् इति उदकनाम । व्रणप्रक्षालनार्थम् इदम् औषधोदकम् तद्रोगशान्तये अवकल्पत इत्यर्थः ।

पञ्चमी । हे व्रणाभिमानिदेवते त्वा त्वां जनाः जन्ममात्रसारा विशेषज्ञानरहिताः प्राणिनः भूमिः पृथिवीति अभिप्रमन्वते अभितः प्रबुध्यन्ते । ❀ मनु अवबोधने ❀ । अहं तु त्वत्स्वरूपं जानानः त्वा त्वां निर्ऋतिरिति । सर्वरोगनिदानभूता पापदेवता निर्ऋतिः । सैवेति सर्वतः सर्वस्माद्धेतोः परि वेद परितो जानामि । हे भूते सर्वत्र विद्यमाने निर्ऋतिरूपे हविष्मती भव अस्माभिर्दत्तेन हविषा आज्यादिना युक्ता भव । एष ते तव भागः । यः अस्मासु इदानीं परिकल्पितः । अनेन हविर्भागेन तुष्टा इमान् समीपस्थान् गवादीन् अमून् दूरस्थान् अस्मद्दृष्टिगोचरान् एनसः रोगनिदानभूतात् पापाद् मुञ्च विसृज स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

अस्रूतिका अर्थात् पीव न बहाने वाली अर्थात् चिरकालमें पकने वाली, रामायणी अर्थात् प्राणवायुके रमण करनेकी नाड़ियों में दौड़नेके प्रधान मार्ग वाली व्रणात्मिका अपचित् मन्त्रकी सामर्थ्यवश इस शरीरसे अन्यत्र होजावेगी, व्रणसे होने वाला हर्षका क्षय दूर होजावेगा अर्थात् व्याधिके दूर होनेसे उससे होने

वाला दुःखका अनुभव भी जाता रहेगा। वा चन्द्रमा इस गोमूत्र-जलके अवसेकसे अपचित्-गण्डमालाको दूर कर देंगे। और वह चन्द्रमा गण्डमालाके निकलनेके विकारसे हाथ पैर आदिमें निकले हुए गडुओंको नष्ट करेंगे, सम्पूर्ण व्रणविकारोंको दूर कर देंगे

हे व्रणरोगाभिमानिन् देव! आप अपनी आहुतिको मनसे सेवन करते हुए भक्षण करिये यह हवि स्वाहुत हो और मैं भी मनसे ही जो हविको होम रहा हूँ, सो हे रोगाभिमानिनी देवते! तेरे क्रूरमुखमें व्रणरोगसे होने वाले बंधोंको छुड़ानेके लिये-होमता हूँ, उस हविको आप मनसे सेवन करिये, व्रणप्रक्षालनके लिये यह औषधरूप जल रोगकी शांतिके करनेमें समर्थ होता है ॥१॥

हे व्रणाभिमानी देवते! साधारण ज्ञान वाले पुरुष आपको भूमि—फैलने वाली—मानते हैं और मैं तो आपके स्वरूप जानने वाला होनेसे निर्ऋति अर्थात् सब रोगोंकी कारण पाप-देवता ही समझता हूँ, हे सर्वत्र विद्यमान् निर्ऋतिरूपे! तू हमारी दी हुई हविसे हवि वाली हो, यह तेरा भाग है इस हविर्भागसे तू सन्तुष्ट होकर इन समीपमें स्थित गौ आदिको रोगके निदानभूत पापोंसे छुड़ा, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता
बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु
मृत्यवे ॥ ३ ॥

एवो इति । सु । अस्मत् । निःऽऋते । अनेहा । त्वम् । अयस्मयान् ।
वि । चृत । बन्धऽपाशान् ।

यमः । मह्यम् । पुनः । इत् । त्वाम् । ददाति । तस्मै । यमाय ।
नमः । अस्तु । मृत्यवे ॥ ३ ॥

हे निर्ऋते निःशेषेण आर्तिकरि पापदेवते अनेहा अनाहन्त्री । ❀ नञ्याहन एह च [उ० ४. २२३] इति आङ्पूर्वाद्धन्तेरसुन् तत्संनियोगेन एहादेशश्च । "ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च" इति सौ अनङ् आदेशः ❀ । अस्मान् अबाधमाना त्वम् एवो-एव उ एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेणैव सुष्ठु अस्मत् अस्मत्तः अयस्मयान् अयोविकारान् अत्यन्तदृढान् बन्धपाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् रोगात्मकान् वि चृत विमुञ्च छिन्द्धीत्यर्थः । ❀ चृती हिंसाग्रन्थनयोः ❀ ॥ हे रुग्ण यमः वैवस्वतः प्राणापहारी देवः त्वां मह्यं पुनर्ददाति । तस्मै मृत्यवे प्राणापहारिणे यमाय नमो अस्तु नमस्कारोस्तु ॥

हे परम पीड़ा देने वाली पापदेवते ! तू हमको पीड़ा न दे और रोगात्मक बेड़ीरूप पाशोंको काट डाल । हे रोगिन् ! प्राणका अपहरण करने वाले विवस्वान्के पुत्र यमदेवता तुझको फिर मेरे अर्पण कररहे हैं, उन प्राणापहारी यमदेवके लिये नस्मकार हो ३

सप्तमी ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम्
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्

अयस्मये । द्रुऽपदे । बेधिषे । इह । अभिऽहितः । मृत्युऽभिः । ये ।
सहस्रम् ।
यमेन । त्वम् । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । उत्ऽतमम् । नाकम् ।
अधि । रोहय । इमम् ॥ ४ ॥

"अयस्मये द्रुपदे" इत्येषा सप्तमेनुवाके व्याख्याता । [६. ६३. ३] ॥

[इति] नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे निर्ऋते ! जिस समय तू पुरुषको लोहेकी बेड़ी वा वृत्तसे बनी हुई पैरोंको जकड़नेकी बेड़ीमें बाँधती है उस समय इस लोक में वह पुरुष मृत्युके ज्वर राक्षस आदि सहस्रों पाशोंसे बँधा हुआ होता है, हे निर्ऋते ! तू अपने अधिष्ठात्री पापदेवता यमसे और पितरोंसे भी एकमत होकर इस पुरुषको दुःखके स्पर्शसे शून्य अवस्था—अत एव स्वर्गमें पहुँचा ॥ ४ ॥

प्रथम सूक्त समाप्त (२५७) ॥

"वरणो वारयातै" इति तृचेन राजयक्ष्मादिरोगभैषज्यकर्मणि वरणवृक्षमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य पुनस्तृचं जपित्वा बध्नीयात् । "शं नो देवी [२. २५] वरणः [६. ८५] पिप्पली" [६. १०६] इति प्रक्रम्य "तृतीयेन मन्त्रोक्तं बध्नाति" इति [कौ० ४. २] सूत्रात् ॥

"वृषेन्द्रस्य" इति तृचेन श्रैष्ठ्यकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । वृषेन्द्रस्येति वृषकामः" इति [कौ० ७. १०] सूत्रात् ॥

'वरणो वारयातै' इस तृचसे राजयक्ष्मा आदि रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये वरणवृक्षकी मणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण कर फिर इस तृचका जप करके बाँध देवे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—'शं नो देवी (२ । २५) वरणः (६ । ८५) पिप्पली' (६ । १०६) इति प्रक्रम्य "तृतीयेन मन्त्रोक्तं बध्नाति" (कौशिकसूत्र ४ । २) ॥

"वृषेन्द्रस्य" इस तृचसे श्रेष्ठताको चाहने वाला इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"वृषेन्द्रस्येति वृषकामः" (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तत्र प्रथमा ॥

व॒र॒णो वा॑रयाता अ॒यं दे॒वो वन॒स्पतिः॑ ।
यक्ष्मो॒ यो अ॒स्मिन्नावि॑ष्ट॒स्तमु॑ दे॒वा अ॑वीवरन् ॥१॥

व॒र॒णः । वा॒र॒या॒तै॒ । अ॒यम् । दे॒वः । वन॒स्पतिः॑ ।
यक्ष्मः॑ । यः । अ॒स्मिन् । आऽवि॑ष्टः । तम् । ऊँ॒ इति॑ । दे॒वाः ।
अ॒वी॒व॒र॒न् ॥ १ ॥

अयं पुरोवर्ती देवः दानादिगुणयुक्तः [वरणः] वरणाख्यो वनस्पतिः वनानाम् अधिपतिर्वृक्षः । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । वरणवृक्षनिर्मितो मणिः वारयातै राजयक्ष्मादिरोगं वारयतु निवर्तयतु । ❀ वारयतेर्लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ ॥ अस्मिन् पुरुषे यो यक्ष्मः रोग आविष्टः तमु । उशब्दः अप्यर्थे । तं सर्वमपि रोगं देवा इन्द्रादयः सर्वे अवीवरन् वारयन्तु । ❀ वारयतेश्छान्दसे लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

यह सामने वर्तमान दानादिगुणसम्पन्न वरणवृक्षकी मणि राजयक्ष्मा आदि रोगको दूर करे। इस पुरुषमें जो यक्ष्मारोग प्रविष्ट होगया है उस रोगको इन्द्र आदि देवता दूर करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्र॑स्य॒ वच॑सा व॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य च ।
दे॒वानां॒ सर्वे॑षां वा॒चा यक्ष्मं॑ ते वारयामहे ॥ २ ॥

इन्द्र॑स्य । वच॑सा । व॒यम् । मि॒त्रस्य॑ । वरु॑णस्य । च॒ ।
दे॒वाना॑म् । सर्वे॑षाम् । वा॒चा । यक्ष्म॑म् । ते॒ । वा॒र॒या॒म॒हे॒ ॥ २ ॥

मणिबन्धनकर्तारो वयम् हे व्याधित ते तव यक्ष्मम् रोगम् इन्द्रस्य देवानाम् अधिपतेः वचसा आज्ञारूपेण वाक्येन वारयामहे निवारयामः । न केवलम् इन्द्रस्य वचसा । मित्रस्य वरुणस्य च अन्येषामपि सर्वेषां देवानां वाचा वाक्येन त्वदीयं रोगं निवारयामः॥

हे रोगिन्! मणिको बाँधने वाले हम तेरे यक्ष्मारोगको देवाधिदेव इन्द्रदेवके आज्ञारूप वचनसे हटाते हैं, इन्द्रदेवके ही नहीं किंतु मित्र वरुण तथा अन्य सब देवताओंके वाक्यसे हटाते हैं २

तृतीया ॥

यथा॑ वृ॒त्र इ॒मा आप॑स्तस्त॒म्भ॑ वि॒श्वधा॑ य॒तीः ।
ए॒वा ते॑ अ॒ग्निना॒ यक्ष्मं॑ वैश्वान॒रेण॑ वारये ॥ ३ ॥

यथा॑ । वृ॒त्रः । इ॒माः । आप॑ः । त॒स्तम्भ॑ । वि॒श्वधा॑ । य॒तीः ।
ए॒व । ते॒ । अ॒ग्निना॑ । यक्ष्म॑म् । वै॒श्वा॒न॒रेण॑ । वा॒र॒ये॒ ॥ ३ ॥

यथा येन प्रकारेण वृत्रः आवरणशीलस्त्वष्टृपुत्रोसुरः इमाः परिदृश्यमाना विश्वधायनीः कृत्स्नस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य जगतः पोषयित्रीः आपः मेघस्था व्यापनशीला अपः तस्तम्भ निरुद्धगतीश्चकार । ❀ ष्टभि स्कभि गतिप्रतिबन्धे ❀ हे व्याधित ते तव यक्ष्मम् रोगम् एव एवं वैश्वानरेण विश्वनरहितेन सर्वप्राणिहितकारिणा अग्निना वारये निवारयामि ॥

जिस प्रकार आवरणशील त्वष्टापुत्र वृत्रासुरने इन सम्पूर्ण जगत्का पोषण करने वाले मेघस्थित जलोंकी गतिको रोक दिया था, हे रोगिन्! इसी प्रकार तेरे यक्ष्मारोगको मैं अग्निके द्वारा हटाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वृषेन्द्र॑स्य॒ वृषा॑ दि॒वो वृषा॑ पृथि॒व्या अ॒यम् ।
वृषा॒ विश्व॑स्य भू॒तस्य॒ त्वमेकवृषो भ॑व ॥ १ ॥

वृषा॑ । इन्द्र॑स्य । वृषा॑ । दि॒वः । वृषा॑ । पृ॒थि॒व्याः । अ॒यम् ।
वृषा॑ । विश्व॑स्य । भू॒तस्य॑ । त्वम् । ए॒क॒ऽवृ॒षः । भ॒व॒ ॥ १ ॥

अयं श्रैष्ठ्यकामः पुरुषः इन्द्रस्य प्रसादाद् वृषा सेचनसमर्थः श्रेष्ठो भवतु । यद्वा हविःप्रदानादिना उपजीव्यः सन् इन्द्रस्यापि श्रेष्ठो भवत्वित्यर्थः । दिवः द्युलोकस्य वृषा कामानां वर्षिता श्रेष्ठो भवतु । ❀ दिव इति । "ऊडिदम्०" इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् । पृथिव्या इति । प्रथनात् पृथिवी । "यद् अप्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम्" इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १. १. ३. ७] । प्रथ प्रख्याने । प्रथेः षिवन् संप्रसारणं च [उ० १. १४८] । "षिद्गौरादिभ्यश्च" इति ङीष् । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ । किं बहुना द्यावापृथिव्युपलक्षितस्य विश्वस्य भूतस्य सर्वस्यापि प्राणिजातस्य वृषा सेचनसमर्थः उत्कृष्टो भवतु ॥ परः प्रत्यक्षकृतः । हे श्रैष्ठ्यकाम पुरुष उदीरितरीत्या त्वम् एकवृषो भव । यथा गोयूथमध्ये प्रधानभूतो वृषभः सर्वश्रेष्ठो वर्तते एवं सर्वोत्कृष्टो भवेत्यर्थः ॥

यह श्रेष्ठताको चाहने वाला पुरुष इन्द्रके प्रसादसे तृप्त करनेमें –सेचन करनेमें–समर्थ होवे, यह द्युलोकको भी तृप्त करने वाला हो, यह आहुतिके द्वारा पृथिवी पर भी वर्षा कराने वाला अत एव श्रेष्ठ हो और क्या यह द्यावापृथिवीके सम्पूर्ण प्राणियोंको तृप्त करनेमें समर्थ श्रेष्ठ होवे । हे श्रेष्ठताको चाहने वाले पुरुष ! इस प्रकार तू एकवृष हो अर्थात् जैसे गौओंके झुण्डमें प्रधान

वृषभ सर्वश्रेष्ठ रहता है तिस प्रकार तू सबोंमें सर्वश्रेष्ठ रह ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

स॒मुद्र ईशे स्र॒वता॑म॒ग्निः पृ॑थि॒व्या व॒शी ।
च॒न्द्र॒मा न॑क्षत्राणामीशे॒ त्वमे॑कवृ॒षो भ॑व ॥ २ ॥

स॒मु॒द्रः । ई॒शे॒ । स्र॒वता॑म् । अ॒ग्निः । पृ॒थि॒व्याः । व॒शी ।
च॒न्द्रमा॑ः । न॑क्षत्राणाम् । ई॒शे॒ । त्वम् । ए॒क॒ऽवृ॒षः । भ॒व॒ ॥ २ ॥

स्रनताम् प्रवहताम् उदकानां समुद्रः अब्धि ईशे ईष्टे । ❀ ईश ऐश्वर्ये । "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ । पृथिव्याः भूम्या अग्निर्वशी वशयिता स्वामी । नक्षत्राणाम् अश्विन्यादीनां चन्द्रमा ईशे ईष्टे । यथा एतेषां समुद्रादीनां स्वस्वविषयाधिपत्यम् अव्याहतम् एवम् हे श्रैष्ठ्यकाम त्वम् एकवृषो भवेति सबन्धः ॥

बहने वाले जलोंमें समुद्र ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, अग्नि पृथिवीके स्वामी हैं, अश्विनी आदि नक्षत्रोंके चन्द्रमा स्वामी हैं, जैसे इन समुद्र आदिकी अपने २ विषयमें प्रधानता है, इसी प्रकार हे श्रेष्ठता को चाहनेवाले पुरुष ! तू एकवृष हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

स॒म्राड॒स्यसु॑राणां क॒कुन्म॑नु॒ष्या॒णाम् ।
दे॒वाना॑मर्ध॒भाग॑सि॒ त्वमे॑कवृ॒षो भ॑व ॥ ३ ॥

स॒म्ऽराट् । अ॒सि॒ । असु॑राणाम् । क॒कुत् । म॒नु॒ष्या॒णाम् ।
दे॒वाना॑म् । अ॒र्ध॒ऽभाक् । अ॒सि॒ । त्वम् । ए॒क॒ऽवृ॒षः । भ॒व॒ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वम् असुराणाम् सुरविरोधिनां दानवानां सम्राट् सम्यग् राजमानः ईश्वरोसि भवसि । तद्वद् अयं श्रैष्ठ्यकामो मनुष्याणाम्

मनोरपत्यानां सर्वप्राणिनां ककुत् वृषभस्य ककुदिव उन्नतो भवतु ॥ तथा हे इन्द्र त्वं देवानाम् अर्धभाग् असि । अर्धशब्दः समप्रविभागवचनः । अन्ये सर्वे देवा एको भागः इन्द्र एको भागः । सर्वदेवप्रतिनिधिर्भवसीत्यर्थः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "यत् सर्वेषाम् अर्धम् इन्द्रः प्रति तस्माद् इन्द्रो देवतानां भूयिष्ठभाक्तमः" इति [तै० सं० ५. ४. ८. ३] । ईदृशस्य इन्द्रस्य प्रसादात् हे श्रैष्ठ्यकाम त्वम् इन्द्रवद् एकवृषो भव ॥

[इति नवमेनुवाके] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप देवताओंसे विरोध रखने वाले दानवोंके दमकते हुए ईश्वर होते हैं, इसी प्रकार यह श्रेष्ठताको चाहने वाला पुरुष मनुकी सन्तान सब प्राणियोंमें ककुद्की समान उन्नत हो जावे । हे इन्द्र ! आप देवताओंके अर्धभाग् हैं अर्थात् और सब देवता एक ओर और दूसरी ओर केवल इन्द्र होते हैं तात्पर्य यह है, कि—हे इन्द्र ! आप सब देवताओंके प्रतिनिधि होजाते हैं । ऐसे इन्द्रके प्रभावसे हे श्रेष्ठताको चाहने वाला पुरुष ! तू एकवृष (श्रेष्ठ) होजा ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (२५२) ॥

"आ त्वाहार्षम्" [६. ८७] "ध्रुवा द्यौः" [६. ८८] इति तृचाभ्यां स्थैर्यकामो राजा इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौरिति ध्रौव्यकामः" [कौ० ७. १०] इति सूत्रात् ॥

तथा भूमिकम्पलक्षणोत्पातप्रायश्चित्तार्थम् आभ्याम् तृचाभ्याम् आज्यं जुहुयात् । "अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति" इति प्रक्रम्य "आ त्वाहार्षम् [६. ८७] ध्रुवा द्यौः [६, ८८] सत्यं बृहत् [१२. १] इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात्" इति [कौ० १३. ६]॥

तथा उदकुम्भभङ्गलक्षणाद्भुतप्रायश्चित्तार्थम् आभ्यां तृचाभ्याम् अन्यं नवकलशं दृढीकरणार्थम् अभिमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "अथ

यत्रैतत् कुम्भ उदधानः सक्तुधानी वोखा वानिङ्गिता विकसति” इति प्रक्रम्य “अथ चेद् उदधानः स्यात् समुद्रं वः प्र हिणोमि [१०. ५. २३] इत्येताभ्याम् ऋग्भ्याम् अभिमन्त्र्य अन्यं कृत्वा ध्रुवाभ्यां [६. ८७, ८८] दृंहयित्वा” इति [कौ० १३. ४४]॥

तथा इन्द्रमहाख्ये उत्सवकर्मणि आभ्यां तृचाभ्याम् इन्द्रम् उत्थापयेत् । “अथ राज्ञाम् इन्द्रमहस्योपचारकल्पम्” इति प्रक्रम्य “अथेन्द्रम् उत्थापयति आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौर्विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु” इति [कौ० १४. ४] ॥

तथा अग्निचयने “आ त्वाहार्षम्” इत्यनेन उन्नीतम् उख्याग्निं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । अग्निचयनं प्रक्रम्य सूत्रितम् । “संशितं मे [३. १९] इत्युख्यम् उन्नीयमानम् आ त्वाहार्षम् [६. ८७] इत्युन्नीतम्” इति [वै० ५. १] ॥

स्थिरताको चाहने वाला राजा “आ त्वाहार्षम् (६ । ८७) ध्रुवा द्यौः (६ । ८८) इन दोनों तृचोंसे इन्द्रका यजन वा उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौरिति ध्रौव्यकामः” (कौशिकसूत्र ७ । १०) ॥

तथा भूमिकम्परूप उत्पातके प्रायश्चित्तके लिये इन दोनों तृचों से घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति” इति प्रक्रम्य “आ त्वाहार्षम् (६ । ८७) ध्रुवा द्यौः (६ । ८८) सत्यं बृहत् (१२ । १) इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात्” (कौशिकसूत्र १३ । ६) ॥

तथा जलपूर्ण कलशके टूटनेरूप अद्भुतका प्रायश्चित्त करने के लिये इन दोनों तृचोंसे दूसरे नवीन कलशको दृढ़ करनेके लिये अभिमन्त्रित करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अथ यत्रैतद् कुंभ उदधानः सक्तुधानी वोखा वानिंगिता विकसति” इति प्रक्रम्य “अथ चेद् उदधानः स्यात् समुद्रं वः प्रहिणोमि (१० । ५ । २३) इत्येताभ्यां ऋग्भ्यां अभिमन्त्र्य अन्यं कृत्वा

ध्रुवाभ्यां (६ । ८७,८८) दृंहयित्वा" (कौशिकसूत्र १३ । ४४)॥

तथा इन्द्रमह नाम वाले उत्सव कर्ममें इन दोनों तृचाओंसे इन्द्रको उठावे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–

"अथ राज्ञां इन्द्रमहस्योपचारकल्पम्"इति प्रक्रम्य "अथेन्द्रं उत्थापयति आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौर्विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु" (कौशिकसूत्र १४ । ४) ॥

तथा ब्रह्मा अग्निचयनमें 'आ त्वाहार्षम्' इससे उन्नीत उख्याग्निका अनुमन्त्रण करे । सूत्रमें अग्निचयनका आरंभ करके कहा है,–"संशितं मे (३ । १९) इत्युखं उन्नीयमानम् आ त्वाहार्षम् (६ । ८७) इत्युन्नीतम्" (वैतानसूत्र ५ । १)

तत्र प्रथमा ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् १

आ । त्वा । अहार्षम् । अन्तः । अभूः । ध्रुवः । तिष्ठ । अविऽचाचलत् ।
विशः । त्वा । सर्वाः । वाञ्छन्तु । मा । त्वत् । राष्ट्रम् । अधि । भ्रशत्

हे राजन् त्वा त्वाम् आहार्षम् राष्ट्रम् आनयिषम् (आनैषम्) अन्तः अस्माकं मध्ये अभूः अधिपतिरभवः । ❀ भवतेर्लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् । "भूसुवोस्तिङि" इति गुणप्रतिषेधः ❀ । अविचाचलत् भृशं चलनरहितः सन् अस्मिन् राज्याधिपत्ये ध्रुवस्तिष्ठ स्थिर उपविश । ❀ [अवि] चाचलत् इति । चल गतौ । अस्माद् यङ्लुगन्तात् शतरि रूपम् । "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्प्रतिषेधः ❀ । भूमण्डलमध्यवर्तिन्यः सर्वा विशः प्रजाः त्वा त्वां वाञ्छन्तु अस्माकम् अयमेव स्वामी इत्यनुरागयुक्ता भवन्तु । ❀ वाछि इच्छायाम् ❀ । इदं राष्ट्रम् राज्यं त्वत्

सकाशाद् मा अधि भ्रशत् अधिकं कदाचिदपि भ्रष्टं मा भूत् । सर्वदा त्वच्छासने वर्तताम् इत्यर्थः । ❀ भ्रशु भ्रन्शु अधःपतने । अस्मान्माङि लुङि पुषादित्वात् च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

हे राजन् ! मैं आपको राष्ट्रमें ले आया हूँ, आप हमारे मध्य में अधिपति हूजिये और चलनरहित स्थितिमें स्थिर होकर बैठिये । भूमण्डलकी सब प्रजायें आपकी कामना करें अर्थात् यह हमारे स्वामी हैं—इस बातके अनुरागमें भरी रहें यह राज्य आपके पास से कभी भ्रष्ट न हो अर्थात् सदा आपके शासनमें रहे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इ॒हैवैधि॒ माप॑ च्योष्ठाः॒ पर्व॑त इ॒वावि॑चाचलत् ।
इन्द्र॑ इ॒वेह ध्रु॒वस्ति॑ष्ठे॒हरा॒ष्ट्रमु॑ धारय ॥ २ ॥

इ॒ह । ए॒व । ए॒धि॒ । मा । अप॑ । च्यो॒ष्ठाः॒ । पर्व॑तःऽइव । अवि॑ऽचाचलत् ।
इन्द्र॑ःऽइव । इ॒ह । ध्रु॒वः । ति॒ष्ठ॒ । इ॒ह । रा॒ष्ट्रम् । ऊ॒ं॑ इति॑ । धा॒र॒य॒ २

इहैव अस्मिन्नेव राज्यसिंहासने एधि भव सर्वदा वर्तस्व । माप च्योष्ठाः कदाचिदपि अस्माद् राष्ट्रात् प्रच्युतो मा भूः । ❀ च्युङ् प्रुङ् गतौ । अस्मान्माङि लुङि च्लेः सिच् । "न माङ्योगे" इति अडभावः ❀ । कथंभूतः सत् । पर्वत इव अविचाचलत् सर्वदा सर्वथा चलनरहितः सन् । इन्द्र इह इव अस्मिन् राष्ट्रे ध्रुवस्तिष्ठ स्थिरो वर्तस्व । राष्ट्रमु । उशब्दः चार्थे । तव स्वभूतम् एतद् राष्ट्रं च धारय स्वेस्वे स्थानेवस्थापय । संभद्बाधपरिहारेण पालयेत्यर्थः ॥

आप इसी राजसिंहासन पर स्थिर रहिये, कभी भी इस राज्य से भ्रष्ट न हूजिये आप पर्वतकी समान अचल रहिये और इन्द्र

की समान इस राज्यमें स्थिर रहिये, अपने इस राज्यको आप धारण कीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

इन्द्रः । एतम् । अदीधरत् । ध्रुवम् । ध्रुवेण । हविषा ।
तस्मै । सोमः । अधि । ब्रवत् । अयम् । च । ब्रह्मणः । पतिः ३

ध्रुवेण स्थैर्यकरेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा तुष्ट इन्द्रः एतं राजानम् अस्मिन् राष्ट्रे ध्रुवम् स्थिरं प्रच्युतिरहितम् अदीधरत् धारितवान् । प्रतिष्ठापितवान् इत्यर्थः । तस्मै राज्ञे सोमो राजा अधि ब्रवत् अस्मदीयोयम् इति अधिकं ब्रवीतु । अयं च ब्रह्मणस्पतिः वेदराशेः पालयिता देवः अधि ब्रवीतु । ❀ "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ❀ ॥

स्थिरता लाने वाली हमारी दी हुई हविसे सन्तुष्ट हुए इन्द्रदेवने इस राज्यमें इस राजाको स्थिररूपसे स्थापित कर दिया है। ऐसे राजाके विषयमें सोम राजा पक्षपातपूर्वक कहें, कि-यह हमारा है। इसी प्रकार ब्रह्मणस्पति देवता भी स्नेहपूर्वक कहें ।३।

चतुर्थी ॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ १ ॥

ध्रुवा । द्यौः । ध्रुवा । पृथिवी । ध्रुवम् । विश्वम् । इदम् । जगत् ।
ध्रुवासः । पर्वताः । इमे । ध्रुवः । राजा । विशाम् । अयम् ॥१॥

यथा द्यौः ध्रुवा स्थिरा वर्तते । पृथिवी च यथा ध्रुवा निश्चला दृश्यते । द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानम् इदं विश्वम् सर्वं जगत् ध्रुवम् स्थिरं दृश्यते । तत्रत्या इमे परिदृश्यमानाः पर्वता यथा ध्रुवासः ध्रुवाः स्थिराः । ❀ "आज्जसेरसुक्" ❀ । तथा अयं विशाम् प्रजानां राजा ध्रुवः स्थिरो भवतु ॥

जैसे स्वर्ग स्थिर है और जैसे पृथिवी निश्चल दीखती है, जैसे द्यावापृथिवीके बीचमें वर्तमान यह सब जगत् स्थिर दीखता है और यहाँके पर्वत जैसे स्थिर हैं, इसी प्रकार यह राजा प्रजाओंका स्थिर राजा हो ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

ध्रु॒वं ते॒ राजा॒ वरु॑णो ध्रु॒वं दे॒वो बृह॒स्पति॑ः ।
ध्रु॒वं त॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ रा॒ष्ट्रं धा॑रयतां ध्रु॒वम् ॥ २ ॥

ध्रु॒वम् । ते॒ । राजा॑ । वरु॑णः । ध्रु॒वम् । दे॒वः । बृह॒स्पति॑ः ।
ध्रु॒वम् । ते॒ । इन्द्र॑ः । च॒ । अ॒ग्निः । च॒ । रा॒ष्ट्रम् । धा॒र॒य॒ता॒म् । ध्रु॒वम् ॥

हे राजन् ते तव राज्यं राजा राजमान ईश्वरो वरुणः ध्रुवम् स्थिरं करोतु । देवः द्योतमानो बृहस्पतिः देवमन्त्री त्वदीयं राष्ट्रं ध्रुवं करोतु । ❀ बृहतां देवानां पतिर्बृहस्पतिः । "तद्बृहतोः करपत्योः०" इति सुट्तलोपौ । "उभे वनपत्यादिषु०" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । तथा ते त्वदीयं राष्ट्रम् इन्द्रश्च अग्निश्च ध्रुवम् स्थिरं धारयताम् । प्रत्येकापेक्षया ध्रुवशब्दस्यावृत्तिः ॥

हे राजन् ! आपके राज्यको राजा वरुण स्थिर करें, प्रकाशवान् देवमन्त्री बृहस्पति भी आपके राज्यको स्थिर करें और आपके राज्यको इन्द्रदेव और अग्निदेव भी स्थिर करें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

ध्रु॒वो॑च्यु॒तः प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑ञ्छत्रूय॒तोध॑रान् पादयस्व ।

सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥

ध्रुवः । अच्युतः । प्र । मृणीहि । शत्रून् । शत्रुऽयतः । अधरान् । पादयस्व ।

सर्वाः । दिशः । समऽमनसः । सध्रीची । ध्रुवाय । ते समऽइतिः । कल्पताम् । इह ॥ ३ ॥

हे राजन् ध्रुवः अस्मिन् राष्ट्रे स्थिरः अच्युतः चलनरहितः सन् शत्रून् प्र मृणीहि प्रजहि । ❀ मृङ् हिंसायाम् ❀ । शत्रूयतः शत्रुवद् आचरतः अन्यानपि जनान् अधरान् अधोमुखान् पातयस्व भूमौ निपतितान् कुरु । एवं शत्रूणाम् अपगमे सति सर्वाः प्राच्याद्या दिशः संमनसः समनस्काः सत्यः सध्रीचीः त्वया सह अञ्चन्त्यो वर्तमानाः । त्वत्सेवापरायणा भवन्त्वित्यर्थः । ❀ सह अञ्चन्तीति सध्रीच्यः । अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "सहस्य सध्रिः" इति सध्र्यादेशः । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । "अचः इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । इह सर्वासु दिक्षु-ध्रुवाय निश्चलम् अवस्थिताय ते तुभ्यं समितिः आयोधनं कल्पताम् समर्थं भवतु आयोधनात् पलायनं कदाचिदपि मा भूद् इत्यर्थः ॥

[इति नवमेनुवाके] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे राजन् ! आप इस राज्यमें अचल रह कर शत्रुओंको मसलते रहिये और शत्रुभाव रखने वाले अन्य मनुष्योंको भी औंधे मुख

गिराइये । इस प्रकार शत्रुओंका विनाश करने पर इस प्रकार शत्रुरहित होने पर पूर्व आदि सब दिशाएँ आपकी सेवामें परायण रहें । इन सब दिशाओंमें निश्चल रहनेके लिये (आपको) आयोधन समर्थ करें अर्थात् आप युद्धसे कभी न भागें ।। ३ ।।

नवम अनुवाकमें तीसरा सूक्त समाप्त (२६१)

“इदं यत् प्रेण्यः” इति तृचेन जायापत्योरन्योन्यं प्रीतिजननकर्मणि अननुकूलस्य शिरः कर्णं च अनुमन्त्रयेत केशान् वा धारयेत् । सूत्रितं हि । “इदं यत् प्रेण्य इति शिरः कर्णम् अनुमन्त्रयते केशान् धारयते” इति [कौ० ४. १२] ।।

“यां ते रुद्रः” इति तृचेन शारीरशूलरोगपरिहारार्थं लोहमणिं पाषाणमणिं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयाद् इति रुद्रदारिलयोर्भाष्यकारयोर्मतम् । शूलिनः शूलस्थानम् अनुमन्त्रयेतेति भद्रस्य भाष्कारस्य मतम् । “यां ते रुद्र इति शूलिने शूलम्” इति [कौ० ४. ७] सूत्रात् ।।

“इदं यत् प्रेण्यः” इस तृचसे पति पत्नीके पारस्परिक प्रीति को उत्पन्न करनेके कर्ममें अनुकूल न रहने वालेके शिर और कानका अनुमन्त्रण करे बा केशोंको धारण करे ।।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“इदं यत् प्रेण्य इति शिरः कर्णं अनुमन्त्रयते केशान् धारयते” (कौशिकसूत्र ४ । १२) ।।

“यां ते रुद्रः” इस तृचसे शरीरके शूलरोगको दूर करनेके लिये लोहमणि वा पाषाण—मणिका सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँध देवे, यह रुद्र और दारिल नाम वाले भाष्यकारका मत है । और भद्र भाष्यकारका यह मत है, कि—शूलरोगीके शूलस्थानका अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—“यां ते रुद्र इति शूलिने शूलम्” (कौशिकसूत्र ४।७) ।।

तत्र प्रथमा ॥

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥ १ ॥

इदम् । यत् । प्रेण्यः । शिरः । दत्तम् । सोमेन । वृष्ण्यम् ।

ततः । परि । प्रऽजातेन । हार्दिम् । ते । शोचयामसि ॥ १ ॥

प्रेण्यः प्रेमप्रापकस्य यद् इदं शिरः वृष्ण्यम् वीर्यप्रदं सोमेन दत्तम् ततः तस्माद् दत्ताच्छिरसः परिप्रजातेन उत्पन्नेन स्नेहविशेषेण ते तव हार्दिम् हृन्मध्यवर्तिं अन्तःकरणं शोचयामसि संतापयुक्तं कुर्मः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

प्रेमके प्रापक इस वीर्यप्रद शिरको सोमने दिया है, इस शिर से उत्पन्न होने वाले प्रेमसे हम तेरे हृदयके मध्यवर्ती अन्तःकरण को सन्तापयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्य१ङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥ २ ॥

शोचयामसि । ते । हार्दिम् । शोचयामसि । ते । मनः ।

वातम् । धूमःऽइव । सध्र्यङ् । माम् । एव । अनु । एतु । ते । मनः

हे जायापत्योरन्यतर ते तव हार्दिम् हृदयमध्यवर्ति अन्तःकरणं हृदयमेव वा परस्परानुरागोत्पादनेन शोचयामसि तप्तं कुर्मः । तथा ते तव मनः संकल्पविकल्पात्मकम् अन्तःकरणस्य वृत्तिविशेषमपि शोचयामसि शोचयामः । एवं संतापजननोत्तरकालं सध्रिम् सहभूतं वातम् वायुं धूम इव ते तव मनः मामेव अन्वेतु अनुगच्छतु ।

यथा धूमो वातानुसारेण पृष्ठतो धावति एवम् अनुरागवशात् त्वदीयं मनो माम् अनुधावत्वित्यर्थः । ❀ सध्रिम् इति । अनुत्तरपदस्यापि सहशब्दस्य सध्र्यादेशश्छान्दसः ❀ ॥

हे पति पत्नीमेंसे एक प्राणी ! तेरे हृदयको हम परस्परमें अनुराग उत्पन्न करके सन्तप्त करते हैं । और तेरे संकल्पविकल्पात्मक मनकोऔर वृत्तिविशेष अन्तःकरणको भी प्रेम उत्पन्न करके संतापयुक्त करते हैं । इस प्रकार सन्ताप उत्पन्न करनेके अनन्तर ही साथ रहने वाले वायुके पीछे जैसे धुआँ जाता है, तिसी प्रकार तेरा मन मेरे अनुकूल हो जाय ॥ २ ॥

तृतीया ॥

मह्यं॑ त्वा मि॒त्रावरु॑णौ॒ मह्यं॑ दे॒वी सर॑स्वती ।
मह्यं॑ त्वा॒ मध्यं॒ भूम्या॑ उ॒भावन्तौ॒ सम॑स्यताम् ॥ ३ ॥

मह्य॑म् । त्वा॒ । मि॒त्रावरु॑णौ । मह्य॑म् । दे॒वी । सर॑स्वती ।

मह्य॑म् । त्वा॒ । मध्य॑म् । भूम्याः॑ । उ॒भौ । अन्तौ॑ । सम् । अ॒स्य॒ता॒म्

हे जाये त्वा त्वां मित्रावरुणौ मित्रश्च वरुणश्च । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । एतत्संज्ञौ देवौ मह्यं पत्ये समस्यताम् । संयोजयताम् इत्यर्थः । देवी द्योतमाना सरस्वती त्वां मह्यं समस्यतु । भूम्याः पृथिव्या मध्यम् मध्यस्थितं प्राणिजातं त्वा त्वां मह्यं संयोजयतु । तस्या एव भूम्या उभावन्तौ ऊर्ध्वाधःप्रदेशौ त्वां समस्यताम् संयोजयताम् । ❀ असु क्षेपणे । दिवादित्वात् श्यन् ❀ ॥

हे जाये ! मित्र और वरुणदेवता तुझको मुझमें संयुक्त करें, देवी सरस्वती भी तुझे मुझमें संयुक्त करें और पृथिवी पर रहने वाले प्राणी तुझको मुझ पर अनुरक्त करें और पृथिवीके ऊपर नीचेके प्रदेश भी तुझको मुझमें स्नेही करें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥ १ ॥

याम् । ते । रुद्रः । इषुम् । आस्यत् । अङ्गेभ्यः । हृदयाय । च ।
इदम् । ताम् । अद्य । त्वत् । वयम् । विषूचीम् । वि । वृहामसि १

हे व्याधित ते तव अङ्गेभ्यः हस्तपादादिभ्यः हृदयाय च अङ्गानि हृदयं च व्यद्धुं रुद्रः रोदयिता शूलरोगाभिमानी देवः याम् इषुम् बाणम् आस्यत् धनुर्यन्त्रेण प्राक्षिपत् । अद्य इदानीम् इदं तत्प्रतीकारार्थं ताम् इषुं विषूचीम् अनभिमुखीं [वयं त्वत् त्वत्तो] वि वृहामसि विवृहामः शरीरमध्याद् उत्क्षिपामः । ❀ वृहू उद्यमने । "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

हे रोगिन् ! तेरे हाथ पैर आदि अंगोंको बींधनेके लिये शूलरोगके अभिमानी देवता रुलाने वाले रुद्रदेवने जिस बाणको धनुर्यन्त्रसे फेंका था, हम आज उसका प्रतीकार करनेके लिये उस बाणको उखाड़ते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥ २ ॥

याः । ते । शतम् । धमनयः । अङ्गानि । अनु । विऽस्थिताः ।
तासाम् । ते । सर्वासाम् । वयम् । निः । विषाणि । ह्वयामसि २

हे शूलरोगिन् ते तव अङ्गानि अनु हस्तपादाद्यवयवाननु याः [शतम्] शतसंख्याका धमनयः नाड्यो विष्ठिताः विविधम् अवस्थिताः ते त्वदीयानां तासां सर्वासां धमनीनां निर्विषाणि विष-

१८१७

रहितानि भैषज्यानि शूलनिबर्हणानि [वयं] ह्वयामसि ह्वयामः संपादयामः ॥

हे शूलरोगिन् ! तेरे हाथ पैर आदिमें जो सौ नाड़ियें विविध रीतिसे स्थित हैं तेरी उन सब नाड़ियोंकी निर्विष अर्थात् शूलको दूर करने वाली औषधियोंका हम सम्पादन करते हैं ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

नम॑स्ते रु॒द्रास्य॑ते॒ नम॒ः प्रति॑हितायै ।
नामो॑ वि॒सृ॒ज्यमा॑ना॒यै नमो॒ निप॑तितायै ॥ ३ ॥

नम॑ः । ते॒ । रु॒द्र॒ । अस्य॑ते । नम॑ः । प्रति॑ऽहितायै ।
नम॑ः । वि॒ऽसृ॒ज्यमा॑नायै । नम॑ः । निऽप॑तितायै ॥ ३ ॥

हे रुद्र रोदयितर्देव अस्यते व्याधिरूपाम् इषुं क्षिपते ते तुभ्यं नमोस्तु । ❀ "नमःस्वस्ति०" इति चतुर्थी ❀ । तथा प्रतिहितायै धनुषि संहितायै त्वदीयेषवे नमोस्तु । विसृज्यमानायै धनुषः सकाशात् प्रेर्यमाणायै तस्यै नमोस्तु । विसर्जनानन्तरं लक्ष्ये निपतितायै तस्यै नमोस्तु । इत्थं रुद्रस्य तदायुधस्य च विविधावस्थस्य नमस्कारेण तत्कृतपीडाभावः प्रार्थितः ॥

[इति] नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे रुलाने वाले रुद्रदेव ! व्याधिरूप बाणको फैंकने वाले आपको नमस्कार है । धनुष पर रक्खे हुए आपके बाणके लिये नमस्कार है और धनुष परसे छोड़े हुए बाणके लिये नमस्कार है, और धनुषसे छूट कर लक्ष्य पर गिरने वाले बाणके लिये नमस्कार है (इस प्रकार रुद्रदेवको और उनके बाणकी अनेक अवस्थाओंको नमस्कार करके उनकी की हुई पीड़ाके अभावकी प्रार्थना की है) ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (२६३) ॥

“इमं यवम्” इति तृचेन सर्वरोगभैषज्यार्थम् अर्धर्चेनार्धर्चेन आज्यं हुत्वा सयवे केवले वा उदपात्रे चतुरः संपातान् द्वौ पृथिव्याम् आनीय संपातितमृत्सहितोदकेन तृचाभिमन्त्रितेन व्याधितम् आप्लावयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन यवमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । “दिवे स्वाहा [५. ९] इमं यवम् [६. ९१] इति चतुर उदपात्रे संपातान् आनयति । द्वौ पृथिव्याम् । तौ प्रत्याहृत्याप्लावयति । सयवे चोत्तरेण यवं बध्नाति” इति [कौ० ४. ४]॥

“वातरंहाः” इति तृचेन अश्वशान्तौ आज्यं हुत्वा उदपात्रे संपातान् आनीय तेनोदकेन सूत्रोक्तरीत्या अश्वम् आचामयेत् आप्लावयेच्च । तद्ध उक्तं संहिताविधौ । “वातरंहा इति स्नातेऽश्वे संपातान् अभ्यति नयति । पलाशे सचूर्णे चोत्तरान् । आचामयति । आप्लावयति” इति [कौ० ५. ५.] ॥

‘इमं यवम्’ इस तृचसे सब रोगोंकी चिकित्साके लिये आधी ऋचासे वा पूर्ण ऋचासे घृतकी आहुति देकर जौं पड़े हुए वा केवल जलपूर्ण पात्रमें चार सम्पातोंको लावे और दो को पृथ्वी पर लावे उस सम्पातित मट्टीसहित तृचसे अभिमन्त्रित जलसे रोगीको स्नान करावे ।

तथा इसी कर्ममें इस तृचसे यवमणिको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–‘दिवे स्वाहा (५ । ९) इमं यवम् (६ । ९१) इति चतुर उदपात्रे सम्पातान् आनयति । द्वौ पृथिव्याम् । तौ प्रत्याहृत्याप्लावयति । सयवे चोत्तरेण यवं बध्नाति” (कौशिकसूत्र ४ । ४) ॥

“वातरंहाः” इस तृचसे अश्वशांतिमें घृतकी आहुति देकर

जलपूर्ण पात्रोंमें सम्पातोंको लावे, फिर उस जलसे सूत्रोक्त रीतिसे घोड़ेको आचमन करावे और स्नान करावे । इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि–"वातरंहा इति स्नातेश्वे सम्पातान् अभ्यति नयति । पलाशे सचूर्णे चोत्तरान् । आचामयति । आस्लावयति (कौशिकसूत्र ५ । ५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो३ रपोपाचीनमप व्यये ॥ १ ॥

इमम् । यवम् । अष्टाऽयोगैः । षट्ऽयोगेभिः । अचर्कृषुः ।
तेन । ते । तन्वः । रपः । अपाचीनम् । अप । व्यये ॥ १ ॥

इमं भैषज्याय प्रयुज्यमानं यवम् दीर्घशूकं धान्यम् अष्टायोगैः अष्टभिर्बलीवर्दैर्युज्यमाना हला अष्टायोगाः । [षड्योगेभिः] षड्भिर्युज्यमानाः षड्योगाः । इत्थं महद्भिर्हलैः अचर्कृषुः कर्षणं कृतवन्तः । ईदृशेन कर्षणेन उत्पादितवन्त इत्यर्थः । ❀ कृष विलेखने ❀ । तेन यवेन हे व्याधित ते तव तन्वः शरीरस्य रपः रोगनिदानभूतं पापम् अपाचीनम् अपाङ्मुखम् अप व्यये अपगमयामि ॥

इस औषधिके निमित्त प्रयोगमें आने वाले जौंको आठ बैलों वाले हलसे और छः बैलों वाले हलसे जोत कर उत्पन्न किया गया है । हे रोगिन् ! ऐसे जौंसे मैं तेरे रोगके मूलकारण पापको नीचेको निकालता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।

नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥ २ ॥

न्यक् । वातः । वाति । न्यक् । तपति । सूर्यः ।

नीचीनम् । अघ्न्या । दुहे । न्यक् । भवतु । ते । रपः ॥ २ ॥

न्यग् वात इत्याद्या उपमानार्थाः । यथा वातः वायुः न्यग् वाति नीचीनं गच्छति । ❀ वा गतिगन्धनयोः ❀। सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यश्च न्यक् नीचीनम् अवाङ्मुखं तपति । अघ्न्या । गोनामैतत् । अहन्तव्या गौश्च नीचीनम् अधोमुखं पयो दुहे दुग्धे । ❀ "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ । यथा एते वातादयो न्यक्त्वधर्मोपेताः हे व्याधित [एवं] ते तव रपः पापं रोगावहं न्यक् नीचीनम् अधोमुखं भवतु। शाम्यत्वित्यर्थः ॥

जैसे वायुदेव नीचेको चलते हैं और सूर्यदेव भी जिस प्रकार नीचेकी ओर मुख करके तपते हैं और गौ जैसे नीचेको मुख करके दुहाती है, यह वायु आदि जैसे नीचेपनके धर्मसे युक्त हैं, हे रोगिन् ! इसी प्रकार तेरा पाप भी नीचेकी ओर मुख करे अर्थात् शान्त होजावे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आप इद्‌ वा उं भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३॥

आपः । इत् । वै । ऊं इति । भेषजीः । आपः । अमीवऽचातनीः ।

आपः । विश्वस्य । भेषजीः । ताः । ते । कृण्वन्तु । भेषजम् ३

आप इद्व वा उ आप एव खलु भेषजीः भेषज्यः सर्वौषधानां तद्विकारत्वात् । ❀ "०सुमङ्गलभेषजाच्च" इति भेषजशब्दात्

ङीप् । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । अत एव हेतोः आपः अमीवचातनीः अमीवानां रोगाणां विनाशयित्र्यः । ❀ चातयतिर्नाशने इति यास्कः [नि० ६. ३०] ❀ । तस्माद् विश्वस्य सर्वस्य रोगजातस्य भेषजीः भेषज्यः ता आपः ते तव भेषजम् रोगनिवर्तकम् औषधं कृण्वन्तु कुर्वन्तु ॥

सब औषधियें जलकी ही विकार हैं अतः जल ही रोगोंका नाश करने वाली औषधियें हैं, यह सम्पूर्ण जगत्की औषधरूप हैं, वे तेरी रोगनिवर्तक औषधिको दें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वात॑रंहा भव वाजिन् यु॒ज्यमा॑न॒ इन्द्र॑स्य याहि प्र॒स॒वे मनो॑जवाः ।
यु॒ञ्जन्तु॑ त्वा म॒रुतो॑ वि॒श्ववे॑द॒स आ ते॒ त्वष्टा॑ प॒त्सु ज॒वं द॑धातु ॥ १ ॥

वात॑ऽरंहाः । भ॒व॒ । वा॒जि॒न् । यु॒ज्यमा॑नः । इन्द्र॑स्य । या॒हि॒ । प्र॒ऽस॒वे॑ । मनः॑ऽजवाः ।
यु॒ञ्जन्तु॑ । त्वा॒ । म॒रुतः॑ । वि॒श्वऽवे॑दसः । आ । ते॒ । त्वष्टा॑ । प॒त्ऽसु । ज॒वम् । द॒धा॒तु॒ ॥ १ ॥

हे वाजिन् अश्व युज्यमानः रथयुगे बध्यमानस्त्वं वातरंहाः वायुवेगो भव । इन्द्रस्य प्रसवे प्रेरणे अनुज्ञायां सत्यां मनोजवाः मनोवेगः सन् याहि गन्तव्यम् अवधिं प्राप्नुहि । विश्ववेदसः विश्वधनाः सर्वगोचरज्ञाना वा मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याका देवाः त्वा त्वां युञ्जन्तु संनह्यन्तु । त्वष्टा देवः ते तव पत्सु पादेषु जवम् वेगम् आ दधातु करोतु ॥

हे घोड़े ! रथमें जुता हुआ तू वायुकी समान वेग वाला हो, इन्द्रदेवके प्रेरणा करने पर मनकी समान वेग वाला होकर गन्तव्यस्थानकी अवधि पर प्राप्त हो, सबका ज्ञान रखने वाले उडआस मरुद्गण तुझसे संयुक्त होवें, त्वष्टा देवता तेरे पैरोंमें वेगको स्थापित करें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत
  योचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः

जवः । ते । अर्वन् । निऽहितः । गुहा । यः । श्येने । वाते । उत ।
  यः । अचरत् । परीत्तः ।
तेन । त्वम् । वाजिन् । बलऽवान् । बलेन । आजिम् । जय ।
  समने । पारयिष्णुः ॥ २ ॥

हे अर्वन् अश्व ते तव यो जवः वेगः गुहा गुहायाम् असाधारणे स्थाने निहितः निक्षिप्तोस्ति । श्येने पक्षिविशेषे वाते वायौ । उतशब्दः अप्यर्थे । यो जवः परीत्तः । परिदानं रक्षणार्थं दानम् । रक्षणाय दत्तः अचरत् चरति वर्तते । हे वाजिन् त्वं तेन वेगवता बलेन बलवान् भूत्वा समने संग्रामे पारयिष्णुः पारप्रापणशीलः सन् आजिम् युद्धं जय ॥

हे घोड़े ! तेरा जो वेग गुहा अर्थात् असाधारण स्थानमें रखा हुआ है, वाजमें और वायुमें थातीके रूपमें रक्खा हुआ है, हे अश्व ! तू उस वेगवान् बलसे बली होकर संग्राममें पार पहुँचाने वाला बनकर युद्धमें विजय पा ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

त॒नूष्टे॑ वाजिन् त॒न्वं॑ १॒ नय॑न्ती वा॒मम॒स्मभ्यं॑ धाव॑तु॒
श॒र्म॑ तुभ्य॑म् ।
अह्रु॑तो म॒हो ध॒रुणा॑य दे॒वो दि॒वी᳖व॒ ज्योति॒ः स्वमा
मि॑मीयात् ॥ ३ ॥

त॒नूः । ते॒ । वा॒जि॒न् । त॒न्व᳖म् । नय॑न्ती । वा॒मम् । अ॒स्मभ्य॑म् ।
धाव॑तु । शर्म॑ । तुभ्य॑म् ।
अह्रु॑तः । म॒हः । ध॒रुणा॑य । दे॒वः । दि॒विऽइ॑व । ज्योति॑ः । स्वम् ।
आ । मि॒मी॒या॒त् ॥ ३ ॥

हे वाजिन् वेगवन्नश्व ते तव तनूः शरीरयष्टिः तन्वम् आरूढस्य सादिनः शरीरं नयन्ती युद्धभूमिं प्रापयन्ती अस्मभ्यं वामम् वननीयं धनं धावतु प्रापयतु । तुभ्यं शर्म च शस्त्रक्षतादिव्यतिरेकेण सुखं यथा भवति तथा धावतु शीघ्रं गच्छतु । महः महतो दिवः अन्तरिक्षस्य अवकाशात्मकस्य ग्रामजनपदादेः धरुणाय धारणाय अह्रुतः अकुटिलगामी भूत्वा दिवि अन्तरिक्षे ज्योतिरिव सूर्यप्रकाश इव स्वम् स्वकीयं स्थानम् आ मिमीयात् आगच्छतु । ❀ माङ् माने शब्दे च । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ❀ ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वभाष्ये
षष्ठकाण्डे नवमोनुवाकः ॥

हे वेगवान् अश्व ! तेरे शरीरकी यष्टि अपने शरीर पर सवार के शरीरको युद्धभूमिमें लाती हुई विजयको प्राप्त करावे । और तुझको भी शस्त्रके घावसे अछूता रखती हुई अत एव सुख देती

हुई शीघ्रतासे चले। और तू अवकाशात्मक ग्राम नगर आदिको धारण करनेके लिये सरलगामी बन स्वर्गके सूर्यकी समान दमकता हुआ अपने निवासस्थान पर आजा ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२६५) ॥

अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डमें नवम अनुवाक समाप्त।

दशमेनुवाके चत्वारि सूक्तानि। तत्र "यमो मृत्युः" इति प्रथमं सूक्तम्। अत्र आद्यस्य तृचस्य वास्तोष्पत्यगणे पाठाद् वास्तोष्पत्याख्यायां महाशान्तौ वास्तोष्पत्यगणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "वास्तोष्पत्यगणो वास्तोष्पत्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

तथा यत्र वास्तोष्पत्यगणस्य विनियोगस्तत्र सर्वत्र अस्यापि गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ बृहद्गणप्रयुक्तो विनियोग उन्नेयः ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात्। सूत्रितं हि। "यमो मृत्युः [६.९३] विश्वजित् [६. १०७] शाकधूमम् [६.१२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १] ॥

अत्र "सं वो मनांसि" इति द्वितीयेन तृचेन सांमनस्यकर्मणि ग्राममध्ये संपातितोदकुम्भनिनयनम् तद्वत् सुराकुम्भनिनयनम् त्रिवर्षवत्सिकाया गोः पिशितानां प्राशनम् संपातितान्नप्राशनम् संपातितसुरायाः पायनम् तथाविधप्रपोदकपायनं च कुर्यात्। सूत्रितं हि। "सं वो मनांसि [६. ९४] संज्ञानं नः [७. ५४] इति सांमनस्यानि। उदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति। एवं सुराकुलिजम् त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि पिशितान्याशयंति। भक्तं सुरां प्रपां संपातवत् करोति" इति [कौ०२.३]॥

"अश्वत्थो देवसदनः" इति तृचेन राजयक्ष्मकुष्ठादिरोगशान्त्यर्थं कुष्ठाख्यौषधमिश्रितं नवनीतम् अभिमन्त्र्य प्रतिलोमं व्याधितशरीरं प्रलिंपेत् । "कुष्ठलिङ्गाभिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिंपति" इति [कौ० ४. ४] सूत्रात् ॥

"गर्भो असि" इत्यनया अग्निचयने अप्सु प्रक्षिप्यमाणाम् उख्यं भस्म ब्रह्मा अनुजपेत् । "गर्भो अस्योषधीनाम् इत्युख्यं भस्माप्सूप्यमानम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. १] ॥

"या ओषधयः" इति तृचेन ब्राह्मणाक्रोशे जलोदरे च शान्त्यर्थं सोमलताम् अग्नौ प्रक्षिप्य व्याधितं धूपयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन मधुमिश्रं दधि अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा क्षीरं तक्रेण संमिश्र्य अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा दधि मधु क्षीरम् उदश्वितं च एकीकृत्य पाययेत् ॥

सूत्रितं हि । "या ओषधय इति मन्त्रोक्तस्यौषधिभिर्धूपयति" इत्यादि [कौ० ४. ७] ॥

तथा "या ओषधयः" इत्यस्या अंहोलिङ्गगणे पाठाद् "अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" [कौ० ४. ८] इत्यादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

दशम अनुवाकमें चार सूक्त हैं । उनमें 'यमो मृत्युः' यह प्रथम सूक्त है । इसके पहिले तृचका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ है, अत एव वास्तोष्पत्या नाम वाली महाशांतिमें वास्तोष्पत्यगणके अनुसार इसका विनियोग करना चाहिये । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–'वास्तोष्पत्यगणो वास्तोष्पत्यायाम्" (नक्षत्रकल्प १८)॥

तथा जहाँ २ वास्तोष्पत्यगणका विनियोग हो तहाँ २ इसका भी विनियोग करना चाहिये ।

और इसका बृहद्गणमें भी पाठ है, अतएव शान्त्युदकके अभि-

मन्त्रण आदिमें बृहद्गणके कारण इसका विनियोग करना चाहिये।

तथा स्वस्त्ययन कर्ममें इस तृचसे घृत समिधा पुरोडाशसे पूरी तककी तेरह वस्तुओंकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यमो मृत्युः (६ । ९३) विश्वजित् (६ । १०७) शकधूमम् (६ । १२८) भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत" (कौशिकसूत्र ७ । १)॥

इसके "सं वो मनांसि" इस दूसरे तृचसे सांमनस्यकर्ममें ग्राम के मध्यमें संपातित पूर्ण कुम्भका लाना, इसी प्रकार सुराकुम्भ का लाना, तीन वर्षकी वत्सिका गौके पिशितोंका प्राशन, संपातित अन्नका प्राशन, सम्पातित सुराका पिलाना, तथा संपातित पौके जलका पिलाना आदि भी करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"सं वो मनांसि (६ । ९४) संज्ञानं नः (७ । ५४) इति सांमनस्यानि। उदकुलिजं सम्पातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति। एवं सुराकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि पिशित्यान्यशयति। भक्तं सुरां प्रपां सम्पातवत् करोति"। (कौशिकसूत्र २ । ३)॥

"अश्वत्थो देवसदनः" इस तृचसे राजयक्ष्मा कुष्ठ आदि रोगों की शान्ति करनेके लिये कूट नाम वाली औषधि मिले हुए मक्खन को अभिमन्त्रित करके नीचेसे रोगीके शरीर पर लेप करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"कुष्ठलिङ्गाभिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिम्पति" (कौशिकसूत्र ४ । ४)॥

"गर्भो असि" इस ऋचासे अग्निचयनमें जलमें डाली जाती हुई उख्य भस्मका ब्रह्मा अनुजप करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"गर्भो अस्योषधीनां इत्युख्यं भस्मासूप्यमानम्" (वैतानसूत्र ५ । १)॥

"या ओषधयः" इस तृचसे ब्राह्मणके कल्पनेमें और जलो-

दरमें भी शान्तिके लिये सोमलताको अग्निमें डाल कर रोगीको धूप देवे ।

तथा इसी कर्ममें इसी तृचसे मधु मिले हुए दहीका अभिमन्त्रण करके पिलावे ॥

तथा क्षीर (दूध) को मठेसे मिला अभिमन्त्रित करके पिलावे ।

तथा दही मधु दूध और उदश्वित् (आधा पानी मिला हुआ मट्ठा) को मिला कर पिलावे ॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"या ओषधय इति मन्त्रोक्तस्यौषधिभिः धूपयति०" (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

तथा 'या ओषधयः' इस ऋचाका अंहोलिंगगणमें पाठ होनेसे 'अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानां अंहोलिंगाभिः (कौशिकसूत्र ४ । ८) इत्यादि गणके अनुसार विनियोग देखना चाहिये ॥

तत्र प्रथमा ॥

य॒मो मृ॒त्युर॑घमा॒रो नि॑र्ऋ॒थो ब॒भ्रुः श॒र्वो॑स्ता॒ नील॑शिखण्डः॒
दे॒व॒ज॒नाः सेन॑योत्तस्थि॒वांस॒स्ते अ॒स्माक॒ं परि॑ वृञ्जन्तु
वी॒रान् ॥ १ ॥

य॒मः । मृ॒त्युः । अ॒घ॒ऽमा॒रः । नि॒ःऽऋ॒थः । ब॒भ्रुः । श॒र्वः । अस्ता॑ ।
नील॑ऽशिखण्डः ।
दे॒व॒ऽज॒नाः । सेन॑या । उ॒त्त॒स्थि॒ऽवांस॑ः । ते । अ॒स्माक॑म् । परि॑ ।
वृ॒ञ्ज॒न्तु॒ । वी॒रान् ॥ १ ॥

यमयति नियमयति पापानुसारेण प्राणिनो निगृह्णातीति यमः। मारयति प्राणांस्त्याजयतीति मृत्युः। अघमारः अघेन पापेन निमित्तेन मारयतीति अघमारः । ❀ "पुंसि संज्ञायाम्०" इति घः ❀।

निर्ऋथः निःशेषेण ऋच्छति पीडयतीति निर्ऋथः । ❀ ऋ गतौ इत्यस्मान्निरुपसृष्टाद्द औणादिकः स्थक् प्रत्ययः ❀ । बभ्रुः पिङ्गलवर्णः भरणशीलो वा । ❀ भृञ् भरणे इत्यस्मात् कुर्भ्रश्च [उ० १. २२] इति कुप्रत्ययः द्विर्भावश्च ❀ । शृणाति हिनस्तीति शर्वः । ❀ शॄ हिंसायाम् इत्यस्माद् वप्रत्ययः ❀ । अस्ता । ❀ असु क्षेपणे इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् ❀ । क्षेपणशीलः । नीलशिखण्डः नीलाः कृष्णवर्णाः शिखण्डाः शिखा यस्य स तथोक्तः । एतत्संज्ञका यमादयो देवजनाः देवजातयः पापिनां हिंसार्थं सेनया स्वस्वपरिवारजनसंघेन उत्तस्थिवांसः उत्थिताः स्वस्थानाद् उत्क्रान्ता वर्तन्ते । ❀ उत्पूर्वात् तिष्ठतेर्लिटः क्वसुः । "वस्वेकाजाद्घसाम्" इति इडागमः ❀ । जगदुपद्रवकारिणस्ते अस्माकं वीरान् पुत्रपौत्रादीन् परि वृञ्जन्तु परिहरन्तु । मा बाधन्ताम् इत्यर्थः । ❀ वृजी वर्जने । "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः ❀ ॥

पापके अनुसार प्राणियोंका यमन करनेवाले यम, मारनेवाली—प्राणोंको छुड़ाने वाली—मृत्यु, पापरूप निमित्तसे मारने वाला अघमार, भृणन—मारण—करने वाले पिंगलवर्णी शर्व, और क्षेप्ता नीलशिखण्ड—ये देवता पापियोंकी हिंसा करनेके लिये अपने २ परिवाररूप सेनाके साथ अपने स्थानसे उठकर घूमते रहते हैं, ये जगत्में उपद्रव करने वाले हमारे पुत्र पौत्र आदिको पीड़ा न दें १

द्वितीया ॥

मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु

मनसा । होमैः । हरसा । घृतेन । शर्वाय । अस्त्रे । उत । राज्ञे । भवाय ।

दरमें भी शान्तिके लिये सोमलताको अग्निमें डाल कर रोगीको धूप देवे।

तथा इसी कर्ममें इसी तृचसे मधु मिले हुए दहीका अभिमन्त्रण करके पिलावे॥

तथा क्षीर (दूध) को मठेसे मिला अभिमन्त्रित करके पिलावे।

तथा दही मधु दूध और उदश्वित् (आधा पानी मिला हुआ मट्ठा) को मिला कर पिलावे॥

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"या ओषधय इति मन्त्रोक्तस्यौषधिभिः धूपयति०" (कौशिकसूत्र ४।७)॥

तथा 'या ओषधयः' इस ऋचाका अंहोलिंगगणमें पाठ होनेसे 'अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानां अंहोलिंगाभिः (कौशिकसूत्र ४।८) इत्यादि गणके अनुसार विनियोग देखना चाहिये॥

तत्र प्रथमा॥

य॒मो मृ॒त्युर॑घमा॒रो निं॑र्ऋ॒थो ब॒भ्रुः श॒र्वो॑स्ता॒ नील॑शिखण्ड॒ः
दे॒व॒ज॒नाः सेन॑योत्तस्थि॒वांस॒स्ते अ॒स्माक॒ं परि॑ वृञ्जन्तु
वी॒रान् ॥ १ ॥

य॒मः । मृ॒त्युः । अ॒घ॒ऽमा॒रः । नि॒ःऽऋ॒थः । ब॒भ्रुः । श॒र्वः॑ । अ॒स्ता॑ ।
नील॑ऽशिखण्डः ।
दे॒व॒ऽज॒नाः । सेन॑या । उ॒त्त॒स्थि॒ऽवांस॑ः । ते । अ॒स्माक॑म् । परि॑ ।
वृ॒ञ्ज॒न्तु॒ । वी॒रान् ॥ १ ॥

यमयति नियमयति पापानुसारेण प्राणिनो निगृह्णातीति यमः। मारयति प्राणांस्त्याजयतीति मृत्युः। अघमारः अघेन पापेन निमित्तेन मारयतीति अघमारः। ❀ "पुंसि संज्ञायाम्०" इति घः ❀।

निर्ऋथः निःशेषेण ऋच्छति पीडयतीति निर्ऋथः । ❀ ऋ गतौ इत्यस्मान्निरुपसृष्टाद् औणादिकः स्थक् प्रत्ययः ❀ । बभ्रुः पिङ्गलवर्णः भरणशीलो वा । ❀ भृञ् भरणे इत्यस्मात् कुर्भ्रश्च [उ० १. २२] इति कुप्रत्ययः द्विर्भावश्च ❀ । शृणाति हिनस्तीति शर्वः । ❀ शॄ हिंसायाम् इत्यस्माद् वप्रत्ययः ❀ । अस्ता । ❀ असु क्षेपणे इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् ❀ । क्षेपणशीलः । नीलशिखण्डः नीलाः कृष्णवर्णाः शिखण्डाः शिखा यस्य स तथोक्तः । एतत्संज्ञका यमादयो देवजनाः देवजातयः पापिनां हिंसार्थं सेनया स्वस्वपरिवारजनसंघेन उत्तस्थिवांसः उत्थिताः स्वस्थानाद् उत्क्रान्ता वर्तन्ते । ❀ उत्पूर्वात् तिष्ठतेर्लिटः क्वसुः । "वस्वेकाजाद्घसाम्" इति इडागमः ❀ । जगदुपद्रवकारिणस्ते अस्माकं वीरान् पुत्रपौत्रादीन् परि वृञ्जन्तु परिहरन्तु । मा बाधन्ताम् इत्यर्थः । ❀ वृजी वर्जने । "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः ❀ ॥

पापके अनुसार प्राणियोंका यमन करनेवाले यम, मारनेवाली —प्राणोंको छुड़ाने वाली—मृत्यु, पापरूप निमित्तसे मारने वाला अघमार, शृणन—मारण—करने वाले पिंगलवर्णी शर्व, और क्षेप्ता नीलशिखण्ड—ये देवता पापियोंकी हिंसा करनेके लिये अपने २ परिवाररूप सेनाके साथ अपने स्थानसे उठकर घूमते रहते हैं, ये जगत्में उपद्रव करने वाले हमारे पुत्र पौत्र आदिको पीड़ा न दें १

द्वितीया ॥

मन॑सा॒ हो॑मै॒र्हर॑सा घृ॒तेन॑ श॒र्वाया॑स्त्र उ॒त राज्ञे॑ भ॒वाय॑
न॒म॒स्ये᳚भ्यो॒ नम॑ एभ्यः कृणोम्य॒न्यत्रा॒स्मद॒घवि॑षा नयन्तु

मन॑सा । होमै॑ः । हर॑सा । घृ॒तेन॑ । श॒र्वाय॑ । अस्त्रे॑ । उ॒त । राज्ञे॑ । भ॒वाय॑ ।

नमस्येभ्यः । नमः । एभ्यः । कृणोमि । अन्यत्र । अस्मत् । अघऽविषाः । नयन्तु ॥ २ ॥

मनसा मनःसंकल्पमात्रेण हरसा हरणशीलेन तेजसा । तद्धेतुत्वात् ताच्छब्द्यम् । तेजोरूपेण घृतेन क्षरणशीलेन आज्येन क्रियमाणैः होमैः सह शर्वाय एतत्संज्ञाय देवाय । अस्त्रे क्षेप्त्रे एतन्नाम्ने । उत अपि च राज्ञे एतेषाम् ईश्वराय भवाय महादेवाय । एभ्यः "यमो मृत्युरघमारः" इति प्राग् अनुक्रान्तेभ्यः नमस्येभ्यः नमस्कारार्हेभ्यो नमस्कृणोमि नमस्करोमि । होमैर्नमस्कारेण च प्रीतास्ते अस्मत् अस्मत्तः अन्यत्र अघविषाः । अघं पापमेव विषं विषवन्मृतिकरं यासु ताः कृत्यास्तथोक्ताः । ता नयन्तु प्रापयन्तु ॥

संकल्पसे तेजोरूपघृतसे किये जाने वाले होमोंके द्वारा मैं शर्व अस्त्र और इनके ईश्वर महादेवके लिये तथा पूर्व मन्त्रमें कहे हुए नमस्कार करने योग्य व्यक्तियोंके लिये नमस्कार करता हूँ । वे होम और नमस्कारोंसे प्रसन्न होकर पाप ही जिनमें विषकी समान मारने वाला है उन कृत्याओंको हमसे अन्यत्र पहुँचावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम

त्रायध्वम् । नः । अघऽविषाभ्यः । वधात् । विश्वे । देवाः । मरुतः । विश्वऽवेदसः ।
अग्नीषोमा । वरुणः । पूतऽदक्षाः । वातापर्जन्ययोः । सुऽमतौ । स्याम

हे विश्वे देवाः हे मरुतः विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वगोचरज्ञाना

वा यूयम् अघविषाभ्यः प्रागुक्ताभ्यः कृत्याभ्यः वधात् तत्कृतात् हननात् नः अस्मान् त्रायध्वम् पालयत । ❀ अघविषाभ्य इति । "भीत्रार्थानाम्०" इति पञ्चमी ❀ । विश्वे देवा इत्युक्तम् के पुनस्त इत्याह । अग्नीषोमा अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ । ❀ "ईदग्नेः सोमवरुणयोः" इति अग्निशब्दस्य दीर्घः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । वरुणः वारयिता पापिनां निग्रहीता देवः पूतदक्षाः पूतं शुद्धं दक्षो बलं यस्य स तथोक्तः । अनेन मित्रो विवक्षितः । "मित्रं हुवे पूतदक्षम्" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० १. २. ७] । तथा वय बातापर्जन्ययोः वातश्च पर्जन्यश्च वातापर्जन्यौ । वातो वायुः सूत्रात्मा सर्वजगत्प्राणभूतः । पर्जन्यः वृष्टिप्रदो जीवनात्मा । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् ❀ । तयोः सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ स्याम भवेम ॥

हे सबका ज्ञान रखनेवाले मरुत् देवताओं और विश्वेदेवताओं ! तुम पिछले मन्त्रमें कही हुई अघविषा कृत्याओंसे और उनके मारनेके साधनोंसे हमको बचाओ । पापियोंको दण्ड देने वाले वरुणदेव, पवित्र बलवाले मित्रदेव †, और अग्नि तथा सोमदेव हमारी अघविषाओंसे और उनके साधनोंसे रक्षा करें, हम वायु और पर्जन्यकी अनुग्रहरूपा शोभन बुद्धिमें रहें, अर्थात् वायु और पर्जन्य देवता हम पर अनुग्रह रक्खें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥ १ ॥

---

† पूतदक्ष शब्दसे यहाँ मित्रका ग्रहण किया गया है, क्योंकि–ऋग्वेदसंहिता १ । २ । ७ में कहा है, कि–'मित्रं हुवे पूतदक्षम्–पवित्र बल वाले मित्र देवताका मैं आह्वान करता हूँ' ।

सम् । वः । मनांसि । सम् । व्रता । सम् । आऽकूतीः । नमामसि ।

अमी इति । ये । विऽव्रताः । स्थन । तान् । वः । सम् । नमयामसि

"सं वो मनांसि" इति द्वे चतुर्थीपञ्चम्यौ पूर्ववद् [३. ८. ५,६] व्याख्येये ।।

हे विरुद्ध मन वाले पुरुषों ! तुम्हारे परस्पर विरुद्ध मनोंको मैं एक विषयसे प्रसन्न होने वाले विरुद्धतारहित करता हूँ । तुम्हारे वार्तालाप आदि कर्मोंको और तुम्हारे संकल्पोंको मैं विरोधभाव से शून्य अनुकूल करता हूँ । पहिले जो तुम परस्परके विरुद्ध कर्म करते रहते थे उन तुमको मैं अनुकूल करता हूँ ।। १ ।।

पञ्चमी ।।

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत

अहम् । गृभ्णामि । मनसा । मनांसि । मम । चित्तम् । अनु ।
चित्तेभिः । आ । इत ।

मम । वशेषु । हृदयानि । वः । कृणोमि । मम । यातम् । अनुऽ-
वर्त्मानः । आ । इत ।। २ ।।

हे विमनस्क पुरुषों ! तुम्हारे प्रतिकूल मनोंको मैं अपने मनसे स्वाधीन करता हूँ तथा तुम भी मेरे चित्तके अनुकूल हुए चित्तोंके साथ आओ, मेरे अधीन कामोंमें तुम अपने मनको लगाओ तथा मेरे स्वीकृत मार्ग पर चलनेकी इच्छा रख कर तुम आओ ।। २ ।।

षष्ठी ।।

ओतं मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ २ ॥

ओते इत्याऽउते । मे । द्यावापृथिवी इति । आऽउता । देवी । सरस्वती आऽउतौ । मे । इन्द्रः । च । अग्निः । च । ऋध्यास्म । इदम् । सरस्वति

द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । ❀ "दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । ते उभे मे मह्यम् ओते आभिमुख्येन संतते परस्परं संबद्धे वा । देवी द्योतमाना सरस्वती द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमाना वाग्देवता सापि ओता अस्मदाभिमुख्येन संबद्धा । ❀ आङ्पूर्वाद् वेञ् तन्तुसंताने इत्यस्मान्निष्ठा । "वचिस्वपि०" इत्यादिना संप्रसारणम् ❀ । तथा इन्द्रश्च अग्निश्च मे मह्यं मदभिलषितफलसिद्ध्यर्थम् ओतौ आभिमुख्येन संबद्धौ परस्परमोतौ वा एककार्योद्युक्तौ । अतः एतेषाम् अनुग्रहात् हे सरस्वति मन्त्रात्मिके देवि इदम् इदानीं वयम् ऋध्यास्म समृद्धा भूयास्म । ❀ ऋधु वृद्धौ ❀ ॥

द्यावापृथिवी ये दोनों मेरे लिये परस्पर अभिमुख होकर संबद्ध हैं । और द्यावापृथिवीके बीचमें वर्तमान वाग्देवता सरस्वती भी हमारे सन्मुख ओतप्रोत हैं, इन्द्र और अग्नि देवता भी मेरे अभिलषित फलकी सिद्धिके लिये लगे हुए हैं, अतः इनके अनुग्रहसे हे मन्त्रात्मिके सरस्वती देवि ! हम इस समय समृद्ध होवें ॥ २ ॥

सप्तमी ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ १ ॥

अश्वत्थः । देवऽसदनः । तृतीयस्याम् । इतः । दिवि ।
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । देवाः । कुष्ठम् । अवन्वत ॥ १ ॥

"अश्वत्थो देवसदनः" इति सप्तम्यष्टम्यौ पूर्ववद् [५.४.३,४] अत्रापि व्याख्येये ॥

यहाँसे तीसरे द्युलोकमें देवताओंके बैठनेका अश्वत्थ है तहाँ देवताओंने अमृतका वर्णन करने वाले कूटको जाना था ॥ १ ॥

अष्टमी ॥

हि॒र॒ण्ययी॒ नौर॑चर॒द्धिर॑ण्यबन्धना दि॒वि ।
त॒त्रा॑मृत॑स्य॒ पुष्पं॑ दे॒वाः कुष्ठ॑मन्वत ॥ २ ॥

हि॒र॒ण्ययी॑ । नौः । अ॒च॒र॒त् । हिर॑ण्यऽबन्धना । दि॒वि ।
तत्र॑ । अ॒मृत॑स्य । पुष्प॑म् । दे॒वाः । कुष्ठ॑म् । अ॒व॒न्व॒त ॥ २ ॥

स्वर्गमें सुवर्ण (हितरमणीयता) के बंधन वाली सुवर्णकी नौका चलती है तहाँ अमृतके पुष्प कूटको देवताओंने प्राप्त किया था २

नवमी ॥

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॑ हि॒मव॑तामु॒त ।
गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्ये॒मं मे॑ अग॒दं कृ॑धि ॥ ३ ॥

गर्भः॑ । अ॒सि॒ । ओष॑धीनाम् । गर्भः॑ । हि॒मऽव॑ताम् । उत ।
गर्भः॑ । विश्व॑स्य । भू॒तस्य॑ । इ॒मम् । मे॒ । अ॒ग॒दम् । कृ॒धि॒ । ३ ॥

हे अग्ने त्वम् ओषधीनाम् । ओषः पाकः आसु धीयत इति ओषधयः सर्वा वीरुधः । तासां गर्भःगर्भवद् अन्तरवस्थितः असि भवसि । उत अपि च हिमवताम् शीतस्पर्शवताम् अन्येषामपि वनस्पतीनां हिमवत्प्रमुखानां पर्वतानां वा हे अग्ने त्वं गर्भो भवसि । किं बहुना । विश्वस्य सर्वस्यापि भूतस्य भूतजातस्य त्वं गर्भो भवसि । अग्नेः सर्वजगत्परिपाकहेतुत्वेन सर्वत्र अन्तरवस्थानात् । ईदृशस्त्वम् इमं मे मदीयं जनम् अगदम् रोगरहितं कृधि कुरु ॥

१८३४

हे अग्ने ! आप जिनमें पाक है ऐसी सब ओषधियोंमें गर्भरूपसे भीतर स्थित हैं और हे अग्ने ! आप शीतल स्पर्श वाले हिमवान् आदि पर्वतोंमें वा शीत स्पर्श वाली औषधियोंमें भीतर गर्भरूपसे रहते हैं, अधिक क्या आप सब प्राणियोंमें गर्भरूपसे रहते हैं । ऐसे हे अग्निदेव ! आप मेरे मनुष्यको रोगरहित करिये ॥ ३ ॥

दशमी ॥

या ओष॑धय॒ः सोम॑राज्ञीर्ब॒ह्वीः श॒तवि॑चक्षणाः ।
बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मु॒ञ्चन्त्वंह॑सः ॥ १ ॥

याः । ओष॑धयः । सोम॑ऽराज्ञीः । ब॒ह्वीः । श॒तऽवि॑चक्षणाः ।
बृ॒हस्पति॑ऽप्रसूताः । ताः । न॒ः । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः ॥ १ ॥

या ओषधयः वीरुधः सोमराज्ञीः सोमः अमृतमयो देवो राजा ईश्वरो यासां तास्तथोक्ताः । ❀ बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । बह्वीः बह्व्यः अनेकविधाः । ❀ "बह्वादिभ्यश्च" इति ङीष् ❀ । शतविचक्षणाः शतविधदर्शनाः । रसवीर्यविपाकेन नानाविधज्ञानोपेता इत्यर्थः । बृहस्पतिप्रसूताः बृहस्पतिना देवेन तत्तद्रोगभैषज्येषु प्रसूताः प्रेरिताः विनियुक्ता इत्यर्थः । तास्तथाविधा ओषधयः नः अस्मान् अंहसः पापात् नानाविधरोगनिदानात् मुञ्चन्तु विसृजन्तु पृथक् कुर्वन्तु ॥

जिन औषधियोंका राजा सोम है, जो अनेक प्रकार की हैं, जो रसवीर्यविपाकसे अनेक प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न हैं और बृहस्पतिदेवके द्वारा अनेक रोगोंमें विनियुक्त हुई हैं, वे औषधियें हम को अनेक प्रकारके रोगोंके निदान पापसे मुक्त करें ॥ १ ॥

एकादशी ॥

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३दथो॑ वरु॒ण्या॒दुत ।

अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात्

मुञ्चन्तु । मा । शपथ्यात् । अथो इति । वरुण्यात् । उत ।
अथो इति । यमस्य । पड्वीशात् । विश्वस्मात् । देवऽकिल्बिषात् २

आपः ओषधयो वा मा मां शपथ्यात् शपथजनिताद् ब्राह्मणाक्रोशजात् पापाद् मुञ्चन्तु वियोजयन्तु । अथो अपि च । उतशब्दः अप्यर्थे । वरुण्यात् वरुणकृताद् अनृतवदनादिजनितात् पापादपि मुञ्चन्तु।"अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति" इति हि श्रुतिः [तै० ब्रा० १. ७. २. ६]। अथो अपि च यमस्य अन्तकस्य संबन्धिनः पड्बीशात् पादबन्धनपाशाद् मुञ्चन्तु । ❀ पड्बीशशब्दः पृषोदरादिः ❀ । किम् अनेन विशेषकथनेन । विश्वस्मात् सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् देवकृतात् पापाद् मां मुञ्चन्तु ॥

जल वा औषधियें मुझको शपथजनित ब्राह्मणके आक्रोशरूप पापसे अलग रक्खें और झूंठ बोलनेसे होने वाले वरुणके अधिकारके पापसे भी मुझको अलग करें, और यमराजके अधिकार के पादबन्धनसे भी मुझको मुक्त रक्खें और क्या सब ही देवसम्बन्धी पापोंसे मुझको मुक्त रक्खें ॥ २ ॥

द्वादशी ॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ ३ ॥

यत् । चक्षुषा । मनसा । यत् । च । वाचा । उपऽआरिम ।
जाग्रतः । यत् । स्वपन्तः ।
सोमः । तानि । स्वधया । नः । पुनातु ॥ ३ ॥

जाग्रतः जाग्रदवस्थापन्ना इन्द्रियैः शब्दस्पर्शादिविषयान् व्यवहरन्तो वयम् । ❀ जागृ निद्राक्षये । अस्मात् लटः शत्रादेशः । "जक्षित्यादयः०" इति अभ्यस्तत्वाद् "नाभ्यस्तात्०" इति नुमभावः ❀ । चक्षुषा । उपलक्षणम् एतत् । चक्षुरादीन्द्रियेण प्रतिषिद्धबाह्यविषयगतरूपादिग्राहिणा । मनसा प्रतिषिद्धविषयसंकल्पविकल्पजनकेन मानसेन्द्रियेण यद् उपारिम यत् पापम् उपगताः । ❀ ऋ गतौ इत्यस्मात् लिटि रूपम् ❀ । यच्च पापं वाचा । कर्मेन्द्रियाणाम् उपलक्षणम् एतत् । वागादिकर्मेन्द्रियेण कामचारवादादिना उपगताः स्मः । तथा स्वपन्तः स्वप्नावस्था वयं तत्र बाह्येन्द्रियाणाम् उपरमात् केवलं मनसैव यत् पापं चकृम नः अस्माकं तानि पापानि सोमः पितृलोकाधिपतिर्देवः स्वधया पितॄन् उद्दिश्य अस्माभिः क्रियमाणया । स्वधाकारोपलक्षितेन पित्र्यकर्मणेत्यर्थः । पुनातु शोधयतु । ❀पूञ् पवने । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀ ॥

[इति] दशमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जागते हुए हम इन्द्रियोंसे शब्द स्पर्श आदि विषयोंका व्यवहार करते हुए, प्रतिषिद्ध बाहरी विषयोंके रूप आदिको ग्रहण करनेवाली चक्षु आदि इन्द्रियोंसे और निषिद्ध विषयोंका संकल्प विकल्प कर मनसे जिस पापको कर चुके हैं। और वाणी आदि कर्मेन्द्रियके कामचार कामवाद आदिसे जिस पापमें फँस गए हैं । तथा सोतेमें बाह्येन्द्रियोंका उपरम होनेसे केवल मनसे ही जिन पापोंको कर गए हैं । हमारे इन सब पापोंको पितृलोकके अधिपति सोमदेवता पितरोंके निमित्त कीहुई हमारी स्वधासे अर्थात् पितृकर्मसे पवित्र करें ॥ ३ ॥

दशम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२६९) ॥

"अभिभूः" [६. ९७] "इन्द्रो जयाति" [६. ९८] "अभि त्वेन्द्र" [६. ९९] इति तृचैः संग्रामजयकर्मणि आज्यहोमं सक्तु-

होमम् धनुरिध्मेग्नौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मेग्नौ शरसमिदाधानम् संपातिताभिमन्त्रितधनुःप्रदानं वा कुर्यात्। ‘अभिभूः इन्द्रो जयाति अभि त्वेन्द्र इति सांग्रामिकाणि। आज्यसक्तून् जुहोति” इत्यादिसूत्रात् [कौ० २. ५]॥

तथा एषां तृचानाम् अपराजितगणे पाठाद् उपाकर्मादिषु “अभयैरपराजितैः” इति [कौ० १४. ३] “अपराजितगणोपराजितायाम्” [न० क० १८] इति च एवमादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः॥

तथा इन्द्रमहाख्ये कर्मणि एतैस्तृचैः पूर्णहोमं जुहुयात्॥

तथा तत्रैव कर्मणि एतैस्तृचैः पशव आलब्धव्याः॥

तथा तत्रैव एतैरिन्द्रोपस्थानं कुर्यात्॥

सूत्रितं हि। “अभिभूर्यज्ञ इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे राजनि पूर्णहोमं जुहुयात्” इत्यादि [कौ० १४. ४]॥

अत्र “इन्द्रो जयाति” इति तृचेन परसेनाविद्वेषणकर्मणि राजा सेनां त्रिः परिगच्छेत्। “परि वर्त्मानि [६. ६७] इन्द्रो जयाति [६. ९८] इति राजा त्रिः सेनां परियाति” इति सूत्रात् [कौ० २. ७]॥

तथा महाव्रते संनद्धं राजानम् अन्यं वा ब्रह्मा अनेन अनुमन्त्रयेत। “राजानम् अन्यं वा मर्माणि ते [७. १२३] इति संनद्धम् इन्द्रो जयाति [६. ९८] इत्यनुमन्त्रयते” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ६. ४]॥

“अभिभूः” (इस छठे काण्डके ९७ वें) “इन्द्रो जयाति” (इस छठे काण्डके ९८ वें) और “अभि त्वेंद्र” (इस छठे काण्डके ९९ वें) तृचोंसे संग्रामजयकर्ममें घृत, होम, सक्तुहोम, धनुषरूपी ईंधन वाली अग्निमें धनुषरूपी समिधाओंका आधान, वा संपातित अभिमन्त्रित धनुषका प्रदान करे। कौशिकसूत्र

२ । ५ में कहा है, कि–"अभिभूः इन्द्रो जयाति अभि त्वेन्द्र इति सांग्रामिकाणि । आज्यसक्तून् जुहोति०" ।

तथा इन तृचोंका अपराजितगणमें पाठ होनेसे "अभयैपराजितैः-अभय और अपराजितगणके सूक्तोंसे आहुति देय" (कौशिक सूत्र १४ । ३) तथा "अपराजितगणोऽपराजितायाम् ।–अपराजित महाशांतिमें अपराजितगणका प्रयोग होता है" (नक्षत्रकल्प १८) इत्यादि अवसरों पर गणके कारण विनियोग करना चाहिये

तथा इन्द्रमहाख्य नाम वाले कर्ममें इन तृचोंसे पूर्णहोम करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इन तृचोंसे पशुओंका आलभन करे ।

तथा तहाँ ही इन तृचोंसे इन्द्रका उपस्थान करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अभिभूर्यज्ञ इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे राजनि पूर्णहोमं जुहुयात्०" (कौशिकसूत्र १४ । ४)॥

इनमें 'इन्द्रो जयाति' इस तृचसे परसेनाविद्वेषणकर्म में राजा सेनाकी ओर तीन वार जावे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है कि–"परिवर्त्मानि (६ । ६७) इन्द्रो जयति (६ । ६८) इति राजा त्रिः सेनां परियाति" (कौशिकसूत्र २ । ७)

तथा महाव्रतके लिये उद्यत राजाको वा दूसरेको ब्रह्मा इससे अनुमन्त्रित करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ६ । ४ का प्रमाण भी है, कि–"राजानं वा अन्यं वा मर्माणि ते (७ । १२३) इति सन्नद्धं इन्द्रो जयाति (६ । ६८) इत्यनुमन्त्रयते" ॥

तत्र प्रथमा ॥

अ॒भि॒भूर्य॒ज्ञो अ॑भि॒भूर॒ग्निर॑भि॒भूः सोमो॑ अभि॒भूरिन्द्रः॑ ।
अ॒भ्य॑१॒हं विश्वाः॒ पृत॑ना॒ यथासा॑न्ये॒वा विधेमा॒ग्निहो॑त्रा
इ॒दं ह॒विः ॥ १ ॥

अभिऽभूः । यज्ञः । अभिऽभूः । अग्निः । अभिऽभूः । सोमः । अभिऽभूः । इन्द्रः ।

अभि । अहम् । विश्वाः । पृतनाः । यथा । असानि । एव । विधेम । अग्निऽहोत्राः । इदम् । हविः ॥ १ ॥

यज्ञः अस्माभिर्जयकामैः क्रियमाणो यागः अभिभूः शत्रूणाम् अभिभविता भवतु । तथा यागनिष्पादकोयं सांग्रामिकोग्निः अभिभूः अभिभविता अस्तु । यागसाधनभूतः सोमः अभिभूः शत्रूणाम् अभिभविता । तेन सोमेन तर्पित इन्द्रः अभिभूः अभिभविता ॥ अहं शत्रुजयकामः विश्वाः सर्वाः पृतनाः सेनाः शात्रवीः यथा अभ्यसानि अभिभवानि एव एवम् अग्निहोत्राः अग्नौ जुह्वतो वयम् इदं संग्रामजयार्थं हविः विधेम विदध्याम । ❀ विध विधाने । तौदादिकः ❀ ॥

हम विजय चाहने वालोंका किया हुआ याग शत्रुओंको दबाने वाला हो, तथा यागको निष्पन्न करने वाली यह सांग्रामिक अग्नि भी शत्रुओंका तिरस्कार कराने वाली हो, यागका साधनभूत सोम भी शत्रुओंका तिरस्कार करानेवाला हो, शत्रुओंको जीतना चाहने वाला मैं शत्रुकी सम्पूर्ण सेनाओंको जिस प्रकार दबाने वाला बनूँ तिस लिये हम संग्राममें विजय दिलाने वाली हविको अग्निमें होमते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।

बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्

स्वधा। अस्तु। मित्रावरुणा। विपःऽचिता। प्रजाऽवत्। क्षत्रम्। मधुना।
इह। पिन्वतम्।

बाधेथाम्। दूरम्। निःऽऋतिम्। पराचैः। कृतम्। चित्। एनः।
प्र। मुमुक्तम्। अस्मत् ॥ २ ॥

हे विपश्चिता विपश्चितौ मेधाविनौ हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ युवाभ्यां स्वधा। अन्ननामैतत्। हविर्लक्षणम् अन्नम् अस्तु तृप्तिकरं भवतु। तौ युवाम् इह अस्मिन् राजनि प्रजावत् प्रजाभिर्युक्तं क्षत्रम् बलं मधुना मधुररसेन पिन्वतम् सिञ्चतम्। ❀ पिवि सेचने। इदित्वान्नुम् ❀। निर्ऋतिम् पापदेवतां पराजयकारिणीं पराचैः पराङ्मुखं दूरं बाधेथाम्। अस्मत्तो दूरदेशे यथा सा पराङ्मुखी विनश्यति तथा हिंस्तम् इत्यर्थः। कृतं चित् शत्रुभिः कृतमपि एनः पापं पराजयनिमित्तम् अस्मत् सकाशात् प्र मुमुक्तम् प्रमोचयतम्। ❀ मुच्लृ मोक्षणे। छान्दसः शपः श्लुः ❀ ॥

हे मित्र और वरुण नाम वाले विद्वान् देवताओं! यह हविरूप स्वधा—अन्न आपको तृप्त करने वाला होवे, तुम दोनों इस राजा में प्रजाओंसे सम्पन्न बलको मधुरभावसे सींचो, और पापकारिणी निर्ऋतिदेवताको हमसे पराङ्मुख करके नष्ट करो और शत्रुओं के किये हुए भी पराजयरूप पापसे हमको मुक्त करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ३ ॥

१८४१

इ॒मम् । वी॒रम् । अनु॑ । ह॒र्ष॒ध्व॒म् । उ॒ग्रम् । इन्द्र॑म् । स॒खा॒यः॒ । अनु॑ ।
सम् । र॒भ॒ध्व॒म् ।
ग्रा॒म॒ऽजित॑म् । गो॒ऽजित॑म् । वज्र॑ऽवाहुम् । जय॑न्तम् । अज्म॑ ।
प्र॒ऽमृ॒णन्त॑म् । ओज॑सा ॥ ३ ॥

इमम् अस्मदीयं वीरम् वीर्यवन्तं राजानम् अनु हे सैनिकाः हर्षध्वम् वीररसेन हृष्टा भवत । कीदृशम् । उग्रम् उद्गूर्णबलम् इन्द्रम् परमैश्वर्ययुक्तम् हे सखायः समानख्यानाः सैनिकाः अनु सं रभध्वम् राजानम् अनुसृत्य युद्धोद्युक्ता भवत । यद्वा इन्द्रः संग्रामाधिदेवता स एवात्र स्तूयते । अस्मिन् पक्षे हे सखायः समानख्याना मरुत इत्येतावानेव विशेषः । कीदृशम् इन्द्रम् । ग्रामजितम् ग्रामान् जयन्तं गोजितम् गाः शात्रवीर्जयन्तम् अपहरन्तं वज्रवाहुम् वज्रहस्तम् उद्यतायुधम् अत एव जयन्तम् शत्रून् पराजितान् कुर्वन्तम् । अज्म अजनशीलं क्षेपणशीलं शत्रुबलम् ओजसा बलेन प्रमृणन्तम् प्रकर्षेण हिंसन्तम् । ❀ मृङ् हिंसायाम् । "श्नाभ्यस्तयोरातः" इति आल्लोपः ❀ ॥

हे सैनिकों ! इस वीर्यवाले राजाके पीछे तुम वीररसमें भर प्रसन्न होओ. हे मित्रो ! इस प्रचण्ड बली परमैश्वर्यसम्पन्न ग्रामोंको जीतते हुए, शत्रुओंकी गौओंको जीतते हुए, वज्रकी समान भुजा उठा कर शत्रुओंको जीतते हुए, बाण फेंकनेके स्वभाव वाले और बलसे शत्रुओंके दबाने वाले राजाके अनुकूल रह कर तुम युद्धके लिये उद्यत होजाओ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रो॑ जया॑ति॒ न परा॑ जयाता अधिरा॒जो राज॑सु
राजयातै ।

चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥

इन्द्रः । जयाति । न । परा । जयातै । अधिऽराजः । राजऽसु । राजयातै ।

चर्कृत्यः । ईड्यः । वन्द्यः । च । उपऽसद्यः । नमस्यः । भव । इह

अस्मिन् संग्रामे अस्य राज्ञः साहाय्यार्थम् आगत इन्द्रः तदात्मको वा अयं राजा जयाति जयतु न परा जयातै पराजयं मा प्राप्नोतु । अधिको राजा अधिराजः सर्वेषां राज्ञाम् अधिपतिरिन्द्रः राजसु अन्येषु भूपालेषु राजयातै अस्मान् राजयतु प्रकाशयतु वीर्यवत्तया प्रख्यापयतु । ❀ राजयतेर्लेटि आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ❀ । स च इन्द्रः चर्कृत्य अतिशयेन शत्रूणां कर्तिता छेत्ता । ❀ कृती छेदने इत्यस्माद् यङन्तात् पचाद्यच् ❀ । ईड्यः स्तुत्यः वन्द्यः वन्दनीयः । ❀ उभयत्र "ऋहलोर्ण्यत्" । इति ण्यत् "ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । उपसद्यः उपसदनीयः सर्वैः सेवनीयः । हे इन्द्र यस्मात् त्वम् एवंगुणविशिष्टः तस्माद् इह अस्मिन् संग्रामे नमस्यः अस्माभिः पूजनीयो भव । ❀ "नमसः पूजायाम्" इति स्मरणाद् नमःशब्दात् पूजार्थे "नमोवरिवः०" इति क्यच् । तदन्तात् पचाद्यच् ❀ ॥

इस संग्राममें इस राजाकी सहायताके लिये आये हुए इन्द्रदेव वा इन्द्रस्वरूप यह राजा विजय पावें, पराजित न होवे । सब राजाओंके अधि पति इन्द्र सब राजाओंमें वीर्यवान्के रूपसे इसको अधिक प्रकाशित करें । हे इन्द्र ! आप शत्रुओंको घोरछेदन करनेवाले हैं, स्तुति और बन्दनाके पात्र हैं और सबको इनका सेवन करना चाहिये, हे इन्द्र ! क्योंकि–आपमें ऐसे गुण हैं, इस कारण आप इस संग्राममें हमसे पूजनीय हूजिये ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु

त्वम् । इन्द्र । अधिऽराजः । श्रवस्युः । त्वम् । भूः । अभिऽभूतिः ।
जनानाम् ।
त्वम् । दैवीः । विशः । इमाः । वि । राज । आयुष्मत् । क्षत्रम् ।
अजरम् । ते । अस्तु ॥ २ ॥

इन्द्राभेदेन राज्ञः स्तुतिः । हे इन्द्र त्वम् अधिराजः राज्ञाम् अन्येषाम् अधिकः सन् श्रवस्युः । श्रव इत्यन्नस्य यशसो वा नामधेयम् । तद्युक्तो भवसि । ❀ “क्याच्छन्दसि” इति उप्रत्ययः । अधिराज इति । “राजाहःसखिभ्यः०” इति टच् समासान्तः ❀। हे इन्द्र त्वं जनानाम् सर्वेषां प्राणिनाम् अभिभूतिः अभिभविता स्वमहिम्ना तिरस्कर्ता भूः भवसि । ❀ भवतेश्छान्दसे लुङि “बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि” इति अडभावः ❀ । दैवी देवसंबन्धिनीः इमा विशः प्रजाः त्वं वि राज ईशिष्व । ❀ राजतिः ऐश्वर्यकर्मा ❀ । आयुष्मत् चिरकालजीवनोपेतम् अजरम् जरारहितम् अपचयरहितं क्षत्रम् बलम् अस्तु भवतु । ❀ अजरम् इति । “नञो जरमरभित्रमृताः” इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

हे इन्द्रके अभेदत्वसे सम्पन्न राजन् ! आप और राजाओंसे अधिक होकर अन्नसम्पन्न बनिये । हे इन्द्र ! आप अपनी महिमा से सब प्राणियोंका तिरस्कार कर डालते हैं । इन देवसम्बन्धी प्रजाओंके आप स्वामी बनिये, हे राजन् ! आपका बल चिरकाल तककी आयु—स्थिरता—और अपक्षयरहित होवे ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन्छत्रुहोऽसि ।

यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः

प्राच्याः । दिशः । त्वम् । इन्द्र । असि । राजा । उत । उदीच्याः । दिशः । वृत्रऽहन् । शत्रुऽहः । असि ।

यत्र । यन्ति । स्रोत्याः । तत् । जितम् । ते । दक्षिणतः । वृषभः । एषि । हव्यः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वं प्राच्या दिशः राजासि अधिपतिर्भवसि । उत उदीच्याः उत्तरस्या अपि दिशः अधिपतिरसि । प्राचीग्रहणं प्रतीच्या अप्युपलक्षणम् । उदीचीग्रहणं दक्षिणस्य अपि उपलक्षणम् । अत एव देशस्य द्वैविध्यम् उक्तम् ।

देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्यः पश्चिमोत्तरः

इति । तस्मात् सर्वासां दिशाम् अधिपतिरसीत्यर्थः । हे वृत्रहन् वृत्राणां शत्रूणां हन्तरिन्द्र त्वं शत्रुहोसि अस्मदीयानां शत्रूणां हन्ता भवसि । ❀ "आशिषि हनः" इति हन्तेर्डप्रत्ययः ❀ । यत्र यस्मिन् भूप्रदेशे स्रोत्याः स्रोतोर्हा जलप्रवाहा यन्ति प्रवहन्ति तत् सर्वं स्थानं ते तव जितम् स्वकीयमेव भवति । कृत्स्नं भूमण्डलं त्वदायत्तमेवेत्यर्थः । ईदृशो वृषभः कामानां वर्षिता हव्यः अस्माभिराह्वातव्यः सन् संग्रामजयार्थं दक्षिणतः अस्मद्दक्षिणभागे युद्धसमये एषि गच्छ साहाय्यार्थं वर्तस्व । ❀ हव्य इति । "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणे "अचो यत्" इति यत् । "यतोनावः" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥ [इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप पूर्वदिशाके राजा हैं और उत्तर दिशाके भी अधिपति हैं (पश्चिम और दक्षिणदिशा के भी अधिपति हैं) अतः सकल दिशाओंके अधिपति हैं। हे शत्रुओंका संहार करने वाले इन्द्र ! आप हमारे शत्रुओंको मार डाला करते हैं। जहाँ पर सोतोंसे चलनेवाला प्रवाह होता है वे सब स्थान आपके ही हैं अर्थात् सारा भूमण्डल आपके अधीन है। कामनाओंकी वर्षा करनेवाले ऐसे आप हमारे बुलाने पर संग्रामजयके लिये सहायता देनेके निमित्त हमारी सहायता करिये ॥ ३ ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त (२७१) ॥

"अभि त्वेन्द्र" इति तृचस्य संग्रामजयादिकर्मसु पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रमपि तत्रैवोदाहृतम् ॥

तथा अग्निष्टोमे प्रातःसवने अनेन ब्रह्मा स्तोत्रम् अनुमन्त्रयेत। "अभि त्वेन्द्रेति स्तोत्रानुमन्त्रणम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. ८] ॥

"देवा अदुः" इति तृचेन स्थावरजङ्गमविषभैषज्यार्थं वल्मीकमृदः संपातिताभिमन्त्रिताया बन्धनम् उदकेन सह पायनम् आचमनम् प्रलेपनं वा कुर्यात्। सूत्रितं हि। "देवा अदुरिति वल्मीकेन बन्धनपायनाचमनप्रदेहनम् उदकेन" इति [कौ० ४. ७] ॥

तथा आहिताग्नेरन्त्यसंस्कारे पुरोडाशं हृदये निधाय अनेन अनुमन्त्रयेत। सूत्रितं हि। "देवा अदुरित्युरसि पुरोडाशम्" इति [कौ० ११. २] ॥

'अभित्वेन्द्र' इस तृचका संग्रामजय आदि कर्मोंमें विनियोग पहिले सूक्तमें ही कह दिया और सूत्र भी तहाँ ही कह दिया है।

तथा अग्निष्टोमके प्रातःसवनमें इससे ब्रह्मा स्तोत्रका अनुमन्त्रण करे। इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि— "अभि त्वेन्द्रेति स्तोत्रानुमन्त्रणम्" (वैतानसूत्र ३। ८)

१८४६

'देवा अदुः' इस तृचसे स्थावर (वृक्ष कन्द आदि) के और जङ्गम (चलनेवाले सर्प बिच्छू आदि) के विषकी चिकित्साके लिए सम्पातित अभिमन्त्रित बमईकी मट्टीको बाँधे, जलके साथ पिलावे, आचमन करावे वा लेप कर देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"देवा अदुरिति वल्मीकेन बन्धनपायनाचमनप्रदेहनम् उदकेन" (कौशिकसूत्र ४ । ७) ॥

तथा आहिताग्निके अन्तिमसंस्कारमें पुरोडाशको हृदय पर रख कर इससे अनुमन्त्रण करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"देवा अदुरित्युरसि पुरोडाशम्" (कौशिकसूत्र ११।२)

तत्र प्रथमा ॥

अ॒भि त्वे॑न्द्र॒ वरि॑मतः पु॒रा त्वां॑हूर॒णाद्धु॑वे ।
ह्व॒याम्यु॒ग्रं चे॒त्तारं॑ पु॒रुणा॑मानमेक॒जम् ॥ १ ॥

अ॒भि । त्वा॒ । इ॒न्द्र॒ । वरि॑मतः । पु॒रा । त्वा॒ । अं॒हू॒र॒णात् । हु॒वे॒ ।
ह्वया॑मि । उ॒ग्रम् । चे॒त्तार॑म् । पु॒रु॒ऽनामा॑नम् । ए॒क॒ऽजम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां वरिमतः उरुत्वाद्धेतोः । ❀ उरुशब्दाद्ध इमनिचि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर् आदेशः ❀। विस्तीर्णशरीरत्वेन युगपत्संनिधानसमर्थत्वात् संग्रामेषु अंहूरणात् कुटिलगमनात् पराजयनिमित्तात् पुरा पूर्वमेव अभि हुवे आभिमुख्येन ह्वयामि । आह्वाने कारणम् आह । उग्रम् उद्गूर्णबलं चेत्तारम् वेदितारं जयोपायज्ञं पुरुनामानम् पुरुभिर्बहुभिः प्रशस्तैर्नामधेयैर्युक्तम् यद्वा बहूनां शत्रूणां नमयितारम् एकजम् । एक एव जायते युद्धेषु प्रादुर्भवतीति एकजः । तम् असहायशूरम्-इन्द्रं ह्वयामि ॥

हे इन्द्र ! विस्तीर्ण शरीर वाला होनेसे एक वार ही संनिधान करनेमें समर्थ होनेसे, मैं आपका संग्राममें पराजयनिमित्तक कुटिल

गमनसे पहिले ही अभिमुख करके आह्वान करता हूँ (आह्वान करनेका कारण यह है, कि–) आप प्रचण्ड बली हैं विजयके उपायोंको जानने वाले हैं और आपके बहुतसे नाम हैं और आप असहाय (किसीकी सहायताकी अपेक्षा न रखने वाले) शूर हैं १

द्वितीया ॥

यो अ॒द्य सेन्यो॑ व॒धो जिघां॑सन् न उ॒दीर॑ते ।
इन्द्र॑स्य॒ तत्र॑ बा॒हू स॑म॒न्तं परि॑ दद्मः ॥ २ ॥

यः । अ॒द्य । सेन्य॑ः । व॒धः । जिघां॑सन् । न॒ः । उ॒त्ऽईर॑ते ।
इन्द्र॑स्य । तत्र॑ । बा॒हू इति॑ । स॒म॒न्तम् । परि॑ । द॒द्म॒ः ॥ २ ॥

अद्य इदानीं सेन्यः शत्रुसेनासंबन्धी यो वधः हननसाधनम् आयुधं नः अस्मान् जिघांसन् हन्तुम् इच्छन् उदीरते उद्गच्छति । ❀ ईर गतौ कम्पने च । छान्दसः शपो लुगभावः । जिघांसन्निति । "अज्झनगमां सनि" इति दीर्घः । "अभ्यासाच्च" इति कुत्वम् ❀ । तत्र तस्मिन् वधे इन्द्रस्य बाहू हस्तौ अस्मद्रक्षार्थं समन्तम् सर्वतः परि दध्मः प्राकारवत् परितो धारयामः ॥

इस समय जो शत्रुसेनाका आयुध हमको मारनेके लिये उठ रहा है, ऐसे अवसर पर हम इन्द्रकी भुजाओंको अपनी रक्षा करनेके लिये चारों ओरसे परकोटेके रूपमें धारण करते हैं ॥२॥

तृतीया ॥

परि॑ द॒द्म इन्द्र॑स्य बा॒हू स॑म॒न्तं त्रा॒तुस्त्राय॑तां नः ।
देव॑ सवि॒तः सोम॑ राजन्त्सु॒मन॑सं मा कृणु स्व॒स्तये॑ ३

परि॑ । द॒द्म॒ः । इन्द्र॑स्य । बा॒हू इति॑ । स॒म॒न्तम् । त्रा॒तुः । त्राय॑ताम् । न॒ः ।

दे॑व । स॒वि॒तः॒ । सो॑म । रा॒ज॒न् । सु॒ऽमन॑सम् । मा॒ । कृ॒णु॒ । स्व॒स्तये॑ ३

त्रातुः पालयितुरिन्द्रस्य बाहू हस्तौ समन्तम् सर्वतः परि दध्मः। अतः स इन्द्रः नः अस्मान् त्रायताम् रक्षतु ॥ हे सवितः सर्वस्य प्रेरक देव हे राजन् सोम स्वस्तये क्षेमाय अविनाशाय मा मां संग्रामे सुमनसम् जयेन शोभनमस्कं कृणु कुरु । ❀ "सोर्मनसी अलोपोषसी" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

पालन करनेवालीं इन्द्रकी भुजाओंको हम चारों ओरसे धारण करते हैं अत एव इन्द्र हमांरी रक्षा करें । हे सबके प्रेरक सविता देव ! और हे राजा सोम ! आप हमारा कल्याण करते हुए संग्राममें विजय पानेसे हमको शोभन मन वाला करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दे॒वा अ॑दुः॒ सूर्यो॑ अ॒दाद् द्यौर॑दात् पृथि॒व्य॒दात् ।
ति॒स्रः सर॑स्वतीरदुः॒ सचि॑त्ता वि॒ष॒दूष॑णम् ॥ १ ॥

दे॒वाः । अ॒दुः॒ । सूर्यः॑ । अ॒दा॒त् । द्यौः । अ॒दा॒त् । पृ॒थि॒वी । अ॒दा॒त् ।
ति॒स्रः । सर॑स्वतीः । अ॒दुः॒ । स॑ऽचित्ताः । वि॒ष॒ऽदूष॑णम् ॥ १ ॥

देवा इन्द्रादयः सर्वे सचित्ताः समानमनस्काः सन्तः विषदूषणम् विषस्य स्थावरजङ्गमोद्भवस्य दूषकं निवर्तकम् औषधम् अदुः दत्तवन्तः । ❀ आशंसायां भूतवत्प्रत्ययः । डुदाञ् दाने । लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् । "आतः" इति झेर्जुस् आदेशः ❀। सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्योपि विदूषणम् अदात् ददातु । द्यौः द्युलोकः अदात् ददातु । पृथिवी भूमिदेवता अदात् ददातु। तिस्रः त्रिसंख्याकाः सरस्वतीः सरस्वत्यस्त्रयीरूपाः । यद्वा इडा सरस्वती भारतीति तिस्रो देव्यः साहचर्यात् सरस्वत्य उच्यन्ते । ताश्च विषनिवारकम् इदम् औषधम् अदुः ददतु प्रयच्छन्तु ॥

३५

इन्द्र आदि सब देवता एकसे मनसे हमको स्थावर और जंगम विषको दूर करने वाली औषधि दें, सबके प्रेरक आदित्यदेव भी हमें विषको दूर करने वाला पदार्थ दें, द्युलोक और पृथिवीलोक भी विषको दूर करने वाली औषधि हमको दें, इड़ा सरस्वती और भारती यह तीन देवियें भी हमको विषनिवारक औषधि दें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यद्॒ वो॑ दे॒वा॑ उ॑पजीका॒ आसि॑ञ्च॒न् धन्व॑न्युद॒कम् ।
तेन दे॒वप्र॑सूतेने॒दं दू॑षयता वि॒षम् ॥ २ ॥

यत् । व॒ः । दे॒वाः । उ॒प॒ऽजी॒का॒ः । आ॒ऽअसि॑ञ्चन् । धन्व॑नि । उ॒द॒कम् ।
ते॑न । दे॒वऽप्र॑सूतेन । इ॒दम् । दू॒ष॒य॒त॒ । वि॒षम् ॥ २ ॥

हे देवाः वः युष्माकं संबन्धिन्यः उपजीकाः वल्मीकस्य निर्मात्र्यः एतत्संज्ञाः प्राणिविशेषा धन्वनि निरुदके स्थाने युष्मदीयाद् वरप्रदानाद् यद् उदकम् आसञ्चन् अक्षारयन् । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ता उपदीका अब्रुवन् वरं वृणामहै । अथ व इमं रन्धयाम । यत्र क्व च खनाम तदपोभितृणदामेति । तस्माद् उपदीका यत्र क्व च खनन्ति तदपोभितृन्दन्ति" इति [तै० आ० ५. १. ४] । तेनोदकेन देवप्रसूतेन देवैर्दत्तेन इदं विषं दूषयत निवर्तयत ॥

हे देवताओं ! तुम्हारी इन वमईकी मृत्तिकाको बनाने वाली उपजीकाओंने जलरहित स्थानमें आपके प्रसादसे जलको क्षरित किया है † उस देवताओंके दिये हुए जलसे इस विषको दूर करो २

---

† तैत्तिरीय आरण्यक ५ । १ । ४ में कहा है, कि-'ता उपदीका अब्रुवन् वरं वृणामहै अथ व इदं रन्धयामः । यत्र क्व च खनाम तदपोऽभितृणदामेति । तस्माद् उपदीका यत्र क्व च खनंति

षष्ठी ॥

असु॑राणां दुहि॒तासि॒ सा दे॒वाना॑मसि॒ स्वसा॑ ।
दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः संभू॑ता॒ सा च॑कर्था॒रसं॑ वि॒षम् ॥ ३ ॥

असु॑राणाम् । दु॒हि॒ता । अ॒सि॒ । सा । दे॒वाना॑म् । अ॒सि॒ । स्वसा॑ ।
दि॒वः । पृ॒थि॒व्याः । सम्ऽभू॑ता । सा । च॒क॒र्थ॒ । अ॒र॒सम् । वि॒षम् ।

हे वल्मीकमृत्तिके असुराणाम् सुरविरोधिनां दानवानां दुहितासि कुमारी भवसि । देवानाम् इन्द्रादीनामपि सा त्वं स्वसासि भगिनी भवसि । दिवः अन्तरिक्षाद् अवकाशात्मकात् पृथिव्याश्च संभूता उत्पन्ना सा वल्मीकमृत्तिका विषम् स्थावरजङ्गमोद्भवम् अरसम् रसरहितं निर्वीर्यं चकर्ष आकर्षतु । ❀ कृष आकर्षणे । छान्दसो लिट् ❀ ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे वल्मीकमृत्तिके (बमईकी मिट्टी !) तू देवताओंसे द्वेष रखने वाले दानवोंकी पुत्री है और देवताओंकी भी बहिन है है । अवकाशात्मक अन्तरिक्षसे और पृथिवीसे उत्पन्न हुई वल्मीकमृत्तिका स्थावर और जंगम विषको निर्वीर्य करे ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (२७२) ॥

तदपोऽभि तृन्दन्ति ॥–उपदीका (उपजीका) ओंने कहा, कि–हम वर माँगे । उन्होंने यह विचारा, कि–हम इस कामको सिद्ध करें, कि–जहाँ कहीं हम खोदें, तहाँ जलको प्रकट करें । इस कारण उपदीकाएँ जहाँ खोदती हैं, तहाँ जलको प्रकट करती हैं ॥

"आ वृषायस्व" इति तृचेन वाजीकरणकामः एकशाखार्कमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नीयात् ॥

तथा कृष्णमृगचर्ममणिं संपात्य अभिमन्त्र्य कृष्णमृगवालेन बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि। "आ वृषायस्वेत्युभयम् अप्येति" इति [कौ० ५.४]

"यथायं वाहः" इति तृचेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि वृक्षत्वक्शरखण्डतगराञ्जनकुष्ठवातसंभ्रमतृणादिद्रव्याणि पेषयित्वा आज्येन आलोड्य स्त्रिया अङ्गम् अनुलिम्पेत् । सूत्रितं हि । "वाञ्छ मे [६. ९] यथायं वाहः [६. १०२] इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषुतगराञ्जनकुष्ठमधुघरेष्ममथिततृणम् आज्येन संनीय संस्पृशति" इति [कौ० ४. ११] ॥

वाजीकरणको चाहने वाला 'आवृषायस्व' इस तृचसे एक शाखार्ककी मणिको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके अर्कसूत्र से बाँधे ।

तथा कृष्णमृगकी चर्ममणिको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके कृष्णमृगके बालसे बाँधे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"आ वृषायस्वेत्युभयं अप्येति" (कौशिकसूत्र ५ । ४) ॥

'यथायं वाहः' इस तृचसे स्त्रीवशीकरणकर्ममें वृक्षकी छाल सेंटेके टुकड़े तगर अञ्जन कूट वातसंभ्रमतृण आदि द्रव्योंको पीस कर घृतमें मिला कर स्त्रीके अंग पर चुपड़ दिये । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"वाञ्छ मे (६ । ९) यथायं वाहः (६ । १०२) इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषुतगराञ्जनकुष्ठमधुघरेष्ममथिततृणं आज्येन संनीय संस्पृशति" (कौशिक सूत्र ४ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥

आ । वृषऽयस्व । श्वसिहि । वर्धस्व । प्रथयस्व । च ।
यथाऽअङ्गम् । वर्धताम् । शेपः । तेन । योषितम् । इत् । जहि १

हे पुरुष त्वम् आ वृषायस्व आ समन्ताद् वृषा सेचनसमर्थः पुङ्गवः स इव आचर । अनेन बद्धेन अर्कमणिना बहुरेतस्को भवेत्यर्थः । ❀ वृषशब्दात् “कर्तुः क्यङ् सलोपश्च” इति क्यङ् ❀ । श्वसिहि प्राणिहि । दृढप्राणो बलवान् भवेत्यर्थः । ❀ श्वस प्राणने । अदादित्वात् शपो लुक् । “रुदादिभ्यः सार्वधातुके” इति इडागमः ❀ । वर्धस्व उपचीयमानावयवो भव प्रथयस्व च विस्तीर्णशरीरो भव । ❀ प्रथ विस्तारे । चुरादिरदन्तः ❀ । यथा येन प्रकारेण त्वदीयम् अङ्गं शेपः पुंस्प्रजननं वर्धताम् । उपचितावयवं सत् मिथुनीभवनक्षमं भवति तथा वर्धस्व प्रथयस्व चेति संबन्धः । तेन प्रवृद्धेन शेपसा योषितम् सुरतार्थिनीं स्त्रियं जहि गच्छ । इच्छब्दः अवधारणे । स च उक्तफलस्य अव्यभिचारं सूचयति ॥

हे पुरुष ! तू सेचनसमर्थ वृषभकी समान आचरण कर, अर्थात् इस बँधी हुई मणिके प्रभावसे बहुतसे वीर्यवाला हो, दृढ़प्राण बलवान् हो, बढ़े हुए अंग वाला हो और विस्तीर्ण शरीर वाला भी हो । जिस प्रकारसे तेरा पुंस्प्रजनन बढ़े उपचित अवयव वाला होकर मिथुनीभवनक्षम हो तिस प्रकार बढ़ और फैल और उस बढ़े हुए शेपसे सुरतार्थिनी स्त्रीके पास ही जा ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

येन॑ कृ॒शं वा॒जय॑न्ति॒ येन॑ हि॒न्वन्त्यातु॑रम् ।
ते॒नास्य॒ ब्र॑ह्मणस्पते॒ धनु॑रि॒वा ता॑नया॒ पस॑ः ॥ २ ॥

येन॑ । कृ॒शम् । वा॒जय॑न्ति । येन॑ । हि॒न्वन्ति॑ । आतु॑रम् ।
तेन॑ । अ॒स्य । ब्र॒ह्म॒ण॒ः । प॒ते॒ । धनु॑ःऽइव । आ । ता॒न॒य॒ । प॒स॒ः २

येन रसविशेषेण वशम् वन्ध्यं शुष्कवीर्यं पुरुषं वाजयन्ति वाजीकुर्वन्ति प्रजननसमर्थवीर्योपेतं कुर्वन्ति । येन रसविशेषेण आतुरम् रोगार्तं पुरुषं हिन्वन्ति प्रीणयन्ति पोषयन्ति । ❀ हिवि प्रीणने । इदित्वान्नुम् ❀ । हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रराशेः पालक देव तेन रसविशेषेण अस्य वाजीकरणकामस्य पसः । प्रजनननामैतत् । पुंस्प्रजननं धनुरिव धनुर्दण्डमिव आ तानय आततम् उन्नमितं कुरु ॥

जिस रससे वन्ध्य पुरुषको–शुष्कवीर्य पुरुषको–प्रजननशक्तिसम्पन्न वीर्य वाला करते हैं और तिस रससे आतुर पुरुषको पुष्ट किया जाता है । हे मंत्रराशिके पालक ब्रह्मणस्पतिदेव ! उस रससे इस वाजीकरणकी कामना वालेके शिश्नको आप धनुषकी समान तना हुआ करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

आहं त॑नोमि ते॒ पसो॒ अधि॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नि ।
क्रम॒स्वर्श॑ इव रो॒हि॒त॒मन॑वग्लायता॒ सदा॑ ॥ ३ ॥

आ । अ॒हम् । त॒नो॒मि॒ । ते॒ । पस॑ः । अधि॑ । ज्याम्ऽइ॑व । धन्व॑नि ।
क्र॑मस्व । ऋ॑शःऽइव । रो॒हितम् । अन॑वऽग्लायता । सदा॑ ॥ ३ ॥

“आहं तनोमि” इत्येषा तृतीया पूर्ववद् [४. ४. ७] व्याख्येया ॥

हे वीर्याभिलाषिन् ! तेरे पुंव्यञ्जनको मैं मन्त्रके प्रभावसे धनुष पर चढ़ा कर तानी हुई प्रत्यञ्चाकी समान वीर्यसम्पन्न करता हूँ, इस कारण तू सेचन करनेमें समर्थ वृषभकी समान नाचते हुए मन और पुंव्यञ्जनके साथ सदा भार्याके पास जा ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥ १ ॥

यथा । अयम् । वाहः । अश्विना । सम्ऽएति । सम् । च । वर्तते ।
एव । माम् । अभि । ते । मनः । सम्ऽएतु । सम् । च । वर्तताम् ॥

हे अश्विना अश्विनौ [यथा] अयं वाहः सुशिक्षितोऽश्वः समैति वाहकेच्छानुगुण्येन सम्यग् वा आगच्छति सं च वर्तते सम्यक् तदधीनं वर्तते च एव एवम् हे कामिनि ते त्वदीयं मनः मां कामुकम् अभिलक्ष्य समैतु सम्यग् आगच्छतु । सम्यग् मदधीनं वर्ततां च । मय्येव सर्वदा रमताम् इत्यर्थः ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे सुशिक्षित अश्व वाहककी इच्छाके अनुसार भली प्रकार आता है और उसके अधीन वर्ताव करता है, हे कामिनि ! इसी प्रकार मुझ कामुकको लक्ष्य करके तेरा मन आवे और मेरे अधीन रहकर भली प्रकार वर्ताव करे अर्थात् सदा मुझमें रमण करता रहे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥ २ ॥

आ । अ॒हम् । खि॒दा॒मि॒ । ते॒ । मनः॑ । रा॒ज॒ऽअ॒श्वः । पृ॒ष्ट्याम्ऽइ॑व ।
रे॒ष्मऽछि॑न्नम् । यथा॑ । तृण॑म् । मयि॑ । ते॒ । वे॒ष्ट॒ता॒म् । मनः॑ ॥२॥

हे कामिनि ते तव मनः चित्तम् अहम् अनेन प्रयोगेण आ खिदामि मदभिमुखम् उत्खनामि उन्मूलयामि। आवर्जयामीत्यर्थः। ❀ खिद उत्खाते ❀। तत्र दृष्टान्तः। राजाश्वः अश्वानां राजा राजाश्वः। ❀ राजदन्तादिषु पठितत्वात् षष्ठ्याः परनिपातः ❀। स यथा अश्वश्रेष्ठः पृष्ट्याम् शङ्कुबद्धां सबन्धनरज्जुं लीलया आखिदति तद्वत्। रेष्मच्छिन्नम् रेष्मा रेषको वात्यात्मको वायुः तेन च्छिन्नं भग्नं तृणं यथा तद्वशं सत् परिभ्रमद् वर्तते हे कामिनि ते त्वदीयं मनः तद्वद् मयि वेष्टताम् मदधीनं सत् परिभ्राम्यतु मा कदाचिद् अपगच्छतु। ❀ वेष्ट वेष्टने ❀॥

हे कामिनि ! तेरे मनको इस प्रयोगसे मैं इस प्रकार उचाट करके अपनी ओरको खेंचता हूँ, जिस प्रकार अश्वोंका राजा खूँटेमें बँधी हुई रस्सी (पिछाड़ी) को लीलासे ही उखाड़ कर अपनी ओर खेंच लेता है, हे कामिनि ! जिस प्रकार वायुसे उखाड़ा हुआ तृण वायुमें चकराने लगता है, इसी प्रकार तेरा मन मेरे अधीन होकर मुझमें भ्रमण करता रहे—रमण करता रहे—कभी भी अन्यत्र न जावे ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

आञ्ज॑नस्य म॒दु॒घ॑स्य॒ कुष्ठ॑स्य॒ नल॑दस्य च ।
तु॒रो भग॑स्य॒ हस्ता॑भ्यामनु॒रोध॑न॒मुद्भ॑रे ॥ ३ ॥

आ॒ऽअ॒ञ्ज॑नस्य । म॒दु॒घ॑स्य । कुष्ठ॑स्य । नल॑दस्य । च॒ ।
तु॒रः । भग॑स्य । हस्ता॑भ्याम् । अ॒नु॒ऽरोध॑नम् । उत् । भ॒रे॒ ॥३॥

आञ्जनस्य अञ्जनसाधनद्रव्यस्य त्रिककुत्पर्वतोद्भवस्य नीलाञ्जनादिमणेः मधुघस्य मधूकवृक्षस्य यष्टिमधुकस्य वा कुष्ठस्य एतत्संज्ञकस्य औषधस्य नलदस्य । सुगन्धिस्तृणविशेषो नलदः उशीरापरपर्यायः । एतेषां द्रव्याणाम् समुच्चयार्थश्चकारः । एतेषां समुदितानां द्रव्याणां संबन्धि अनुरोधनम् । अनुरुध्यते वशीक्रियते अनेनेति अनुरोधनम् अनुलेपनम् । ❀ अनौ रुध कामे इत्यस्मात् करणे ल्युट् ❀ । ईदृशम् अञ्जनादिद्रव्यसाधनभूतम् अनुलेपनं तुरः त्वरमाणस्य भगस्य सौभाग्यकरस्य देवस्य हस्ताभ्याम् अहम् उद् भरे उद्धरामि । त्वदीयम् अङ्गम् अनुलिम्पामीत्यर्थः ॥

चतुर्थं सूक्तम् ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये
षष्ठकाण्डे दशमोनुवाकः ॥

त्रिककुत् पर्वतमें उत्पन्न हुए नीलाञ्जन आदिके, मधूकवृक्षके कूटके और खसके उबटनेको मैं त्वरा करने वाले सौभाग्यदायकदेव भग देवताके हाथोंसे तेरे अंग पर लेपता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (२७५) ॥
अथर्ववेदसंहिताके छठे काण्डमें दशम अनुवाक समाप्त

एकादशेनुवाके पञ्च सूक्तानि । अत्र "संदानं वः" [१०३] "आदानेन" [१०४] इति तृचाभ्यां संग्रामजयकर्मणि भाङ्गपाशान् अन्यान् वा इङ्गिडालंकृतान् पाशान् संपात्य अभिमन्त्र्य परसेनाक्रमणस्थानेषु प्रक्षिपेत् । "संदानं व आदानेनेति पाशैरादानसंदानानि" इति हि सूत्रम् [कौ० २.७] ॥

ग्यारहवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । यहाँ 'संदानं वः' (इस छठे काण्डके एकसौ तीनवें तृचसे) और 'आदानेन' (इस छठे काण्डके एकसौ चारवें तृचसे) संग्रामजयकर्ममें भांगपाशोंको वा इङ्गिडालंकृत अन्य पाशोंको सम्पातित और अभिमन्त्रित शत्रुकी

सेनाके आक्रमण (घूमने फिरने) के स्थानोंमें फेंक देवे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-'सदानं व आदानेनेति पाशैरादानसंदानानि' (कौशिकसूत्र २ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

सं॒दानं॑ वो॒ बृह॒स्पतिः॑ सं॒दानं॑ सवि॒ता क॑रत् ।
सं॒दानं॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सं॒दानं॒ भगो॑ अ॒श्विना॑ ॥१॥

स॒म्ऽदा॑नम् । वः॒ । बृह॒स्पतिः॑ । स॒म्ऽदा॑नम् । स॒वि॒ता । क॒र॒त् ।
स॒म्ऽदा॑नम् । मि॒त्रः । अ॒र्य॒मा । स॒म्ऽदा॑नम् । भगः॑ । अ॒श्विना॑ १

हे शत्रुसेनाः बृहस्पतिर्देवः वः युष्माकं संदानम् बन्धनम् एभिः प्रक्षिप्तैः पाशैः करत् करोतु । ❀ संपूर्वो द्यतिर्बन्धने वर्तते । तस्माद्ध भावे ल्युट् ❀ । सविता सर्वप्रेरको देवः संदानम् युष्माकं बन्धनं करोतु । ❀ करोतेर्लेटि अडागमः । व्यत्ययेन वा शप् ❀ । मित्रश्च अर्यमा च संदानम् बन्धनं करोतु । भगश्च अश्विना अश्विनौ च संदानम् बन्धनं कुर्वन्तु ॥

हे शत्रुसेनाओं ! बृहस्पति देवता इन फेंके हुए पाशोंसे तुम्हें बन्धनमें डालें, सर्वप्रेरक सविता देवता तुम्हें बन्धनमें डालें, अर्यमा देवता भी तुम्हारा बन्धन करें, भग और अश्विनीकुमार भी तुमको बन्धनमें डालें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सं प॑र॒मान्त्सम॑व॒मानथो॒ सं द्या॑मि मध्य॒मान् ।
इन्द्र॒स्तान् पर्य॑हा॒र्दाम्ना॒ ताान॑ग्ने॒ सं द्या॒ त्वम् ॥ २ ॥

सम् । प॒र॒मान् । सम् । अ॒व॒मान् । अथो॒ इति॑ । सम् । द्या॒मि॒ । म॒ध्य॒मान् ।

इन्द्रः । तान् । परि । अह्राः । दाम्ना । तान । अग्ने । सम् । द्य । त्वम् ॥ २ ॥

परमाम् उत्कृष्टां दूरदेशस्थां वा शत्रुसेनां पाशैरहं सं द्यामि बध्नामि । ❀ दो अवखण्डने । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः । अत्र उपसर्गवशाद् बन्धनार्थः ❀ । अवमाम् अपकृष्टाम् आसन्नदेशवर्तिनीं वा परसेनां सं द्यामि । अथो अपि च मध्यमाम् मध्यवर्तिनीमपि सेनां सं द्यामि । तान् तथाविधसेनापतीन् शत्रून् संग्रामाधिपतिरिन्द्रः पर्यह्राः परिहरतु वर्जयतु । ❀ हरतेर्लुङि च्लेः सिच् । "बहुलं छन्दसि" इति इडभावे "हल्ङ्या०" इत्यादिलोपे "रात् सस्य" इति सलोपः ❀ । हे अग्ने तान् परिहृतान् शत्रून् दाम्ना पाशेन त्वं सं द्य बधान ॥

श्रेष्ठ वा दूर देश पर स्थित शत्रुसेनाको मैं पाशोंसे बाँधता हूँ समीपके देशमें स्थित वा निकृष्ट शत्रुसेनाको भी मैं पाशोंसे बाँधता हूँ, मध्यवर्तिनी सेनाको भी मैं पाशोंसे बाँधता हूँ । इन्द्रदेव इन सेनाके सेनापतियोंको अलग करें, हे अग्ने ! उन छोड़ेहुए शत्रुओं को आप पाशसे बांधिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ ३ ॥

अमी इति । ये । युधम् । आऽयन्ति । केतून् । कृत्वा । अनीकऽशः । इन्द्रः । तान् । परि । अह्राः । दाम्ना । तान् । अग्ने । सम् । द्य । त्वम्

अमी दूरे दृश्यमाना ये शत्रवः युधम् युद्धम् आयन्ति आगच्छन्ति अनीकशः संघशः केतून् कृत्वा ध्वजान् कृत्वा । आगत्य युध्यन्त इत्यर्थः । इन्द्रस्तान् इत्यादि पूर्ववत् ॥

यह जो दूर पर दीखते हुए शत्रु संघ बाँध कर ध्वजा उड़ाते हुए युद्धमें युद्ध करनेको आरहे हैं, इन्द्रदेव इनको अलग करदें और हे अग्निदेव ! आप इनको पाशोंसे बाँध लेवें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि ।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ॥१॥

आऽदानेन । सम्ऽदानेन । अमित्रान् । आ । द्यामसि ।

अपानाः । ये । च । एषाम् । प्राणाः । असुना । असून् । सम् । अच्छिदन् ।

आदीयते आबध्यते अनेनेति आदानम् पाशयन्त्रविशेषः । तेन यत् संदानं बन्धनं तेन अमित्रान् शत्रून् आ द्यामसि आद्यामः आबध्नीमः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ । तेषां शत्रूणां ये च अपानाः अन्तर्मुखाः प्राणवायुवृत्तयः ये च प्राणाः बहिर्मुखाः श्वासवृत्तयः तान् असून् प्राणान् असुना प्राणेन समच्छिदम् सम्यक् छिनद्मि । पाशयन्त्रेण गलगतेन प्राणापनगती निरुध्य परस्परोपमर्देन हन्मीत्यर्थः । ❀ छिदिर् द्वैधीकरणे । "इरितो वा" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

आदान और संदान नामक पाशयन्त्रोंसे हम शत्रुओंको बाँधते हैं, उन शत्रुओंकी अन्तर्मुख प्राणवायुवृत्ति (अपान) को और बहिर्मुख श्वासवृत्ति (प्राण) को मैं जीवनशक्तिके साथ छिन्न भिन्न करता हूँ अर्थात् गलेमें पाश डाल उनके प्राण और अपान की गतिको रोक कर मारता हूँ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।

अ॒मित्रा ये॒त्र॑ न॒ः सन्ति॒ ताना॑ग्न॒ आ द्या॒ त्वम् ॥२॥

इ॒दम् । आ॒ऽदान॑म् । अ॒क॒र॒म् । तप॑सा । इन्द्रे॑ण । सम्ऽशि॑तम् ।

अ॒मि॑त्राः । ये । अत्र॑ । न॒ः । सन्ति॑ । तान् । । अ॒ग्ने॒ । आ । द्य॒ । त्वम्

इदम् आदानम् आबन्धनसाधनं पाशयन्त्रं तपसा अभिचारकर्मोक्तनियमविशेषेण अकरम् अकार्षम् । ❀ "कृमृदृरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । तच्च पूर्वम् इन्द्रेण संशितम् सम्यक् तीक्ष्णीकृतम् । ❀ शो तनूकरणे । "शाच्छोरन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम् ❀ । अत्र अस्मिन् संग्रामे नः अस्माकम् अमित्राः शत्रवो ये सन्ति हे अग्ने तान् सर्वान् शत्रून् त्वम् आ द्य आबधान पाशयन्त्रेण गृहाण ॥

मैंने इस आबन्धनसाधन पाशयन्त्र आदानको अभिचारकर्म में कहे हुए नियमरूप तपसे बना लिया है, इसको इन्द्रने पहिले तीक्ष्ण कर दिया है हे अग्ने ! इस संग्राममें जो हमारे शत्रु हैं, उनको आप पाशयन्त्रसे बाँधिये ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

ऐना॑न् द्यतामिन्द्रा॒ग्नी सोमो॒ राजा॑ च मे॒दिनौ॑ ।
इन्द्रो॑ म॒रुत्वा॑ना॒दान॑म॒मित्रे॑भ्यः कृणोतु नः ॥ ३ ॥

आ । ए॒ना॒न् । द्य॒ता॒म् । इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑ । सोम॑ः । राजा॑ । च॒ । मे॒दिनौ॑ ।

इन्द्र॑ः । म॒रुत्वा॑न् । आ॒ऽदान॑म् । अ॒मित्रे॑भ्यः । कृ॒णो॒तु॒ । न॒ः ।३।

इन्द्रश्च अग्निश्च इन्द्राग्नी 'मेदिनौ मेदस्विनौ अस्माभिर्दत्तेन हविषा माद्यन्तौ वा देवौ एनान् अस्मच्छत्रून् आ द्यताम् आबध्नीताम् । तथा सोमो राजा च आबध्नातु । मरुत्वान् मरुद्गणैर्युक्त

इन्द्रः नः अस्माकम् अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यः आदानम् आबन्धनं कृणोतु करोतु ॥

[इति] एकादशेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्र और अग्नि देवता हमारी दी हुई हविसे आनन्दमें भर कर इन हमारे शत्रुओंको बाँधे, राजा सोम भी हमारे शत्रुओंको बन्धनमें डालें, मरुद्गणोंसे युक्त इन्द्रदेव हमारे शत्रुओंके लिये आबन्धन करें ॥ ३ ॥

ग्यारहवें अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२७८)

"यथा मनो मनस्कैतैः" इति तृचेन कासश्लेष्मरोगादिशान्त्यर्थं सक्तुमन्थम् अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

तथा अनेन उदकम् अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा अनेन सूर्यम् उपतिष्ठेत ॥

"यथा मनः [६. १०५] अव दिवः [७. ११२] इत्यरिष्टेन" इति हि सूत्रम् [कौ० ४. ७] ॥

"आयने" इति तृचेन गृहादीनाम् अग्निदाहनिवृत्त्यर्थं गृहमध्ये गर्तं कृत्वा उदकम् अभिमन्त्र्य निनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन अवकाम् अभिमन्त्र्य गृहस्योपरि वितनुयात् ॥

तथा तप्तमाषके दिव्ये तैलादिकम् अभिमन्त्र्य शपथकर्त्रे प्रयच्छेत्

तथा अग्निदग्धम् एतत्तृचेन अभिमन्त्रितोदकेन प्रक्षालयेत् ॥

सूत्रितं हि । "आयने त इति शमनम् । अन्तरा ह्रदं करोति । शाले चावकया शालां परितनोति । शप्यमानाय प्रयच्छति । निर्दग्धं प्रक्षालयति" इति [कौ० ७. ३] ॥

अत्र "अपाम् इदम्" "हिमस्य त्वा" इत्याभ्याम् ऋग्भ्याम् अग्निचयने मण्डूकावकवेतसैर्विकृष्यमाणां चितिं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने । "चितिं परिषिञ्चति" इति प्रक्रम्य "इदं व

आपः [३. १३.७] हिमस्य त्वा [६. १०६. ३] उपद्याम् उप वेतसम् [१८. ३.५] अपाम् इदम् [६. १०६. २] इति मण्डूकावकवेतसैर्दक्षिणादिप्रतिदिशं विकृष्यमाणाम्” इति [वै० ५. २]

‘यथा मनो मनस्केतैः’ इस तृचसे खाँसी श्लेष्मरोग आदिकी शांतिके लिये सक्तुमंथका अभिमन्त्रण करके भक्षण करे।

तथा इससे जलको अभिमन्त्रित करके पिलावे।

तथा इससे सूर्यका उपस्थान करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—‘आयने’ इस तृचसे गृह आदिके अग्निदाहको दूर करनेके लिये घरके बीचमें गड्ढेको खोदकर जलको अभिमन्त्रित करके ले जावे।

तथा तहाँ ही इससे अवकाका अभिमन्त्रण करके घरके ऊपर ताने।

तथा सुनते और दमकते हुए उड़दोंमें तैल आदिका अभिमन्त्रण कर शपथकारीको देवे।

तथा अग्निदग्धको इस तृचके द्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रक्षालन करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“आयने त इति शमनम्। अन्तरा ह्रदं करोति। शाले चावकया शालां परितनोति। शप्यमानाय प्रयच्छति। निर्दग्धं प्रक्षालयति’ (कौशिकसूत्र ७।३)॥

यहाँ ‘अपां इदम्’ ‘हिमस्य त्वा’ इन दो ऋचाओंसे अग्निचयनमें मण्डूक अवक और वेंतसे विकृष्यमाण चितिका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चितिं परिषिञ्चति” इति प्रक्रम्य “इदं व आपः (३ । १३ । ७) हिमस्य त्वा (६ । १०६ । ३) अद्य द्यां उपवेतसम् (१८ । ३ । ५) अपां इदं (६ । १०६ । २) इति मण्डूकावकवेतसैर्दक्षिणादि प्रतिदिशं विकृष्यमाणाम्” (वैतानसूत्र ५ । २)॥

तत्र प्रथमा ॥

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोनु प्रवाय्यम् ॥ १ ॥

यथा । मनः । मनःऽकेतैः । पराऽपतति । आशुऽमत् ।
एव । त्वम् । कासे । प्र । पत । मनसः । अनु । प्रऽवाय्यम् ।१।

मनस्केतैः मनसा बुद्धिवृत्त्या केत्यमानैर्ज्ञायमानैर्दूरस्थैर्विषयैः सह यथा येन प्रकारेण मनः अन्तःकरणम् आशुमत् शैघ्र्ययुक्तं परापतति ध्रुवमण्डलपर्यन्तं पराङ्मुखं गच्छति । ❀ पत्लृ गतौ ❀ । एव एवम् हे कासे कासश्लेष्मरोगात्मिके कृत्ये त्वं मनसो वेगेन धावतः प्रवाय्यम् प्रगन्तव्यम् अवधिम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रगच्छ । मनोवेगेन अस्मात् पुरुषाच्छीघ्रं दूरदेशं निर्गच्छेत्यर्थः । ❀ "भय्य-प्रवय्ये च च्छन्दसि" इति निपात्यते । व्यत्ययेन दीर्घः ❀ ॥

बुद्धिसे जाननेमें आनेवाले दूर पर स्थित विषयोंमें मन जिस प्रकार शीघ्रतायुक्त होकर गिरता है, इसी प्रकार हे कासश्लेष्म-रोगरूप कृत्ये ! तू मनके वेगसे गन्तव्यस्थानकी अवधिकी समान दूर जा अर्थात् मनके वेगके साथ इस पुरुषके शरीरसे दूर देश को चली जा ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥ २ ॥

यथा । बाणः । सुऽसंशितः । पराऽपतति । आशुऽमत् ।
एव । त्वम् । कासे । प्र । पत । पृथिव्याः । अनु । सम्ऽवतम् २

यथा येन प्रकारेण सुसंशितः सुष्ठु सम्यक् तीक्ष्णीकृतो बाणः धनुर्यन्त्रविमुक्तः सन् आशुमत् परापतति पराङ्मुखः शीघ्रं भूमिं प्रभिद्य गच्छति एव एवम् हे कासे त्वं पृथिव्याः बाणविद्धायाः भूम्याः संवतम् संहतप्रदेशम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रधाव । बाणवेगेन पातालपर्यन्तं गच्छेत्यर्थः ॥

जैसे भली प्रकार तेज किया हुआ बाण धनुषसे छूट नीचेको मुख कर शीघ्रतासे चल भूमिको फोड़ता हुआ जाता है हे कासे ! इसी प्रकार तू बाणसे विंधी हुई भूमिके विद्धदेशको देख कर दौड़ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

य॒था सूर्य॑स्य र॒श्मयः॑ प॒राप॑तन्त्याशु॒मत् ।
ए॒वा त्वं॑ कासे॒ प्र प॑त समु॒द्रस्या॑नु विक्ष॒रम् ॥ ३ ॥

यथा॑ । सूर्य॑स्य । र॒श्मयः॑ । प॒रा॒ऽपत॑न्ति । आ॒शु॒ऽमत् ।
ए॒व । त्वम् । का॑से । प्र । प॒त॒ । स॒मु॒द्रस्य॑ । अनु॑ । वि॒ऽक्ष॒रम् ३

सूर्यस्य रश्मयः किरणा उदयाद्रु ऊर्ध्वं यथा आशुमत् परापतन्ति लोकालोकपर्यन्तं शीघ्रं परागच्छन्ति एव एवं समुद्रस्य उदधेः विक्षरम् विविधं क्षरणं प्रवाहो यस्मिन् देशे तं देशम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रगच्छ । इमं पुरुषं विसृज्य समुद्रपर्यन्तं सूर्यरश्मिवत् शीघ्रं गच्छेत्यर्थः ॥

सूर्यकी किरणें उदयाचलके ऊपरसे जिस प्रकार शीघ्रताके साथ लोकालोकपर्वत तक शीघ्र ही पहुँच जाती हैं, इसी प्रकार तू समुद्रके विक्षर अर्थात् विविध प्रवाह वाले देश पर जा अर्थात् इस पुरुषको छोड़कर समुद्रतक सूर्यकी किरणोंकी समान शीघ्र ही जा

चतुर्थी ॥

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१॥

आऽअयने । ते । पराऽअयने । दूर्वाः । रोहन्तु । पुष्पिणीः ।
उत्सः । वा । तत्र । जायताम् । ह्रदः । वा । पुण्डरीकऽवान् १

हे अग्ने ते तव आयने आभिमुख्येन गमने परायणे पराङ्मुखगमने च अस्मदीये देशे पुष्पिणीः पुष्पयुक्ता कोमला दूर्वा रोहन्तु प्ररोहन्तु उत्पद्यन्ताम् । तत्र तस्मिन् गृहादिदेशे उत्सो वा उदकप्रस्रवणं वा जायताम् उत्पद्यताम् । पुण्डरीकवान् तामरसयुक्तो ह्रदो वा उत्पद्यताम् । अनेन अग्निकृतबाधस्य अत्यन्ताभावः प्रार्थितः॥

हे अग्ने ! आपके अभिमुख होकर गमन करने पर और पराङ्मुख होकर गमन करने पर भी हमारे देशमें पुष्पयुक्त कोमल दूर्वा उत्पन्न हों और इस गृह आदि स्थानमें जलके झरनेसे बहा करें और कमल वाले तालाव हों ‡ ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥

अपाम् । इदम् । निऽअयनम् । समुद्रस्य । निऽवेशनम् ।
मध्ये । ह्रदस्य । नः । गृहाः । पराचीना । मुखा । कृधि ॥ २ ॥

इदम् अस्मदीयं गृहम् अपाम् उदकानां न्ययनम् निलयनम् आवासस्थानं भवतु । तथा समुद्रस्य जलधेः निवेशनम् निविश-

---

‡ इस प्रकार यहाँ अग्निकी बाधाके अत्यन्ताभावकी प्रार्थना की है

तेस्मिन्निति निवेशनम् गृहं भवतु । ❀ निपूर्वाद् विशतेः अधिकरणे ल्युट् ❀ । ह्रदस्य अगाधजलस्य तटाकादेर्मध्ये नः अस्माकं गृहा भवन्तु । न ह्येतेषां समुद्रादीनां दाहशङ्कास्ति तत्संबन्धप्रतिपादनेन अग्निदाहस्य अत्यन्तासंभव उक्तः । इदानीं प्रत्यक्षतः प्रार्थ्यते । हे अग्ने त्वं मुखा मुखानि ज्वालारूपाणि आस्यानि पराचीना पराचीनानि पराङ्मुखानि कृधि कुरु । ❀ उभयत्र "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः । "विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खः । "श्रुशृणुपॄकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

यह हमारा घर जलोंका आवासस्थान हो और समुद्रका घर हो, अगाध जलवाले तालाव आदिके बीचमें हमारे घर हों (समुद्र आदिके जलनेकी आशंका नहीं है अत एव उनके मिषसे अग्निके अत्यन्ताभावकी प्रार्थना की है अब प्रत्यक्षरूपसे प्रार्थना करते हैं, कि–) हे अग्ने ! अपने ज्वालारूप मुखोंको पराङ्मुख करिये २ षष्ठी ॥

हि॒मस्य॑ त्वा ज॒रायु॑णा॒ शाले॒ परि॑ व्ययामसि ।
शी॒तह्र॑दा॒ हि नो॒ भु॒वो॒ग्निष्कृ॑णोतु भेष॒जम् ॥ ३ ॥

हि॒मस्य॑ । त्वा॒ । ज॒रायु॑णा । शाले॑ । परि॑ । व्य॒या॒म॒सि॒ ।
शी॒तऽह्र॑दा । हि । नः॒ । भु॒वः॑ । अ॒ग्निः । कृ॒णो॒तु॒ । भे॒ष॒जम् ।३।

हे शाले हिमस्य शीतलोदकस्य जरायुणा जरायु गर्भवेष्टनम् तद्वद् आवेष्ट्य अवस्थितेन अवकारूपेण शैवालेन त्वा त्वां परि व्ययामसि परिव्ययामः परिवेष्टयामः । नः अस्माकं शीतह्रदा शीतलह्रदयुक्ता भुवः भवेः । हि यस्माद् एवं तस्मात् परिव्ययाम इत्यर्थः । इत्थम् अस्माभिः प्रार्थितः अग्निः गृहादीनां भेषजम् अदाहनिमित्तम् औषधं कृणोतु करोतु ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे शाले ! शीतलजलको जरायुरूपमें घेर कर स्थित अवकारूप शैवालसे हम तुझको चारों ओरसे लपेटते हैं, तू हमारे लिये शीतह्रदा हो । इस प्रकार हमारे प्रार्थना करने पर अग्निदेव घर आदिकी अदाहरूप औषधिको करें ॥ ३ ॥

द्वितीय सूक्त समाप्त (२७९) ॥

“विश्वजित् त्रायमाणायै” इति चतुर्ऋचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन चतुर्ऋचेन आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि । “विश्वजित् [६. १०७] शक्रधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११. २] इत्युपदधीत” इति [कौ० ७. १] ॥

“त्वं नो मेधे” इति पञ्चर्चेन सूक्तेन मेधाजननकर्मणि क्षीरौदनं पुरोडाशं रसान् वा संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन सूक्तेन आदित्यम् उपतिष्ठेत ॥

“पूर्वस्य मेधाजननानि” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “त्वं नो मेधे [६. १०८] द्यौश्च मे [६. ५३] इत्याशयति । आदित्यम् उपतिष्ठते” इति [कौ० २. १] ॥

तथा उपनयने “त्वं नो मेधे” इति पञ्चर्चेन अग्निम् उपतिष्ठेत । त्वं नो मेध इत्युपतिष्ठते” इति [कौ० ७. ८] सूत्रात् ॥

“विश्वजित् त्रायमाणायै” इस चतुर्ऋचका बृहद्गणमें पाठ होने से शान्तिजलके अभिमन्त्रण आदिमें विनियोग होता है ।

तथा स्वस्त्ययनकर्ममें इस चतुर्ऋचसे घृत समिधा पुरोडाशसे पूरीतकके तेरह द्रव्योंकी आहुति देय ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण है, कि—“विश्वजित् (६ । १०७) शक्रधूमम् (६ । १२८) भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत” (कौशिकसूत्र ७ । १) ॥

“त्वं नो मेधे” इस पाँच ऋचा वाले सूक्तसे मेधाजननकर्ममें क्षीरौदन, पुरोडाश वा रसोंको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके भक्षण करे ।

तथा इसी कर्ममें इस सूक्तसे आदित्यका उपस्थान करे ।

“पूर्वस्य मेधाजननानि इसका आरंभ करके सूत्रमें कहा है, कि–“(६ । १०८) द्यौश्च मे (६ । ५३) इत्याशयति । आदित्यं उपतिष्ठते” (कौशिकसूत्र २ । १) ॥

तथा उपनयनमें “त्वं नो मेधे” इस पाँच ऋचा वाले सूक्तसे अग्निका उपस्थान करे । इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि–त्वं नो मेध इत्युपतिष्ठते” (कौशिकसूत्र ७ । ८) ॥

तत्र प्रथमा ॥

विश्व॑जित् त्रायमा॒णायै॑ मा॒ परि॑ देहि ।
त्राय॑माणे द्वि॒पाच्च॒ सर्वं॑ नो॒ रक्ष॒ चतु॑ष्पा॒द् यच्च॑ नः॒ स्वम्

विश्व॑ऽजित् । त्रा॒य॒मा॒णायै॑ । मा॒ । परि॑ । दे॒हि॒ ।
त्राय॑माणे । द्वि॒ऽपात् । च॒ । सर्व॑म् । नः॒ । रक्ष॑ । चतुः॑ऽपात् । यत् ।
च॒ । नः॒ । स्वम् । ॥ १ ॥

हे विश्वजित् विश्वं कृत्स्नं जगज्जयति वशीकरोतीति विश्वजित् हे एतत्संज्ञक देव त्रायमाणायै जगत्पालनाधिकृतायै देवतायै मा मां स्वस्त्ययनकामं परि देहि रक्षणार्थं प्रयच्छ । हे त्रायमाणे एतत्संज्ञे देवते नः अस्माकं स्वम् स्वभूतं द्विपात् पादद्वयोपेतं सर्वम् पुत्रभृत्यादिकं रक्ष पालय । तथा नः अस्माकं स्वभूतं यच्च प्राणिजातं चतुष्पात् पादचतुष्टयोपेतं गोमहिषादिकम् अस्ति तत् पालय । ❀ द्वौ पादावस्य चत्वारः पादा अस्येति विगृह्य समासे “संख्या-

सुपूर्वस्य" इति पादशब्दान्त्यलोपः समासान्तः । "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्०" इति द्विपाच्छब्दोन्तोदात्तः । चतुष्पाद् इत्यत्र बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । पूर्वपदं च "त्रः संख्यायाः" [फि० २.५] इति आद्युदात्तम् ❀ ॥

हे सम्पूर्ण जगत्को वशमें रखने वाले विश्वजित् नामक देव ! आप-मुझ स्वत्ययनकामको जगत्का पालन करना जिसके अधिकार में रहता है उस-त्रायमाणा देवताके अर्पण करिये । हे त्रायमाणे देवते ! हमारा जो पुत्र भृत्य आदि दो पैर वाला प्राणिसमूह है और गौ भैंस आदि चार पैर वाला प्राणिसमूह है उसकी आप रक्षा करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्राय॑माणे विश्व॒जिते॑ मा॒ परि॑ देहि ।
विश्व॑जिद् द्वि॒पाच्च॒ सर्वं॑ नो॒ रक्ष॒ चतु॑ष्पा॒द् यच्च॑ नः॒
स्वम् ॥ २ ॥

त्राय॑माणे । वि॒श्व॒ऽजिते॑ । मा॒ । परि॑ । दे॒हि॒ ।
विश्व॑ऽजित् । द्वि॒ऽपात् । च॒ । सर्व॑म् । न॒ः । रक्ष॑ । चतुः॑ऽपात् । यत् ।
च॒ । न॒ः । स्वम् ॥ २ ॥

हे विश्वजित् सर्वजित् हे त्रायमाणे पालयित्रि मा मा विश्वजिते देवतायै परि देहि । परिदानं रक्षणार्थं दानम् । ❀ "घ्वसोरेद्धौ०" इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ । हे त्रायमाणे द्विपाच्चतुष्पाच्च अस्मदीयं स्वं रक्षेति पूर्ववद् योजना ॥

हे त्रायमाणा देवते ! आप मुझको विश्वजित्को दीजिये । हे विश्वजित् ! हमारा जो दो पैर वाला पुत्र भृत्य आदि प्राणिवर्ग

है और जो चार पैर वाला गौ भैंस आदि प्राणिसमूह है उसकी आप रक्षा करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

वि॒श्व॑जित् क॒ल्या॒ण्यै॑ मा॒ परि॑ देहि ।
कल्या॑णि द्वि॒पाच्च॒ सर्वं॑ नो॒ रक्ष॒ चतु॑ष्पा॒द् यच्च॑ न॒: स्वम् ॥ ३ ॥

विश्व॑ऽजित् । क॒ल्या॒ण्यै॑ । मा॒ । परि॑ । दे॒हि॒ ।
कल्या॑णि । द्वि॒ऽपा॒त् । च॒ । सर्व॑म् । न॒: । रक्ष॑ । चतुः॑ऽपात् ।
यत् । च॒ । न॒: । स्वम् ॥ ३ ॥

हे विश्वजित् कल्याण्यै सर्वमङ्गलकारिण्यै देवतायै मां परि देहि । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

हे विश्वजित् ! सर्वमंगलकारिणी कल्याणीके लिये मुझको दीजिये हे कल्याणि । हमारा जो दो पैर वाला पुत्र भृत्य आदि प्राणिवर्ग है और जो चार पैर वाला गौ भैंस आदि प्राणिसमूह है उसकी आप रक्षा करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

कल्या॑णि सर्व॒विदे॑ मा॒ परि॑ देहि ।
सर्व॑विद् द्वि॒पाच्च॒ सर्वं॑ नो॒ रक्ष॒ चतु॑ष्पा॒द् यच्च॑ न॒: स्वम् ॥ ४ ॥

कल्या॑णि । स॒र्व॒ऽवि॒दे । मा॒ । परि॑ । दे॒हि॒ ।
सर्व॑ऽवित् । द्वि॒ऽपात् । च॒ । सर्व॑म् । न॒: । रक्ष॑ । चतुः॑ऽपात् ।
यत् । च॒ । न॒: । स्वम् ॥ ४ ॥

हे कल्याणि मङ्गलकारिणि देवते सर्वविदे सर्वं कार्यजातं जानते देवाय मा मां परि देहि । हे सर्ववित् देव अस्मदीयं पुत्रपश्वादिकं त्वं रक्षेत्यर्थः ॥

हे मंगलकारिणी कल्याणि देवते ! आप सम्पूर्ण कार्योंको जानने वाले सर्वविद देवताके लिये दीजिये, हे सर्ववित् देव ! आप हमारा जो दो पैर वाला पुत्र भृत्य आदि प्राणिवर्ग है और जो चार पैर वाला गौ भैंस आदि प्राणिवर्ग है उसकी रक्षा करिये ४

पञ्चमी ॥

त्वं नो॑ मेधे प्र॒थमा गोभि॒रश्वे॑भि॒रा ग॑हि ।
त्वं सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॒स्त्वं नो॑ असि य॒ज्ञिया॑ ॥ १ ॥

त्वम् । न॒ः । मे॒धे॒ । प्र॒थ॒मा । गोभि॑ः । अश्वे॑भिः । आ । ग॒हि॒ ।
त्वम् । सूर्य॑स्य । र॒श्मिऽभि॑ः । त्वम् । न॒ः । अ॒सि॒ । य॒ज्ञिया॑ ।१।

हे मेधे श्रुतधारणसामर्थ्यरूपिणी देवि प्रथमा मुख्या देवमनुष्यादिभिः सर्वैरुपास्यमाना त्वं गोभिः अस्मभ्यं दातव्यैः अश्वेभिः अश्वैश्च नः अस्मान् आ गहि आगच्छ । ❀ गमेर्लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् हेर्लुगभावः ❀ । हे मेधे त्वं सूर्यस्य सर्वप्रेरकस्य देवस्य रश्मिभिः सर्वव्यापिभिः किरणैः । लुप्तोपमम् एतत् । सूर्यरश्मयो यथा आशु सर्वं जगद् व्याप्नुवन्ति एवं सर्वविषयव्यापनशक्तैरात्मीयैः सामर्थ्यैरस्मान् आगच्छेति संबन्धः । तत्र हेतुरुच्यते । हे मेधे त्वं नः अस्माकं यज्ञिया यज्ञार्हा असि भवसि । अस्माभिर्दत्तेन हविषा यतः प्रीता भवसि तत आगच्छेत्यर्थः । ❀ "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति अर्हार्थे यज्ञशब्दाद् घप्रत्ययः ❀ ॥

हे वेदको धारण करनेकी शक्तिरूप मेधे देवि ! आप मुख्य हैं देवता और मनुष्य आदि सब आपकी उपासना करते हैं ऐसी आप गौ और अश्वोंके साथ हमारे पास आइये । हे मेधे ! सर्वप्रेरक सूर्यदेवकी किरणें जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हो जाती हैं, इसी प्रकार सब विषयोंमें व्याप्त होजाने वाली अपनी शक्तियोंके साथ आप हमारे पास आइये । (इसका कारण यह है, कि–) आप हमारी यज्ञिया हैं अर्थात् अर्थात् हमारी दी हुई हविसे प्रसन्न होती हैं, अतः आइये ॥ १ ॥

षष्ठी ॥

मे॒धाम॒हं प्र॑थ॒मां ब्रह्म॑ण्वतीं॒ ब्रह्म॑जूता॒मृषि॑ष्टुताम् ।
प्रपी॑तां ब्रह्मचा॒रिभि॑र्दे॒वाना॒मव॑से हुवे ॥ २ ॥

मे॒धाम् । अ॒हम् । प्र॒थ॒माम् । ब्रह्म॑ण्ऽवतीम् । ब्रह्म॑ऽजूताम् । ऋषिऽस्तुताम् ।
प्रऽपी॑ताम् । ब्र॒ह्म॒चा॒रिऽभि॑ः । दे॒वाना॑म् । अव॑से । हु॒वे॒ ॥ २ ॥

अहं मेधाकामः प्रथमाम् मुख्यां मेधां देवीं हुवे आह्वयामि । कीदृशीम् । ब्रह्मण्वतीम् ब्रह्म वेदः तद्युक्ताम् । तद्धारणेन तैर्युज्यमानाम् इत्यर्थः । ❀ "मादुपधायाः०" इति मतुपो वत्वम् । "अनो नुट्" इति नुडागमः ❀ । ब्रह्मजूताम् ब्राह्मणजातीयैः सेविताम् । ऋषिष्टुताम् ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिर्वसिष्ठादिभिः प्रशंसिताम् । ब्रह्मचारिभिः । ब्रह्म वेदस्तत्र चरितुं शीलम् एषाम् इति ब्रह्मचारिणः गुरुकुलवासादिनियमोपेता अधीयानाः तैः । ❀ चरतेस्ताच्छीलिको णिनिः ❀ । तैः प्रपीताम् सेविताम् । ❀ प्रपूर्वात् पिबतेः "घुमास्था०" इत्यादिना ईत्त्वम् ❀ । यद्वा प्रपीताम् प्रवर्धिताम् । ❀ प्यायी वृद्धौ इत्यस्मान्निष्ठा । "प्यायः

पी" इति पीभावः ❀। किमर्थम् । देवानाम् इन्द्रादीनाम् अवसे । अध्ययनतदर्थज्ञानतदनुष्ठानादिना रक्षणायेत्यर्थः ॥

बुद्धिको चाहने वाला–मैं वेदोंको धारण करनेसे वेदोंसे युक्त ब्रह्मण्वती, ब्राह्मणोंसे सेवित ब्रह्मजूता, अतीन्द्रियार्थदर्शी वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे प्रशंसित ऋषिष्टुता, वेदका आचरण करनेके लिये गुरुकुलवास आदि नियम वाले ब्रह्मचारियोंसे वृद्धिको प्राप्त होने वाली श्रेष्ठ मेधादेवीका, अध्ययन अध्ययनके अर्थका ज्ञान और अनुष्ठान आदिसे इन्द्र आदि देवताओंकी रक्षा करनेके लिये आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

सप्तमी ॥

यां मे॒धामृ॒भवो॑ वि॒दुर्यां॑ मे॒धामसु॑रा वि॒दुः ।
ऋष॑यो भ॒द्रां मे॒धां यां वि॒दुस्तां मय्या वे॑शयामसि ३

याम् । मे॒धाम् । ऋ॒भवः॑ । वि॒दुः । याम् । मे॒धाम् । असु॑राः । वि॒दुः ।
ऋष॑यः । भ॒द्राम् । मे॒धाम् । याम् । वि॒दुः । ताम् । मयि॑ । आ ।
वे॒श॒या॒म॒सि॒ ॥ ३ ॥

ऋभवो देवाः यां मेधां विदुः जानन्ति असुराः दानवा यां मेधां विदुः भद्राम् भन्दनीयां कल्याणीं वेदशास्त्रादिविषयां यां मेधाम् ऋषयः वसिष्ठाद्या विदुः तां सर्वतोदिक्कां मेधां मयि साधके आ वेशयामसि आवेशयामः आस्थापयामः । ❀ "इदन्तो मसिः" ❀ ॥

ऋभु देवता जिस मेधा (बुद्धि) को जानते हैं, दानव जिस बुद्धिको जानते हैं और वेदशास्त्रादिविषयक जिस कल्याणी बुद्धि को वसिष्ठ आदि ऋषि जानते हैं, उस चारों ओरकी बुद्धिको हम साधकमें स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

अष्टमी ॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ ४ ॥

याम् । ऋषयः । भूतऽकृतः । मेधाम् । मेधाविनः । विदुः ।
तया । माम् । अद्य । मेधया । अग्ने । मेधाविनम् । कृणु ॥ ४ ॥

ऋषयः मन्त्रद्रष्टारो भूतकृतः पृथिव्यादीनि भूतानि कर्तुं शक्ताः कश्यपकौशिकादयो मेधाविनः धीमन्त इति प्रसिद्धा यां मेधां विदुः जानन्ति । ❀"विदो लटो वा" इति झेः उस् आदेशः ❀ । हे अग्ने तया मेधया अद्य इदानीं मां मेधाविनं कृणु मेधायुक्तं कुरु ॥

मन्त्राद्रष्टा ऋषि और पृथिवी आदि भूतोंकी रक्षा करनेमें समर्थ कश्यप कौशिक आदि बुद्धिमान् जिस मेधाको जानते हैं हे अग्ने ! उस मेधासे आप मुझको मेधावी करिये ॥ ४ ॥

नवमी ॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥ ५ ॥

मेधाम् । सायम् । मेधाम् । प्रातः । मेधाम् । मध्यन्दिनम् । परि ।
मेधाम् । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । वचसा । आ । वेशयामहे ॥ ५ ॥

सायंकाले मेधाम् अहं स्तौमि । प्रातःकाले मेधां देवीं स्तौमि । मध्यन्दिनं परि मध्याह्नकालेपि मेधां भजे । किं बहुना । सूर्यस्य रश्मिभिः सार्धं सर्वस्मिन्नपि अहनि वचसा स्तुतिरूपेण वाक्येन तां महानुभावां मेधाम् आ वेशयामहे आत्मनि स्थापयामः । ❀ कर्त्रभिप्रायक्रियावचनाद् विशेर्ण्यन्तात् "णिचश्च" इति आत्मनेपदम् ❀

[इति] एकादशेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मैं सायंकालके समय मेधाकी स्तुति करता हूँ, प्रातःकालके समय मेधादेवीकी स्तुति करता हूँ, मध्याह्नके समय भी मेधादेवी की सेवा करता हूँ, अधिक क्या हम सूर्यकी किरणोंके साथ अर्थात् सारे दिन स्तुतिरूप वचनसे उस मेधादेवीको अपनेमें स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

ग्यारहवें अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (२८१) ॥

"पिप्पली क्षिप्तभेषजी" इति तृचेन धनुर्वातक्षिप्तवातादिकृत्स्नवातव्याधिशान्त्यर्थं पिप्पलीं संपात्य अभिमन्त्र्य पुनस्तृचं जपित्वा आशयेत् । "पिप्पली [६. १०९] विद्रधस्य [६. १२७] या बभ्रवः [८. ७]" इति प्रक्रम्य "चतुर्थेनाशयति" इति [कौ० ४. २] सूत्रात् ॥

"प्रत्नो हि" इति तृचेन पापनक्षत्रजातस्य अपत्यस्य संपातिताभिमन्त्रितोदपात्रेण सूत्रोक्तरीत्या आप्लावनम् अवसेकं वा कुर्यात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन संपातिताभिमन्त्रितक्षीरौदनं प्राश्नीयात् ॥

"प्रत्नो हीति पापनक्षत्रे जाताय" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "उदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ५. १०] ॥

"पिप्पली क्षिप्तभेषजी" इस तृचसे धनुर्वातक्षिप्तवात आदि सम्पूर्ण वातव्याधियोंकी शांतिके लिये पिप्पलीको संपातित और अभिमन्त्रित करके फिर तृचको जपकर प्राशन करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"पिप्पली (६ । १०९) विद्रधस्य (६ । १२७) या बभ्रवः (८ । ७)" इति प्रक्रम्य "चतुर्थेनाशयति" (कौशिकसूत्र ४ । २) ॥

"प्रत्नो हि" इस तृचसे पापनक्षत्रमें उत्पन्न हुई सन्तानका सम्पातित अभिमन्त्रित जलपूर्ण पात्रसे सूत्रमें कही हुई रीतिके अनुसार आप्लावन वा अवसेक करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस तृचसे संपातित और अभिमन्त्रित क्षीरौदन (दूध भात) का प्राशन करे ।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि–“प्रत्नो हीति पापनक्षत्रे जाताय” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । ‘उदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयत्याचयत्यवसिञ्चति” (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

तत्र प्रथमा ॥

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी ।
ता देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥ १ ॥

पिप्पली । क्षिप्तऽभेषजी । उत । अतिविद्धऽभेषजी ।
ताम् । देवाः । सम् । अकल्पयन् । इयम् । जीवितवै । अलम् १

पिप्पली एतत्संज्ञा कणाद्यपरपर्याया ओषधिः क्षिप्तभेषजी क्षिप्तानि तिरस्कृतानि अन्यानि भेषजानि यया सा तथोक्ता । यद्वा क्षिप्तस्य वातरोगविशेषस्य भेषजी निवर्तिका । उत अपि च अतिविद्धभेषजी अतिशयेन विद्धानि ताडितानि भेषजान्तराणि यया सा तथोक्ता । यद्वा कृत्स्नं रोगम् अतिविध्यति निपीडयतीति अतिविद्धा । ❀ व्यध ताडने इत्यस्मात् कर्तरि क्तः ❀ । अतिविद्धा चासौ भेषजी च अतिविद्धभेषजी । तां तादृशीं पिप्पलीं देवा इन्द्रादयः अमृतमथनसमये सम् अकल्पयन् सम्यक् कल्पितवन्तः । कथम् इति । इयम् एकैव ओषधिः जीवितवै सर्वरोगनिवारणेन सर्वान् प्राणिनो जीवयितुम् अलम् समर्था शक्ता इत्यभिप्रेत्य । ❀ जीव प्राणधारणे इत्यस्मात् एयन्तात् तुमर्थे तवै प्रत्ययः ❀ ॥

पिप्पली नाम वाली औषधि क्षिप्त नाम वाले वातरोगकी औषध है–इस विषयमें अन्य औषधियोंका तिरस्कार करने वाली

है, यह रोगको पूर्णरीतिसे बींधने वाली है, ऐसी पिप्पलीकी इन्द्र आदि देवताओंने अमृतमथनके समय कल्पनाकी थी, कि—यह एक ही औषधि सब रोगोंका निवारण करनेके कारण सब प्राणियों को जीवित रखनेमें समर्थ है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

पिप्पल्य१ः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ २ ॥

पिप्पल्यऽः । सम् । अवदन्त । आऽयतीः । जननात् । अधि ।
यम् । जीवम् । अश्नवामहै । न । सः । रिष्याति । पुरुषः ॥ २ ॥

हस्तिपिप्पल्यादिजातिभेदभिन्नाः सर्वाः पिप्पल्यः ओषधयः जननाद् अधि अमृतमथनसमकालीनोत्पत्तेरूर्ध्वम् आयतीः आयत्यः आगच्छन्त्यः समवदन्त परस्परं संवादं संभाषणम् अकुर्वत ।❀"व्यक्तवाचां समुच्चारणे" इति आत्मनेपदम् ❀ । तत्प्रकार उच्यते । यं जीवम् जीवनवन्तं पुरुषम् अश्नवामहै वयं भेषजत्वेन व्याप्नवाम स पुरुषः न रिष्याति न रिष्यतु न विनश्यत्विति । ❀रिष हिंसायाम् । लेटि आडागमः ❀ ॥

हस्तिपिप्पली आदि सब पिप्पलियोंने अमृतमथनके समयके अपने आविष्कार होनेसे पहिले आते समय परस्पर वार्तालाप किया था, कि—जिस जीवन वाले पुरुषमें हम औषधिरूपमें व्याप्त हों वह नष्ट न हो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥ ३ ॥

असुराः । त्वा । नि । अखनन् । देवाः । त्वा । अपवन् । पुनः ।
वातीऽकृतस्य । भेषजीम् । अथो इति । क्षिप्तस्य । भेषजीम् ॥३॥

हे पिप्पलि त्वा त्वाम् असुराः पूर्वदेवाः न्यखनन् निखातवन्तः । देवाः पुनस्त्वा त्वां सर्वप्राणिहिताय उदवपन् उद्धृतवन्तः । कीदृशीम् । वातीकृतस्य वातरोगाविष्टशरीरस्य भेषजीम् औषधभूताम् । अथो अपि च क्षिप्तस्य मुहुर्मुहुरवयवक्षेपणशीलस्य आक्षेपकनाम्नो वातरोगविशेषस्य भेषजीम् निवर्तयित्रीम् ॥

वातरोगसे भरे हुए शरीरवालेकी औषधि और बारंवार हाथ पैर फेंकनेके स्वभाव वाले आक्षेपक नामक रोगीकी औषधि हे पिप्पली ! तुझको पहिले असुरोंने गाड़ा था, फिर संसारका हित करनेके लिये देवताओंने तेरा उद्धार किया था ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व

प्रत्नः । हि । कम् । ईड्यः । अध्वरेषु । सनात् । च । होता । नव्यः ।
च । सत्सि ।
स्वाम् । च । अग्ने । तन्वम् । पिप्रायस्व । अस्मभ्यम् । च । सौभगम् । आ । यजस्व ॥ १ ॥

प्रत्न इति पुराणनाम । हिशब्दः प्रसिद्धौ । कम् इति पूरणः । प्रत्नः चिरंतनः खलु अयम् अग्निः सर्वदेवात्मकत्वात् । "अग्निः सर्वा देवताः" इति श्रुतिः [तै० सं० २. २. ९. १] । अत एव ईड्यः स्तुत्यः । अध्वरेषु यज्ञेषु च सनात् चिरंतनो होता देवानाम्

आह्वाता होमनिष्पादको वा । हे अग्ने ईदृशस्त्वं नव्यः अभिनवश्च होता भूत्वा सत्सि वेद्यां सीदसि । "अग्निर्देवो होता देवान् यक्षत्" इति हि निगमः [आप० २. १६. ५] ।। इत्थं होतृत्वेन वेद्याम् उपविशंस्त्वं स्वाम् स्वकीयां तन्वम् शरीरं पिप्रयस्व आज्यादिहविषा पूरय । अस्मभ्यं च सौभगम् सौभाग्यकरं धनम् आ यजस्व आगमय । प्रयच्छेत्यर्थः । ❀ पिप्रयस्व च आ यजस्व चेति परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । "चवायोगे प्रथमा" इति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्न निहन्यते ❀ ।।

अग्निदेव चिरन्तन हैं (क्योंकि–यह सर्वदेवरूप हैं इस विषयमें तैत्तिरीयसंहिताका प्रमाण भी है, कि–"अग्निः सर्वा देवताः ।।–अग्नि सर्वदेवमय हैं" २ । २ । ६ । १) अत एव स्तुति करने योग्य हैं । यज्ञोंमें प्राचीन समयसे देवताओंका आह्वान करते चले आते हैं और होमको सम्पन्न करने वाले हैं, हे ऐसे अग्निदेव ! ऐसे आप नवीन होता बनकर वेदीमें बैठते हैं (इस विषयमें शास्त्र का प्रमाण भी है, कि–"अग्निर्देवो होता देवान् यक्षत् ।।–अग्निदेवने होता बनकर देवताओंका पूजन किया "आपस्तम्बश्रौतसूत्र २ । १६ । ५) इस प्रकार होता बनकर वेदीमें बैठते हुए आप हमें सौभाग्यकर धन दीजिये ।। १ ।।

पञ्चमी ।।

ज्ये॒ष्ठ॒घ्न्यां जा॒तो वि॒चृतो॑र्य॒मस्य॑ मू॒ल॒बर्ह॑णा॒त् परि॑
पाह्येनम् ।
अत्ये॑नं नेषद् दुरि॒तानि॒ विश्वा॑ दीर्घायु॒त्वाय॑ श॒तशा॑रदाय ।। २ ।।

ज्ये॒ष्ठ॒ऽघ्न्याम् । जा॒तः । वि॒ऽचृतोः॑ । य॒मस्य॑ । मू॒ल॒ऽवर्ह॑णात् । परि॑ । पा॒हि॒ । ए॒न॒म् ।

अति॑ । ए॒न॒म् । ने॒ष॒त् । दुःऽइ॒तानि॑ । विश्वा॑ । दी॒र्घा॒यु॒ऽत्वाय॑ ।

श॒तऽशा॑रदाय ॥ २ ॥

ज्येष्ठं वयसा प्रवृद्धं हन्तीति ज्येष्ठघ्नी ज्येष्ठाख्यं नक्षत्रम् । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ज्येष्ठम् एषाम् अवधिष्मेति तज्ज्येष्ठघ्नी" इति [तै० ब्रा० १. ५. २. ८] । तस्यां ज्येष्ठघ्न्यां जातः पुत्रः ज्येष्ठस्य पितृभ्रात्रादेर्हन्ता भवति । तथा विचृतोः विचर्तनस्वभावे मूलनक्षत्रे जातः पुत्रः सर्वं कुलं विचृतति हिनस्ति । ❀ चृती हिंसाग्रन्थनयोः इत्यस्मात् क्विप् ❀ । नक्षत्रस्य एकत्वेपि अधिष्ठानापेक्षया द्विवचनम् । "उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके" इति हि आम्नायते [२. ८. १] । मूलनक्षत्रं हि मूलोन्मूलनकरम् । तथा च तैत्तिरीयके तन्नामनिर्वचनम् । "मूलम् एषाम् अवृक्षामेति तन्मूलबर्हणी" इति [तै० ब्रा० १, ५. २. ८] । अतः पापनक्षत्रे जातम् एनं कुमारं यमस्य यमसंबन्धिनः यमेन क्रियमाणाद् मूलबर्हणात् संतानमूलोच्छेदनात् परि पाहि परितः सर्वतो रक्ष । ❀ बृहू उद्यमने । अस्माद् भावे ल्युट् । ततः कर्मणि षष्ठ्याः समासः । यमस्येति शेषषष्ठी । अतो न "उभयप्राप्तौ कर्मणि" इति नियमस्य अवसरः ❀ । एनं पुत्रं विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरितानि अति नेषत् अतिनयतु अतिक्रमयतु । किमर्थम् । दीर्घायुत्वाय चिरकालजीवनाय । तदेव विशेष्यते । शतशारदाय शतं शारदाः शरदृतुना युक्ताः संवत्सरा यस्मिन् । शतसंवत्सरपरिमितजीवनायेत्यर्थः ॥

अवस्थामें ज्येष्ठ (बड़े) को मारनेके प्रभाव वाले ज्येष्ठा नक्षत्र में † उत्पन्न हुआ पुत्र पिता भाई आदि बड़ोंका मारने-वाला होता है और हिंसन प्रभाव वाले मूल नक्षत्रों ‡ में उत्पन्न हुआ

---

† तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ५ । २ । ८ में कहा है, कि-"ज्येष्ठं

पुत्र सारे कुलका संहार करता है, अतः पापनक्षत्रमें उत्पन्न हुए इस कुमारको (हे अग्ने ! आप) यमके किये हुए मूलोच्छेदरूप कार्यसे रक्षित रखिये—अलग रखिये । इसको सौ बर्षके जीवन-रूप दीर्घायुके लिये सब देवता पापोंके पार पहुँचावें अर्थात् इसके दुर्लक्षणोंको शान्त करें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

व्या॒घ्रेह्न्यजनिष्ट वी॒रो न॑क्षत्र॒जा जाय॑मानः सु॒वीरः॑ ।
स मा व॑धीत् पि॒त॒रं॒ वर्ध॑मानो॒ मा मा॒त॒रं॒ प्र मि॑नी॒ज्ज-
नि॑त्रीम् ॥ ३ ॥

व्या॒घ्रे । अह्नि॑ । अ॒ज॒नि॒ष्ट॒ । वी॒रः । न॒क्ष॒त्र॒ऽजाः । जाय॑मानः ।
सु॒ऽवीरः॑ ।

एषां अवधिष्मेति तज्ज्येष्ठघ्नी—इस कुलके बड़ेको हम मारें ऐसा विचार रखने वाला नक्षत्र ज्येष्ठघ्नी (ज्येष्ठा) कहलाता है ॥

‡ मूलनक्षत्र एक ही होता है तथापि अधिष्ठानकी ओर ध्यान देकर यहाँ द्विवचन दिया है । इसका वर्णन द्वितीयकाण्डके अष्टम सूक्तके प्रथममंत्र "उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके" में है । यह मूल नक्षत्र भी वंशवेलकी मूलको उखाड़ने वाला है । इसकी व्युत्पत्ति करते हुए तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ५ । २ । ८ में कहा है, कि-मूलं एषां अवृक्षामेति तन्मूलबर्हिणी ॥ इनकी जड़को काटे यही मूलबर्हिणी (मूल) नक्षत्रका अर्थ है ॥" अर्थात् मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुआ पुत्र वंशको नष्ट करता है अतः मूलशांति करनी चाहिये ॥

सः । मा । व॒धी॒त् । पि॒त॑रम् । वर्ध॑मानः । मा । मा॒त॑रम् । प्र ।

मि॒नी॒त् । जनित्रीम् ॥ ३ ॥

व्याघ्रे व्याघ्रवत्क्रूरे अह्नि उदीरिते पापनक्षत्रे वीरः पुत्रः अजनिष्ट जातोभूत् । नक्षत्रजाः दुष्टनक्षत्रे जातः । ❀ जनी प्रादुर्भावे । "जनसनखनक्रमगमो विट्" । "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ❀ । जायमान एव सुवीरः शोभनवीर्ययुक्तो भवतु । स तथाविधः पुत्रः वर्धमानः उपचितावयवः प्रबुद्धः सन् पितरम् स्वजनकं मा वधीत् मा हन्तु । जनित्रीम् जनयित्रीम् उत्पादयित्रीं मातरं मा प्र मिनीत् मा प्रमिनातु हिनस्तु । ❀ मीङ् हिंसायाम् । लङि तिपि व्यत्ययेन ईत्वम् ❀ ॥

[इति।] चतुर्थं सूक्तम् ॥

व्याघ्रकी समान क्रूर पापनक्षत्र वाले दिनमें यह कुमार उत्पन्न हुआ है, अतएव यह उत्पन्न होते ही शोभन वीर्यसे युक्त होजावे और यह ऐसा पुत्र बड़ा होकर अपने पिताकी हिंसा न करे और अपनी माताकी भी हिंसा न करे ॥ ३ ॥

चतुर्थं सूक्त समाप्त (२८३) ॥

"इमं मे अग्ने" इति चतुर्ऋचस्य मातृनामगणे पाठाद् "दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात्" [कौ॰ १३. २] इत्यादिषु विनियोगा द्रष्टव्यः ॥

तथा गन्धर्वराक्षसाप्सरोभूतग्रहादिपीडाशान्तये घृताक्तसर्वौषधिहोमे चतुष्पथे ग्रहगृहीतशिरःस्थितमृन्मयकपालाग्निहोमादौ च अस्य विनियोगः । "मातृनाम्नोः सर्वसुरभिचूर्णान्यन्वक्तानि हुत्वा शेषेण प्रलिम्पति । चतुष्पथे च शिरसि दर्भेण्ड्वेऽङ्गारकपालेन्वक्तानि । [तितउनि] प्रतीपं गाहमानो वपति इतरोवसिञ्चति

पश्चाद्ध । आमपात्र ओप्य आसिच्य मौञ्जे त्रिपादे वयोनिवेशने प्रबध्नाति” इति [सूत्रम्] [कौ० ४. २] ॥

“मा ज्येष्ठम्” [११२] “त्रिते देवाः” [११३] इति तृचाभ्यां परिवित्तिपरिवेत्तृप्रायश्चित्तार्थम् उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य तयोः पर्वाणि मौञ्जपाशैर्बद्ध्वा आप्लावनम् अवसेकं वा कुर्यात् । अत्र “नदीनां फेनान् इत्यर्धर्चेन उत्तरपाशान् नदीफेने निदध्यात् । सूत्रितं हि । “मा ज्येष्ठं त्रिते देवा इति परिवित्तिपरिविविदानावुदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयति । अवसिञ्चति । फेनेषूत्तरान् पाशान् आधाय नदीनां फेनान् इति प्रप्लावयति सर्वैश्च प्रविश्य” इति [कौ० ५. १०] ॥

‘इमं मे अग्ने’ इस चतुर्ऋचका मातृनामगणमें पाठ है अतएव ‘दिव्यो गंधर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात्’ (कौशिकसूत्र १३ । २) आदिमें इसका विनियोग करना चाहिये ॥

तथा गंधर्व राक्षस अप्सरा भूत और ग्रह आदिकी पीड़ाकी शांतिके लिये किये जाने वाले घृतमें भीगी हुई सर्वौषधिके होममें और चौराहेमें ग्रहपीड़ित पुरुषके शिर पर स्थित मट्टीके कपालके अग्निहोम आदिमें भी इसका विनियोग होता है । इस विषयमें कौशिकसूत्रमें विधि लिखी है, कि–मातृनाम्नोः सर्वसुरभिचूर्णानि अन्वक्तानि हुत्वा शेषेण प्रलिम्पति । चतुष्पथे च शिरसि दर्भेण्ड्वेऽङ्गारकपालेऽन्वक्तानि । तितउनि प्रतीपं गाहमानो वपति इतरोऽवसिञ्चति पश्चाद्ध । आमपात्र ओप्य आसिच्य मौञ्जे त्रिपादे वयोनिवेशने प्रबध्नाति” ॥ मातृनामगणके सूक्तोंके घृतप्लुत सर्वसुरभिचूर्णकी आहुति दे, बाकी रहे हुएसे लेप करे । चौराहेमें दर्भ (कुशाओं) के एँडुए वाले कपालमें इन घृतप्लुतोंकी आहुति देय फिर अनेक छिद्रों वाली (तितउ) बुकनीमें

उसको डाले और दूर छिड़के आम (कच्चे) पात्रमें डाल तीन लड़ वाले मूँजके छींकेमें बाँधे ॥” (कौशिकसूत्र ४ । २) ॥

‘मा ज्येष्ठम्’ एकसौ बारहवें और ‘त्रितेदेवाः’ एकसौ तेरहवें इन दोनों तृचोंसे परिवित्ति परिवेत्ताके प्रायश्चित्तके लिये जलपूर्ण घटका सम्पातन और अभिमंत्रण करके उनके पर्वोंको मूँजके पाशोंसे बाँध कर आसावन वा अवसेक करे। यहाँ ‘नदीफेनान्’ इस आधी ऋचासे उत्तरपाशोंको नदीमें फेंक दे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“मा ज्येष्ठं त्रिते देवा इति परिवित्ति परिविविदानावुदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरासावयति । अवसिञ्चति । फेनेषूत्तरान् पाशान आधाय नदीनां फेनान् इति प्रप्लावयति सर्वैश्च प्रविश्य” (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

तत्र प्रथमा ॥

इ॒मं मे॑ अ॒ग्ने पुरु॑षं मुमुग्ध्य॒यं यो ब॒द्धः सुय॑तो॒ लाल॑पीति ।
अतोधि॑ ते कृणवद् भाग॒धे॑यं य॒दानु॑न्मदि॒तोस॑ति॒ १

इ॒मम् । मे॒ । अ॒ग्ने॒ । पुरु॑षम् । मु॒मु॒ग्धि॒ । अ॒यम् । यः । ब॒द्धः ।
सुऽय॑तः । लाल॑पीति ।
अत॑ः । अधि॑ । ते॒ । कृ॒ण॒व॒त् । भा॒ग॒ऽधेय॑म् । य॒दा । अनु॑त्ऽमदितः ।
अस॑ति ॥ १ ॥

हे अग्ने मे मदीयम् इमं पुरुषं मुमुग्धि रोगनिदानभूतात् पापाद् मोचय । ❀ मुचेर्व्यत्ययेन शपः श्लुः । “हुझल्भ्यो हेर्धिः” इति हेर्धिरादेशः ❀ । योयं पुरुषो बद्धः पापरूपैः पाशैर्बद्धः सन् सुयतः सुष्ठु नियमितः निरुद्धप्रसरः सन् लालपीति भृशं प्रलपति । अतः

अस्माद्धेतोः हे अग्ने ते तव भागधेयम् हविर्भागम् अधि कृणवत् अधिकं करोतु अयं पुरुषः। यथा येन प्रकारेण असौ अनुन्मदितः उन्मादरहितः गन्धर्वाप्सरोग्रहजनितबुद्धिस्खालित्यरहितः असति भवेत्। ❀ अस भुवि। व्यत्यययेन शपो लुगभावः ❀ ॥

हे अग्ने! मेरे इस पुरुषको आप रोगके कारणरूप पापसे छुड़ाइये कि–जो यह पापरूप पाशोंसे बँधा हुआ नियंत्रित होकर प्रलाप कर रहा है, हे अग्ने! यह पुरुष आपको अधिक हवि देय (अतः) जिस प्रकार यह उन्मादरोगरहित हो (तैसा करिये) ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अ॒ग्निष्टे॒ नि श॑मयतु॒ यदि॑ ते॒ मन॒ उद्यु॑तम् ।
कृ॒णोमि॑ वि॒द्वान् भे॑ष॒जं यथानु॑न्मदि॒तोस॑सि ॥ २ ॥

अ॒ग्निः । ते॒ । नि । श॒म॒य॒तु॒ । यदि॑ । ते॒ । मनः॑ । उत्ऽयु॑तम् ।
कृ॒णोमि॑ । वि॒द्वान् । भे॒ष॒जम् । यथा॑ । अनु॑त्ऽमदितः । अस॑सि २

हे गन्धर्वग्रहगृहीत ते त्वाम् अग्निः नि शमयतु सम्यग् ज्ञापयतु। उन्मादं निवर्तयत्वित्यर्थः। ❀ "शमो दर्शने" इति मित्त्वात् "मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ❀। ते त्वदीयं मनः यदि उद्युतम् ग्रहविकारेण उद्भ्रान्त वर्तते। यदिशब्दो हेतौ। यस्माद् एवं तस्माद् कारणाद् विद्वान् प्रतीकारं जानन्नहं ग्रहविकारस्य भेषजम् औषधं कृणोमि करोमि। यथा येन प्रकारेण त्वम् अनुन्मदितः उन्मादरहितश्चित्तभ्रमरहितः असमि भवसि। तथाहं चिकित्सामीत्यर्थः ॥

हे गंधर्वरूपी ग्रहसे जकड़े हुए! अग्निदेव तेरे उन्मादको दूर करें। तेरा मन ग्रहविकारसे उद्भ्रान्त होरहा है अत एव उसके हटानेके उपायको जानने वाला मैं ग्रहविकारकी औषधिको करता कि—जिससे तू चित्तके भ्रमसे शून्य होजावे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

दे॒वै॒न॒सादुन्म॑दित॒मुन्म॑त्तं॒ रक्ष॑स॒स्परि॑ ।
कृ॒णोमि॑ वि॒द्वान् भे॑ष॒जं य॒दानु॑न्मदि॒तोस॑ति ॥ ३ ॥

दे॒व॒ऽए॒न॒सात् । उत्ऽम॑दितम् । उत्ऽम॑त्तम् । रक्ष॑सः । परि॑ ।
कृ॒णोमि॑ । वि॒द्वान् । भे॒ष॒जम् । य॒दा । अनु॑त्ऽमदितः । अस॑ति ३

देवकृतम् एनः देवैनसम् । ❀ "अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि" इति अच् समासान्तः ❀ । देवकृतात् पापाद् उपघाताद् उन्मदितम् उन्मादं चित्तस्खलनं प्रापितं तथा रक्षसः रक्षःसकाशाद् ब्रह्मराक्षसादिग्रहणाद् उन्मत्तम् उन्मादेन परवशम् एनं परिप्राप्य विद्वान् तत्प्रतीकारज्ञोहं भेषजम् औषधं कृणोमि करोमि । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

देवकृत उपघातसे उन्मादको प्राप्त हुए तथा ब्रह्मराक्षस आदि के ग्रहणसे उन्मत्त हुए तुझ परवशके पास आकर मैं विद्वान् औषध करता हूँ, कि–जिससे तू चित्तभ्रमसे रहित होजाय॥३॥

चतुर्थी ॥

पुन॑स्त्वा दुरप्स॒र॒सः पुन॒रिन्द्र॒ः पुन॒र्भग॑ः ।
पुन॑स्त्वा दु॒र्विश्वे॑ दे॒वा यथानु॑न्मदि॒तोस॑सि ॥ ४ ॥

पुन॑ः । त्वा॒ । दुः॒ । अप्स॒र॒स॑ः । पुन॑ः । इन्द्र॑ः । पुन॑ः । भग॑ः ।
पुन॑ः । त्वा॒ । दुः॒ । विश्वे॑ । दे॒वाः । यथा॑ । अनु॑त्ऽमदितः । अस॑सि ४

हे उन्मादगृहीत पुरुष त्वा त्वाम् अप्सरसः । एतद् गन्धर्वादीनामपि उपलक्षणम् । "गन्धर्वाप्सरसो वा एतम् उन्मादयन्ति य उन्माद्यति" इति हि तैत्तिरीयकम् [तै० सं० ३. ४. ८. ४]।

उन्मादकारिण्योप्सरसः त्वां पुनः अदुः उन्मादपरिहारेण अस्मभ्यं दत्तवत्यः । इन्द्रश्च त्वा पुनरदात् । भगश्च पुनरदात् । किं बहुना । विश्वे सर्वे देवास्त्वां पुनः अदुः दत्तवन्तः । यथा येन प्रकारेण त्वम् अनुन्मदितः असति उन्मादविकाररहितो भवसि तथा अदुरिति संबन्धः ॥

हे उन्मादग्रस्त पुरुष ! तू जिस प्रकार उन्मादरहित रहे तिस प्रकार रहनेके लिये अप्सराओंने † तुझको उन्मादरहित करके देदिया है । इन्द्रदेवने भी लौटा दिया है, भगदेवताने भी लौटा दिया है और क्या सकलदेवताओंने तुझको लौटा दिया है ॥४॥

पञ्चमी ॥

मा ज्ये॒ष्ठं व॑धीद॒यम॑ग्न ए॒षां मू॑ल॒बर्ह॑णा॒त् परि॑ पाह्येनम् ।
स ग्रा॒ह्याः पाशा॒न् वि चृ॑त प्रजा॒नन् तुभ्यं॑ दे॒वा अनु॑
जानन्तु॒ विश्वे॑ ॥ १ ॥

मा । ज्ये॒ष्ठम् । व॒धी॒त् । अ॒यम् । अ॒ग्ने॒ । ए॒षाम् । मू॒ल॒ऽबर्ह॑णात् ।
परि॑ । पा॒हि॒ । ए॒न॒म् ।
सः । ग्राह्या॑ । पाशा॑न् । वि । चृ॒त॒ । प्र॒ऽजा॒नन् । तुभ्य॑म् । दे॒वाः ।
अनु॑ । जा॒न॒न्तु॒ । विश्वे॑ ॥ १ ॥

हे अग्ने अयं परिवित्तः एषां पितृमातृभ्रात्रादीनां मध्ये ज्येष्ठम् भ्रातरं मा वधीत् मा हन्तु । ❀ "लुङि च" इति वधादेशः ❀ ।

---

† तैत्तिरीयसंहिता ३ । ४ । ८ । ४ में कहा है, कि—"गंधर्वाप्सरसो वा एतं उन्मादयन्ति उन्माद्यति ॥—जो उन्मादग्रस्त होजाता है उसको गंधर्व वा अप्सरायें ही उन्मादग्रस्त करती है" ।

मूलबर्हणात् मूलोच्छेदनात् तद्धेतुभूताद्ध दोषाद् वा एनं परिवित्तं परि पाहि परिपालय । परिवेदनदोषं शमयेत्यर्थः । हे अग्ने स त्वं प्रजानन् विमोचनोपायं विद्वान् ग्राह्याः ग्रहणशीलायाः पिशाच्याः पाशान् बन्धनरज्जून् वि चृत विमुञ्च । ❀ चृती हिंसाग्रन्थनयोः ❀ । तुभ्यं विमोक्त्रे विश्वे सर्वे देवाः अनु जानन्तु विमोचने अनुज्ञां कुर्वन्तु ॥

हे अग्ने ! यह परिवित्ति पिता माता और भाईमेंसे किसी ज्येष्ठ अर्थात् बड़ेको न मारे । मूलोच्छेदनरूप दोषसे इस परिवित्तिकी रक्षा करिये अर्थात् परिवेदनके दोषको शान्त करिये । (बड़े भाईके विवाहसे पहिले जो छोटा भाई विवाह करता है वह परिवित्ति कहलाता है और ऐसा बड़ा भाई परिवेत्ता कहलाता है) हे अग्ने ! आप विमोचन—छुड़ाने—के उपायोंको जानने वाले हैं अतः ग्रहणशीला पिशाचीके पाशबंधोंको खोलिये । सब देवता इस खोलनेके लिये अनुज्ञा देवें ॥ १ ॥

षष्ठी ॥

उन्मु॑ञ्च॒ पाशां॒स्त्वम॑ग्न ए॒षां त्रय॑स्त्रि॒भिरुत्सि॑ता॒ येभि॒रास॑न् ।
स ग्रा॒ह्याः॒ पाशा॒न् वि चृ॑त प्रजा॒नन् पि॑तापु॒त्रौ मा॒तरं॑ मु॒ञ्च सर्वा॑न् ॥ २ ॥

उत् । मु॒ञ्च॒ । पाशा॑न् । त्वम् । अ॒ग्ने॒ । ए॒षाम् । त्रय॑ः । त्रि॒ऽभिः ।
उत्सि॑ताः । येभि॑ः । आस॑न् ।
सः । ग्रा॒ह्या॑ः । पाशा॑न् । वि । चृ॒त॒ । प्र॒ऽजा॒नन् । पि॒ता॒पु॒त्रौ ।
मा॒तर॑म् । मु॒ञ्च॒ । सर्वा॑न् ॥ ॥ २ ॥

हे अग्ने त्वम् एषां पित्रादीनां पाशान् परिवेदनदोषोद्भवान् बन्धकान् पाशान् उन्मुञ्च उन्मोचय । शमयेत्यर्थः । पाशा विशेष्यन्ते । माता पिता पुत्र इत्येते त्रयः येभिर्यैं [त्रिभिः] उत्तमाधममध्यमैः पाशैः परिवेदनदोषोद्भवैः उत्थिताः उत्क्रम्य अवस्थिता आसन् । तान् विमुञ्चेत्यर्थः । स ग्राह्या इति पूर्ववत् । एषाम् इति प्रागुक्तमेव विवृणोति पितापुत्राविति । पिता च पुत्रश्च पितापुत्रौ । ❀ "आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः ❀ । पितरं पुत्रं मातरम् अन्यानपि सर्वान् भ्रात्रादीन् परिवेदनदोषाद् मुञ्च । दोषं शमयेत्यर्थः ॥

हे अग्ने ! आप पितर आदिके परिवेदन (अर्थात् बड़े भाईके विवाहसे पहिले हुए छोटे भाईके विवाह) रूप दोषसे उत्पन्न हुए पाशोंको शान्त करिये । माता पिता और पुत्र ये तीनों जिन परिवेदनदोषजन्य उत्तम अधम और मध्यम पाशोंसे भली प्रकार बँधे हुए हैं उनको खोलिये । हे अग्निदेव ! आप खोलनेके उपायोंको जानने वाले हैं पिता पुत्र और माताको ग्रहणशीला पिशाची के पाशोंसे अलग करिये। इस परिवेदनके दोष पापसे मुक्त करिये २

सप्तमी ॥

येभि॒ः पाशै॒ः परि॑वित्तो॒ विब॒द्धोङ्गे॑अङ्ग॒ आर्पि॑त॒ उत्सि॑तश्च
वि ते मुं॑च्य॒न्तां वि॒मुचो॒ हि सन्ति॑ भ्रूण॒घ्नि पू॑षन्
दुरि॒तानि॑ मृद्व ॥ ३ ॥

येभि॑ः । पाशै॑ः । परि॑ऽवित्तः । विऽब॑द्धः । अङ्गे॑ऽअङ्गे । आर्पि॑तः ।
उत्सि॑तः । च॒ ।

वि । ते । मुच्यन्ताम् । विऽमुचः । हि । सन्ति । भ्रूणऽघ्नि ।

पूषन् । दुःऽइतानि । मृद्व ॥ ३ ॥

येभिः यैः पापरूपैः पाशैः परिवित्तः ज्येष्ठे अकृतदारपरिग्रहे पूर्वं गृहीतदारः पुरुषः अङ्गेअङ्गे अवयवेऽवयवे विबद्धः विविधं बद्धः आर्पितः आर्तिं प्रापितः [उत्थितः] उत्क्रान्तावस्थितिश्च भवति ते तथाविधाः पाशा वि मुच्यन्ताम् विसृज्यन्ताम् । हि यस्माद् विमुचः विमोक्कारो देवाः सन्ति विद्यन्ते । तस्माद् विमुच्यन्ताम् इति संबन्धः । हे पूषन् पोषक देव भ्रूणघ्नि भ्रूणहनि । भ्रूणशब्दो गर्भवचनः । "गर्भो भ्रूण इमौ समौ" इत्यभिधानात् । यद्वा "कल्पप्रवचनाध्यायी भ्रूणः" इति बौधायनस्मरणात् कल्पप्रवचनसहितसाङ्गवेदाध्यायी भ्रूणः । तं हतवान् भ्रूणहा । ❀ "ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु०" इति भूते क्विप् ❀ । तस्मिन् भ्रूणघ्नि दुरितानि परिवेदनोद्भवानि पापानि मृदव मार्जय । भ्रूणहा पूर्वमेव पापी तत्रैव पापायतने इदमपि पापं निवेशयेत्यर्थः ॥

हे देवताओं ! जिन पाशोंसे परिवित्त पुरुष अंग अंगमें बँधा हुआ पीड़ा पाकर उठ बैठता है उन पाशोंको आप खोलिये क्यों कि–देवता पाशोंको खोलनेवाले हैं अतः आप पाशोंको खोलिये, हे पूषा देव ! इन परिवेदनके कारण होने वाले पापोंको आप भ्रूणहत्या करने वालेमें (वा) बौधायनके वचनानुसार "कल्पप्रवचनसांगवेदाध्यायी भ्रूणः–कल्पप्रवचन सांग वेदका पढ़ने वाला भ्रूण होता है" उस श्रोत्रियका वध करने वालेमें संयुक्त करिये ॥ ३ ॥

अष्टमी ॥

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।

ततो॒ यदि॑ त्वा॒ ग्राहि॑रान॒शे तां ते॑ दे॒वा ब्रह्म॑णा नाशयन्तु

त्रि॒ते । दे॒वाः । अ॒मृ॒ज॒त॒ । ए॒तत् । एन॑ः । त्रि॒तः । ए॒न॒त् । म॒नु॒ष्ये॑षु ।
म॒मृजे॒ ।

त॑तः । यदि॑ । त्वा॒ । ग्राहि॑ः । आ॒न॒शे । ताम् । ते॒ । दे॒वाः । ब्रह्म॑णा ।
ना॒श॒य॒न्तु॒ ॥ १ ॥

अत्र इयम् आख्यायिका । पुरा खलु देवाः पुरोडाशादिकं हविः संभृत्य तल्लेपजनितपापमार्जनाय एकतो द्वितस्त्रित इति त्रीन् पुरुषान् आप्याख्यान् अग्न्युदकसंपर्कवशाज्जनयामासुः । तेषु च तत् पापं निमृष्टवन्तः । ते च आप्याः सूर्याभ्युदितादिषु परंपरया पापं निमृष्टवन्त इति । तद् एतत् सर्वं तैत्तिरीये समाम्नायते । "देवा वै हविर्भृत्वाब्रुवन्" [तै० ब्रा० ३. २, ८. ९] इति प्रक्रम्य "ते देवा आप्त्येष्वमृजत । आप्त्या अमृजत सूर्याभ्युदिते । सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिम्रुक्ते । सूर्याभिनिम्रुक्तः कुनखिनि । कुनखी श्यावदति । श्यावदन्नग्रदिधिषौ । अग्रदिधिषुः परिवित्ते । परिवित्तो वीरहणि । वीरहा । ब्रह्महणि । तद् ब्रह्महणं नात्यच्यवत" इति [तै० ब्रा० ३. २. ८. १२] ॥ तद् इदम् उच्यते । एतत् परिवित्तसमवेतम् एनः पापं पूर्वं देवास्त्रिते एतत्संज्ञे आप्त्ये अमृजत निमृष्टवन्तः । स च त्रितः एतत् स्वात्मनि समवेतं पापं मनुष्येषु सूर्याभ्युदितादिषु ममृजे मृष्टवान् निमार्जनेन स्थापितवान् । ततः तस्माद्धेतोः हे परिवित्त त्वा त्वां ग्राहिः ग्रहणशीला पापदेवता यदि । निपातानाम् अनेकार्थत्वाद् अत्र यदिशब्दो यच्छब्दार्थे । या ग्राहिरानशे प्राप ते त्वदीयां तां ग्राहिं प्रागुक्ता देवाः ब्रह्मणा मन्त्रेण नाशयन्तु ॥

इस परिवित्तमें होने वाले पापको पहिले देवताओंने † त्रित नाम वाले आप्त्यमें स्थापित किया या उन त्रितने अपनेमें समवेत इस पापको सूर्य निकलने पर भी सोते रहने वाले मनुष्योंमें संक्रमित कर दिया, इस कारण हे परिवित्त । तुझको जो ग्रहणशीला पापदेवता प्राप्त होगई है उसको पूर्वोक्त देवता और ब्राह्मण मंत्रसे नष्ट करें ॥ १ ॥

नवमी ॥

म॒रीची॑र्धू॒मान् प्र वि॑शानु पाप्मन्नुदा॒रान् ग॑च्छो॒त वा॑
नीहा॒रान् ।
न॒दी॒नां फेना॒ँ अनु॒ तान् वि न॑श्य भ्रूण॒घ्नि पू॑षन्
दुरि॒तानि॑ मृक्ष्व ॥ २ ॥

---

† यहाँ पर यह आख्यायिका है, कि–प्राचीन समयमें देवताओंने पुरोडाश और हविको भली प्रकार धारण किया, फिर उसके लेपसे उत्पन्न हुए पापका मार्जन करनेके लिये अग्नि और जलके संपर्कसे एकत द्वित और त्रित नामक आप्त्योंको उत्पन्न किया और उनमेंसे उस पापको थातीकी भाँति रख दिया, उन्होंने उसको सूर्याभ्युदितमें स्थापित किया, सूर्याभ्युदितने सूर्याभिनिम्रुक्तमें स्थापित किया, सूर्याभिनिम्रुक्तने कुनखी–कुरूप नखों वाले–में स्थापित किया, कुनखीने श्यावदत–दूषित दाँत वाले–में स्थापित किया, श्यावदतने अग्रदिधिषुमें स्थापित किया, अग्रदिधिषुने परिवित्तमें स्थापित किया, परिवित्तने वीरहमें स्थापित किया, वीरहत्यारेने ब्रह्महत्यारेमें स्थापित किया वह पाप ब्रह्महत्यारेसे दूर न होसका । इस आख्यायिकाका तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । २ । ८ । १२ में वर्णन है ।

मरीचीः । धूमान् । प्र । विश । अनु । पाप्मन् । उत्ऽआरान् ।
गच्छ । उत । वा । नीहारान् ।
नदीनाम् । फेनान् । अनु । तान् । वि । नश्य । भ्रूणऽघ्नि ।
पूषन् । दुःऽइतानि । मृक्ष्व ॥ २ ॥

हे पाप्मन् परिवेदनजनितपाप मरीचीः अग्निसूर्यादिप्रभाविशेषान् अनु प्र विश । परिवित्तं विसृज्य प्रगच्छेत्यर्थः । अथवा धूमान् अग्नेरुत्पन्नान् अनु प्र विश । यद्वा उदारान् ऊर्ध्वं गतान् मेघात्मना परिणतांस्तान् गच्छ प्रविश । उत वा अपि वा तज्जन्यान् नीहारान् अवश्यायान् गच्छ । ❀ निपूर्वात् हरतेः कर्मणि घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः ❀ । तथा च तैत्तिरीये सृष्टिं प्रक्रम्य आम्नायते । "तस्मात् तेपानाद् धूमोजायत । तद् भूयोतप्यत । तस्मात् तेपानान्मरीचयोजायन्त । तस्मात् तेपानाद् उदारा अजायन्त । तद् भूयोतप्यत । तद् अभ्रम् इव समहन्यत" इति [तै० ब्रा० २. २. ९. २] । हे पाप्मन् नदीनाम् सरितां तान् प्रसिद्धान् फेनान् फेनिलान् प्रवाहान् अनु वि विद्रव अनुप्रविश्य विविधं गच्छ । ❀ "नेर्विशः" इति आत्मनेपदम् । व्यत्ययेन शपो लुक् ❀ । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

हे परिवेदनजनित पाप ! तू परिवित्तको छोड़ कर अग्नि सूर्य आदिकी प्रभाओंमें प्रवेश कर, अथवा अग्निसे उत्पन्न हुए धूममें प्रवेश कर, अथवा ऊपर गए हुए मेघरूपसे परिणामको प्राप्त हुए उन धुओंमें प्रवेश कर अथवा उनसे उत्पन्न हुए नीहार—कुहरे—में प्रवेश कर †। हे पाप्मन् ! तू नदियोंके फेनयुक्त प्रवाहोंको लक्ष्यमें रखकर उनमें अनेक रीतिसे प्रवेश कर ॥ २ ॥

---

† तैत्तिरीयब्राह्मण २ । २ । ९ । २ में सृष्टिका आरम्भ

दशमी ॥

द्वा॒द॒शधा॒ निहि॑तं त्रि॒तस्याप॑मृष्टं मनु॒ष्यैनसानि॑ ।
त॒तो॑ यदि॑ त्वा॒ ग्राहि॑रान॒शे तां ते॑ दे॒वा ब्रह्म॑णा नाशयन्तु

द्वा॒द॒श॒ऽधा । निऽहि॑तम् । त्रि॒तस्य॑ । अप॑ऽमृष्टम् । म॒नु॒ष्य॒ऽए॒न॒सानि॑ ।
ततः॑ । यदि॑ । त्वा॒ । ग्राहिः॑ । आ॒न॒शे । ताम् । ते॒ । दे॒वाः । ब्रह्म॑णा ।
ना॒श॒य॒न्तु ॥ १० ॥

त्रितस्य आप्त्यस्य संबन्धि प्रागुक्तरीत्या अपमृष्टं तद् एनः द्वादशधा निहितम् द्वादशसु स्थानेषु स्थापितम् । प्रथमं देवेषु पश्चात् त्रिषु आप्त्येषु ततः सूर्याभ्युदितादिषु अष्टसु एवं द्वादशसु स्थानेषु निक्षिप्तम् । तद् एनः मनुष्यैनसानि भवन्ति मनुष्यसमवेतानि इदानींतनानि पापानि संपद्यन्ते । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

[इति] सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये
षष्ठकाण्डे एकादशोनुवाकः ॥

आप्त्य त्रितका वह पाप बारह (पहिले देवताओंमें, फिर तीन आप्त्योंमें तदनन्तर सूर्याभ्युदित आदि आठमें इस प्रकार) स्थानोंमें स्थापित किया गया है । वहपाप इस समय मनुष्यमें संयुक्त होजाते हैं । हे पुरुष ! यदि तुझे ग्रहणशीला पिशाचीने पकड़ लिया है तो पूर्वोक्त देवता और ब्राह्मण इस मन्त्रसे उस को नष्ट करें ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (२८६)

अथर्ववेदसंहिता के छठे काण्डमें ग्यारहवाँ अनुवाक समाप्त ॥

करके कहा है, कि—तस्माद् तेऽपानाद् धूमोऽजायत । तद् भूयोऽतप्यत । तस्माद तेपानान्मरीचयोजायन्त तस्माद् तेपानाद उदारा अजायन्त । तद् भूयोऽतप्यत । तद् अभ्रं समहन्यत ।”

द्वादशेनुवाके पञ्च सूक्तानि । अस्यानुवाकस्य आचार्यमरणे आज्यसमित्पुरोडाशादिहोमे विनियोगः ॥

तथा खदाशयान्नप्रायश्चित्तार्थं याज्ञिकः खदाशयानां व्रीहियवतिलं कृत्वा अनेनानुवाकेन जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि पाकयज्ञतन्त्रं कृत्वा वैवस्वतदेवताकं चरुम् अनेनानुवाकेन जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि खदाशयान्नं शरावचतुष्टयपरिमितम् अनेन अनुवाकेन अभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय प्रयच्छेत् ॥

सूत्रितं हि । “देवहेडनेन मन्त्रोक्तम् । आचार्यायोपदधीत । खदाशयस्यावपते । वैवस्वतं यजते । चतुःशरावं ददाति” इति [कौ० ५. १०] ॥

तथा सवान् आधास्यमानः सवाग्नौ अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् समिधः शकलान् वा आदध्यात् । सूत्रितं हि । “अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्” इति प्रक्रम्य “तस्मिन् देवहेडनेनाज्यं जुहुयात् समिधोभ्यादध्यात् शकलान् वा” इति [कौ० ८. १] ॥

तथा अन्त्येष्टौ चिताग्नावादीप्ते अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् ॥

“याम्यां यमभये” [न० क० १७] इति विहितायां याम्याख्यायां महाशान्तौ “यद् देवा देवहेडनम्” इति अनुवाकम् आवपेत् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । “यद् देवा देवहेडनम् इति याम्यायाम्” इति [न० क० १८] ॥

तथा सवयज्ञेषु ब्राह्मौदनिकाग्नौ “यद् देवा देवहेडनम्” [६. ११४] “यद् विद्वांसः” [६. ११५] “अपमित्यम् अप्रतीत्तम्” [६. ११७] एतैस्त्रिभिस्तृचैः पूर्णाहुतिं जुहुयात् । सवयज्ञं प्रक्रम्य सूत्रितम् । “ब्राह्मौदनिकम् अग्निं मथित्वा यद् देवा देवहेडनम् यद् विद्वांसो यदविद्वांसः अपमित्यम् अप्रतीत्तम्

इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे दातरि पूर्णहोमं जुहुयात्” इति [कौ० ८. ८] ॥

तथा “यद् देवा देवहेडनम्” इति द्वाभ्यां तृचाभ्याम् अग्निष्टोमे तृतीयसवने आदित्यग्रहहोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । अग्निष्टोमं प्रक्रम्य वैताने सूत्रितम् । “आदित्यग्रहहोमं यद् देवा देवहेडनं द्वाभ्याम्” इति [वै० ३. १२] ॥

तथा अग्निष्टोम एव तृतीयसवनान्ते आभ्यां तृचाभ्यां सर्वप्रायश्चित्तहोमान् कुर्यात् । तद् उक्तं वैताने । “आग्नीध्रीये सर्वप्रायश्चित्तीयान् जुहोति” इति प्रक्रम्य “देवहेडनस्य सूक्ताभ्यां च” इति [वै० ३. १३] ॥

अत्र “यद् विद्वांसः” इत्यनेन तृचेन आग्रयणेष्टौ वैश्वदेवं चरुं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । आग्रयणेष्टिं प्रक्रम्य “यद् विद्वांसः [६.११५] द्यावापृथिवी उपश्रुत्या [२.१६. २] सोमो वीरुधाम् [५.२४.७] इति वैश्वदेवद्यावापृथिव्यसौम्यान्” इति [वै० २. ४] वैताने सूत्रितत्वात् ॥

बारहवें अनुवाकमें पाँच सूक्त हैं । इस अनुवाकका आचार्यमरणके घृत समिधा पुरोडाश आदिके होममें विनियोग होता है।

तथा खाट पर लेट कर अन्न खाने वालों का प्रायश्चित करने के लिये याज्ञिक खाट पर लेट कर खाने वालोंके धान जौं और तिलोंको इस अनुवाकसे होमे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें पाकयज्ञतन्त्रको करके वैवस्वत देवता वाले चरुकी इस अनुवाकसे आहुति देय ।

तथा इसी कर्ममें खट्वाशयके चार सकोरोंमें भरे हुए अन्नको इस अनुवाकसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंको दे देय ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है कि– ‘देवहेडनेन मंत्रोक्तम् । आचार्यायोपदधीत । खदाशयस्यावपते । वैवस्बतं यजते । चतुः शरावं ददाति ।” (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

तदनन्तर सवोंका आधान करता हुआ सवाग्निमें इस अनुवाकसे घृतकी आहुति देय वा समिधाओंके टुकड़ोंको रक्खे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन" इति प्रक्रम्य "तस्मिन् देवहेडनेनाज्यं जुहुयात् समिधोऽभ्यादध्यात् शकलान् वा (कौशिकसूत्र ८। १)॥

तथा अन्त्येष्टिकर्ममें चितामें अग्निके प्रज्वलित होने पर इस अनुवाकसे घृतकी आहुति देय।

"याम्याम् यमभये ॥–यमका भय होने पर याम्या शान्तिको करे" इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित याम्या नाम वाली महाशान्तिमें "यद्द देवा देवहेडनम्" इस अनुवाकको पढ़े। इसी बात को नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि–"यद्द देवा देवहेडनम् इति याम्यायाम्" (नक्षत्रकल्प १८) ॥

तथा सवयज्ञोंकी ब्रह्मौदनिकाग्निमें "यद्द देवा देवहेडनम्" इस छठे काण्डके एकसौ चौदहवें, "यद्द विद्वांसः" इस छठे कांड के एकसौ पन्द्रहवें और "अपमित्यम् अप्रतीत्तम्" इस छठे कांड के एकसौ सत्रहवें–इन तृचोंसे पूर्णाहुति देय। सवयज्ञका आरंभ करके सूत्रमें कहा है, कि—"ब्राह्मौदनिकं अग्निं मथित्वा यद्द देवा देवहेडनम् यद्द विद्वांसो यदविद्वांसः अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे दातरि पूर्णहोमं जुहुयात्" (कौशिकसूत्र ८। ८) ॥

तथा "यद्द देवा देवहेडनम्" इन दो तृचोंसे अग्निष्टोमके तृतीयसवनमें आदित्यग्रहहोमका ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे। अग्निष्टोमका आरंभ करके वैतानसूत्रमें कहा, कि—"आदित्यग्रहहोमं यद्द देवा देवहेडनम् द्वाभ्याम्" (वैतानसूत्र ३। १२) ॥

तथा अग्निष्टोममें ही तृतीयसवनके अन्तमें इन दोनों तृचोंसे सर्वप्रायश्चितहोमोंको करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–

"आग्नीध्रीये सर्वप्रायश्चित्तीयान् जुहोति" इति प्रक्रम्य "देवहेडनस्य सूक्ताभ्यां च" (वैतानसूत्र ३ । १३) ॥

यहाँ "यद् विद्वांसः" इस तृचसे आग्रयणेष्टिमें वैश्वदेव चरु का ब्रह्मा अनुमन्त्रण करे । आग्रयणेष्टिका आरम्भ करके वैतान सूत्र २ । ४ में कहा है, कि–"यद् विद्वांसः (६ । ११५) द्यावापृथिवी उपश्रुत्या (२ । १६ । २) सोमो वीरुधाम् (५।२४।७) वैश्वदेवद्यावापृथिव्यसौम्यान् ॥–इन तीनों तृचोंसे यथाक्रम वैश्वदेव द्यावापृथिवी और सोम देवताके चरुका अनुमन्त्रण करे" ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद् दे॑वा देव॒हेड॒नं देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम् ।
आदि॑त्या॒स्तस्मा॑न्नो यू॒यमृ॒तस्य॒र्तेन॑ मुञ्चत ॥ १ ॥

यत् । दे॒वा॒ः । दे॒व॒ऽहे॑डनम् । देवा॑सः । च॒कृ॒म । व॒यम् ।
आ॑दित्याः । तस्मा॑त् । न॒ः । यू॒यम् । ऋ॒तस्य॑ । ऋ॒तेन॑ । मु॒ञ्च॒त॒ १

हे देवाः अग्न्यादयः देवहेलनम् । ❀ हेलतिः क्रुध्यतिकर्मा ❀ । देवाः क्रुध्यन्ति येन पापेन । ❀ करणे ल्युट् ❀ । देवानां क्रोधकरं यत् पापं देवासः देवाः देवनशीला इन्द्रियपरवशाः सन्तः वयं चकृम कृतवन्तः । ❀ देवास इति । "आज्जसेरसुक्" । "देवसेनमेषादयः पचादिषु द्रष्टव्याः" इति परिगणनाद् इगुपधलक्षणं कं बाधित्वा अजन्तो देवशब्दः सर्वत्र अन्तोदात्तः । इह तु व्यत्ययेन आद्युदात्तत्वम् ❀ । हे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः यूयं तस्मात् तथाविधात् पापाद् ऋतस्य ऋतेन । इति ऋतं यज्ञस्य सत्यस्य च नामधेयम् । यज्ञसंबन्धिना सत्येन । यद्वा ऋतम् सत्यं परं ब्रह्म तत्संबन्धिना प्रणवादिरूपेण मन्त्रेण साधनेन नः अस्मान् मुञ्चत वियोजयत । इन्द्रियचापलेन उपार्जितं कृत्स्नं पापं मन्त्रसामर्थ्येन निर्दहतेत्यर्थः ॥

हे अग्नि आदि देवताओं ! देवता जिस पापसे क्रोधमें भर जाते हैं उस पापको हम देवनशील-क्रीड़ाशील-इन्द्रियोंके अधीन होकर कर चुके हैं। हे अदितिके पुत्र आदित्य देवताओं ! उस पापसे आप हमको यज्ञसम्बन्धी सत्यके द्वारा (वा) परब्रह्मसंबंधी प्रणव आदि मन्त्रके साधनसे, मुक्त करिये। अर्थात् इन्द्रियोंकी चपलतासे एकत्रित हुए पूर्ण पापको आप मन्त्रशक्तिसे नष्ट करिये १

द्वितीया ॥

ऋ॒तस्य॒र्तेना॑दित्या॒ यज॑त्रा मु॒ञ्चते॒ह नः॑ ।

य॒ज्ञं यद् य॑ज्ञवाहसः॒ शिक्ष॑न्तो॒ नोपशे॑कि॒म ॥ २ ॥

ऋ॒तस्य॑ । ऋ॒तेन॑ । आ॒दि॒त्याः॒ । यज॑त्राः । मु॒ञ्चत॑ । इ॒ह । नः॒ ।

य॒ज्ञम् । यत् । य॒ज्ञ॒ऽवा॒ह॒सः॒ । शिक्ष॑न्तः । न । उ॒प॒ऽशे॒कि॒म ॥ २ ॥

हे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः । ❀ "दित्यदित्या०" इत्यादिना अपत्येर्थे प्राग्दीव्यतीयो ण्यप्रत्ययः ❀ । यजत्राः । ❀ "अमिनक्षीत्यादिना [उ० ३. १०५] यजेरत्रन् प्रत्ययः ❀। यष्टव्याः यूयम् ऋतस्य यज्ञस्य संबन्धिना ऋतेन सत्येन । यद्वा ऋतशब्दद्वयेनापि सत्यम् उच्यते । सत्यस्य सत्येन परब्रह्मणा । श्रूयते हि । "तद् एतत् सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषाम् एष सत्यम्" इति [बृ० आ० २. १. २०]। तेन परब्रह्मणा ध्यातव्येन इह अस्मिन् कर्मणि नः अस्मान् मुञ्चत कर्माधिकारविघातकात् सर्वस्मात् पापाद् वियोजयत। ध्यायमानं हि परं ब्रह्म सर्वस्य पापस्य निवर्तकम् । स्मर्यते हि ।

उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सु च ।
प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥

इति । हे यज्ञवाहसः यज्ञस्य प्रापका निर्वर्तका देवाः वयं यज्ञम्

ज्योतिष्टोमादिकं शिक्षन्तः शक्तुं निष्पादयितुम् इच्छन्तः यत् यस्मात् पापाद्धेतोः नोपशेकिम शक्ताः समर्था न भवेम । तस्मात् पापाद्द मुञ्चतेत्यर्थः । ❀ यज्ञवाहस इति । वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति वहेरसुन् प्रत्ययः । तत्र णिदित्यनुवृत्तेरुपधावृद्धिः । शिक्षन्त इति । शक्लृ शक्तौ । अस्मात् सनि "सनि मीमा०" इत्यादिना अचः स्थाने इस् आदेशः । "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः । शेकिमेति । तस्मादेव धातोश्छान्दसे लिटि एत्वाभ्यासलोपौ । क्रादिनियमाद्द इट् ❀ ॥

हे अदितिके पुत्र पूजनीय देवताओं ! आप यज्ञसम्बन्धी सत्य से और सत्यके भी सत्य ‡ ध्यान करने योग्य परब्रह्म (के ध्यान) के द्वारा हमको इस कर्मके अधिकारके विघातक पापसे अलग करिये । हे यज्ञको सम्पन्न करने वाले देवताओं ! हम ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंको करनेकी इच्छा करके भी जिस पापके कारण उसको करनेमें समर्थ नहीं होते हैं उस पापसे आप हमको मुक्त करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

मेद॑स्वता॒ यज॑मानाः स्रु॒चाज्या॑नि॒ जुह्व॑तः ।
अ॒का॒मा वि॑श्वे वो दे॒वाः शिक्ष॑न्तो॒ नोप॑ शेकि॒म ३

मे॑दस्वता । यज॑मानाः । स्रु॒चा । आज्या॑नि । जुह्व॑तः ।

---

‡ परब्रह्मका ध्यान करना सब पापोंको हटाने वाला है । कहा भी है, कि—

उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सु च ।
प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥

सम्पूर्ण उपपातक और महापातकोंमें एक प्रहर रातसे ब्रह्मका ध्यान करे ।

अकामाः । विश्वे । वः । देवाः । शिक्षन्तः । न । उप । शेकिम ॥३॥

मेदस्वता । चतुर्थो धातुर्मेदः । तद्वता स्फीतावयवेन पशुना यजमानाः यागं निष्पादयन्तः स्रुचा जुह्वा आज्यानि जुह्वतः आहवनीये प्रक्षिपन्तः एवंभूता वयम् हे विश्वे देवाः वः युष्माकम् अकामाः कामनारहिताः । पापवशाद् भयमाना इत्यर्थः । शिक्षन्तः शक्तुं यागानुष्ठानं कर्तुम् इच्छन्तः नोप शेकिम । यस्मात् पापात् न शक्ता भवाम तस्मात् पापान्मुञ्चतेति शेषः ॥

हे विश्वेदेवताओं ! हम मेद वाले पशुके द्वारा यागको पूर्ण करना चाह कर, और स्रुवेसे घृतकी आहुति देना चाह कर भी पापवश डरते हुए यज्ञ नहीं कर पाते हैं, उस पापसे आप हमको छुड़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ १ ॥

यत् । विद्वांसः । यत् । अविद्वांसः । एनांसि । चकृम । वयम् ।
यूयम् । नः । तस्मात् । मुञ्चत । विश्वे । देवाः । सऽजोषसः १

यत् पापनिमित्तं विद्वांसः जानन्तः यच्च पापनिमित्तम् अविद्वांसः अजानानाः ज्ञानाद् अज्ञानाद् वा वयम् एनांसि पापानि चकृम कृतवन्तः हे विश्वे देवाः सजोषसः सह प्रीयमाणा यूयं तस्मात् प्रागुक्तात् पापाद् नः अस्मान् मुञ्चत ॥

हे विश्वेदेवताओं ! हमने जानकारीमें वा अनजानमें जिन पापोंको कर लिया, हे विश्वेदेवाओं ! उन पापोंसे आप हमको मुक्त करिये, क्योंकि—आप हमसे प्रीति करने लगे हैं ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥ २ ॥

यदि । जाग्रत् । यदि । स्वपन् । एनः । एनस्य । अकरम् ।
भूतम् । मा । तस्मात् । भव्यम् । च । द्रुपदात्ऽइव । मुञ्चताम् २

एनः पापं प्रियम् अस्य एनसि साधुरिति वा एनस्यः अज्ञानाद् ईदृशोहं जाग्रत् जागरावस्थापन्नः सन् । यदिशब्दः यद् इत्यर्थे । यद् एनः पापम् अकरम् कृतवान् अस्मि । तथा स्वपन् स्वप्नावस्थां प्राप्तः सन् यदि [यत्] पापं कृतवान् अस्मि । ❀ जाग्रत् इति । जागृ निद्राक्षये । अस्मात् लटः शत्रादेशः । अदादित्वात् शपो लुक् । “जक्षित्यादयः षट्” इति अभ्यस्तत्वाद् “नाभ्यस्ताच्छतुः” इति नुमभावः । अकरम् इति । “कृमृदृरुहिभ्यः०” इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । तस्माद् उभयविधात् पापाद् भूतम् लब्धसत्ताकं प्राणिजातम् । भविष्यत्सत्ताकं प्राणिजातं भव्यम् । ❀“भव्यगेय०” इत्यादिना “अचो यत्” इति कर्तरि यत् । “यतोनावः” इति उदात्तत्वम् ❀ । यद्वा इमौ लोकौ भूतभव्यशब्दवाच्यौ । तथा च तैत्तिरीयकम् । “भूताय स्वाहा भविष्यते स्वाहेति भूताभव्यौ होमौ जुहोति । अयं वै लोको भूतम् असौ भविष्यत्” इति [तै० ब्रा० ३, ८. १८. ५] । ते उभे भूतभव्ये मा मां द्रुपदादिव । पादबन्धनार्थो द्रुमो द्रुपदः । तस्मादिव मुञ्चताम् वियोजयताम् ॥

अज्ञानवश पापको प्रिय समझता हुआ मैं जागृत अवस्थामें वा स्वप्नमें जो पाप कर चुका हूँ उन दोनों पापोंसे वर्तमान और भविष्यत् मुझे इस प्रकार मुक्त कर दें जिस काठके पादबंधनसे मनुष्यको छुड़ाया करते हैं ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥ ३ ॥

द्रुपदात्ऽइव । मुमुचानः । स्विन्नः । स्नात्वा । मलात्ऽइव ।
पूतम् । पवित्रेणऽइव । आज्यम् । विश्वे । शुम्भन्तु । मा । एनसः ३

द्रुपदादिव काष्ठमयात् पादबन्धनादिव पापाद् मुमुचानः विमुच्यमानः । ❀ व्यत्ययेन यकः श्लुः । यद्वा मुचेर्लिटः कानच् । व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ । तथा स्विन्नः स्वेदयुक्तः पुरुषः स्नात्वा अप्सु निमज्ज्य मलादिव यथा देहाश्रिताद् बाह्यमलाद् वियुज्यते एवं पापाद् वियुज्यमानः । भवानीति शेषः । तथा पवित्रेण पवनसाधनेन पूतम् शोधितम् आज्यमिव तद् यथा निष्कल्मषं भवति एवं मा मां विश्वे सर्वे देवाः एनसः पापाद् शुम्भन्तु शुद्धं कुर्वन्तु ॥

[इति] द्वादशेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिस प्रकार काठके पाद बंधनसे छूटा हुआ पुरुष और पसीनेमें भीगा हुआ पुरुष, जलमें स्नान करके बाह्यमलसे छूटा हुआ, पुरुष होता है इसीप्रकार मैं पापसे मुक्त होता हैं । पवित्र करनेके साधन अँगोछे चलनी आदिसे पवित्र हुआ घृत जैसे मलिनता-रहित होजाता है तैसे ही सब देवता मुझको पापसे शुद्ध करें ३

बारहवें अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२८८) ॥

“यद् यामं चक्रुः” इति तृचेन घृततैलमधूनां परिमितानां वृद्धिक्षयलक्षणाद्भुतप्रायश्चित्तार्थम् आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । “अथ यत्रैतत् सर्पिर्वा तैलं वा मधु वा विस्पन्दयते यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्र इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः” इति [कौ० १३. ४०] ॥

"अपमित्यम् अप्रतीत्तम्" इति त्रिभिस्तृचैः उत्तमर्णे मृते सति तत्पुत्राय सगोत्राय वा धनम् अभिमन्त्र्य ऋणी दद्यात् ॥

तथा अनेन तृचत्रयेण द्रव्यम् अभिमन्त्र्य उत्तमर्णस्य श्मशानभूमौ चतुष्पथे वा निक्षिपेत् ॥

तथा तृचत्रयेण द्रव्यम् अभिमन्त्र्य कक्षेषु निक्षिप्य तान् अग्निना दीपयेत् ॥

सूत्रितं हि । "अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्युत्तमर्णे मृते तदपत्याय प्रयच्छति । सगोत्राय । श्मशाने निवपति । चतुष्पथे च । कक्षान् आदीपयति" इति [कौ० ५. १०] ॥

तथा अस्य तृचत्रयस्य सर्वयज्ञेषु पूर्णहोमे विनियोग उक्तः ॥

तथा लौकिकाग्निना शालादाहे तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचत्रयेण व्रीहियवगोधूमादिमिश्रधान्यैः पूर्णाञ्जलिं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतद् ग्राम्योऽग्निः शालां दहत्यपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैर्मिश्रधान्यस्य पूर्णाञ्जलिं हुत्वा" इति [कौ० १३.४१] ॥

तथा अग्निष्टोमावसाने गार्हपत्याग्नेररण्योरात्मनि वा समारोपणानन्तरम् उपोष्यमाणां वेदिम् अपमित्यम् इत्यनेन अनुमन्त्रयेत । "अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इति वेदिम् उपोष्यमाणाम्" इति वैतानात् [वै० ३. १४] ॥

"यद् यामं चक्रुः" इस तृचसे परिमित घृत तैल मधुकी वृद्धिक्षयरूप अद्भुतका प्रायश्चित्त करनेके लिये घृतकी आहुति देय। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"अथ यत्रैतत् सर्पिर्वा तैलं वा मधु वा विस्पन्दयते यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्र इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" (कौशिकसूत्र १३।४०)॥

कर्ज देने वालेके मरने पर ऋणी "अपमिन्यं अप्रतीत्तम्" इन तीन तृचोंसे उसके पुत्रको वा सगोत्रको धन अभिमन्त्रित करके देदेय ॥

तथा इन तीन तृचोंसे द्रव्यको अभिमन्त्रित करके कर्ज देने वालेकी श्मशानभूमिमें वा चौराहेमें धर देय ।

तथा इन तीन तृचाओंसे द्रव्यको अभिमन्त्रित करके घास फूँसमें फेंक कर उसको अग्निसे जला देवे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अपमित्यम् अप्रतीत्तं इत्युत्तमर्णे मृते तदपत्याय प्रयच्छति । सगोत्राय । श्मशाने निवपति । चतुष्पथे च । कक्षान् आदीपयति” (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

इन तीनों तृचोंका सत्रयज्ञोंके पूर्णहोममें विनियोग होता है ।

तथा लौकिक अग्निसे मकानके जलने पर उसकी शांतिके लिये इन तीनों तृचोंसे धान जौं गेहूँ आदि मिश्रधान्योंसे पूर्णाञ्जलिकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि अथ यत्रैतद्ग्राम्योग्निः शालां दहत्यपमित्यम् अप्रतीत्तं इत्यैतैस्त्रिभिः सूक्तैर्मिश्रधान्यस्य पूर्णाञ्जलिं हुत्वा” (कौशिकसूत्र १३।४१)

तथा अग्निष्टोमके अन्तमें गार्हपत्याग्निका अरणियोंमें वा अपनेमें अपने आप ही समावेश होनेके अनन्तर बटोरी जाती हुई वेदीका ‘अपमित्यम्’ से अनुमंत्रण करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १४ का प्रमाण भी है, कि—‘अपमित्यं अप्रतीत्तं’ इति वेदिम् उपोष्यमाणाम्” ।

तत्र प्रथमा ॥

यद् या॒मं च॒क्रुर्नि॒खन॑न्तो॒ अग्रे॒ कार्षी॑वणा अन्न॒विदो॒
न वि॒द्यया॑ ।
वै॒व॒स्व॒ते राज॑नि॒ तज्जु॑हो॒म्यथ॑ य॒ज्ञियं॒ मधु॑मदस्तु॒ नोन्न॑म्

यत् । या॒मम् । च॒क्रुः । नि॒ऽखन॑न्तः । अग्रे॑ । कार्षी॑वणाः । अ॒न्न॒ऽ-
विदः॑ । न । वि॒द्यया॑ ।

वै॒व॒स्व॒ते । रा॒ज॑नि । तत् । जु॒हो॒मि॒ । अथ॑ । य॒ज्ञिय॑म् । मधु॑ऽमत् ।

अ॒स्तु॒ । नः॒ । अन्न॑म् ॥ १ ॥

कार्षीवणाः कृषि वनन्ति संभजन्त इति कृषीवनाः शूद्राः । तत्संबन्धिनः कर्मकराः कार्षीवणाः । ते अग्रे पुरा भूमिं निखनन्तः कृषन्तः यद् यामं यमसंबन्धि क्रूरं यत् कर्म चक्रुः कृतवन्तः । तत्र कारणम् आह न विदो न विद्यया इति । यस्मात् ते विद्यया विशेषज्ञानेन नोपलक्षिताः अत एव न विदः न वेदितारः कार्याकार्यविभागज्ञानशून्याः तस्माद् यामं कर्म कृतवन्तः इत्यर्थः । यद्वा अग्रे पुरा भूमिं निखनन्तः असुराः यद् यामं यमसंबन्धि प्राणापहरणनिमित्तं क्रूरं कर्म कृतवन्तः । श्रूयते हि । "असुरा वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन्" इति [तै० सं० ६. २. ११. २]। तत् कर्म कार्षीवणा अज्ञजनाः न विदो न जानन्ति । ❀ विदुरित्युकारस्य व्यत्ययेन अकारः ❀ । यतस्ते विद्यया संस्कृतबुद्ध्या न भवन्ति । विशेषज्ञानशून्या इत्यर्थः । तत् तत्र अद्भुतशमने न्यूनाधिकपरिमाणोपेतं तत् आज्यमधुतैलादिकं वैवस्वते विवस्वान् आदित्यः तस्य पुत्रे राजनि ईश्वरे यमे जुहोमि हविष्ट्वेन प्रक्षिपामि । अथ अद्भुतशमनानन्तरं यज्ञियम् यज्ञार्हं तद् अन्नं मधुमत् माधुर्योपेतं [नः] अस्माकं भोक्तुं योग्यम् अस्तु ॥

कृषिका सेवन करनेवाले कृषीवनोंके कर्मोंको करनेवाले कार्षीवणों ने विद्याहीन होनेके कारण कार्याकार्यके विचारसे शून्य होने पर भूमिको खोदनारूप जो यमसंबन्धी कर्म पहिले किया था अथवा— पहिले भूमिको खोदते २ असुरोंने प्राणापहरणरूप जो यमसंबंधी क्रूर कर्म किया था, † उसको अज्ञ व्यक्ति कार्षीवण नहीं

---

† तैत्तिरीयसंहिता ६ । २ । ११ । २ में कहा है, कि—असुरा व निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन् ॥

जानते हैं, क्योंकि–वे विद्या अर्थात् संस्कृत बुद्धिसे रहित होते हैं उसके लिये अद्भुतशमनमें न्यूनाधिकपरिमाण वाले घृत मधु तेल आदिको विवस्वान्के पुत्र ईश्वर यमके लिये हविरूपमें होमता हूँ फिर अद्भुतशमन करनेके अनन्तर यह यज्ञके योग्य अन्न मधुररसमय हो हमारे भोगनेके योग्य होजाय ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

वै॒व॒स्व॒तः कृ॑णवद् भाग॒धेयं॒ मधु॑भागो॒ मधु॑ना॒ सं सृ॑जाति
मा॒तुर्यदेनं॑ इषि॒तं न॒ आग॒न् यद् वा॑ पि॒ताप॑राद्धो जिही॒डे

वै॒व॒स्व॒तः। कृ॒ण॒व॒त्। भा॒ग॒ऽधेय॑म्। मधु॑ऽभागः। मधु॑ना। सम्। सृ॒जा॒ति॒
मा॒तुः। यत्। ए॑नः। इ॒षि॒तम्। नः॒। आ॒ऽअग॑न्। यत्। वा॒।
पि॒ता। अप॑ऽराद्धः। जि॒ही॒डे ॥ २ ॥

वैवस्वतः विवस्वतः पुत्रो यमः भागधेयम् आत्मार्थं हविर्भागं कृणवत् करोतु। मधुभागः माधुर्योपेतहविषा भागेन युक्तः सन् मधुना माधुर्योपेतेन क्षीरघृतादिना अस्मान् [सं सृजाति] संसृजतु। मातुः सकाशाद् यद् एनः पापम् इषितम् प्रेरितं सत् नः अस्मान् कृतापराधान् [आगन्] आगमत्। ❀ गमेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इति च्लेर्लुक्। “मो नो धातोः” इति नत्वम् ❀। [वा] अथवा पिता अपराद्धः अस्मत्कृतापराधेन विमुखः सन् यत् जिहीले क्रुध्यति। ❀ हेड क्रोधे। छान्दसो वर्णविकारः ❀। मातापित्रोर्द्रोहकृतं यद् उत्पातस्य निमित्तं तदपि शाम्यत्वित्यर्थः ॥

विवस्वान्के पुत्र यम अपने लिये हवि भागको करें। मधुभाग माधुर्यमय हविभागसे युक्त होकर मधुमय क्षीर घृत आदिसे हमको संयुक्त करे। माताके पाससे प्रेरित होकर जो पाप हम कृताप-

राधोंको प्राप्त होगया है और हमारे किये हुए अपराधसे जो पिताजी क्रोधमें भर रहे हैं अर्थात् माता पिताके द्रोहके कारण जो उत्पात होरहे हैं वह भी शान्त होजावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

य॒दीदं मा॒तुर्यदि॑ वा पि॒तुर्न॒ः परि॒ भ्रातुः॑ पु॒त्राच्चेत॑स॒
ए॒न आग॑न् ।
याव॑न्तो अ॒स्मान् पि॒तर॒ः सच॑न्ते॒ तेषा॒ं सर्वे॑षां शि॒वो
अ॑स्तु म॒न्युः ॥ ३ ॥

यदि॑ । इ॒दम् । मा॒तुः । यदि॑ । वा॒ । पि॒तुः । न॒ः । परि॑ । भ्रातुः॑ ।
पु॒त्रात् । चेत॑सः । एन॑ः । आ॒ऽअग॑न् ।
याव॑न्तः । अ॒स्मान् । पि॒तर॑ः । स॒च॑न्ते । तेषा॑म् । सर्वे॑षाम् । शि॒वः ।
अ॒स्तु॒ । म॒न्युः ॥ ३ ॥

इदं परिदृश्यमानम् एनः पापं यदि मातुः सकाशात् आगन् आगमत् यदि वा पितुः सकाशात् यदि वा भ्रातुः सकाशात् यदि वा अन्यस्मादपि परिजनात् पुत्राद्व वा चेतसः आत्मीयाद् मनसः सकाशात् पापं नः अस्मान् आगमत् । तेन च पापेन क्रुद्धा यावन्तः यत्परिमाणाः पितरः अस्मान् सचन्ते समवयन्ति प्राप्नुवन्ति तेषां सर्वेषां मन्यु क्रोधः शिवो अस्तु शान्तो भवतु ॥

यह पाप यदि माताके पाससे आया हो अर्थात् माताके अपराध करनेके कारण दण्डरूपमें भोगना पड़ रहा हो, पिताके पास से आया हो अर्थात् पिताका अपराध करनेसे दण्डरूपमें मिल रहा हो, भाईके पाससे आया हो अर्थात् भाईका अपराध करनेसे

दण्डरूपमें मिल रहा हो, वा दूसरे संबंधी वा पुत्रके हृदय (के दुःख) से आया हो तो इस पापसे संबंध रखने वाले जो हमारे पिता आदि हमसे संबंध रखते हैं उन सबका क्रोध शान्त होजाय ३

चतुर्थी ॥

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान्

अपऽमित्यम्। अप्रतीत्तम् । यत् । अस्मि । यमस्य । येन । बलिना । चरामि ।
इदम् । तत् । अग्ने । अनृणः । भवामि । त्वम् । पाशान् । विऽचृतम् । वेत्थ । सर्वान् ॥ १ ॥

अपमित्यम् अपमातव्यम् अपाकर्तव्यं धान्यादिकम् ऋणम् उत्तमर्णाद् गृहीतम् अप्रतीत्तम् पुनस्तस्मै न प्रत्यर्पितम् ! ❀ मेङ् प्रणिदाने । अस्माद् अपपूर्वाच्छान्दसः क्यप् । "मयतेरिदन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम् अत्रापि व्यत्ययेन प्रवर्तते । "ह्रस्वस्य पिति कृति०" इति तुक् । प्रति पूर्वाद् ददातेर्निष्ठा । "अच उपसर्गात् तः" इति धातोस्तकारादेशः ।"दस्ति" इति उपसर्गस्य दीर्घः ❀ । ईदृशं यद् ऋणमेव अहम् अस्मि भवामि । ऋणबाहुल्यख्यापनार्थं तादात्म्यव्यपदेशः । यस्माद् एवं तस्माद् बलिना बलवता येन ऋणेन शासितुः यमस्य वशे चरामि हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् इदम् इदानीं तत् तेन ऋणेन अनृणः ऋणरहितो भवामि । त्वं खलु तान् सर्वान् ऋणोद्भवान् पारलौकिकान् पाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् विचृतम् विचर्तितुं मोचयितुं वेत्थ जानासि । शक्तो भवसीत्यर्थः । ❀ चृती हिंसाग्रन्थनयोः । अस्मात् तुमर्थे "शकि णमुल्कमुलौ" इति शकेरप्रयोगेपि छान्दसः कमुल् प्रत्ययः ❀ ॥

भुगताने योग्य धान्यादि ऋण जो कर्ज देने वालेसे लिया था, किन्तु उनको लौटाकर नहीं देसका था, ऐसा ऋण ही जो मैं हूँ (यहाँ अधिक ऋण होनेसे अपनेमें उसका आरोप कर लिया है) इस कारण मैं जिस बलवान् ऋणके द्वारा यमराजके वशमें घूमूँगा, हे अग्ने ! आपके प्रसादसे मैं उस ऋणसे ऋण-रहित होजाऊँ, क्योंकि हे अग्निदेव ! आप ऋणके कारण होने वाले पारलौकिक पाशोंको खोलना जानते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

इहैव सन्त प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्यं धान्यं १ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥ २ ॥

इह । एव । सन्तः । प्रति । दद्मः । एनत् । जीवाः । जीवेभ्यः । नि । हरामः । एनत् ।
अपऽमित्य । धान्यम् । यत् । जघस । अहम् । इदम् । तत् । अग्ने । अनृणः । भवामि ॥ २ ॥

इहैव इह लोक एव सन्तः विद्यमाना एनद् ऋणं प्रति दद्मः उत्तमर्णाय प्रत्यर्पयामः । एतदेव विवृणोति । जीवाः इह लोके जीवन्त एव जीवेभ्यः जीवद्भ्य उत्तमर्णेभ्यो देहत्यागात् पुरैव एनद् ऋणं नि हरामः नितरां नियमेन वा अपाकुर्मः । धान्यं व्रीहियवादिकम् उत्तमर्णसकाशाद् अपमित्य प्रस्थाढकादिसंख्यया परिवृत्य गृहीत्वा यद् अहं जघस भक्षितवान् अस्मि । ❀ अपमित्येति । अपपूर्वात् मेङः "उदीचां माङो व्यतीहारे" इति क्त्वा प्रत्ययः ।

ल्यबादेशे "मयतेरिदन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम्। "ह्रस्वस्य पिति०" इति तुक्। जघसेति। "लिट्यन्यतरस्याम्" इति अदेर्लिटि उत्तमैकवचने घस्लृ आदेशः। "णल् उत्तमो वा" इति णित्त्वस्य विकल्पनाद् वृद्ध्यभावः ❀। हे अग्ने इदम् इदानीं तत् तस्मात् परकीयधान्यभक्षणात् त्वत्प्रसादेन अनृणः ऋणरहितः ऋणनिमित्तनरकपातरहितो भवामि। ❀ अनृण इति। "बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ❀ ॥

इस लोकमें विद्यमान रहते हुए ही हम इस ऋणको उत्तमर्णके अर्पण करते हैं, इस लोकमें जीते रहनेकी अवस्थामें ही हम देहत्यागसे पहिले ही उत्तमर्णों (कर्ज देने वालों) को इस ऋणका भुगतान करते हैं। धान जौं आदिक जिस धानको मैं उत्तमर्णसे पाँच सेर आदिक संख्यामें लेकर खागया हूँ, हे अग्ने ! उस परकीय धान्यभक्षण इस समय आपके प्रसादसे मैं उऋण होता हूँ अर्थात् ऋणके कारण भोगनेमें आने वाले नरकपातसे रहित होता हूँ २

षष्ठी ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः
स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा
आ क्षियेम ॥ ३ ॥

अनृणाः। अस्मिन्। अनृणाः। परस्मिन्। तृतीये। लोके।
अनृणाः। स्याम।
ये। देवऽयानाः। पितृऽयानाः। च। लोकाः। सर्वान्। पथः।
अनृणाः। आ। क्षियेम ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् अस्मिन् भूलोके अनृणाः। ऋणम् अत्र लौकिकं वैदिकं च परिगृह्यते। लौकिकं तावद् उत्तमर्णाद् गृहीतं हिरण्यधान्यादिकं प्रसिद्धम्। वैदिकं तु "जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" इति [तै० सं० ६, ३. १०. ५]। तेन सर्वेण ऋणेन रहिताः स्याम भवेम। परस्मिन् लोके स्वर्गादौ एतद्देहपरित्यागेन दिव्यशरीरपरिग्रहेण सुकृतफलभोगस्थानेपि अनृणाः स्याम। ऋणादाननिमित्तो भोगप्रतिबन्धस्तत्रापि मा भूद् इत्यर्थः। तृतीये लोके स्वर्गादपि उत्कृष्टे नाकपृष्ठादौ वयम् अनृणा भवेम। अन्येपि ये लोकाः देवयानाः देवा एव येषु यान्ति गच्छन्ति ते तथोक्ताः। ❀ अधिकरणे ल्युट् ❀। ये च लोकाः पितृयाणाः पितॄणाम् असाधारणभोगभूमयः तान् सर्वान् लोकान् तत्प्राप्त्युपायभूतान् पथः मार्गांश्च। यद्वा लोक्यन्त इति लोकाः पन्थानः देवानेव यैर्यान्ति ते देवयानाः पितॄनेव यैर्यान्ति ते पितृयाणाः। ❀ उभयत्र करणे ल्युट् ❀। य एवम् उभये विभिन्ना मार्गाः तान् सर्वान् अनृणाः ऋणप्रतिबन्धरहिताः सन्तः आ क्षियेम अभि गच्छेम। ❀ क्षि निवासगत्योः। तुदादित्वात् शः ❀॥

इति द्वितीयं सूक्तम्॥

हे अग्ने! आपके प्रसादसे हम इस लोकमें लौकिक और वैदिक † दोनों प्रकारके ऋणोंसे अनृण होवें। इसी प्रकार हम

---

† पहिला—सुवर्ण धान्य आदि उत्तमर्णसे लिया हुआ लौकिक ऋण प्रसिद्ध ही है। दूसरा वैदिक ऋण होता है। तैत्तिरीयसंहिता ६।३।१०।५ में कहा है, कि—"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते॥—ब्राह्मण तीन ऋणों से बँधा हुआ उत्पन्न होता है" फिर तहाँ ही कहा है—कि—"ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः॥—उनमेंसे ब्रह्मचर्यके द्वारा ऋषियों

इस देहको त्यागनेके अनन्तर दिव्य शरीरके मिलने पर पुण्य फलभोगनेके स्थान स्वर्ग आदि परलोकमें अनृण हों-अर्थात् ऋण लेनेके कारण होने वाला भोगका प्रतिबंध तहाँ भी न हो, स्वर्ग से भी उत्कृष्ट नाकपृष्ठ आदि तीसरे लोकमें हम अनृण होवें और जिनमें देवता ही जाते हैं वे देवयान मार्ग हैं और जो पितरोंकी असाधारण भोगभूमिरूप पितृयान हैं और इनको पानेके जो मार्ग हैं उन सबमें हम ऋणके प्रतिबन्धसे रहित होकर प्रवेश करें ३

द्वितीय सूक्त समाप्त (२९०) ॥

"यद्धस्ताभ्याम्" इति तृतीयं सूक्तम् । अस्य विनियोगः पूर्वतृचेन सह उक्तः ॥

"यद्धस्ताभ्याम्" यह तृतीय सूक्त है । पहिले तृचके साथ इसका विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

यद्धस्ता॑भ्यां च॒कृम॒ किल्बि॑षाण्य॒क्षाणां॑ ग॒त्नुमु॑प॒-
लिप्सं॑मानाः ।
उ॒ग्रं॒प॒श्ये उ॒ग्रजि॑तौ॒ तद॒द्याप्स॒रसा॒वनु॑ दत्तानृ॒णं॑ नः॑ १

यत् । हस्ता॑भ्याम् । च॒कृम । किल्बि॑षाणि । अ॒क्षाणा॑म् । ग॒त्नुम् ।
उ॒प॒ऽलि॑प्समानाः ।
उ॒ग्रं॒प॒श्ये इत्यु॒ग्र॑म्ऽप॒श्ये । उ॒ग्र॒ऽजि॑तौ । तत् । अ॒द्य । अ॒प्स॒रसौ॑ । अनु॑ ।
द॒त्ताम् । ऋ॒णम् । नः॒ ॥ १ ॥

हस्ताभ्याम् । इन्द्रियाणाम् उपलक्षणम् एतत् । हस्तपादादी-

से, यज्ञके द्वारा देवताओंसे और प्रजा (सन्तान) उत्पन्न करके ऋषियोंसे उऋण होवे" ॥

न्द्रियैः किल्बिषाणि पापानि यत् चकृम वयं कृतवन्तः स्मः । अक्षाणाम् इन्द्रियाणां गत्नुम् गन्तव्यं शब्दस्पर्शादिविषयम् उपलिप्समानाः उपलब्धुम् अनुभवितुम् इच्छन्तः । यद् ऋणं चकृमेत्यर्थः । ❀ गत्नुम् इति । गमेः औणादिकः क्त्नुप्रत्ययः । “अनुदात्तोपदेश०” इत्यादिना अनुनासिकलोपः । उपपूर्वात् लभेः इच्छासनि “सनि मीमाघुरभलभ०” इति अच इस् आदेशः । “अत्र लोपोऽभ्यासस्य” इति अभ्यासलोपः । “पूर्ववत् सनः” इति आत्मनेपदम् ❀ । हे उग्रंपश्ये तीक्ष्णदर्शने । ❀ “उग्रंपश्येरंमदपाणिंधमाश्च” इति खशि निपात्यते ❀ । हे उग्रजितौ उग्रान् उद्गूर्णबलान् प्रतिकर्तुम् अशक्यान् शत्रून् जयत इति उग्रजितौ । तत्रैका उग्रंपश्या । अपरा उग्रजित् । ❀ युगपदधिकरणवाचित्वाद् वृक्षौ च वृक्षौ च वृक्षौ इतिवद् उभयत्रापि द्विवचनम् ❀ । एतन्नामानौ अप्सरसौ अद्य इदानीं नः अस्माकं तत् प्राग् उदीरितम् ऋणम् अनु दत्ताम् आनुकूल्येन उत्तमर्णेभ्यः प्रयच्छतम् ॥

हाथ पैर आदि इन्द्रियोंसे हमसे जो पाप बन गया है और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषयोंको भोगनेकी लालसासे हमने जो ऋण कर लिया है, उस ऋणको तीक्ष्ण दर्शन वाली उग्रंपश्या और उग्रजिता नाम वाली अप्सरायें उत्तमर्णको देदेवें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

उग्रंपश्ये॒ राष्ट्र॒भृत् किल्बिषाणि॒ यद॒क्षवृत्त॒मनु दत्तं न

ए॒तत् ।

ऋ॒णान्नो॒ नर्णमेर्त्समानो य॒मस्य॑ लो॒के अधि॑रज्जु॒राय॑त्

उ॑ग्रंपश्ये॒ इत्यु॑ग्रम्ऽपश्ये । राष्ट्र॑ऽभृत् । किल्बि॑षाणि । यत् ।

अक्षऽवृत्तम् । अनु । दत्तम् । नः । एतत् ।
ऋणात् । नः । न । ऋणम् । एत्समानः । यमस्य । लोके ।
अधिऽरज्जुः । आ । अयत् ॥ २ ॥

हे उग्रंपश्ये । राष्ट्रभृतः पृथगुपादानाद् अत्र एकवचनान्तम् एतत् । हे राष्ट्रभृत् राष्ट्रं राज्यं बिभर्ति पोषयतीति राष्ट्रभृत् । एतत् संज्ञे अप्सरसौ यानि अस्माभिः कृतानि किल्बिषाणि पापानि यच्च पापम् अक्षवृत्तम् अक्षेषु इन्द्रियेषु निषिद्धानिषिद्धविभागपरिहारेण स्वस्वविषयप्रवृत्तेषु निष्पन्नम् । ❀ "तत्पुरुषे तुल्यार्थ०" इत्यादिना सप्तमीपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । नः अस्माकम् ऋणभूतम् एतत् सर्वं पापम् अनु दत्तम् आनुकूल्येन यथास्मान् न बाधते तथा दत्तम् प्रयच्छतम् । निवारयतम् इत्यर्थः । अनुदानप्रकारम् आह । ऋणान्न इति । ऋणान् ऋणिनः । ❀ मत्वर्थीयः अकारः ❀ । अनपाकृतिनो नः अस्मान् । यद्वा ऋणात् इति पदच्छेदः । ❀ भावप्रधानो निर्देशः ❀ । ऋणित्वाद्धेतोः नः अस्मान् यमस्य पुण्यपापानुरूपं दण्डयितुर्देवस्य संबन्धिनि लोके स्थाने उत्तमर्णः ऋणम् एच्छमानः ऋणं ग्रहीतुम् अभित इच्छन् अधिरज्जुः अस्मद्ग्रहणाय पाशहस्तो भूत्वा न आयत् न प्राप्नोति । तथा अनुदत्तम् इति संबन्धः । ❀ अय गतौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ❀ ॥

हे उग्रंपश्या और राष्ट्रभृत् नाम वाली अप्सराओं ! जो हमारे किये हुए पाप हैं और जो पाप निषिद्ध तथा अनिषिद्ध विभाग को छोड़कर अपने २ विषयोंमें प्रवृत्त होनेसे होगया है, हमारे उस ऋणभूत सम्पूर्ण पापोंको आप अर्थात् वह जिस प्रकार हमको पीड़ित न कर सकें तिस प्रकार निवारण करिये और पुण्य तथा पापके अनुसार दण्ड देने वाले यमदेवके लोकमें उत्तमर्ण

ऋण लेनेकी इच्छासे हमको पकड़नेके लिये हाथमें पाश लेकर न आसके तिस प्रकार हमारे ऋणको दूर करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यस्मा॑ ऋ॒णं यस्य॑ जा॒यामु॒पैमि॒ यं याच॑मानो अ॒भ्यैमि॑
देवाः ।
ते वाचं॑ वादिषु॒र्मोत्त॑रां॒ मद्दे॒व॑पत्नी॒ अप्स॑रसा॒वधी॑तम् ३

यस्मै॑ । ऋ॒णम् । यस्य॑ । जा॒याम् । उ॒प॒ऽऐमि॑ । यम् । याच॑मानः ।
अ॒भि॒ऽऐमि॑ । दे॒वाः ।
ते । वाच॑म् । वा॒दि॒षुः॒ । मा । उत्त॑राम् । मत् । दे॑वपत्नी॒ इति॒
दे॑वऽपत्नी । अप्स॑रसौ । अधि॑ । इ॒त॒म् ॥ ३ ॥

यस्मै उत्तमर्णाय वस्त्रहिरण्यधान्यादिकम् ऋणम् अहं धारयामि । ❀ धारयतेः प्रयोगाभावेपि अर्थसत्तां द्योतयितुं "धारेरुत्तमर्णः" इति चतुर्थी ❀ । यस्य पुरुषस्य जायाम् भार्याम् उपैमि कामुकः सन् उपगच्छामि । तथा यं पुरुषं स्वामिनम् उत्तमर्णं वा याचमानः इष्टं धनं प्रार्थयमानः हे देवाः अभ्येमि अभिगच्छामि । ते सर्वे मत् मत्तः उत्तराम् उत्कृष्टतरां वाचं प्रतिकूलां मा वादिषुः मा ब्रुवन्तु । हे देवपत्नी देवपत्न्यौ देवानां पत्न्यौ जायाभूते अप्सरसौ अधीतम् मद्विज्ञापनं चित्तेऽवधारयतम् । ❀ इक् स्मरणे ❀ ॥

जिस उत्तमर्णके लिये मैं वस्त्र सुवर्ण धान्य आदि ऋण धारण कर रहा हूँ, और जिस पुरुषकी स्त्रीके पास कामुक होकर जाता हूँ और हे देवताओं ! जिस उत्तमर्ण वा स्वामी पुरुषके पास इष्ट धनकी प्रार्थना करता हुआ जाऊँ, वे मुझसे अधिक प्रतिकूल

वाणी न बोलें हे देवपत्नी अप्सराओं ! मेरी विज्ञप्तिको चित्तमें धारण करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥

यत् । अदीव्यन् । ऋणम् । अहम् । कृणोमि । अदास्यन् । अग्ने ।
उत । सम्ऽगृणामि ।
वैश्वानरः । नः । अधिऽपाः । वसिष्ठः । उत् । इत् । नयाति ।
सुऽकृतस्य । लोकम् ॥ १ ॥

अदीव्यन् व्यवहर्तुम् अशक्नुवन् यद् ऋणम् अहं कृणोमि करोमि हे अग्ने अदास्यन् पुनः प्रदानम् अकरिष्यन् । ❀ उतशब्दः अप्यर्थे ❀ । संगृणामि दास्यामीति केवलं प्रतिजानामि । ❀ गॄ शब्दे । प्वादित्वात् ह्रस्वः ❀ । वैश्वानरः विश्वनरहितः सर्वेषां प्राणिनां हितकारी अत एव अधिपाः अधिकं पालयिता वसिष्ठः वासयितृतमः एवंभूतोऽग्निः सुकृतस्य पुण्यकर्मणः फलभूतं लोकम् नः अस्मान् उन्नयाति उन्नयतु ऊर्ध्वं प्रापयतु । ❀ इत्‌शब्दः अवधारणे ❀ । स्वयमेव नयत्वित्यर्थः ॥

व्यवहार करनेमें असमर्थ होने पर मैंने जो ऋण कर लिया है और उसको न देसकता हुआ केवल देनेकी ही प्रतिज्ञा करता रहा हूँ; सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी अत एव परम पालक वासयिता अग्नि पुण्यके फलरूप स्वर्गलोकमें हमें श्रेष्ठ गति प्राप्त करावें ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

वै॒श्वा॒न॒राय॒ प्रति॑ वेदया॒मि यदृ॒णं संग॒रो॑ दे॒वतासु ।
स ए॒तान् पाशा॑न् वि॒चृतं॑ वेद॒ सर्वा॒नथ॑ प॒क्वेन॑ स॒ह
सं भ॑वेम ॥ २ ॥

वै॒श्वा॒न॒राय॑ । प्रति॑ । वे॒द॒या॒मि॒ । यदि॑ । ऋ॒णम् । स॒म्ऽग॒रः ।
दे॒वता॑सु ।

सः । ए॒तान् । पाशा॑न् । वि॒ऽचृत॑म् । वे॒द॒ । सर्वा॑न् । अथ॑ । प॒क्वेन॑ ।
स॒ह । सम् । भ॒वे॒म॒ ॥ २ ॥

वैश्वानराय विश्वनरहिताय अग्नये प्रति वेदयामि विज्ञापयामि । किं तद् इत्याह यदृणम् इति । यदिशब्दो यच्छब्दार्थः । यद् ऋणं लौकिकम् देवतासु देवताविषये यः संगरः अवश्यकर्तव्यतया प्रतिज्ञा "ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" [तै० सं० ६. ३. १०. ५] इति तद्धि वैदिकम् ऋणम्। तत् सर्वं वैश्वानराय निवेदयामीत्यर्थः । स तादृशो वैश्वानरोग्निः एतान् लौकिकवैदिकऋणात्मकान् सर्वान् पाशान् पाशवद्बन्धकान् विचृतम् विचर्तितुं विश्लेषयितुं वेद जानाति । ❀ विचृतम् इति । विपूर्वाच्चृतेः तुमर्थे कमुल् प्रत्ययः ❀ । अथ ऋणरूपपाशच्छेदनानन्तरं पक्वेन परिपक्वेन स्वर्गादिफलेन सह वयं सं भवेम संगच्छेमहि ॥

मैं वैश्वानर अग्निके लिये लौकिक ऋणको और देवताओंसे अवश्य करने को की हुई प्रतिज्ञाओंको अर्पण करता हूँ, यह अग्निदेव लौकिक वैदिक ऋणात्मक सम्पूर्ण पाशोंको खोलना

जानते हैं, ऋणरूपपाशच्छेदनके अनन्तर परिपक्व स्वर्ग आदि फलके साथ हम संयुक्त होवें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

वै॒श्वा॒न॒रः प॑वि॒ता मा॑ पुना॒तु यत् सं॑ग॒रम॑भि॒धावा॑म्या॒शाम् ।
अना॑जा॒नन् मन॑सा॒ याच॑मानो॒ यत् तत्रै॑नो॒ अप॒ तत् सु॑वामि ॥ ३ ॥

वै॒श्वा॒न॒रः । प॒वि॒ता । मा॒ । पु॒ना॒तु॒ । यत् । स॒म्ऽग॒रम् । अ॒भि॒ऽधा॒वा॑मि । आ॒ऽशाम् ।
अना॑जानन् । मन॑सा । याच॑मानः । यत् । तत्र॑ । एन॑ः । अप॑ । तत् । सु॒वा॒मि॒ ॥ ३ ॥

पविता शोधयिता सर्वभावानां शुद्धेः कर्ता वैश्वानरोऽग्निः मा मां पुनातु पूतं शुद्धं करोतु । यत् यस्माद्धेतोः संगरम् प्रतिज्ञाम् यद्दये दास्यामीत्येवंरूपाम् ऋणापाकरणविषयां केवलम् अभिधावानि आभिमुख्येन प्राप्नवानि तथा आशाम् देवादीनाम् अभिलाषमेव उत्पादयामि न किंचिद् यागादिरूपम् ऋणापाकरणं करोमि अनाजानन् हिताहितविभागम् अजानन् प्रत्युत मनसा अन्तःकरणेन ऐहिकमेव सुखं याचमानः प्रार्थयमानः । ❀ उभयत्र लक्षणहेत्वोः क्रियाया इति हेतौ शतृप्रत्ययः ❀ । अज्ञानाद् विपर्ययज्ञानाच्च हेतोरित्यर्थः । तत्र तथाविधे अनृतकरणे यद् एनः पापम् उत्पन्नम् अस्ति तद् अप सुवामि अस्मत्तोपगमयामि । ❀ षू प्रेरणे । तुदादित्वात् शः ❀ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

सब भावोंको शुद्ध करने वाले वैश्वानर अग्नि मुझे पवित्र करें। क्योंकि—मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा आदि ऋणको दूर करनेकी प्रतिज्ञाएँ ही करता रहा हूँ, देवताओंकी अभिलाषाओं को ही उत्पन्न करता रहा हूँ, यागादिरूप ऋणको मैंने दूर नहीं किया है, इसका कारण यह है, कि—हित और अहितके विचारको न कर मैं मनसे ऐहिकसुखकी ही याचना करता रहा हूँ। ऐसे अज्ञानवश बने हुए असत्यव्यवहारसे जो पाप उत्पन्न हुआ है उसको मैं अपने आपेसे अलग करता हूँ ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (२९२) ॥

“यद् अन्तरिक्षम्” इति चतुर्थं सूक्तम् । तत्र “विषाणा पाशान्” इति चतुर्ऋचेन दारुलोहरज्ज्वादिबन्धनमोचनार्थं चर्ममयलोहमयादिकं पूर्वबन्धनरज्जुसदृशं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्रयेत्। सूत्रितं हि । “विषाणा पाशान् इत्युन्मोचनम् । प्रतिरूपं संपातवन्तं करोति । वाचा बद्धाय भूमिपरिलेखम्” इति [कौ० ७. ३] ॥

“यद् अन्तरिक्षम्” यह चतुर्थ सूक्त है। इसमें “विषाणा पाशान्” इस चार ऋचा वाले खण्डसे काठ लोहे और रस्सी आदिके बंधनको छुड़ानेके लिये चमड़े वा लोहेके बंधनको पहिलेके बंधन रज्जुकी समान बना सम्पातन करके अभिमंत्रित करे। इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“विषाणा पाशान् इत्युन्मोचनम् । प्रतिरूपं संपातवंतं करोति । वाचा बद्धाय भूमिपरिलेखम्” (कौशिकसूत्र ७ । ३) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद॒न्तरि॑क्षं पृथि॒वीमु॒त द्यां॑ यन्मा॒तरं॑ पि॒तरं॑ वा जिहिं॑सि॒म ।

अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृत-
स्यं लोकम् ॥ १ ॥

यत् । अन्तरिक्षम् । पृथिवीम् । उत । द्याम् । यत् । मातरम् ।
पितरम् । वा । जिहिंसिम ।

अयम् । तस्मात् । गार्हऽपत्यः । नः । अग्निः । उत् । इत् । नयाति ।
सुऽकृतस्य । लोकम् ॥ १ ॥

अन्तरिक्षादिशब्दैर्लोकवचनैस्तत्रत्या जना लक्ष्यन्ते । अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षलोकस्थान्जनान् पृथिवीम् भूलोकं तत्रत्यान् जनान् । उतशब्दः अप्यर्थः समुच्चये । द्याम् दिवं द्युलोकस्थांश्च जनान् यज्जिहिंसिम । तत्तद्विषयहिंसया यत् पापं कृतम् इत्यर्थः । तथा मातरम् जनयित्रीं पितरम् जनकम् । वाशब्दः समुच्चये । यज्जिहिंसिम । तयोः प्रतिकूलाचरणलक्षणाद्धिंसनाद् यत् पापम् उपार्जितम् इत्यर्थः । ❀ हिसि हिंसायाम् । अस्मात् लिटि रूपम् ❀ । तस्माद् उभयविधात् पापाद् अयं गार्हपत्यः गृहपतिना संयुक्तः अस्माभिः परिचर्यमाणोग्निः नः अस्मान् सुकृतस्य लोकम् इत् सुकृतपरिपाकस्य लोकं स्वर्गमेव उन्नयाति उन्नयतु उद्गमयतु । पापाद् उत्तारयत्वित्यर्थः । ❀ गार्हपत्य इति। "गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः" इति ञ्यप्रत्ययः ❀ ॥

अन्तरिक्षके प्राणियोंकी पृथिवीलोकके प्राणियोंकी और द्युलोकके प्राणियोंकी हम उनके विषयकी हिंसा करनारूप जो हिंसा कर चुके हैं और पिता तथा माताके प्रतिकूल आचरण करनारूप जो उनकी हिंसा हमसे बन गई है, इन दोनों प्रकारके पापोंसे यह

गार्हपत्य अग्नि हमारी सेवासे (प्रसन्न होकर पार उतारें और) हमको पुण्योंके फलरूप स्वर्गलोकमें ही श्रेष्ठ गति दें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

भूमि॑र्मा॒ताऽदि॑तिर्नो॑ ज॒नित्रं॒ भ्राता॒न्तरि॑क्षम॒भिश॑स्त्या नः ।
द्यौर्नः॑ पि॒ता पित्र्या॒च्छं भ॑वाति जा॒मिमृ॒त्वा माव॑ पत्सि लो॒कात् ॥ २ ॥

भूमि॑ः । मा॒ता । अदि॑तिः । नः॒ । ज॒नित्र॑म् । भ्राता॑ । अ॒न्तरि॑क्षम् । अ॒भिऽश॑स्त्या । नः॒ ।
द्यौः । नः॒ । पि॒ता । पित्र्या॑त् । शम् । भ॒वा॒ति॒ । जा॒मिम् । ऋ॒त्वा । मा । अव॑ । प॒त्सि॒ । लो॒कात् ॥ २ ॥

नः अस्माकं भूमिः पृथिवीदेवता माता जननी । अदितिः अखण्डनीया अदीना वा देवमाता जनित्रम् जननकारणम् । अन्तरिक्षम् अवकाशात्मकोन्तरिक्षलोकः भ्राता सर्वदा सहभावित्वात् । अतो नः अस्माकं मात्रादिकृतं पापम् अस्तीत्यर्थः । ते सर्वे अभिशस्त्या अभिशंसनाद् मिथ्यापवादजनितात् पापाद् नः अस्मान् । रक्षन्त्विति शेषः ॥ तथा नः अस्माकं द्यौः द्युलोकः पिता वृष्ट्यादिप्रदानेन रेतःसेकस्य कर्ता । स च पित्र्यात् पितुरागताद् दोषाद् ऋणादानादिरूपात् । ❀ "पितुर्यच्च" इति यत्प्रत्ययः ❀ । शं भवाति सुखम् उत्पादयतु । पित्र्यमपि दोषं निवर्त्य अस्मान् सुखिनः करोत्वित्यर्थः । अहं च जामि व्यर्थमेव मृत्वा प्राणान् परित्यज्य परलोकहितं यागहोमदानादिकम् अन-

नुष्ठाय लोकात् लोकनीयात् स्वर्गादेः मा अव पत्सि अवपन्नः अधोगतिर्मा भूवम् । यद्वा जामिम् इति पदच्छेदः । जामिर्भगिनी तद्वन्निषिद्धा स्त्री ताम् ऋत्वा गत्वा निषिद्धाचरणेन अवपन्नो मा भूवम् इत्यर्थः । ❀ पद गतौ । माङि लुङि उत्तमैकवचने रूपम् ❀ ॥

पृथिवीदेवता भूमि हमारी माता है और अदीना देवमाता अदिति भी हमारी माता है अर्थात् हमारी उत्पत्तिका कारण है। अवकाशरूप अन्तरिक्षलोक सदा हमारे साथ रहनेसे हमारा भ्राता है, अतः हमारा माता आदिके संबंधका पाप है। वे सब हमको मिथ्या अपवादके पापसे बचावें। वृष्टि आदि करके रेतःसेक करने वाला द्यौ हमारा पिता है, वह पितासे आये हुए ऋणग्रहणरूप दोषसे हमैं सुखी करे। मैं बहिनकी समान निषिद्ध स्त्री के पास जा निषिद्ध आचरणकर स्वर्ग आदि लोकसे भ्रष्ट न होऊँ २

तृतीया ॥

यत्रा॑ सु॒हार्दः॑ सु॒कृतो॒ मद॑न्ति वि॒हाय॒ रोगं॑ त॒न्वं॑ १॒ः
स्वायाः॑ ।
अश्लो॑णा॒ अङ्गै॒रह्रु॑ताः स्व॒र्गे तत्र॑ पश्येम पि॒तरौ॑ च
पु॒त्रान् ॥ ३ ॥

यत्र॑ । सु॒ऽहार्दः॑ । सु॒ऽकृत॑ः । मद॑न्ति । वि॒ऽहाय॑ । रोग॑म् । त॒न्वः ।
स्वाया॑ः ।
अश्लो॑णाः । अङ्गैः॑ । अह्रु॒ता॑ः । स्व॒ःऽग । तत्र॑ । प॒श्ये॒म॒ । पि॒तरौ॑ ।
च॒ । पु॒त्रान् ॥ ३ ॥

यत्र यस्मिन्नुत्तमे स्वर्गादिलोके सुहार्दः शोभनहृदयाः सुकृतः शोभनं यागादिकं कृतवन्तो जनाः स्वायाः स्वकीयायाः तन्वाः शरीरस्य संबन्धिनं रोगम् पापफलभूतं ज्वरादिकं विहाय परित्यज्य मदन्ति दुःखासंस्पृष्टकेवलसुखानुभवेन माद्यन्ति वयमपि अङ्गैः अवयवैर्हस्तपादादिभिः अश्रोणाः कुष्ठादिरोगरहिताः अहुताः अकुटिलगतयः सन्तः तत्र पुण्यकृद्भिः प्राप्ये स्वर्गे लोके पितरौ पितरं मातरं च । ❀ “पिता मात्रा” इति पितुः शेषः ❀ । तथा आत्मीयान् पुत्रांश्च पश्येम साक्षात्कुर्याम ॥

जिस उत्तम स्वर्ग आदि लोकमें शोभन हृदय वाले और याग आदि पुण्योंको करने वाले मनुष्य पापके फलरूप ज्वर आदि शरीरसंबंधी रोगोंको त्याग कर दुःखके स्पर्शसे शून्य सुखका अनुभव करके प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार हम भी हाथ पैर आदि अंगोंमें कोढ़ आदि रोगसे रहित होते हुए और अकुटिल गतिको भोगते हुए स्वर्गमें माता पिता और पुत्र आदि आत्मीयोंको देखें ३

चतुर्थी ॥

वि॒षा॒णा पाशा॒न् वि ष्याध्य॒स्मद् य उ॑त्त॒मा अ॑ध॒मा
वा॑रु॒णा ये ।
दु॒ष्वप्न्यं॑ दु॒रि॒तं नि ष्वा॒स्मदथ॑ गच्छेम सु॒कृ॒तस्य॑
लो॒कम् ॥ १ ॥

वि॒ऽसाना॑ । पाशा॑न् । वि । स्य॒ । अधि॑ । अ॒स्मत् । ये । उ॒त्ऽत॒माः ।
अ॒ध॒माः । वा॒रु॒णाः । ये ।

दुः॒ऽस्वप्न्य॑म् । दुः॒ऽइ॒तम् । निः । स्व॒ । अ॒स्मत् । अथ॑ । ग॒च्छे॒म॒ ।
सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ॥ १ ॥

हे बन्धनाभिमानिनि निर्ऋतिदेवते पाशान् अस्मदवयवगतान् बन्धनरज्जुविशेषान् विषाणा विमुञ्चती अस्मत् अस्मत्तः अधि उपरि वि ष्य विमुञ्च । ❀ षो अन्तकर्मणि । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः ❀ । पाशा विशेष्यन्ते । ये पाशा उत्तमा उत्कृष्टा ऊर्ध्वकायाश्रिताः ये च अधमाः निकृष्टा अधःकायाश्रिताः ये च वारुणाः वरुणसंबन्धिनः सर्वकायाश्रिताः पाशाः । "उदुत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय" इति हि निगमः [ऋ० १. २४. १५] । इत्थम् अनेकभेदभिन्नान् पाशान् अस्मत्तो विमुञ्चेत्यर्थः । अपि च दुःष्वप्न्यम् दुष्टस्वप्नदर्शनजनितं दुरितं पापम् [अस्मत्] अस्मत्तो निः ष्व निर्गमय । ❀ षू प्रेरणे । तुदादित्वात् शः । "तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्" इति यण् ❀ । अथ पाशविमोचनानन्तरं सुकृतस्य पुण्यस्य फलभूतं लोकम् इमं च अमुं च गच्छेम प्राप्नुयाम ॥

हे बंधनकी अभिमानी निर्ऋति देवते ! जो "उदुत्तमं वरुण पाशं अस्मद् अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय—हे वरुण ! आप मरणके लिये होने वाले उत्तम मध्यम और अधम पाशोंको आप खोलिये" ऋग्वेदसंहिता १ । २४ । १५ में कहे हुए उत्तम अर्थात् ऊपरके अंगमें स्थित पाश हैं और जो मध्यमांगमें स्थित पाश हैं और जो नीचेके अंगमें स्थित वरुणसंबंधी अधम हैं, उनको हमसे मुक्त कर और दुःस्वप्नजनित पापको भी हमसे अलग कर । और पाशविमोचनके अनन्तर पुण्यके फलरूप स्वर्गलोकको हम प्राप्त होवें १

पञ्चमी ॥

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे
यच्चं वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ २ ॥

यत् । दारु॑णि । ब॒ध्यसे॑ । यत् । च॒ । र॑ज्ज्वाम् । यत् । भूम्या॑म् ।
ब॒ध्यसे । यत् । च॒ । वा॒चा ।

अयम् । त॑स्मात् । गार्ह॑ऽपत्यः । न॒ः । अ॒ग्निः । उत् । इत् ।
न॒या॒ति॒ । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ॥ २ ॥

हे पुरुष त्वं दारुणि काष्ठविशेषे यद् बध्यसे । यच्च रज्ज्वां बध्यसे । भूम्यां वा गर्तरूपायां यद् बध्यसे । वाचा राजाज्ञाप्रकाशिन्या यच्च बध्यसे । तस्मात् सर्वस्माद् बन्धनाद् अयम् अस्मदीयो गार्हपत्योऽग्निः त्वाम् उत्तारयत्वित्यर्थः । [शेषं पूर्ववत्] ॥

हे पुरुष ! तू जो काष्ठ के बंधनमें यदि बँधता है, यदि रस्सी से बँधता है गड्ढे आदि भूमिमें यदि तू बँधता है वा राजाज्ञाको प्रकाशित करने वाली वाणीसे बँधता है, उन सकल बंधनोंसे यह हमारे गार्हपत्य अग्नि तुझको पार उतारें औ तुझको पुण्य के फलरूप स्वर्गलोकमें पहुँचावें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

उद॑गा॒तां भग॑वती वि॒चृतौ॒ नाम॒ तार॑के ।
प्रेहामृत॑स्य यच्छ॒तां प्रैतु॑ बद्धक॒मोच॑नम् ॥ ३ ॥

उत् । अ॒गा॒ता॒म् । भग॑वती॒ इति॒ भग॑ऽवती । वि॒ऽचृतौ॑ । नाम ।
तार॑के॒ इति॑ ।

प्र । इ॒ह । अ॒मृत॑स्य । य॒च्छ॒ता॒म् । प्र । ए॒तु॒ । ब॒द्ध॒क॒ऽमोच॑नम् ३

भगवती भाग्ययुक्ते विचृतौ नाम विचृन्नामनी तारके नक्षत्रे उदगाताम् उदयं प्राप्तवती । "विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता" इति श्रुतेः [तै० सं० ४. ४. १०. २] मूलनक्षत्रस्य विचृत् इति संज्ञा ।

❀ अधिष्ठानद्वयापेक्षया द्विवचनम् ❀। इह अस्मिन् बद्धे पुरुषे अमृतस्य। ❀ कर्मणि षष्ठी ❀। अमृतम् अमरणं प्र यच्छताम्। बद्धकमोचनम् कुत्सितं निगलादिभिर्बद्धः बद्धकः। ❀ कुत्सायां कन् प्रत्ययः ❀। तस्य मोचनं बन्धान्मोक्षः प्रैतु प्राप्नोतु ॥

भाग्ययुक्त विचृत उपनामक दो मूलनक्षत्र इस बद्ध पुरुषमें अमरण को देवें, यह पुरुष कुत्सित बेड़ी आदिके बंधनसे मोक्षको प्राप्त हो ३ सप्तमी ॥

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ४

वि। जिहीष्व। लोकम्। कृणु। बन्धात्। मुञ्चासि। बद्धकम्।
योन्याःऽइव। प्रऽच्युतः। गर्भः। पथः। सर्वान्। अनु। क्षिय ४

हे बन्धनाभिमानिदेव त्वं वि जिहीष्व विविधं गच्छ। ❀ ओहाङ् गतौ। शपः श्लुः। "भृञामित्" इति अभ्यासस्य इत्वम् ❀। लोकं स्थानम् अस्य पुरुषस्य बन्धनार्तस्य कृणु कुरु। तस्माद् बन्धात् बन्धनाद् बद्धकम् इमं पुरुषं मुञ्चासि मुञ्च॥ हे पुरुष बन्धनमोक्षानन्तरं योन्याः प्रच्युतः मातुर्गर्भाशयाद् बहिर्विनिर्गतो गर्भ इव स यथा इतस्ततः अनिरुद्धगतिः प्रचलति एवं सर्वान् पथो मार्गान् अनुक्षिय अनुगच्छ। यथेष्टं वर्तस्वेत्यर्थः। ❀ क्षि निवासगत्योः ❀।

इति चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे बंधनके अभिमानीदेव! आप अनेक प्रकारसे जाइये। इस बंधनसे आर्त होने वाले पुरुषको स्थान दीजिये और उस बंधनसे इसको मुक्त करिये, हे पुरुष! बन्धनसे छूटनेके अनन्तर तू इस प्रकार सब मार्गोंमें विचरण कर जिस प्रकार माताके गर्भाशयसे निकला हुआ गर्भ विचरण करता है ॥ ४ ॥

चतुर्थ सूक्त समाप्त (२९४) ॥

"एतं भागम्" "एतं सधस्थाः" इति द्वाभ्यां सर्वयज्ञेषु संस्थितहोमान् जुहुयात् । तदनुमन्त्रणं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "एतं भागम् [६. १२२] एतं सधस्थाः [६. १२३] उलूखले [१०. ९. २६] इति स्थितहोमान् आवपतेऽनुमन्त्रणं च" इति [कौ० ८.४]

तथा अग्निष्टोमे हविर्धाने स्वस्वचमससमीपे चमसिभिः स्वकीयान् पितॄन् उद्दिश्य पुरोडाशशकलेषु दत्तेषु सत्सु आभ्याम् अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने । "हविर्धाने यथाचमसं दक्षिणतः स्वेभ्य उपासनेभ्यस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तान् एतत् ते प्रततामह [१८. ४. ७५] इति निपृणन्ति । अत्र पितरः [कौ० ११. ९] इति जपित्वा एतं भागम् [६. १२२] एतं सधस्थाः [६. १२३] श्येनो नृचक्षाः [७. ४२. २] इत्यनुमन्त्रयते" इति [वै० ३. १२] ॥

अत्र "एतं सधस्थाः" इति द्वाभ्यां ब्रह्मा वैश्वकर्मणहोमान अनुमन्त्रयेत । "एतं सधस्थाः [६. १२३. १, २] इति द्वे येनासहस्रम् [९. ५. १७] इति वैश्वकर्मणहोमान्" इति [वै० ५. २] वैतानसूत्रात् ॥

"शुद्धाः पूताः" इत्यनया सर्वयज्ञेषु ऋत्विजां हस्तप्रक्षालनार्थम् उदकं दद्यात् । सत्रयज्ञान् प्रक्रम्य सूत्रितम्। "चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद उपसादयति शुद्धाः पूता इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ८.४]

"देवाः पितरः" इति तिस्रः यजमानस्य आर्षेयप्रवरणे वाचयेत्। "प्रवरे प्रव्रियमाणे वाचयेद् देवाः पितर इति तिस्रः" इति [वै० १. २] वैतानसूत्रात् ॥

"दिवो नु मां बृहतः" इति सूक्तेन आकाशोदकस्रावनदोषशान्त्यर्थम् उदकम् अभिमन्त्र्य शरीरं प्रक्षालयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तैलं शान्तौषधीर्गन्धं हिरण्यं वासो वा अभिमन्त्र्य तैः शरीरम् उद्वर्तयेत् ॥

सूत्रितं हि । “दिवो नु माम् इति वियद्बिन्दून् प्रक्षालयति मन्त्रोक्तैः स्पृशति” इति [कौ० ५. १०]॥

“एतं भागम्” और “एतं सधस्थाः” इन दो तृचोंसे सब यज्ञोंमें संस्थितहोमोंकी आहुति देय । और उनका अनुमंत्रण भी करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–“एतम् भागम् (६ । १२२) एतं सधस्थाः (६ । १२३) उलूखले (१० । ९ । २६)इति संस्थितहोमान् आवपतेऽनुमन्त्रणं च” (कौशिकसूत्र ८ । ४)॥

तथा अग्निष्टोम के हविर्धानमें जब चमसपात्रको धारण करने वाले अपने २ चमसके समीपमें पितरोंके निमित्त पुरोडाशके टुकड़े देते हों तब इन दोनों तृचोंसे अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि–“हविर्धाने यथाचमसं दक्षिणतः स्वेभ्यः उपासीनेभ्यस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तान् एतत् ते प्रततामह (१८ । ४ । ७५) इति निपृणन्ति । अत्र पितरः (कौशिकसूत्र ११ । ९) इति जपित्वा एतं भागम् (६ । १२२) एतं सधस्थाः (६ । १२३) श्येनो नृचक्षाः (७ । ४२ । २) इत्यनुमन्त्रयते” (वैतानसूत्र ३ । १२) ।

यहाँ ‘एतं सधस्थाः’ इन दो तृचोंसे ब्रह्मा वैश्वकर्मणहोमोंका अनुमंत्रण करे । इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि–“एतं सधस्थाः (६ । १२३ । १, २) इति द्वे येनासहस्रम् (९ । ५ । १७)इति वैश्वकर्मणहोमान् (वैतानसूत्र ५ । २)॥

“शुद्धाः पूताः” इस ऋचासे सब यज्ञोंमें ऋत्विजोंके हाथ धुलानेके लिये जलको देय । सबयज्ञोंका आरंभ करके कहा है, कि “चतुर आर्षेयान् भृग्वंगिरोविद उपसादयति शुद्धाः पूता इति मंत्रोक्तम्” (कौशिकसूत्र ८ । ४)॥

“देवाः पितरः” इन तीन ऋचाओंको आर्षेयप्रवरणमें बँच

वावे। इस विषयमें वैतानसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"प्रवरे प्रव्रियमाणे वाचयेद्व देवाः पितर इति तिस्रः" (वैतानसूत्र १। २)।

"दिवो नु मां बृहतः" इस ऋचसे आकाशोदकस्रावनदोषकी शान्तिके लिये जलको अभिमंत्रित करके शरीरको प्रक्षालित करे।

तथा तहाँ ही कर्ममें तैल शान्ता औषधि, गंध सुवर्ण वा वस्त्र को अभिमन्त्रित करके उबटना करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"दिवो नु मां इति वियद्बिन्दून् प्रक्षालयति मन्त्रोक्तैः स्पृशति" (कौशिकसूत्र ५। १०)

तत्र प्रथमा॥

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम॥

एतम्। भागम्। परि। ददामि। विद्वान्। विश्वऽकर्मन्। प्रथमऽजाः। ऋतस्य।

अस्माभिः। दत्तम्। जरसः। परस्तात्। अच्छिन्नम्। तन्तुम्। अनु। सम्। तरेम॥ १॥

हे विश्वकर्मन् विश्वं कृत्स्नं जगत् कर्म कर्तव्यं यस्य स विश्वकर्मा। एतत्संज्ञ हे देव यस्त्वम् ऋतस्य सत्यस्य परब्रह्मणः प्रथमजाः प्रथमं जातः उत्पन्नः। स प्रथमशरीरी हिरण्यगर्भः सर्वजगत्स्रष्टेत्यर्थः। ❀ "जनसनखनक्रमगमो विट्"। "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ❀। ईदृशस्य तव माहात्म्य विद्वान् जानन् एतं भागम् पक्वम् अन्नं हविर्भागं वा परि ददामि रक्ष

णार्थं तुभ्यं प्रयच्छामि । एवम् इह लोके अस्माभिस्तुभ्यं दत्तम् इमं भागं जरसः परस्तात् जराया ऊर्ध्वम् एतद्देहपातोत्तरकालम् । जरसः परस्ताद् इति वदता जरापर्यन्तम् आयुषो दैर्घ्यं प्रार्थितम् । जीर्णम् इमं देहं परित्यज्य अच्छिन्नम् अविच्छिन्नं तन्तुम् । तायते कुलं विस्तार्यते अनेनेति तन्तुः पुत्रपौत्रादिलक्षणः संतानः । तम् अनुप्रविश्य । सं चरेम संप्राप्नुयाम एतदेव हि संसारिणः पुरुषस्य अमृतत्वम् । तथा च मन्त्रवर्णः । "प्रजाम् अनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति [तै० ब्रा० १. ५, ५. ६] "प्रजाभिरग्ने अमृतत्वम् अश्याम्" इति च [ऋ० ५. ४. १०] ॥

हे विश्वकर्मन् देव ! आप परब्रह्मसे पहिले उत्पन्न हुए हैं अर्थात् प्रथमशरीरी हिरण्यगर्भ सर्वजगत्स्रष्टा हैं । ऐसे आपके माहात्म्यको जानने वाला मैं इस पक्व हविर्भागको रक्षाके लिये आपको देता हूँ । इस प्रकार इस लोकमें हमारे द्वारा आपको दिये हुए इस भागको हम बुढ़ापेसे आगे (शरीर त्याग कर) अविच्छिन्नतन्तु (पुत्र पौत्र आदिके) रूपमें प्रवेश कर पावें । † ॥१॥

द्वितीया ॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स
स्वर्ग एव ॥ २ ॥

---

† यही संसारीपुरुषका अमृतत्व है । इस बातको तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ५ । ५ । ६ में कहा है, कि—"प्रजाम् अनुप्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम् ॥—हे मरणधर्मिन् ! तू प्रजामें प्रजारूपमें उत्पन्न होता है, यही तेरा अमृतत्व है" और ऋग्वेदसंहिता ५ । ४ । १० में कहा है, कि—"प्रजाभिरग्ने अमृतत्वं अश्याम् ॥—हे अग्ने ! मैं प्रजा (सन्तानों) से अमृतत्वका उपभोग करूँ ॥"

त॒तम् । तन्तु॑म् । अनु॑ । एके॑ । त॒र॒न्ति॒ । येषा॑म् । द॒त्तम् । पित्र्य॑म् ।
आ॒ऽअ॑यनेन ।

अ॒ब॒न्धु । एके॑ । दद॑तः । प्र॒ऽयच्छ॑न्तः । दातु॑म् । च॒ । इत् ।
शिक्षा॑न् । सः । स्व॒ःऽगः । ए॒व ॥ २ ॥

एके केचन जना ऋणिनः सन्तः देहपातोत्तरकालं ततम् विस्तीर्णं तन्तुम् पुत्रपौत्रादिलक्षणं संतानम् अनुलक्ष्य तरन्ति ऋणम् अतिक्रामन्ति । पुत्रादिभिस्तस्य पितृगतस्य ऋणस्य अपाकरणात् । येषां जनानाम् ऋणवतां पित्र्यम् पितुरागतमपि ऋणम् आयनेन आगमनेन पुत्रपौत्रादिषु प्रवेशनेन दत्तम् उत्तमर्णेभ्यः प्रत्यर्पितं भवति । ते तरन्तीति पूर्वत्र संबन्धः । अस्त्वेवं पुत्रपौत्रादिसंतानवताम् । येषां तु तदभावः कथं ते अनृणाः स्युरिति तत्राह अबन्ध्वेक इति । अबन्धु । ❀ "सुपां सुलुक्०" इति जसो लुक् ❀ । अबन्धवः । अबध्नाति कुलं संततम् अविच्छिन्नं करोतीति बन्धुः पुत्रपौत्रादिलक्षणः संतानः । तद्रहिता एके जना ददतः । ❀ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । हिरण्यधान्यादिकं ददते उत्तमर्णाय पितृकृतम् आत्मकृतं चेति उभयविधमपि ऋणं प्रयच्छन्तः इह लोक एव प्रत्यर्पयन्तो दातुं चेत् शिक्षान् सर्वात्मना प्रत्यर्पयितुं यदि शक्नुवन्ति शक्त्यभावेपि तदिच्छामात्रं वा विद्यते स एव तेषां स्वर्गः । तावन्मात्रेणापि सर्वम् ऋणम् अपाकृत्य स्वर्गभाजो भवन्तीत्यर्थः । ❀ शिक्षान् इति । शक्लृ शक्तौ इत्यस्मात् सनि "सनि मीमा०" इत्यादिना अचः स्थाने इस् आदेशः । "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः । लेटि आडागमः । "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" इति इकारलोपः । संयोगान्तलोपे तस्य असिद्धत्वात् नलोपाभावः ❀ ॥

एक प्रकारके पुरुष ऋणी होने पर भी शरीरपातके अनन्तर पुत्र पौत्र आदि सन्तानके लक्ष्यसे ऋणको तर जाते हैं (अर्थात् पुत्र आदिके उस ऋणको भुगतानेसे वह ऋणको तर जाते हैं) और जिन ऋण वाले पुरुषोंका पितासे चला आता हुआ भी ऋण आने वाले पुत्र पौत्र आदिमें प्रवेश कर कर्जदारोंको भुगता दिया जाता है अर्थात् जिनके पुत्र पौत्र आदि पिता पितामहके कर्जको भुगता देते हैं वे भी तर जाते हैं । (यह तो पुत्र पौत्र आदि संतान वालोंकी बात हुई अब जिनके सन्तान नहीं हैं, वे किस प्रकार तर सकते हैं, इसके उत्तरमें कहते हैं, कि—) कुलको पुत्र पौत्र आदिके रूप में बाँधने वाले बंधु जिनके नहीं होते ऐसे पुरुष अपने और पिता के दोनोंके लिये हुए सुवर्ण और धान्य आदिका इस लोकमें भुगतान कर देते हैं वा शक्तिका अभाव होने पर जिनको भुगताने की उत्कट इच्छा रहती है वे उस इच्छासे भी स्वर्गको-प्राप्त होते हैं २

तृतीया ॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं
श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

अनुऽआरभेथाम् । अनुऽसंरभेथाम् । एतम् । लोकम् । श्रत्ऽदधानाः । सचन्ते ।

यत् । वाम् । पक्वम् । परिऽविष्टम् । अग्नौ । तस्य । गुप्तये । दंपती इति दम्ऽपती । सम् । श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

हे दंपती जायापती अन्वारभेथाम् परलोकहितं सत्कर्म अनुलक्ष्य तस्य आरम्भः क्रियताम् । अनुसंरभेथाम् आरम्भानन्तरं तत्रैव संरब्धौ संयुक्तौ भवताम् । सत्कर्मणाम् अग्निहोत्रादीनाम्

अनारम्भः आरब्धानां च तेषां परित्यागश्च सर्वथा न युक्त इत्यर्थः। एतम् कर्मफलभूतं लोकम् स्वर्गादिकं श्रद्दधानाः श्रद्धावन्तः आस्तिक्यबुद्धियुक्ताः कर्मानुष्ठानतत्परा जनाः सचन्ते सेवन्ते। ❀ "सचस्वा नः स्वस्तये" सेवस्व नः स्वस्तये इति हि निरुक्तम् [नि० ३. २१] ❀। यस्माद् एवं तस्मात् हे दंपती युवामपि श्रद्दधानौ भवतम् इत्यर्थः। वां युवाभ्याम् अर्थे यत् पक्वम् पाकेन संस्कृतं स्थालीपाकादिलक्षणम् अन्नम्। ❀ "युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः०" इति चतुर्थीद्विवचनान्तस्य वाम् आदेशः। पक्वम् इति। पचेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य "पचो वः" इति वत्वम् ❀। यद्वा युवयोः संबन्धि ब्राह्मणेभ्यो देयं पक्वम् अन्नम्। एतच्च स्मृतिविहितस्य वापीकूपतटाकनिर्माणादेः पूर्तस्य उपलक्षणम्। यच्च अन्नम् अग्नौ परिविष्टम् हवीरूपेण देवतार्थं प्रक्षिप्तम्। एतच्च इष्टशब्दवाच्यस्य अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादेर्यागस्य उपलक्षणम्। तस्य इष्टापूर्तस्य गुप्तये रक्षणाय हे दंपती युवां सं श्रयेथाम् संसेवेथाम्। ❀ श्रिञ् सेवायाम् ❀॥

हे दम्पती पतिपत्नी ! परलोकमें हित करने वाले सत्कर्मोंको लक्ष्यमें रखकर उनका आरंभ करो और उनका आरंभ करके उनमें ही परायण रहो। तात्पर्य यह है, कि—अग्निहोत्र आदि सत्कर्मोंका आरंभ न करना और आरंभ किये हुए अग्निहोत्र आदि का त्याग देना सर्वथा अनुचित है। इस कर्मके फलरूप स्वर्ग आदि लोकोंको कर्मके अनुष्ठानमें तत्पर श्रद्धालु आस्तिक पुरुष ही भोगते हैं। (इस कारण हे दम्पती ! तुम भी श्रद्धालु होओ) तुम ब्राह्मणोंको जो पक्व अन्न देना चाहते हो (यह स्मृतिमें विहित वापी कूप तटाक आदि पूर्तका उपलक्षण है) और जो अन्न हविरूप अग्निमें आहुत होता है (यह इष्ट शब्दवाच्य अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास आदिका उपलक्षण हैं) ऐसे इष्टापूर्त की रक्षाके लिये हे दम्पति ! तुम सेवा करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

य॒ज्ञं यन्तं॒ मन॑सा बृ॒हन्त॑म॒न्वारो॑हामि॒ तप॑सा॒ सयो॑निः ।
उप॑हूता अग्ने॒ ज॒रसः॑ प॒रस्ता॑त् तृ॒तीये॒ नाके॑ स॒ध॒मादं॑
म॒दे॒म ॥ ४ ॥

य॒ज्ञम् । यन्त॑म् । मन॑सा । बृ॒हन्त॑म् । अ॒नु॒ऽआ॒रोहा॑मि । तप॑सा ।
सऽयो॑निः ।
उप॑ऽहूताः । अ॒ग्ने॒ । ज॒रसः॑ । प॒रस्ता॑त् । तृ॒तीये॑ । नाके॑ । स॒ध॒ऽमाद॑म् ।
म॒दे॒म ॥ ४ ॥

यज्ञम् अस्माभिः कृतं यागं यन्तम् देवान् गच्छन्तं बृहन्तम् महान्तं मनसा बुद्ध्या अहम् अन्वारोहामि अनुप्रविश्य तत्रैव तिष्ठामि । कथंभूतः । तपसा अनशनादिरूपेण दीक्षानियमेन सयोनिः । योनिः दिव्यदेहोत्पत्तिबीजम् अपूर्वम् । तत्सहितः । यदि हि यजमानस्तपस्वी भवति तदा यज्ञस्तेन संबद्धो भवति । "योतपस्वी स्याद् असंश्लिष्टोस्य यज्ञः स्यात् । तपस्वी स्यात् । यज्ञमेव तत् संश्लेषयत इति विज्ञायते" इति स्मरणात् । सर्वथा यजमानेन तपस्विना भवितव्यम् इत्यभिप्रायः । यद्वा यज्ञम् यज्ञसाधनं यष्टव्यं वा अग्निं यन्तम् अस्मदीयं हविरादाय देवान् गच्छन्तम् इति योज्यम् । ❀ यज देवपूजादौ । "यजयाच०" इत्यादिना भावे अकर्तरि च कारके नङ् प्रत्ययः । यन्तम् इति । एतेर्लटः शत्रादेशे "इणो यण्" इति यण् ❀ । हे अग्ने उपहूताः त्वया अनुज्ञाता जरसः परस्तात् चिरकालम् इह लोके उषित्वा जरसः परस्तात् जराया ऊर्ध्वम् । ❀ "जराया जरस् अन्यतरस्याम्" इति जरस् आदेशः ❀ । जीर्णम् इदं मानुषशरीरं परि-

त्यज्य तृतीये त्रित्वसंख्यापूरके नाके । कं सुखम् अकं दुःखम् नास्मिन् अकम् अस्तीति नाकः । ❀ "नभ्राण्नपाद्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ । दुःखासंस्पृष्टे स्वर्गलोके सधमादम् पुत्रपौत्रादिभिः सह हर्षो यथा भवति तथा मदेम हृष्येम । ❀ "सधमादस्थयोश्छन्दसि" इति सहशब्दस्य सधादेशः ❀ ॥

अनशन आदिरूप दीक्षानियमसे दिव्यदेहकी उत्पत्तिरूप बीज वाला मैं अपने किये हुए देवताओंकी ओर जाते हुए महान् यज्ञ में मनसे प्रवेश करके उसमें ही स्थित होता हूँ अथवा–यज्ञके साधन पूजनीय अग्निदेव जब हमारी दीहुई हविको लेकर देवताओंके पास जाते हैं, तब मैं उनमें मनसे प्रवेश करके स्थित होता हूँ । हे अग्ने ! आपके आज्ञा देने पर हम बुढ़ापे तक के चिरकाल तक इस लोकमें निवास करके, बुढ़ापेके अनन्तर इस जीर्ण मनुष्यशरीरको त्याग कर तीसरे लोक दुःखके लेशसे शून्य स्वर्गलोक–में पुत्र पौत्र आदिके साथ जिस प्रकार हर्ष प्राप्त हो तिस प्रकार हर्ष पावें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

शु॒द्धाः पू॒ता यो॒षितो॑ य॒ज्ञिया॑ इ॒मा ब्र॒ह्म॒णां॑ हस्ते॑षु प्रपृ॒-
थक् सा॑दयामि ।
यत्का॑म इ॒दम॑भिषि॒ञ्चामि॑ वो॒हमिन्द्रो॑ म॒रु॒त्वान्त्स द॑दातु॒
तन्मे॑ ॥ ५ ॥

शु॒द्धाः । पू॒ताः । यो॒षित॑ः । य॒ज्ञिया॑ः । इ॒माः । ब्र॒ह्मणा॑म् । हस्ते॑षु ।
प्र॒ऽपृथक् । सा॒द॒या॒मि॒ ।

यत्ऽका॑मः । इ॒दम् । अ॒भि॒ऽसि॒ञ्चामि॑ । व॒ः । अ॒हम् । इन्द्रः॑ । म॒रु॒त्वा॑न् । सः । द॒दा॒तु॒ । तत् । मे॒ ॥ ५ ॥

शुद्धाः पापरहिताः पूताः जगत्पवित्रभूता योषितः स्त्रीरूपाः यज्ञियाः यज्ञार्हा इमा अपः ब्रह्मणाम् ब्राह्मणानां चतुर्णाम् आर्षेयाणाम् ऋत्विजां हस्तेषु प्रक्षालनेन पृथक् सादयामि ॥ अस्मदुपभोगार्थं स्थापयामि । यत्कामः यत्फलं कामयमानः इदम् इदानीम् हे आपः वः युष्मान् अहम् अभिषिञ्चामि अभितो निनयामि । ❀ षिच क्षरणे । "शे मुचादीनाम्" इति नुम् ❀ । मरुत्वान् मरुद्गणैर्युक्तः स प्रसिद्ध इन्द्रः मे मह्यं तत् फलं ददातु प्रयच्छतु ॥

पापरहित जगत्में पवित्रभूत स्त्रीरूप इन यज्ञार्ह जलोंको मैं ऋत्विजरूप चार ब्राह्मणोंके हाथोंमें धोनेके लिये डालता हूँ, जिस पदार्थकी कामना वाला मैं तुम्हारे लिये अभिषिञ्चन करता हूँ, मरुद्गणोंसहित इन्द्रदेवता उस पदार्थको मुझे दें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ए॒तं स॑धस्था॒ः परि॑ वो॑ ददा॒मि यं शे॑व॒धिमा॑व॒हाज्जा॒तवे॑दाः ।
अ॒न्वा॒ग॒न्ता यज॑मानः स्व॒स्ति तं स्म॑ जानीत पर॒मे व्यो॑मन् ॥ १ ॥

ए॒तम् । स॒ध॒ऽस्था॒ः । परि॑ । व॒ः । द॒दा॒मि॒ । यम् । शे॒व॒ऽधिम् । आ॒ऽव॒हा॑त् । जा॒तऽवे॑दाः ।
अ॒नु॒ऽआ॒ग॒न्ता । यज॑मानः । स्व॒स्ति । तम् । स्म॒ । जा॒नी॒त॒ । प॒र॒मे । विऽओ॑मन् ॥ १ ॥

हे सधस्थाः। सह तिष्ठन्ति एकत्र स्वर्गे लोके स्थाने यजमानेन सह निवसन्तीति सधस्था देवाः। ❀ "सुपि स्थः" इति तिष्ठतेः कप्रत्ययः। "सध मादस्थयोः०" इति सहस्य सधादेशः ❀। हे सहायभूता देवाः एतं हविर्भागं वः युष्मभ्यं परि ददामि। परिदानं रक्षणार्थं दानम्। यं भागं शेवधिम् निधिरूपं जातवेदाः जातानां वेदिता अग्निः आवहात् युष्मान् प्रापयति। ❀ आङ्पूर्वाद् वहेर्लेटि आडागमः ❀। एतम् इति पूर्वत्रान्वयः। अयं यजमानः स्वस्ति क्षेमेण तं शेवधिम् अन्वागन्ता पृष्ठत आगमिष्यति। ❀ "अनद्यतने लुट्" इति गमेर्लुट् ❀। परमे उत्कृष्टे व्योमन् व्योमनि विविधावनयुक्ते स्वर्गलोके तम् अन्वागतं यजमानं जानीत स्म अवगच्छत। मा विस्मरतेत्यर्थः। अविस्मरणद्योतनार्थः स्मशब्दः। ❀ व्योमन्निति। विपूर्वाद् अवतेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति दृशिग्रहणाद् भावे मनिन्। "ज्वरत्वरस्रिव्यविमवाम् उपधायाश्च" इति ऊठि कृते गुणः। "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक्। विविधम् ओम रक्षणम् अस्मिन्निति बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। "न ङिसंबुद्ध्योः" इति नलोपाभावः ❀॥

हे स्वर्गमें यजमानके साथ एकत्र रहने वाले सहायक देवताओं! मैं इस हविर्भागको तुम्हारे लिये देता हूँ, कि–जिस निधिरूपको जातवेदा अग्नि आपको प्राप्त कराते हैं। यह यजमान भी इस निधिरूप हविके पीछे ही कुशलपूर्वक आवेगा। श्रेष्ठ स्वर्गलोकमें आये हुए इस यजमानसे आप परिचित रहें भूलें नहीं ६ सप्तमी॥

जा॒नी॒त स्मै॑नं प॒रमे॒ व्यो॑म॒न् दे॒वाः सध॑स्थाः वि॒द लो॒कमत्र॑।

अ॒न्वा॑ग॒न्ता॒ यज॑मानः स्व॒स्तीष्टापू॒र्तं स्म॑ कृणुता॒विर॑स्मै

जानीत । स्म । एनम् । परमे । विऽओमन् । देवाः ॥ सधऽस्थाः ।
विद । लोकम् । अत्र ।
अनुऽआगन्ता । यजमानः । स्वस्ति । इष्टापूर्तम् । स्म । कृणुत ।
आविः । अस्मै ॥ २ ॥

जानीत स्मैनम् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् । हे सधस्थाः सहस्थाना देवाः अत्र अस्मिन् स्वर्गे अस्य यजमानस्य लोकं विद जानीथ । कर्मानुष्ठानसमय एव अवधारयत । तृतीयः पादः पूर्ववद् योजनीयः । अस्मै अन्वागताय यजमानाय तत्कृतम् इष्टापूर्तम् । इष्टं श्रुत्युक्तयागादि कर्म । स्मृत्युक्तवापीकूपतटाकनिर्माणादि पूर्तम् । तद् उभयम् आविष्कृणुत दर्शयत । तत्फलं प्रयच्छतेत्यर्थः ॥

हे साथ निवास करने वाले देवताओं! परमव्योम स्वर्गमें इससे आप परिचित रहिये, इस स्वर्गमें इसके स्थानको आप निश्चित करें अर्थात् कर्मानुष्ठानके समय ही आप इसके स्थानको निश्चित कर दें। यह यजमान हविःप्रदानके अनन्तर स्वर्गमें क्षेमपूर्वक आवेगा। इस आये हुए यजमानके लिये इसके किये हुए श्रुतिमें कहे हुए याग आदि इष्टकर्म और स्मृतिमें कहे हुए वापी. कूप तटाक आदि पूर्त कर्मको प्रकट करिये अर्थात् इसको इसके किये हुए इष्टापूर्तका फल देना ॥ २ ॥

देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ३

देवाः । पितरः । पितरः । देवाः ॥ यः । अस्मि । सः । अस्मि ३

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ४

सः । पचामि । सः । ददामि । सः । यजे । सः । दत्तात् । मा । यूषम् ४

अष्टमी ॥ ये देवाः वसुरुद्रादित्यरूपास्ते अस्माकं पितरः पितृपितामहप्रपितामहात्मकाः पितृदेवताः । ये च अस्माकं पितरः पितृपितामहप्रपितामहरूपा मानुषास्त एव प्रागुक्ता देवाः । इत्थं परस्परव्यतिहारेण पितॄणां देवतात्मकत्वं दृढीकृतम् । अतः सर्वेषां जनकाः देवा एव । ततो यो अस्मि यदीयो भवामि सो अस्मि तदीयोहम् अस्मि । संभावितव्यतिक्रमा हि स्त्रियः । अत एतद्भावनया स्वपितुरेव अहं पुत्रो भवामीत्यर्थः । "स्त्र्यपराधात्, कर्तुश्च पुत्रदर्शनात्" [जै० १. २. १३] इत्यत्र मीमांसाभाष्यकृता एतत् समर्थितम् । अतः स तदीय एवाहं पचामि पाकयज्ञान् करोमि । स ददामि दानानि करोमि । स यजे यागान् अनुतिष्ठामि । सोहं दत्तात् पुत्रादिभिरनुष्ठितश्राद्धादिजन्यफलाद् मा यूषम् पृथक्कृतो मा भूवम् । सत्यपि मातापित्रोर्व्यभिचारे एतन्मन्त्रपाठसामर्थ्येन यथास्वमेव सर्वं कर्मानुष्ठितं भवतीत्यर्थः । ❀ यूषम् इति । यौतेः पृथग्भावार्थाद् माङि लुङि "च्लेः सिच्"। वर्णव्यत्ययेन ऊकारः❀॥

वसु रुद्र आदित्यरूप जो देवता हैं वे हमारे पितृपितामहप्रपितामहात्मकपितर हैं और जो हमारे पिता पितामह, और प्रपितामहरूप मनुष्य हैं वे ही पूर्वोक्त देवता हैं (इस प्रकार पारस्परिक व्यतिहारसे पितरोंके देवत्वको दृढ़ किया है, अतः सबके जनक देवता ही हैं अत एव) मैं जिसका हूँ उसका ही हूँ † वही मैं पाकयज्ञोंको करता हूँ, दान करता हूँ, यागोंका अनुष्ठान करता हूँ, वह मैं पुत्र आदिके किये हुए श्राद्ध आदिसे उत्पन्न होने वाले फलसे पृथक् (हीन) न होऊँ (तात्पर्य यह है, कि—

---

† स्त्रियोंमें मानसिक व्यतिक्रम होना संभव है अत एव इस भावनासे मैं उस दोषसे मुक्त रहूँ । इसका समर्थन "स्त्र्यपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनात्" इस १ । २ । १३ जैमिनीय सूत्रमें मीमांसाभाष्यकारने किया है ।

माता पिताका अपराध होने पर भी इस मन्त्रके पाठकी शक्तिसे सब कर्म यथोचित अनुष्ठित होजाता है)॥ ३ ॥ ४ ॥

नवमी ॥

नाके॑ राज॒न् प्रति॑ तिष्ठ॒ तत्रै॒तत् प्रति॑ तिष्ठतु ।
वि॒द्धि पू॒र्तस्य॑ नो राज॒न्त्स दे॑व सु॒मना॑ भव ॥ ५ ॥

नाके॑ । रा॒ज॒न् । प्रति॑ । ति॒ष्ठ॒ । तत्र॑ । ए॒तत् । प्रति॑ । ति॒ष्ठ॒तु॒ ।
वि॒द्धि । पू॒र्तस्य॑ । नः॒ । रा॒ज॒न् । सः । दे॒व॒ । सु॒ऽमनाः॑ । भ॒व॒ ॥५॥

हे राजन् स्वामिन् सोम । "सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा" [तै० सं० १. ८, १०. २] इति श्रुतेः । स त्वं नाके स्वर्गे लोके प्रति तिष्ठ अस्मदीयम् अपराधं विस्मृत्य सुखं वर्तस्व । तत्र तस्मिन् स्वर्गे लोके एतत् अस्माभिः कृतम् इष्टापूर्तं प्रति तिष्ठतु प्रतिष्ठितं फलप्रदानसमर्थं वर्तताम् । हे राजन् नः अस्माकं पूर्तस्य । उपलक्षणम् एतत् । ❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । इष्टापूर्तं विद्धि जानीहि । एतस्य कर्मण एतावत् फलं देयम् इति मनसा निश्चिनु । हे देव स तादृशस्त्वं सुमनाः शोभनमनस्को भव ॥

हे राजन्—स्वामिन्—सोम ! ‡ आप स्वर्गलोकमें हमारे अपराधों को भूल कर (हमसे) सुख भरा वर्ताव करिये । उस स्वर्गलोक में यह हमारा किया हुआ इष्टापूर्त प्रतिष्ठित हो अर्थात् फल देनेमें समर्थ हो । हे राजन् ! आप हमारे इष्टापूर्तको जानिये अर्थात् इस कर्मका इनता फल देना चाहिये इसका मनसे निश्चय करिये । हे ऐसे देव ! आप शोभन मन वाले हूजिये ॥ ५ ॥

---

‡ तैत्तिरीयसंहिता । १ । ८ । १० । २ में कहा है, कि—"सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥—सोम हम ब्राह्मणोंके राजा हैं ॥"

दशमी ॥

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥

दिवः । नु । माम् । बृहतः । अन्तरिक्षात् । अपाम् । स्तोकः । अभि । अपप्तत् । रसेन ।
सम् । इन्द्रियेण । पयसा । अहम् । अग्ने । छन्दःऽभिः । यज्ञैः । सुऽकृताम् । कृतेन ॥ १ ॥

दिवः द्युलोकात् । नुशब्दो वितर्के । अथवा बृहतः महतः अन्तरिक्षात् आकाशाद्वा निर्मेघाद्वा अपाम् उदकानां स्तोकः बिन्दुः स्वकीयेन रसेन माम् अभ्यपप्तत् ममोपरि पतितोभूत् । ❀ पत्लृ गतौ । लुङि लृदित्वात् च्लेः अङ् आदेशः । "पतः पुम्" इति पुम् आगमः ❀ । हे अग्ने त्वत्प्रसादेन अकालवर्षबिन्दुसेकजनितदोषम् अनेन प्रक्षालनेन परिहृत्य इन्द्रियेण इन्द्रस्य आत्मनो लिङ्गं यत् तेजो बलं वा तेन । पयसा क्षीरेण पयोवत् सारभूतेन अमृतेन वा । ❀ सम् इत्युपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ❀ । संगच्छेय । तथा छन्दोभिः गायत्र्यादिच्छन्दोयुक्तैर्मन्त्रैः यज्ञैः अनुष्ठितैर्यागैः सुकृताम् पुण्यकृतां जनानां कृतेन कर्मणा । यद्वा सुकृताम् शोभनकर्मणां कृतेन फलेन अहं संगच्छेयेत्यर्थः । एतस्य सर्वस्य निवर्तकं हि वृष्ट्युदकाभिवर्षणम् । श्रूयते हि दीक्षितधर्मप्रकरणे । "दिव्या आपो शान्ता ओजो बलं दीक्षां तपोस्य निर्घ्नन्ति" इति [तै० सं० ३. १. १. ३] ॥

द्युलोकसे अथवा महान् निर्मेघ अंतरिक्षसे जलका जो बिन्दु

अपने रसके साथ मेरे ऊपर गिरा है। हे अग्ने! मैं आपके प्रसादसे अकालवर्षाके बिन्दुके लगनेसे उत्पन्न होने वाले दोषको इस प्रक्षालनके द्वारा हर कर, दुग्धकी समान सारभूत अमृतसे संयुक्त होता हूँ। तथा गायत्री आदि छन्द वाले मन्त्रोंके द्वारा अनुष्ठित यागोंसे मैं पुण्यफलोंसे सम्पन्न होऊँ ॥ १ ॥

एकादशी ॥

यदि॑ वृ॒क्षाद॒भ्य॑प॒प्तत् फ॒लं तद् यद्य॒न्तरि॑क्षा॒त् स उ॑ वा॒युरे॒व
यत्रास्पृ॑क्ष॒त् त॒न्वो॒३॒॑ यच्च॒ वास॑स॒ आपो॑ नुदन्तु निर्ऋ॑तिं
परा॒चैः ॥ २ ॥

यदि॑ । वृ॒क्षात् । अ॒भि॒ऽअपप्तत् । फल॑म् । तत् । यदि॑ । अ॒न्तरि॑क्षात् ।
सः । ऊ॒ँ इति॑ । वा॒युः । ए॒व ।
यत्र॑ । अस्पृ॑क्षत् । त॒न्वः॑ । यत् । च॒ । वास॑सः । आप॑ः । नु॒द॒न्तु॒ ।
निःऽऋ॑तिम् । प॒रा॒चैः ॥ २ ॥

वृक्षात् वृक्षाग्राद् यदि वर्षबिन्दुः अभ्यपप्तत् माम् अभिलक्ष्य पतितोभूत् । ❀ पूर्ववत् लुङि पुम् आगमः ❀ । तत् पतितं वर्षजलं तद्वृक्षसंबन्धि फलमेव । यदि च अन्तरिक्षात् निरावरणाद् आकाशप्रदेशाद् वर्षबिन्दुः अभ्यपप्तत् स उ सोपि वायुरेव वाय्वात्मक एव । नास्माकं दोषायेत्यर्थः । तन्वः शरीरस्य संबन्धिनि यत्र यस्मिन्नङ्गे अस्पृक्षत् वर्षबिन्दुः स्पृशति । ❀ स्पृशतेश्छान्दसो लुङ् । "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति च्लेः क्सादेशः ❀ । वाससः परिहितस्य अस्मदीयस्य वस्त्रस्य यच्च अङ्गं स्पृशति [वर्षबिन्दुस्तां] वर्षबिन्द्वात्मना पतितां निर्ऋतिम् अनिष्टकरीं पापदेव-

ताम् इमाः प्रक्षालनार्थाः शुद्धा आपः पराचैः पराङ्मुखीं नुदन्तु अस्मत्तः प्रेरयन्तु । दूरं गमयन्तु इत्यर्थः ॥

वृक्षके अग्रभागसे यदि वर्षाकी बिन्दु मुझको लक्ष्य बना कर गिर पड़ी है, तो वह गिरी हुई बिन्दु वृक्षका ही फल है और यदि निरावरण आकाशप्रदेशसे वर्षाकी बिन्दु गिरी है तो वह भी वायु ही है अर्थात् वायुका ही फल—करतूत—है वह हमें दोषी नहीं कर सकता, शरीरके जिस अंग पर वर्षाकी बिन्दुका स्पर्श हुआ है और पहिरे हुए वस्त्रके जिस भाग पर बिन्दुका स्पर्श हुआ है, उस वर्षाकी बिन्दुरूपसे पतित हुई अनिष्टकारिणी पापदेवताको ये प्रक्षालनके लिये लिये हुए जल हमसे पराङ्मुख कर दूर भेजें ॥ २ ॥

द्वादशी ॥

अ॒भ्य॒ञ्ज॑नं सु॒र॒भि सा समृ॑द्धि॒र्हिर॑ण्यं॒ वर्च॒स्तदु॑ पू॒त्रिम॑मे॒व
सर्वा॑ प॒वि॒त्रा वि॒त॒ताध्य॒स्मत् तन्मा ता॑री॒न्निर्ऋ॑ति॒र्मो
अरा॑तिः ॥ ३ ॥

अ॒भि॒ऽअ॒ञ्ज॑नम् । सु॒र॒भि । सा । सम्ऽऋ॑द्धिः । हिर॑ण्यम् । वर्च॑ः ।
तत् । ऊं॒ इति॑ । पू॒त्रिम॑म् । ए॒व ।
सर्वा॑ । प॒वित्रा॑ । विऽत॑ता । अधि॑ । अ॒स्मत् । तत् । मा । ता॒री॒त् ।
निःऽऋ॑तिः । मो इति॑ । अरा॑तिः ॥ ३ ॥

यद्द एतद्द वर्षजलं मदङ्गे पतितं तत् अभ्यञ्जनम् अभ्यङ्गसाधनम् । इदं तैलं सुरभि सौरभ्योपेतं चन्दनादिकम् । सैव समृद्धिः अस्माकम् अभिवृद्धिः । हिरण्यम् स्वर्णमयालंकारादि । वर्चः बलम् । इत्थम् अभ्यञ्जनाद्यात्मना भाव्यमानं तत् वर्षबिन्दुजलं

पूत्रिमम् पवनसाधनमेव शुद्धिकरमेव। न दोषावहम् इत्यर्थः ।❀पूञ् पवने इत्यस्मात् छान्दसः क्रिप्रत्ययः । “क्त्रेर्मम् नित्यम्” इति मप् ❀ । सर्वा सर्वाणि पवित्रा पवित्राणि पवनसाधनानि अभ्यञ्जनादीनि उक्तानि अनुक्तानि च अस्मदधि अस्माकम् उपरि वितता विततानि विस्तृतानि । ❀ “शेश्छन्दसि बहुलम्” इति शेर्लोपः ❀ । तत् तस्मात् पवित्राच्छन्नत्वाद् निर्ऋतिः अनिष्टकारिणी पापदेवता अस्मान् मा तारीत् मातिक्रामतु । अरातिः शत्रुश्च मो मैव अतिक्रामतु । ❀ तॄ प्लवनतरणयोः ।अस्मान् माङि लुङि सिचि वृद्धौ “इट ईटि” इति सिज्लोपः ❀ ॥

इति सायणाचार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये
षष्ठकाण्डे द्वादशोनुवाकः ॥

यह जो वर्षाका जल मेरे शरीर पर पड़ा है यह अभ्यंजन है अर्थात् उबटनका साधन है। यह सुगंधियुक्त तेल चन्दन आदि ही हमारी समृद्धि है और सुवर्णमय अलंकार आदि बल है, इस प्रकार अभ्यंजन आदि रूपसे विचारा हुआ वर्षाकी बिन्दुका जल शुद्धि करने वाला ही है दोषावह नहीं है, उक्त और अनुक्त सब पवित्र करनेके साधन हमारे ऊपर फैले हुए हैं, इस प्रकार पवित्र वस्तुओंसे आच्छन्न होनेके कारण पापदेवता हमारा अतिक्रमण न करे, शत्रु भी हम पर आक्रमण न करे ॥ ३ ॥

अथर्वसंहिताके छठे काण्डमें बारहवाँ अनुवाक समाप्त (२९७)

त्रयोदशेनुवाके नव सूक्तानि । तत्र “वनस्पते वीड्वङ्गः” इति प्रथमं सूक्तम् । अत्र आद्येन तृचेन नवं रथम् अभिमन्त्र्य जयकामं राजानं रथम् आरोहयेत्। तद् उक्तं कौशिकेन। “वनस्पते [६.१२५] अग्ना विष्ठा [७. ३] अग्न इन्द्रः [७. ११५] दिशश्चतस्रः [८. ८. २२] इति नवं रथं राजानं ससारथिम् आस्थापयति” इति [कौ० २. ६] ॥

तथा आधाने रथचक्रहोमानन्तरम् अनेन आतिष्ठेत् ॥

अत्र “इन्द्रस्यौजः” इत्यनया तत्रैव कर्मणि च रथचक्रे जुहुयात् ॥

उक्तं वैताने । “इन्द्रस्यौजो मरुताम् अनीकम् [६.१२५. ३] इति रथम् अभि हुत्वा वनस्पते-वीड्वङ्गः [६. १२५] इत्यातिष्ठति” इति [वै० २. २]॥

तथा महाव्रते माध्यन्दिनसवने अनेनाभिमन्त्रितं रथं राजानम् अन्यं वा आरोहयेत् । “वनस्पते वीड्वङ्ग इत्यभिमन्त्रितं रथम् आरोहयति” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ६. ४] ॥

“उप श्वासय” इति तृचेन परसेनात्रासनविद्वेषणकर्मणि भेर्यादिवादित्रं सूत्रोक्तप्रकारेण संपात्य त्रिस्ताडयित्वा वादकाय प्रयच्छेत् । सूत्रितं हि । “उच्चैर्घोषः [५. २०] उप श्वासय [६. १२६] इति सर्ववादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण संधाव्य संपातवन्ति त्रिराहत्य प्रयच्छति” इति [कौ० २. ७] ॥

तथा महाव्रते अनेन तृचेन भूमिदुन्दुभिं ताडयेत् । तद् उक्तं वैताने । “भूमिदुन्दुभिम् आर्षेणापिनद्धं पुच्छेनाघ्नन्त्युच्चैर्घोष उप श्वासय” इति [वै० ६. ४] ॥

तेरहवें अनुवाकमें नौ सूक्त हैं । उनमें “वनस्पते वीड्वङ्गः” यह प्रथम सूक्त है । इसके पहिले तृचसे नवीन रथको अभिमन्त्रित करके विजय चाहने वाले राजाको रथ पर चढ़ावे। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“वनस्पते (६ । १२५) अयाविष्ठाः (७ । ३) अग्न इन्द्र (७ । ११५) दिशश्चतस्रः (८ । ८ । २२) इति नवं रथं राजानं ससारथिं आस्थापयति” (कौशिकसूत्र २ । ६) ॥

तथा आधानमें रथचक्रहोमके अनन्तर इससे बैठे ।

यहाँ पर “इन्द्रस्यौजः” इस ऋचासे तहाँ ही कर्ममें रथके चक्रोंकी आहुति देवे ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"इन्द्रस्यौजो मरुतां अनीकम् (६ । १२५ । ३) इति रथं अभि हुत्वा वनस्पते वीड्वङ्गः (६ । १२५) इत्यातिष्ठति" (वैतानसूत्र २ । २)॥

तथा महाव्रतके माध्यंदिनसवनमें इससे अभिमन्त्रित रथ पर राजाको वा और किसीको चढ़ावे। इसी बातको वैतानसूत्र ६।४ में लिखा है, कि-"वनस्पते वीड्वङ्ग इत्यभिमन्त्रितं रथं आरोहयति"॥

"उप श्वासय" इस तृचसे शत्रुकी सेनाको त्रस्त और विद्वेषी करनेके कर्ममें नगाड़े आदि बाजोंको सूत्रमें कही हुई रीतिसे संपातित कर तीन वार ताड़न करके वजाने वालेको देदेय, इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि"उच्चैर्घोषः (५ । २०) उप श्वासय (६ । १२६) इति सर्ववादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण संधाव्य सम्पातवन्ति त्रिराहत्य प्रयच्छति ॥—(उच्चैर्घोषः) इस पाँचवे काण्डके वीसवें सूक्तसे और (उप श्वासय) इस छठे काण्डके एक सौ छब्बीसवें सूक्तसे सब बाजोंको धोकर उन पर तगर और खश चढ़ा कर संपातन करके तीनवार बजा कर देदेय" (कौशिकसूत्र २ । ७)॥

तथा महाव्रतमें इस तृचसे भूमिदुन्दुभिको ताड़ित करे। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-"भूमिदुन्दुभिं आौक्षेणापिनद्ध' पुच्छेनाघ्नन्त्युच्चैर्घोष उपश्वासय" (वैतानसूत्र ६ । ४)॥

तत्र प्रथमा ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि

वनस्पते। वीडुऽअङ्गः। हि। भूयाः। अस्मत्ऽसखा। प्रऽतरणः। सुऽवीरः।

गोभि॑ः । सम्॑ऽनद्धः । अ॒सि॒ । वी॒ड॑यस्व । आ॒ऽस्था॒ता । ते॒ । ज॒य॒तु॒ ।

जेत्वा॑नि ॥ १ ॥

हे वनस्पते । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । वनस्पतिविकार वृक्षनिर्मित रथ । ❀ "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम् ❀ । वीड्वङ्गः दृढाङ्गो भूयाः । त्वदीयानि अङ्गानि ईशाचक्रयुगादीनि दृढानि भवन्त्वित्यर्थः । हिशब्दः प्रसिद्धौ । ❀ "हि च" इति निघातप्रतिषेधाद् यासुट उदात्तत्वम् ❀ । अस्मत्सखा वयं सखायः समानख्याना मित्रभूता यस्य स तथोक्तः । ❀तत्पुरुषे हि "राजाहःसखिभ्यः०" इति समासान्तः स्यात् । अतो नात्र प्रसङ्गः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । प्रतरणः प्रकर्षेण शत्रुभ्यस्तारयिता सुवीरः शोभनैर्वीरैर्योधैरुपेतः । ❀ "वीरवीर्यौ च" उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ❀ । गोभिः । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । गोविकारैश्चर्मरज्जुभिः संनद्धः सम्यक् दृढं बद्धः असि अत एव वीळयस्व दृढो भव । संग्रामयोग्यो भवेत्यर्थः । ते तव आस्थाता अधिष्ठाता पुरुषः जेत्वानि जेतव्यानि परकीयानि बलानि सुवर्णरजतराज्यादीनि वा परकीयाणि जयतु । ❀ जि जये "कृत्यार्थे तवैकेन्०" इति कर्मणि त्वन् प्रत्ययः । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

हे वृक्षसे बने हुए रथ ! तू दृढ़ अंगों वाला हो अर्थात् तेरे लांगलपद्धति चक्र जुए आदि अंग दृढ़ होवें । तू हमारा मित्ररूप है, शत्रुओंसे पार लगाने वाला है और सुन्दर वीरोंसे घिरा हुआ है, और चमड़ेकी रस्सियोंसे दृढ़तासे बँधा हुआ है अत एव तू दृढ़ हो संग्रामके योग्य हो । तुझ पर बैठने वाला पुरुष जीतने योग्य शत्रुसेनाओंको और सुवर्ण चाँदी राज्य आदिको जीते १

द्वितीया ॥

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्यो॑ज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्य॒ः पर्याभृ॑तं॒
सहः॑ ।
अ॒पामो॒ज्मान॒ः परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒
रथं॑ यज ॥ २ ॥

दि॒वः । पृ॒थि॒व्याः । परि॑ । ओज॑ः । उत्ऽभृ॑तम् । व॒नस्पति॑ऽभ्यः ।
परि॑ । आऽभृ॑तम् । सह॑ः ।
अ॒पाम् । ओ॒ज्मान॑म् । परि॑ । गोभि॑ः । आऽवृ॑तम् । इन्द्र॑स्य ।
वज्र॑म् । ह॒विषा॑ । रथ॑म् । य॒ज ॥ २ ॥

दिवः द्युलोकात् पृथिव्याश्च सकाशाद् ओजः तदीयं बलम् उद्भृतम् उद्धृतम् । द्युसंबन्धिवृष्टिजललक्षणस्य रेतसो निषेकात् पृथिव्यवयवैरुपचयाच्च । तदीयं सारम् उद्धृत्य रथात्मना निर्मितम् इत्यर्थः । ❀ परिः पञ्चम्यर्थानुवादी । "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम् ❀ । तथा वनस्पतिभ्यः सारवद्भ्यो वृक्षेभ्यः सकाशाद् आभृतम् आहृतं सहः पराभिभवनक्षमं बलमेव अयं रथः । तथा अपाम् उदकानाम् ओज्मानम् । ओजो बलम् । तदात्मकम् । उदकसंवर्धितवृक्षविकारत्वात् । परितो गोभिः गोविकारैश्चर्मभिरावृतम् आवेष्टितम् इन्द्रस्य वज्रम् इन्द्रायुधवद् अप्रतिहतगतिम् । यद्वा वज्रावयवत्वाद् वज्रो रथः । अवयवे समुदायशब्दः प्रयुज्यते । तथा च श्रुतिः । "इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत् । स त्रेधा व्यभवत् । स्फ्यस्तृतीयम् । रथस्तृतीयम् । यूपस्तृतीयम्" इति [तै० सं० ६. १. ३. ४] । एवंभूतं रथम् हे होतः हविषा आज्यादिना यज प्रीणय ॥

द्युलोक और पृथिवीलोकके पाससे उनका ओज अर्थात् बल उद्धृत किया गया है अर्थात् द्युलोकसंबन्धी वृष्टिजलरूप वीर्यके निषेकसे और पृथिवीके अवयवोंके बढ़ावसे उनके सारको उद्धृत कर रथरूपसे बनाया गया है। तथा वनस्पतियोंसे अर्थात् सार वाले वृक्षोंसे एकत्रित किया हुआ उनका शत्रुओंको दमन करनेमें समर्थ लिया हुआ बल ही यह रथ है। तथा यह रथ जलोंका भी बल है, क्योंकि-जलसे बढ़े हुए वृक्षोंका विकार है। गोचर्मकी रस्सियोंसे बँधा हुआ है, और इन्द्रके आयुधकी समान अप्रतिहत गति वाला है, वा वज्रका अवयव होनेसे यह रथ वज्र ही है ‡ ऐसे रथको हे होतः! घृत आदि हविसे पूजो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र॒स्यौजो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑
स इ॒मां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या
गृ॑भाय ॥ ३ ॥

इन्द्र॑स्य । ओज॑ः । म॒रुता॑म् । अनी॑कम् । मि॒त्रस्य॑ । गर्भ॑ः । व॑रुणस्य । नाभि॑ः ।

---

‡ अवयवमें समुदाय शब्दका प्रयोग होता है अतः वज्रका अवयव होनेसे रथ भी वज्र कहलाता है। श्रुति कहती है, कि- "इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधा व्यभवत्। स्फ्यस्तृतीयम्। रथस्तृतीयम्। यूपस्तृतीयम् ॥-इन्द्रने वृत्रासुरके वज्र मारा, वह वज्र तीन भागमें बँट गया। उसका तिहाई स्फ्य हुआ, तिहाई रथ हुआ और बाकी तिहाई भाग यूप हुआ।" (तैत्तिरीयसंहिता ६। १। ३। ४)॥

सः । इ॒माम् । न॒ः । ह॒व्य॒ऽदा॑तिम् । जु॒षा॒णः । देव॑ । र॒थ॒ । प्रति॑ ।
ह॒व्या । गृ॒भा॒य॒ ॥ ३ ॥

हे देव दानादिगुणयुक्त हे रथ त्वम् इन्द्रस्य ओजः बलम् असि । मरुताम् मरुद्गणानाम् अनीकम् समुदायरूपं बलम् असि । तथा मित्रस्य देवस्य गर्भः गर्भवद् अन्तरवस्थितः पालनीयोसि । वरुणस्य देवस्य नाभिः नाभिरिव अवयवभूतोसि । यद्वा वरुणेन संनद्धो भवसि । ❀ णह बन्धने इत्यस्मात् नहो भश्च [उ० ४. १२५] इत्यौणादिक इञ् प्रत्ययो भत्वं च ❀ । स तादृशस्त्वं नः अस्मदीयाम् इमां हव्यदातिम् । हव्यानि हवींषि दीयन्तेस्याम् इति हव्यदातिः यजिक्रिया । तां जुषाणः सेवमानः हव्या हव्यानि हवींषि अस्माभिर्दीयमानानि प्रति गृभाय प्रतिगृहाण । ❀"छन्दसि शायजपि" इति श्नः शायजादेशः । "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम्❀ ॥

हे दानादिगुण युक्त रथ! तू इन्द्रका बल है मरुद्गणोंका अनीक अर्थात् समुदायरूप बल है । तथा मित्र देवताका गर्भ है अर्थात् मित्र देवता गर्भकी समान तेरा पालन करते हैं वरुणदेवका तू नाभिकी समान अवयव है, वा तू वरुणसे बँधा हुआ है, ऐसा तू हमारी इस यज्ञक्रियाको सेवन करता हुआ हमारी हवियोंको ग्रहण कर ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ वन्वतां॒ विष्ठि॑तं॒
जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद् दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒
शत्रू॑न् ॥ १ ॥

उप॑ । श्वा॒स॒य॒ । पृ॒थि॒वीम् । उ॒त । द्याम् । पु॒रु॒ऽत्रा । ते॒ । व॒न्व॒ता॒म् ।
विऽस्थि॑तम् । जग॑त् ।

सः । दु॒न्दु॒भे॒ । स॒ऽजूः । इन्द्रे॑ण । दे॒वैः । दू॒रात् । दवी॑यः । अप॑ ।
से॒ध॒ । शत्रू॑न् ॥ १ ॥

हे दुन्दुभे पृथिवीम् भूमिम् उप श्वासय आत्मीयेन घोषेण उपश्वसिताम् आपूरिताम् कुरु । उत द्याम् द्यामपि द्युलोकमपि उप श्वासय आपूरय । ❀ श्वस प्राणने ❀ । विष्ठितम् विविधम् अवस्थितं जगत् प्राणिजातं पुरुत्रा बहुषु देशेषु ते त्वदीयं जयघोषं वनुतान् संभजताम् । ❀ वन षण संभक्तौ । विकरणव्यत्ययः ❀ । यद्वा । ❀ वनु याचने ❀ । श्रोत्रसुखं त्वदीयं जयघोषं सर्वो जनः प्रार्थयताम् इत्यर्थः । ❀ पुरुत्रेति । "देवमनुष्य०" इत्यादिना सप्तम्यर्थे पुरुशब्दात् त्रा प्रत्ययः ❀ । हे दुन्दुभे स तादृशस्त्वम् इन्द्रेण संग्रामाधिदैवतेन तदनुचरैर्देवैः मरुदादिभिश्च सजूः दूरात् सर्वे जना यावन्तं विप्रकृष्टदेशं दूरं मन्यन्ते ततोपि दवीयो दूरतरम् अस्मदीयान् शत्रून् अप सेध अपगमय । ❀ षिधु गत्याम् । भौवादिकः । दवीय इति । ईयसुनि "स्थूलदूर०" इत्यादिना यणादि परं लुप्यते पूर्वस्य च गुणो अव् आदेशः ❀ ॥

हे दुन्दुभे ! तू पृथिवीको अपनी गड़गड़ाहटसे पूर्ण कर । और द्युलोकको भी भरदे, अनेक रूपोंमें स्थित अनेक देशोंके प्राणी तेरे घोषका सेवन करें अर्थात् कानोंको सुख देने वाले तेरे घोष की सब प्रार्थना करें । हे दुन्दुभे ! ऐसी तू संग्रामके अधिपति देवता इन्द्रके साथ और उनके अनुचर मरुत् देवताओंके साथ हमारे शत्रुओंको भी दूरसे भी दूर देशमें खदेड़ दे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ आ धा॑ अ॒भि ष्ट॑न दु॒रि॒ता बाध॑मानः ।
अप॑ सेध दुन्दुभे दुच्छुना॑मि॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वी॒डय॑स्व ॥

आ । क्र॒न्द॒य॒ । बल॑म् । ओजः॑ । न॒ः । आ । धाः॒ । अ॒भि ।
स्त॒न॒ । दुः॒ऽइ॒ता । बाध॑मानः ।
अप॑ । से॒ध॒ । दु॒न्दु॒भे॒ । दु॒च्छुना॑म् । इ॒तः । इन्द्र॑स्य । मु॒ष्टिः । अ॒सि॒ ।
वी॒डय॑स्व ॥ २ ॥

हे दुन्दुभे बलम् परकीयं शत्रुसंबन्धि रथतुरगगजपदातिलक्षणं युद्धाय संनद्धम् आ क्रन्दय पराजयेन आर्तध्वनियुक्तं कुरु । ❀ क्रदि आह्वाने रोदने च ❀ । अस्माकम् ओजः बलम् आ धाः आधेहि । युद्धाभिमुखं स्थापय । ❀ दधातेश्छान्दसो लुङ् ❀ ॥ तथा दुरिता दुरितानि पराजयनिमित्तानि पापानि यद्वा शत्रुकृतानि दुर्गतानि दुःखानि बाधमानः निवर्तयन् अभि ष्टन अभितः श्रवणकटुकं शत्रुहृदयभञ्जकं परुषं शब्दं कुरु । ❀ स्तन शब्दे । "अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्" इति षत्वम् ❀ । इतः अस्माद् युद्धरङ्गाद् दुच्छुनाम् दुःखकरीं शत्रुसेनाम् अप सेध अपगमय । इन्द्रस्य देवस्य त्वं मुष्टिरसि मुष्टिवत् शत्रूणां भञ्जकोसि अतस्त्वं वीडयस्व दृढीभव ॥

हे दुंदुभे ! तू शत्रुओंके रथ घोड़े हाथी पैदल आदि युद्धके लिये तयार सेनादलको पराजित करके आर्तध्वनि करने वाला कर। हममें बलको स्थापित कर अर्थात् हमको युद्धके अभिमुख स्थापित कर और पराजय कराने वाले पापोंको और शत्रुके दिये हुए

दुःखोंको दलती हुई तू शत्रुओंके हृदयोंको तोड़ने वाले और कानों को कटु लगने वाले शब्दको कर। इस युद्धरंगसे दुःखदायिनी शत्रुसेनाको खदेड़ दे। तू इन्द्रदेवकी मुट्ठी है अर्थात् मुट्ठीकी समान शत्रुओंकी मरम्मत बनाने वाली है अतः तू दृढ़ हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

प्रामूं जयाभी३मे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु

प्र। अमूम्। जय। अभि। इमे। जयन्तु। केतुऽमत्। दुन्दुभिः। वावदीतु। सम्। अश्वऽपर्णाः। पतन्तु। नः। नरः। अस्माकम्। इन्द्र। रथिनः। जयन्तु ॥ ३ ॥

हे इन्द्र अमूं दूरे दृश्यमानां शत्रुसेनां प्रकर्षेण जय यथा अस्मत्समीपं नायाति तथा पराजितां कुरु। इमे अस्मदीया भटाः पुरोवर्तिनः अभि जयन्तु शत्रून् अभिमुखं जयं प्रतिपद्यन्ताम्। अयं दुन्दुभिः केतुमत् प्रज्ञानवद् उच्चैस्तरां वावदीतु भृशं वदतु। ध्वनिश्रवणमात्रेण यथा शत्रवः पलायन्ते तथा उच्चैर्ध्वनत्वित्यर्थः। ❀ केतुमत् इति। "ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्" इति मतुप उदात्तत्वम्। वावदीतु। वद व्यक्तायां वाचि। अस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि रूपम् ❀। नः अस्माकं नरः नेतारः सेनानायकाः अश्वपर्णाः अश्वपतनाः अश्वारूढाः सन्तः संपतन्तु युद्धभूमिम् इतस्ततो गच्छन्तु। तथा अस्माकं रथिनः रथारूढा अमात्यजना राजानश्च जयन्तु जयं प्रतिपद्यन्ताम् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र! इस दूर दीखने वाली शत्रसेनाको आप भली प्रकार जीतिये अर्थात् यह जिस प्रकार हमारे समीप न आ सके तिस

रूपमें पराजित करिये, ये हमारे सामने खड़े हुए योधा शत्रुओं के सामने जाकर जयको पावें। यह दुन्दुभि चेतनकी समान बड़ी जोरसे दहाड़े, अर्थात् ध्वनिको सुननेसे ही शत्रु भागें, इस प्रकार गड़गड़ावे। हमारे सेनानायक नर घोड़ों पर सवार होकर युद्ध-भूमिमें चारों ओर भ्रमण करें, और हमारे रथारूढ़ मन्त्री और राजा भी विजय पावें ॥ ३ ॥

तेरहवें अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (२९९)

"विद्रधस्य बलासस्य" इति तृचेन जलोदरविसर्पादिसर्वरोगभैषज्यार्थं व्याधितस्य मूर्धनि संपातान् आनयेत्।

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन चतुरङ्गुलं पलाशशकलं पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य व्याधितशरीरं लिम्पेत् ॥

सूत्रितं हि। "विद्रधस्य [६. १२७] या बभ्रवः [८. ७] इत्युपोत्तमेन पलाशस्य चतुरङ्गुलेनालिम्पति" इति [कौ० ४.२] "पञ्चमेन वरुणगृहीतस्य मूर्धनि संपातान् आनयति" इति च [कौ० ४. २] ॥

"शकधूमम्" इति चतुर्ऋचेन स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानां त्रयोदशद्रव्याणाम् अन्यतमं जुहुयात् ॥

तथा नित्यनैमित्तिककाम्यकर्माणि शीघ्रं कर्तुकामः अनेन चतुर्ऋचेन ब्राह्मणस्य संधिषु गोमयपिण्डान् निधाय अग्नित्वेन संकल्प्य अभिमन्त्र्य सूत्रोक्तप्रकारेण प्रश्नप्रतिवचने कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि। "शकधूमम् [६. १२८] भवाशर्वौ [११, २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १]। "उपोत्तमेन सुहृदो ब्राह्मणस्य शकृत्पिण्डान् "पर्वस्वाधाय शकधूम किम् अद्याहरिति पृच्छति। भद्रं सुमङ्गलम् इति प्रतिपद्यते" इति च [कौ० ७. १] ॥

तथा सोमग्रहणजनितारिष्टशान्तये अनेनाज्यं जुहुयात्। "अथ यत्रैतच्चन्द्रमसम् उपसृप्यति" इति प्रक्रम्य सूत्रितम्। "शकधूमं नक्षत्राणीत्येतेन सूक्तेन जुहुयात्" इति [कौ० १३. ८] ॥

तथा ग्रहयज्ञे हविराज्यहोमादीनि अनेन सोमाय कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "शकधूमम् इति सोमाय" इति [शा० क० १५]

"विद्रधस्य बलासस्य" इस तृचसे जलोदर विसर्प आदि सकल रोगोंकी चिकित्साके लिये रोगीके शिर पर सम्पातोंको लावे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस तृचसे ढाकके चार अँगुलके टुकड़ेको पीसकर अभिमन्त्रित कर उसका रोगीके शरीर पर लेप करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"विद्रधस्य (६।१२७) या बभ्रवः (८।७) इत्युपोत्तमेन पलाशस्य चतुरंगुलेनालिंपति" (कौशिकसूत्र ४ । २) "पञ्चमेन वरुणगृहीतस्य मूर्ध्नि सम्पातान् आनयति" इति च (कौशिकसूत्र ४ । २) ॥

"शकधूमम्" इस चतुर्ऋचसे स्वस्त्ययनको चाहने वाला घृत समिधा पुरोडाशसे पूरी तकके तेरह द्रव्योंमेंसे एककी आहुति देय

तथा नित्य नैमित्तिक कर्मोंको शीघ्रतासे करना चाहने वाला पुरुष इस चतुर्ऋचसे ब्राह्मणकी संधियोंमें गोमयपिण्डोंको रख उसको अग्नि मान अभिमन्त्रित करके सूत्रोक्तरीतिसे प्रश्नोत्तर करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–"शकधूमम् (६।१२८) भवाशर्वौ (११ । २) इत्युपदधीत (७ । १) उपोत्तमेन सुहृदो ब्राह्मणस्य शकृत्पिण्डान् पर्वस्वाधाय शकधूम किम् अद्याहरिति पृच्छति, भद्रं सुमंगलम् इति प्रतिपद्यते"॥ (कौशिकसूत्र ७ । १)

तथा चन्द्र ग्रहणसे होनेवाले अरिष्टकी शान्तिके लिये इससे घृतकी आहुति देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि–(कौशिकसूत्र १३ । ८)में "अथ यत्रैतद् चन्द्रमसं उपसत्रति ।–जब (राहु) चन्द्रमाको पकड़ता है" इसका आरम्भ करके कहा है कि–"शकधूमम् इति सूक्तेन जुहुयात् ॥–शकधूमम्से सोमके निमित्त आहुति देय" (कौशिकसूत्र १३ । ८) ॥

तथा ग्रहयज्ञमें हवि घृत होम आदिको इससे सोमके लिये करे।

इसी बातको शान्तिकल्पमें कहा है, कि-"शकधूमम् इति सोमाय" (शान्तिकल्प १५) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वि॒द्र॒धस्य॑ ब॒लास॑स्य॒ लोहि॑तस्य वनस्पते ।
वि॒सल्प॑कस्योषधे॒ मोच्छि॑षः पिशि॒तं च॒न ॥ १ ॥

वि॒ऽद्र॒धस्य॑ । ब॒लास॑स्य । लोहि॑तस्य । व॒न॒स्प॒ते॒ ।
वि॒ऽसल्प॑कस्य । ओ॒ष॒धे॒ । मा । उत् । शि॒ष॒ः । पि॒शि॒तम् । च॒न १

हे वनस्पते चतुरंगुलपलाशवृक्ष हे ओषधे विसर्पकादिव्याधेरौषधभूत विद्रधस्य विदरणशीलस्य व्रणविशेषस्य । बलासस्य बलं शारीरम् अस्यति क्षिपतीति बलासः कासश्वासादिः तस्य । लोहितस्य लोहितवर्णस्य । एतद् विसर्पकविशेषस्य नाम । यद्वा लोहितं रुधिरम् । रुधिरस्रावात्मकस्य रोगस्येत्यर्थः । विसल्पकस्य विविधं सर्पति नाडीमुखेन शरीरस्य अन्तर्व्याप्नोतीति विसर्पकः । ❀ कपिलकादित्वात् लत्वम् ❀ । एवंविधस्य रोगजातस्य पिशितं चन । चनशब्दः अप्यर्थे । निदानभूतं दुष्टं मांसमपि । अपि शब्दाद् दुष्टत्वगादिकम् । मोच्छिषः मोच्छेषय । वातपित्तश्लेष्मणां दोषाणां तारतम्येन त्वगसृङ्मांसादीन् धातून् दूषयित्वा विसर्पकादयो रोगा उत्पद्यन्ते । सनिदानांस्तान् सर्वान् निवर्तयेत्यर्थः । ❀ उच्छिष इति । शिष्लृ विशेषणे । लृदित्वाच्च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

हे विसर्पक आदि व्याधियोंकी औषधरूप चतुरंगुलपलाशवृक्ष ! तू फटने वाले एक प्रकारके फोड़े विद्रधकी, शारीरक बलको क्षीण करने फेंकने (क्षीण) करने वाले श्वास खाँसी आदि बलास नामक रोगसमुदायको, लाल वर्ण वाले विसर्पको और दूषित

मांस त्वचा आदिको बाकी न रख । तात्पर्य यह है, कि—वात पित्त कफ दोषोंकी न्यूनाधिकतासे त्वचा मांस रुधिर आदिको दूषित करके विसर्पक आदि रोग उत्पन्न होते हैं, उनको उनके कारणों सहित आप दूर करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यौ ते॑ बलास॒ तिष्ठ॒तः कक्षे॑ मु॒ष्कावप॑श्रितौ ।
वेदा॒हं तस्य॑ भेष॒जं ची॒पुद्रु॑रभि॒चक्ष॑णम् ॥ २ ॥

यौ । ते॒ । ब॒ला॒स॒ । तिष्ठ॑तः । कक्षे॑ । मु॒ष्कौ । अप॑ऽश्रितौ ।
वेद॑ । अ॒हम् । तस्य॑ । भे॒ष॒जम् । ची॒पुद्रु॑ः । अ॒भि॒ऽचक्ष॑णम् ॥२॥

हे बलास कासश्वासादिरोग ते तव यौ विकारौ विसर्पकादिरूपौ कक्षे बाहुमूले तिष्ठतः । मुष्कौ अण्डौ च अपश्रितौ अपकृष्टम् आश्रितौ तस्य तादृग्विकारोपेतस्य बलासस्य अहं भेषजं वेद जानामि । किं तद् इति उच्यते । चीपद्रुः एतत्संज्ञो द्रुमविशेषः । अभिचक्षणम् व्याधिमूलं सम्यग् अभिचक्ष्य ज्ञात्वा निवर्तकम् औषधम् इत्यर्थः ॥

हे कासश्वासात्मक बलासरोग ! तेरे जो विसर्पक आदि बगलों में होते हैं, और अण्डकोषोंके पासमें होते हैं, ऐसे तुझ बलासकी औषधिको मैं जानता हूँ (उस औषधका नाम लेते हैं, कि—) चीपद्रुनामक वृक्ष व्याधिकी मूलको जानकर उखाड़ने वाला है २

तृतीया ॥

यो अङ्ग्यो॒ यः कर्ण्यो॒ यो अ॒क्ष्योर्वि॒॑सल्प॑कः ।
वि वृ॑हामो वि॒सल्प॑कं विद्र॒धं हृ॑दयाम॒यम् ।
परा॒ तमज्ञा॑तं॒ यक्ष्म॑मध॒राञ्चं॑ सुवामसि ॥ ३ ॥

यः । अङ्ग्य॑ः । यः । कर्ण्य॑ः । यः । अ॒क्ष्योः । वि॒ऽसल्प॑कः ।
वि । बृ॒हा॒म॒ः । वि॒ऽसल्प॑कम् । वि॒ऽद्र॒धम् । हृ॒द॒य॒ऽआ॒म॒यम् ।
परा॑ । तम् । अ॒ज्ञा॑तम् । यक्ष्म॑म् । अ॒ध॒राञ्च॑म् । सु॒वा॒म॒सि॒ ॥ ३ ॥

यो विसर्पकः अङ्ग्यः अङ्गेषु हस्तपादादिषु भवः यः कर्ण्यः कर्णयोरुत्पन्नः । ❀ उभयत्र "शरीरावयवाच्च" इति यत् ❀ । अक्ष्योः अक्ष्णोर्यो विसर्पकः । ❀ "ई च द्विवचने" इति अक्षिशब्दस्य ईकारान्तादेशः ❀ । एवं बहुविधं तं विसर्पकं वि बृहामः उत्खनामः । समूलम् उन्मूलयाम इत्यर्थः । ❀ बृहू उद्यमने ❀ ॥ तथा विद्रधम् विदरणस्वभावं व्रणविशेषं हृदयामयम् हृद्रोगं हृदयाश्रितम् अन्यमपि रोगं निवर्तयामः । तं तथाविधम् अज्ञातम् अनिर्ज्ञातस्वरूपं यक्ष्मम् रोगम् अधराञ्चम् अधरम् अधस्ताद् अञ्चन्तम् अधोमुखं गच्छन्तं परा सुवामसि पराङ्मुखं प्रेरयामः । ❀ षू प्रेरणे । "इदन्तो मसिः ❀ ॥

नाड़ियोंके मुखसे अनेक प्रकारसे सरक कर सारे शरीर तक में फैल जाने वाला जो विसर्पक हाथ पैर आदि अङ्गोंमें होजाता है, दोनों कानोंमें होजाता है, आँखोंमें होजाता है, ऐसे अनेक प्रकारके विसर्पकको हम समूल उखाड़ते हैं, तथा विद्रधनामक व्रणको, हृदयरोगको, जिसका स्वरूप पहिचाननेमें नहीं आता ऐसे यक्ष्मारोगको और नीचेको मुख करके चलने वाले रोगको हम पराङ्मुख करके भेजते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

श॒क॒धूम॒ं नक्ष॑त्राणि॒ यद् राजा॑न॒मकु॑र्वत ।
भ॒द्रा॒हम॑स्मै॒ प्राय॑च्छन्नि॒दं रा॒ष्ट्रम॑सा॒दिति॑ ॥ १ ॥

श॒क॒ऽधू॑मम् । नक्ष॑त्राणि । यत् । राजा॑नम् । अकु॑र्वत ।

भ॒द्र॒ऽअ॒हम् । अ॒स्मै॒ । प्र । अ॒य॒च्छ॒न् । इ॒दम् । रा॒ष्ट्रम् । असा॑त् । इति॑ ॥ १ ॥

शकस्य शकृतः संबन्धी धूमो यस्मिन्नग्नौ स शकधूमः अग्निः । तदभेदाद् ब्राह्मणोत्र अभिधीयते । "एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद् ब्राह्मणः" [तै० सं० ५. २. ८. २] इति श्रुतिः । तयोस्तादात्म्यं दर्शयति । तं शकधूमं ब्राह्मणं पुरा नक्षत्राणि तारकाः राजानं चन्द्रमसम् अकुर्वत व्यदधतेति यत् तस्य कारणम् उच्यते । अस्मै शकधूमाय भद्राहम् पुण्याहं कल्याणप्रदं [कालं] प्रायच्छन् । ❀ भद्रं च तद् अहश्चेति भद्राहः । "राजाहःसखिभ्यः०" इति टच् समासान्तः ❀ । किमर्थं प्रायच्छन् । तत्राह । इदं राष्ट्रम् राज्यं नक्षत्रमण्डलाधिपत्यम् असात् भवेत् । अस्य वशे सर्वं वर्तेत इत्यनेनाभिप्रायेणेत्यर्थः ॥

(गोशकृत्सम्बन्धी धूम जिनमें होता है ऐसे अग्नि शकधूम कहलाते हैं, उन अग्निके अभेदसे ब्राह्मण भी शकधूम ‡ कहलाते हैं, ऐसे) शकधूम ब्राह्मणको पूर्वसमयमें तारोंने चन्द्रमा राजा बनाया था, उसका कारण यह है, कि—इस शकधूमके लिये पुण्यप्रद भद्राहको अर्थात् पुण्यप्रद कालको उन्होंने नक्षत्रमण्डलका अधिपतित्वरूप राज्य इनका होजाय इस लिये दिया था ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

भ॒द्रा॒हं नो॑ म॒ध्यदिने भद्रा॒हं सा॒यमं॑स्तु नः ।
भ॒द्रा॒हं नो॒ अह्नां॑ प्रा॒ता रात्रीं॑ भद्रा॒हमं॑स्तु नः ॥२॥

---

‡ "एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद् ब्राह्मणः ॥ जो ब्राह्मण है वही यह वैश्वानर अग्नि है" इस प्रकार तैत्तिरीयसंहिता ५।२।८।२ में ब्राह्मण और अग्निके अभेदका वर्णन किया है ।

भद्रऽअहम् । नः । मध्यंदिने । भद्रऽअहम् । सायम् । अस्तु । नः ।
भद्रऽअहम् । नः । अह्नाम् । प्रातः । रात्री । भद्रऽअहम् । अस्तु ।
नः ॥ २ ॥

नः अस्माकं मध्यंदिने मध्याह्ने भद्राहम् शोभनदिनं पुण्यम् अहः । भवत्वित्यर्थः । तथा नः अस्माकं सायम् सूर्यास्तमयकालेपि भद्राहम् पुण्याहम् अस्तु ॥ अह्नाम् दिवसानां प्रातः पूर्वाह्नकालेपि नः अस्माकं भद्राहम् पुण्याहं भवतु । तथा रात्री कृत्स्नापि निशीथिनी नः भद्राहम् शुभकालो भवतु । ❀ "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीप् ❀ ॥

मध्यान्हमें हमारा दिन पुण्याह हो । तथा सायङ्कालके समय भी हमारा पुण्याह हो, दिवसोंके प्रातःकालमें भी हमारा पुण्याह हो, तथा सारी रात्रिका समय भी हमारे लिये पुण्याह अर्थात् शुभकाल वाला हो ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥ ३ ॥

अहोरात्राभ्याम् । नक्षत्रेभ्यः । सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्रऽअहम् । अस्मभ्यम् । राजन् । शकऽधूम । त्वम् । कृधि ॥३॥

अहोरात्राभ्याम् अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रौ । ❀ "अहःसर्वैकदेश०" इत्यादिना अकारः समासान्तः ❀ । अहोरात्राभ्यां सकाशात् नक्षत्रेभ्यः अश्विन्यादिभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् । सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ अहोरात्रयोर्विभेदकौ ताभ्यां च सकाशात् हे शकधूम ब्राह्मणात्मक हे राजन् नक्षत्राणाम् अधिप अस्मभ्यं

भद्राहम् पुण्याहं त्वं कृधि कुरु। ❀ सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् इति। पूर्वपदस्य “देवताद्वन्द्वे च” इति आनङ्। छान्दसः अकारः समासान्तः ❀ ॥

हे ब्राह्मणात्मक नक्षत्राधिप शकधूम राजन्! आप दिन और रात्रिसे, अश्विनी आदि नक्षत्रोंसे और दिन तथा रात्रिका विभाग करने वाले सूर्य और चन्द्रमासे हमारा पुण्याह करिये ॥ ३ ॥

सप्तमी ॥

यो॑ नो॑ भ॒द्राहम॑करः सा॒यं नक्त॒मथो॒ दिवा॑ ।
तस्मै॑ ते नक्षत्रराज॒ शकधूम॒ सदा॒ नमः॑ ॥ ४ ॥

यः । न॒ः । भ॒द्र॒ऽअ॒हम् । अ॒क॒र॒ः । सा॒यम् । नक्त॑म् । अथो॒ इति॑ । दिवा॑ ।
तस्मै॑ । ते॒ । न॒क्ष॒त्र॒ऽरा॒ज॒ । शक॑ऽधूम । सदा॑ । नमः॑ ॥ ४ ॥

हे शकधूम ब्राह्मणात्मक नक्षत्रराज नक्षत्राणाम् अधिप हे सोम यस्त्वं नः सायम् सायाह्नकाले नक्तम् रात्रौ अथो अपि च दिवा दिवसे भद्राहम् पुण्याहं सुदिनम् अकरः कृतवान् असि। ❀ करोतेर्लुङि “कृमृदृरुहिभ्यः०” इति च्लेः अङ् आदेशः ❀। तस्मै तथाविधाय ते तुभ्यं सदा सर्वदा नमः नमस्कारोस्तु ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे ब्राह्मणात्मक शकधूम और नक्षत्रराज सोम! जो आपने सायङ्कालके समय, रात्रिमें, दिनमें हमारा पुण्याह किया है, ऐसे आपको सर्वदा नमस्कार हो ॥ ४ ॥

तेरहवें अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (३०१) ॥

“भगेन मा सम्” इति तृचेन शङ्खपुष्पिकामूलं खात्वा संपात्य अभिमन्त्र्य सौभाग्यकामस्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन शङ्खपुष्पिकापुष्पम् अभिमन्त्र्य शिरसि बध्नीयात् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "भगेन मा [६. १२९] न्यस्तिका [६. १३९] इदं खनामि [७. ३९] इति सौवर्चलम् ओषधिवच्छुक्लप्रसूनं शिरस्यपिहत्य ग्रामं प्रविशति" इति [कौ० ४.१२]॥

"रथजिताम्" इत्यादिसूक्तत्रयेण दुष्टस्त्रीवशीकरणकर्मणि माषान् अभिमन्त्र्य स्त्रियाः संचरणस्थलेषु प्रक्षिपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचत्रयेण शरभृष्टीः संदीप्ताः प्रतिदिशं प्रक्षिपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि आवलेखिनीं स्त्रीप्रतिकृतिं कृत्वा सूत्रोक्तप्रकारेण धनुरिषुं च कृत्वा अनेन तृचत्रयेण प्रतिकृतिं हृदये विध्येत् ॥

"रथजिताम् इति माषान् निवपति शरभृष्टीरादीप्ताः प्रतिदिशम् अभ्यस्यत्यर्वाच्या आवलेखिन्या" इति [कौ०. ४. १२] ॥

"भगेन मा सम्" इस तृचसे शङ्खपुष्पिका-मूलको खोद कर सम्पातन और अभिमंत्रित करके सौभाग्य चाहने वालेके बाँधे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इससे शङ्खपुष्पिकाके फूलको अभिमंत्रित करके शिरमें बाँधे । इसी बातको संहिताविधिमें कहा है, कि-"भगेन मा (६ । १२९) न्यस्तिका (६ । १३९) इदं खनामि (७ । ३९) इति सौवर्चलम् ओषधिवच्छुक्लप्रसूनं शिरस्यपिहत्य ग्रामं प्रविशति" (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

"रथजिताम्" आदि तीन सूक्तोंसे दुष्ट स्त्रीको वशमें करनेके कर्ममें उड़दोंको अभिमन्त्रित करके स्त्रीके विचरण करनेके स्थानों पर बखेर देय ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इन तीन तृचोंसे अग्निमें भूनने पर जलते हुए सेंटोंको प्रत्येक दिशाओंमें फेंके ।

तथा तहाँ ही कर्ममें कुरेद करके स्त्रीकी मूर्तिको बनावें फिर

सूत्रोक्तरीतिसे धनुष और बाणको बनावे फिर इन तीनों तृचोंसे मूर्तिको हृदयमें बींधे ।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण भी है, कि—"रथजितां इति माषान् निवपति शरभृष्टोरादीप्ताः प्रतिदिशं अभ्यस्यत्यर्क्याचा आवलेखिन्या" (कौशिकसूत्र ४ । १२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

भगे॑न मा शांश॒पेन॑ सा॒कमिन्द्रे॑ण मे॒दिना॑ ।
कृ॒णोमि॑ भगि॒नं माप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः ॥ १ ॥

भगे॑न । मा॒ । शां॒श॒पेन॑ । सा॒कम् । इन्द्रे॑ण । मे॒दिना ।
कृ॒णोमि॑ । भ॒गिन॑म् । मा॒ । अप॑ । द्रा॒न्तु॒ । अरा॑तयः ॥ १ ॥

संशफेन । संगताः शफा गोमहिषादीनां खुराः शफाकृतिरायुधविशेषो वा यस्य स तथोक्तः । तादृशेन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन साकं सह मा मां सौभाग्यवन्तं करोमि । मेदिना स्निग्धेन अस्मत्सेवया परितुष्टेन इन्द्रेण मा मां भगिनम् भाग्यवन्तं कृणोमि करोमि ॥ अरातयः अदानशीलाः शत्रवः अप द्रान्तु अस्मत् सकाशाद् अपेत्य कुत्सितां गतिं गच्छन्तु । ❀ द्रा कुत्सितायां गतौ । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

संगत शफ वाले गौ भैंस आदिके खुरोंकी समान आकारवाले भग नामक सौभाग्यप्रद देवताके द्वारा मैं अपनेको सौभाग्यवाला करता हूँ, हमारी सेवासे प्रसन्न हुए अत एव स्नेही इन्द्रके द्वारा मैं अपनेको भाग्यवान् करता हूँ, अदानशील शत्रु हमारे पाससे भाग कर कुत्सित गतिको प्राप्त हो जावें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

येन॑ वृ॒क्षाँ अ॒भ्यभ॑वो॒ भगे॑न॒ वर्च॑सा स॒ह ।

तेन॑ मा भ॒गिनं॑ कृ॒ण्वप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः ॥ २ ॥

येन॑ । वृ॒क्षान् । अ॒भि॒ऽअभ॑वः । भगे॑न । वर्च॑सा । स॒ह ।

तेन॑ । मा॒ । भ॒गिन॑म् । कृ॒णु॒ । अप॑ । द्रा॒न्तु॒ । अरा॑तयः ॥ २ ॥

हे ओषधे येन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन वर्चसा तत्कृतेन तेजसा सह वृक्षान् समीपस्थान् अभ्यभवः अभिभवसि तिरस्करोषि तेन भगेन मा मां भगिनम् सौभाग्यवन्तं कृणु कुरु । गतम् अन्यत् ॥

हे औषधे ! जिस सौभाग्यदायक भग देवताके दिये हुए तेजसे तू समीपमें स्थित वृक्षोंका तिरस्कार करती है, उस भगसे तू मुझको सौभाग्ययुक्त कर । हमारे शत्रु हमसे विमुख होवें और कुत्सित गतिको प्राप्त होवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो अ॒न्धो यः पु॑नःस॒रो भगो॑ वृ॒क्षेष्वाहि॑तः ।

तेन॑ मा भ॒गिनं॑ कृ॒ण्वप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः ॥ ३ ॥

यः । अ॒न्धः । यः । पु॒नःऽस॒रः । भगः॑ । वृ॒क्षेषु॑ । आऽहि॑तः ।

तेन॑ । मा॒ । भ॒गिन॑म् । कृ॒णु॒ । अप॑ । द्रा॒न्तु॒ । अरा॑तयः ॥ ३ ॥

यो भगः अन्धः दृष्टिरहितः । ❀ तथा च यास्कः । अन्धो भग इत्याहुः । प्राशित्रम् अस्याक्षिणी निर्जघानेति च ब्राह्मणम् इति [नि० १२. १४] ❀ । यो भगः पुनःसरः । दृष्टिराहित्येन पुरतो गन्तुम् अशक्नुवन् गतप्रदेश एव पुनः सरति गच्छतीति पुनःसरः । अत एव वृक्षेषु स्थाणुषु मार्गस्थेषु स्थाणुषु आहतः ताडितो भवति । यो भगः आन्ध्येन पुरतोऽन्यत्र गन्तुम् अशक्नुवन् गृहीतं न परित्यजतीत्यर्थः । तेन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन । उक्तार्थम् अन्यत् ॥

जो भग अंधा है, अत एव जो भग दृष्टिरहित होनेसे आगेको जानेमें असमर्थ होनेसे गतप्रदेशमें ही वारम्वार जाता है, अत एव मार्गस्थ वृत्तोंमें ही ताड़ित होता है, तात्पर्य यह है, कि–जो भग अन्धदेवता होनेसे आगेको जानेमें असमर्थ होनेसे पकड़े हुएको नहीं त्यागता है उस सौभाग्यकर भगदेवतासे तू मुझको सौभाग्य कर हमारे शत्रुमय हमसे विमुख होते हुए दुर्गतिको प्राप्त होवें

चतुर्थी ॥

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥

रथऽजिताम् । राथऽजितेयीनाम् । अप्सरसाम् । अयम् । स्मरः ।
देवाः । प्र । हिणुत । स्मरम् । असौ । माम् । अनु । शोचतु १

हे रथजिते रथेन जेतव्ये माषाख्ये ओषधि रथजिताम् रथेन आत्मीयेन वाहनेन विश्वं जयन्तीनां धीनाम् ध्यानजननीनां विराग-विशेषस्य उत्पादयित्रीणाम् अप्सरसाम् उर्वशीप्रभृतीनां संबन्धी अयं स्मरः कामः । तदधीने वर्तत इत्यर्थः । अतः इयं दुष्टा स्त्री मां स्मरकृतपीडाभावाद् न कामयत इत्यर्थः । यद्वा रथजिताम् रथेन रथाकारेण विमानेन विश्वं जयतां देवानां संबन्धिनि रथजिते रथेन जेतव्ये मेरुशिखरादौ भोगभूप्रदेशे धीनाम् ध्यातॄणां गन्धर्वाणाम् अप्सरसां च अयं स्वभूतः स्मरः । हे देवाः तं स्मरम् कामं प्र हिणुत एतस्याः समीपं प्रेषयत । ❀ हि गतौ वृद्धौ च । स्वादित्वात् श्नुः । "हिनुमीना" इति णत्वम् ❀ । असौ पराङ्मुखी स्त्री तेन स्मरेण पीडिता सती माम् अनु शोचतु अनुस्मृत्य शोकयुक्ता भवतु । ❀ शुच शोके ❀ ॥

हे रथसे जीती जा सकने वाली माष (उड़द) नाम वाली

ओषधे ! यह काम रथके आकारके विमानके द्वारा जीतने वाले देवसंबन्धी रथसे जीतने योग्य मेरुशिखर आदि भोगभूमिप्रदेश में ध्यान करने वाली अप्सराओंका होरहा है हे देवताओं ! उस कामको आप इस स्त्रीके समीप भेजिये, जिससे यह पराङ्मुखी स्त्री उस कामदेवसे पीड़ित होती हुई मुझको स्मरण करके शोकयुक्त होवे ॥ १ ॥

अ॒सौ मे॑ स्मर॒तादिति॑ प्रि॒यो मे॑ स्मर॒तादिति॑ ।
दे॒वाः प्र हि॑णुत स्म॒रम॒सौ माम॑नु॑ शोचतु ॥ २ ॥

अ॒सौ । मे॒ । स्म॒र॒ता॒त् । इति॑ । प्रि॒यः । मे॒ । स्म॒र॒ता॒त् । इति॑ ।
दे॒वाः॑ । प्र । हि॒णु॒त॒ । स्म॒रम् । अ॒सौ । माम् । अनु॑ । शो॒च॒तु॒ २

य॒था मम॒ स्मरा॑द॒सौ नामु॒ष्या॒हं क॒दा च॒न ।
दे॒वाः प्र हि॑णुत स्म॒रम॒सौ माम॑नु॑ शोचतु ॥ ३ ॥

यथा॑ । मम॑ । स्मरा॑त् । अ॒सौ । न । अ॒मु॒ष्य॒ । अ॒हम् । क॒दा । च॒न ।
दे॒वाः॑ । प्र । हि॒णु॒त॒ । स्म॒रम् । अ॒सौ । माम् । अनु॑ । शो॒च॒तु॒ ३

पञ्चमी ॥ असौ पुरुषः मे मां स्मरतात् स्मरतु इति । इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ । प्रियः मयि अनुरागविशेषयुक्तः सन् मे मां स्मरतात् स्मरतु । ❀ स्मृ चिन्तायाम् । “तुह्योस्तातङ्०” इति तातङ् आदेशः ❀ । इति अनेन प्रकारेण आशंसमाना कामार्ता यथा असौ दुष्टा स्त्री मम स्मरात् मां स्मरेत् । ❀ “अधीगर्थ०” इति कर्मणि षष्ठी ❀ । इति चिन्तयेत् । अमुष्य अमूं स्त्रियम् अहं कदा चन कदाचिदपि कामार्तो न स्मरामि तथा हे देवाः स्मरं प्र हिणुत । यद्वा असौ मे स्मरताद् इति प्रियो मे स्मरताद् इति यथा माम् अनु-

स्मृत्य सा परितप्यते तथा स्मरं प्र हिणुतेति संबन्धः। यथा मम स्मराद् इति स्त्रीवाक्यम्। असौ पुरुषो यथा मां स्मरेत् कदाचिदपि अहम् अमुष्य अमुं पुरुषं न स्मरामि इत्थं पुरुष एव कामातुरो माम् अभिगच्छेद् इति वशीकृतायाः स्त्रिया वाक्यम्। गतम् अन्यत्॥

यह पुरुष मेरा स्मरण करे, मुझमें विशेष अनुराग रख कर मेरा स्मरण करे, इस प्रकारसे कहती हुई कामार्ता दुष्टा स्त्री मेरा स्मरण करे। और हे देवताओं! मैं इस स्त्रीका कभी कामार्त होकर स्मरण न किया करूँ इस प्रकार आप कामको प्रेरित करिये। वा—"यह मेरा स्मरण करें, प्रिय मेरा स्मरण करें" इस प्रकार मेरा स्मरण करके वह जिस प्रकार परितप्त होवे, तिस प्रकार हे देवताओं आप कामको प्रेरित करिये॥ (अगले मन्त्र में वशीकृता स्त्रीका वाक्य है, कि—यह पुरुष मेरा स्मरण करे, मैं कभी भी इस पुरुषका स्मरण न करूँ, इस प्रकार यह पुरुष ही-कामातुर होकर मेरे पास आवे, हे देवताओं! आप कामको प्रेरित करिये, यह मेरा स्मरण करके शोकयुक्त होवे॥ २॥ ३॥

षष्ठी॥

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु॥ ४॥

उत्। मादयत। मरुतः। उत्। अन्तरिक्ष। मादय।
अग्ने। उत्। मादय। त्वम्। असौ। माम्। अनु। शोचतु।४।

हे मरुतः मरुद्गणाः इमां स्त्रियम् उन्मादयत उन्मत्तां परवशाम् अस्मदायत्तां कुरुत। हे अन्तरिक्ष त्वमपि एनाम् उन्मादय एनाम् अस्मद्वशे कुरु। हे अग्ने त्वम् एनाम् उन्मादय स्वात्मानं विस्मृत्य

यथा अस्माकं वशे भवति तथा कुरु । एवं युष्माभिरुन्मादं प्रापिता असौ माम् अनुस्मृत्य शोचतु ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

हे मरुद्गणों ! इस स्त्रीको उन्मत करिये अर्थात् परवश हमारे अधीन करिये । हे अन्तरिक्ष ! आप भी इसको उन्मत्त करिये-इसको हमारे वशमें करिये । हे अग्ने ! आप भी इसको उन्माद युक्त करिये--यह अपनेको भूल कर जिस प्रकार हमारे वशमें होजाय तिस प्रकार करिये । इस प्रकार आपके उन्मत्त करने पर यह मेरा स्मरण करके शोक करे ॥ ४ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (३०३)

"नि शीर्षतो नि पत्ततः" इति सूक्तस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

"नि शीर्षतो नि पत्ततः" इस सूक्तका पहिले तृचके साथ विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

नि शी॒र्ष॑तो नि प॒त्त॒त आ॒ध्यो॒३॑ नि ति॑रामि ते ।
दे॒वाः प्र हि॑णुत स्म॒र॒मसौ माम॑नु शोचतु ॥ १ ॥

नि । शी॒र्ष॒तः । नि । प॒त्त॒तः । आ॒ऽध्य॑ः । नि । ति॒रा॒मि॒ । ते॒ ।
दे॑वाः । प्र । हि॒णु॒त॒ । स्म॒रम् । अ॒सौ । माम् । अनु॑ । शो॒च॒तु॒ ॥१॥

हे जाये ते तव शीर्षतः शिरःप्रदेशाद् आरभ्य आध्यः आधींश्चिन्ताविशेषान् नि तिरामि शरीरे निक्षिपामि । तथा पत्ततः । ❀ एकस्तशब्दश्छान्दसः ❀ । पत्तः पादत आरभ्य तत्र शरीरे आधीन् निक्षिपामि । इत्थं सर्वस्मिन्नपि त्वदीये अङ्गे स्मरकृतां पीडां निक्षिपामीत्यर्थः । ❀ आध्यः । आङ्पूर्वाद् दधातेः "उप-

सर्गे घोः किः" इति किप्रत्ययः । शसि व्यत्ययेन यणादेशः । यद्वा । आङ्पूर्वाद् ध्यै चिन्तायाम् इत्यस्माद् "ध्यायतेः संप्रसारणं च" इति भावे क्विप् संप्रसारणं च । आध्यः आध्यानानीत्यर्थः । "एरनेकाचः०" इति शसि यण् ❀ । व्याख्यातम् अन्यत् ॥

हे जाये ! मैं तेरे शिरसे आरंभ करके पैर तक मानसिक चिन्ताओं को डालता हूँ, तात्पर्य यह है, कि–इस प्रकार तेरे सब अंगोंमें कामदेवकी पीड़ाको करता हूँ । हे देवताओं ! आप कामदेवको भेजिये, जिससे यह मेरा स्मरण करके सन्तप्त होवे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अनु॑म॒तेन्वि॒दं म॑न्य॒स्वाकू॑ते॒ समि॒दं नमः॑ ।
दे॒वाः प्र हि॑णुत स्म॒रम॒सौ माम॑नु शोचतु ॥ २ ॥

अनु॑ऽमते । अनु॑ । इ॒दम् । म॒न्य॒स्व॒ । आऽकू॑ते । सम् । इ॒दम् । नमः॑ ।
देवाः॑ । प्र । हि॒णु॒त । स्म॒रम् । अ॒सौ॑ । माम् । अनु॑ । शो॒च॒तु॒ २

हे अनुमते सर्वकार्याणाम् अनुमन्त्रि हे अनुमतकारिणि देवपत्नि इदम् मदभिलषितम् अनु मन्यस्व अनुजानीहि । हे आकूते । आकूतिः संकल्पाभिमानिनी देवता । त्वमपि इदम् । अस्माभिः क्रियमाणं नमः नमस्कारं हविर्लक्षणम् अन्नं वा संप्राप्य । अनुमन्यस्वेत्यर्थः । शिष्टं व्याख्यातम् ॥

हे सब कार्योंमें अनुमति देने वाली अनुमति नाम वाली देवपत्नि ! इस मेरी अभिलाषाको आप अनुमति दीजिये, हे संकल्प की अभिमानिनी आकूति देवते ! आप भी हमारे दिये हुए इस हविरूप अन्नको स्वीकार करके अनुमति दीजिये । हे देवताओं ! आप कामदेवको भेजिये, जिससे यह मेरा स्मरण करके सन्तप्त होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यद् धाव॑सि त्रियोज॒नं प॑ञ्चयोज॒नमाश्वि॑नम् ।
तत॒स्त्वं पुन॒राय॑सि पु॒त्राणां॑ नो अ॒सः॒ पि॑ता ॥३॥

यत् । धाव॑सि । त्रि॒ऽयो॒ज॒नम् । प॒ञ्च॒ऽयो॒ज॒नम् । आश्वि॑नम् ।
ततः॑ । त्वम् । पुनः॑ । आ॒ऽअय॑सि । पु॒त्राणा॑म् । न॒ । अ॒सः॒ । पि॒ता३

वशीकृता स्त्री प्रार्थयते । हे पुरुष त्वं त्रियोजनम् योजनत्रयपरिमितं दूरदेशं यद्व धावसि गच्छसि । यद्वा पञ्चयोजनम् ततोपि दूरतरं पञ्चसंख्याकयोजनपरिमितं देशं धावसि । अथवा आश्विनम् अश्वेनैव प्रापणीयं न पादचारेणेति अत्यन्तं दूरं यद्व धावसि ततः तस्माद् दूरदेशात् त्वं पुनरायसि पुनरागच्छ । नः अस्माकं पुत्राणां गृहे वर्तमानानां पिता असः पालको भव । यद्वा तव देशान्तरगमनाद् एतावन्तं कालं पुत्राः पितृरहिता आसन् इदानीं त्वदागमनात् पितृमन्तो भवन्तु इत्यर्थः ॥

(वशमें की हुई स्त्री प्रार्थना करती है, कि–) हे पुरुष ! तू बारह कोस पर दौड़ रहा हो अथवा उससे भी दूर बीस कोस पर दौड़ रहा हो, अथवा अश्वों ही के द्वारा पहुँचने योग्यके स्थानमें घूम रहा हो तो भी फिर आ जा और हमारे घर में वर्तमान पुत्रोंका पिता-पालन करने वाला–हो । तेरे विदेशमें चले जानेसे इतने काल तक ये पुत्र पितारहित थे, इस समय तेरे आगमनसे पितासे सम्पन्न होवें ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यं दे॒वा स्म॒रमसि॑ञ्चन्न॒प्स्व॒१न्तः शोशु॑चानं स॒हाध्या ।
तं ते॑ तपा॒मि वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा ॥ १ ॥

यम् । दे॒वाः । स्म॒रम् । असि॑ञ्चन् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः । शो॑शुचानम् ।
स॒ह । आ॒ध्या ।

तम् । ते॒ । त॒पा॒मि॒ । वरु॑णस्य । धर्म॑णा ॥ १ ॥

सर्वे देवाः यं स्मरं मनोभवम् आध्या । आधिस्तु मानसी पीडा । सा हि स्मरस्य भार्या । "कामो गन्धर्वस्तस्याधयोऽप्सरसः" [तै० सं० ३. ४. ७, ३] इति श्रुतेः । तया सह शोशुचानम् विरहाग्निना संतप्यमानगात्रम् अप्सु उदकेषु अन्तः मध्ये असिञ्चन् परितापशमनार्थम् आसिक्तवन्तः । यद्वा शोशुचानम् दीप्यमानं स्वशक्त्या सहितं स्मरम् अप्सु अन्तरिक्षनामैतत् । अवकाशात्मके अन्तरिक्षे अन्तरवस्थितान् तत्रात्यान् प्राणिनः पीडयितुम् असिञ्चन् । कामिनां साम्राज्ये अभ्यषिञ्चन्नित्यर्थः । हे योषित् ते तुभ्यं त्वदर्थं तं स्मरं वरुणस्य जलाधिपतेर्देवस्य धर्मणा धारणशक्त्या तपामि संतापयामि । स्मरकृतं संतापम् उत्पादयामीत्यर्थः ॥

मानसी पीड़ा आधिके साथ वर्तमान ‡ विरहाग्निसे सन्तप्त शरीर वाले जिस मनोभव कामदेवका सब देवताओंने जलोंके मध्यमें परिताप शान्त करनेके लिये आसेचन किया। वा—अपनी शक्तिसे दमकते हुए कामदेवको अवकाशरूप अन्तरिक्षके भीतर स्थित प्राणियोंको पीड़ित करनेके लिये अभिषिक्त किया है। हे योषित् !—तेरे लिये उस कामदेवको जलके अधिपति वरुण देवताकी धारणशक्तिसे सन्तापित करता हूँ अर्थात् तुझमें कामदेवकृत सन्तापको उत्पन्न करता हूँ ॥ १ ॥

---

‡ मानसी पीड़ा आधि कामदेवकी भार्या है । तैत्तिरीयसंहिता ३ । ४ । ७ । ३ में लिखा है, कि—"कामो गन्धर्वस्तस्याधयोऽप्सरसः ॥—काम गन्धर्व है, और आधियें अप्सराएँ हैं" ॥

पञ्चमी ॥

यं विश्वे॑ दे॒वाः स्म॒रमसि॑ञ्चन्न॒प्स्व१॒न्तः शोशु॑चानं स॒हा-
ध्या ।
तं ते॑ तपामि॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा ॥ २ ॥

यम् । विश्वे॑ । दे॒वा । स्म॒रम् । असि॑ञ्चन् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः ।
शोशु॑चानाम् । स॒ह । आ॒ध्या ।
तम् । ते॒ । त॒पा॒मि॒ । वरु॑णस्य । धर्म॑णा ॥ २ ॥

विश्वे देवाः एतत्संज्ञा देवगणाः । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

विश्वेदेवा नामक देवगणोंने मानसी पीड़ाके साथ वर्तमान रह कर सन्तप्त शरीरवाले जिन मनोभव कामदेवको जलोंके मध्यमें अभिषिक्त किया था । हे योषित् ! तेरे निमित्त उन कामदेवको मैं जलाधिपति वरुणदेवकी शक्तिसे सन्तप्त करता हूँ अर्थात् तुझ में कामके सन्तापको उत्पन्न करता हूँ ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

यमि॑न्द्रा॒णी स्म॒रमसि॑ञ्चद॒प्स्व१॒न्तः शोशु॑चानं स॒हाध्या
तं ते॑ तपामि॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा ॥ ३ ॥

यम् । इ॒न्द्रा॒णी । स्म॒रम् । असि॑ञ्चत् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः । शोशु॑चा-
नम् । स॒ह । आ॒ध्या ।
तम् । ते॒ । त॒पा॒मि॒ । वरु॑णस्य । धर्म॑णा ॥ ३ ॥

इन्द्राणी इन्द्रस्य पत्नी । ❀ "इन्द्रवरुण०" इत्यादिना ङीषानुकौ ❀ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

इन्द्रदेवकी पत्नी इन्द्राणीने मानसी पीड़ाके साथ वर्तमान रह कर सन्तप्त शरीरवाले जिन मनोभव कामदेवको जलोंके मध्यमें अभिषिक्त किया था। हे योषित्! तेरे निमित्त उन कामदेवको मैं जलाधिपति वरुणदेवकी शक्तिसे सन्तप्त करता हूँ अर्थात् तुझ में कामके सन्तापको उत्पन्न करता हूँ॥ ३॥

सप्तमी॥

यमि॑न्द्रा॒ग्नी स्म॒रमसि॑ञ्चताम॒प्स्व॑१॒न्तः शो॑शु॑चा॒नं स॒हाध्या।
तं ते॑ तपा॒मि वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॥ ४॥

यम्। इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑। स्म॒रम्। असि॑ञ्चताम्। अ॒प्ऽसु। अ॒न्तः।
शोशुचानम्। स॒ह। आ॒ध्या।

तम्। ते॒। त॒पा॒मि॒। वरुणस्य। धर्म॑णा।॥ ४॥

इन्द्रश्च अग्निश्च इन्द्राग्नी। ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति प्राप्तस्य उभयपदप्रकृतिस्वरत्वस्य "नोत्तरपदेऽनुदात्तादौ०" इति प्रतिषेधः❀। तौ यं स्मरम् असिञ्चताम् अभ्यषिञ्चताम्। अन्यत् समानम्॥

इन्द्र और अग्निदेवने मानसी पीड़ाके साथ वर्तमान रह कर सन्तप्त शरीर वाले जिन मनोभव कामदेवको जलोंके मध्यमें अभिषिक्त किया था। हे योषित्! तेरे निमित्त उन कामदेवको मैं जलाधिपति वरुणदेवकी शक्तिसे सन्तप्त करता हूँ अर्थात् तुझ में कामके सन्तापको उत्पन्न करता हूँ॥ ४॥

अष्टमी॥

यं मि॒त्रावरु॑णौ स्म॒रमसि॑ञ्चताम॒प्स्व॑१॒न्तः शो॑शुचा॒नं स॒हाध्या।

तं ते॑ तपा॑मि॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा ॥ ५ ॥

यम् । मि॒त्रावरु॑णौ । स्म॒रम् । असि॑ञ्चताम् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः ।

शो॑शुचानम् । स॒ह । आ॒ध्या ।

तम् । ते॒ । त॒पा॒मि॒ । वरु॑णस्य । धर्म॑णा ॥ ५ ॥

मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । ❀ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

[इति] त्रयोदशेऽनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

मित्र और वरुणदेवने मानसी पीड़ाके साथ वर्तमान रह कर सन्तप्त शरीरवाले जिन मनोभव कामदेवको जलोंके मध्यमें अभिषिक्त किया था। हे योषित् ! तेरे निमित्त उन कामदेवको मैं जलाधिपति वरुणदेवकी शक्तिसे सन्तप्त करता हूँ अर्थात् तुझमें कामके सन्तापको उत्पन्न करता हूँ ॥ ५ ॥

तेरहवें अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (१०५) ॥

"य इमां देवो मेखलाम्" इति पञ्चर्चेन अभिचारकर्मणि दीक्षायां मेखलां संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

अत्र "आहुतासि" इत्यनया तत्रैव कर्मणि मेखलाया ग्रन्थिम् आलिम्पेत् ॥

"मृत्योरहम्" इत्यनया बाधकीः समिध आदध्यात् ॥

उपनयनकर्मणि "श्रद्धाया दुहिता" इति द्वाभ्यां मेखलां बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां मौञ्जीं मेखलां बध्नाति" इति [कौ० ७, ८] ॥

"अयं वज्रः" इति तृचेन अभिचारकर्मणि दीक्षायां दण्डं संपात्य अभिमन्त्र्य गृह्णीयात् ॥

तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन अन्नम् अभिमन्त्र्य कर्ता भुञ्जीत ॥

"य इमां देवो मेखलाम्" इस पाँच ऋचा वाले पञ्चर्चसे अभिचारकर्मकी दीक्षामें मेखला को संपातित और अभिमंत्रित करके बाँधे ।

यहाँ "आहुतासि" इस ऋचासे तहाँ ही कर्ममें मेखलाकी ग्रंथिको आलिम्पन करे ।

"मृत्योरहम्" इस ऋचासे बाधकी समिधाओंको रक्खे ।

उपनयनकर्ममें 'श्रद्धाया दुहिता' इन दो ऋचाओंसे मेखला को बाँधे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां मौञ्जीं मेखलां बध्नाति" (कौशिकसूत्र ७।८)॥

"अयं वज्रः" इस तृचसे अभिचारकर्ममें दीक्षाके दण्डको सम्पातित और अभिमंत्रित करके ग्रहण करे ।

तहाँ ही कर्ममें कर्ता इस तृचसे अन्नको अभिमंत्रित करके भोजन करे ॥

तत्र प्रथमा ॥

य इ॒मां दे॒वो मेख॑लामाब॒बन्ध॒ यः सं॑न॒नाह॒ य उं नो
यु॒योज॑ ।
यस्य॑ दे॒वस्य॑ प्र॒शिषा॒ चरा॑म॒ः स पा॒रमि॑च्छा॒त् स उं
नो॒ वि मु॑ञ्चात् ॥ १ ॥

यः । इ॒माम् । दे॒वः । मेख॑लाम् । आ॒ऽब॒बन्ध॑ । यः । स॒म्ऽन॒नाह॑ ।
यः । ऊं॒ इति॑ । न॒ः । यु॒योज॑ ।
यस्य॑ । दे॒वस्य॑ । प्र॒ऽशिषा॑ । चरा॑मः । सः । पा॒रम् । इ॒च्छा॒त् ।
सः । ऊं॒ इति॑ । न॒ः । वि । मु॒ञ्चा॒त् ॥ १ ॥

यो देवः शत्रुहननकुशलः इमां मेखलां स्वशत्रुवधार्थम् आबबन्ध पुरा आबद्धवान् । तथा यो देवः संननाह इदानीमपि अन्येषां मेखलां संनह्यति । यश्च नः अस्मान् युयोज अभिचारकर्मणि मेखलया योजयति । तथा वयं यस्य देवस्य प्रशिषा प्रशासनेन चरामः वर्तामहे स सर्वान्तर्यामी देवः पारं प्रारिप्सितस्य कर्मणः समाप्तिम् इच्छात् इच्छतु । ❀ इच्छतेर्लेटि आडागमः ❀ । स उ स एव नः अस्मान् वि मुञ्चात् शत्रुभ्यो विमुञ्चतु । शत्रुं निहत्य अस्मान् कृतार्थान् करोत्वित्यर्थः ॥

जिस शत्रुको मारनेमें कुशल देवताने पहिले अपने शत्रुका वध करनेके लिये इस मेखलाको बाँधा था, तथा जो देवता दूसरोंके भी इस मेखलाको बाँधते हैं। और जो हमको भी अभिचारकर्ममें मेखलासे संयुक्त करते हैं। और हम जिन देवके प्रशासनमें व्यवहार कर रहे हैं, वह सर्वान्तर्यामी देवता हमारे अभीप्सित कर्मको पूर्ण करनेकी इच्छा करें। वही हमको शत्रुओंसे मुक्त करें अर्थात् शत्रुओंको मार कर हमको कृतार्थ करें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥ २ ॥

आऽहुता । असि । अभिऽहुता । ऋषीणाम् । असि । आयुधम् ।
पूर्वा । व्रतस्य । प्रऽअश्नती । वीरऽघ्नी । भव । मेखले ॥ २ ॥

हे मेखले त्वम् आहुता आहुतिभिः संस्कृता असि । संपाताभिहुता च । सा ऋषीणाम् अतीन्द्रियार्थदर्शिनां विश्वामित्रादीनाम् आयुधम् शत्रुहननसाधनम् असि । व्रतस्य कर्मणः प्रारिप्सितस्य पूर्वा प्रथमभाविनी प्राश्नती प्राश्नुवाना प्राप्नुवती । यद्वा ।

❀ व्रतस्येति कर्मणि षष्ठी ❀ । व्रतं क्षीरादिकं प्राश्नती प्रथमं पिबन्ती । वीरघ्नी वीराः शत्रवः तेषां हन्त्री भव ॥

हे मेखले ! तू आहुतियोंसे संस्कृत है । ऐसी तू अतीन्द्रियार्थदर्शी विश्वामित्र आदि ऋषियोंकी आयुधरूप है । तू क्षीर आदि व्रतको पहिले पीती है । तू वीर शत्रुओंको मारने वाली हो ॥२॥

तृतीया ॥

मृ॒त्योर॒हं ब्रह्म॑चा॒री यद॑स्मि नि॒र्याच॑न् भू॒तात् पुरु॑षं
य॒माय॑ ।
तम॒हं ब्रह्म॑णा॒ तप॑सा॒ श्रमे॑णा॒नयै॒नं मेख॑लया सिनामि

मृ॒त्योः । अ॒हम् । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । यत् । अस्मि । नि॒ःऽयाच॑न् ।
भू॒तात् । पुरु॑षम् । य॒माय॑ ।
तम् । अ॒हम् । ब्रह्म॑णा । तप॑सा । श्रमे॑ण । अ॒नया॑ । ए॒न॒म् ।
मेख॑लया । सि॒ना॒मि ॥ ३ ॥

मृत्योः वैवस्वतस्य अहं कर्मकरो भवामि । यत् यस्माद् ब्रह्मचारी अस्मि ब्रह्मचर्यधर्मेण दीक्षादिनियमेन तपोविशेषेण युक्तो भवामि । तस्मात् मत्कृतेन अभिचारकर्मणा नियमविशेषेण च शत्रुवधः अवश्यंभावीति मृत्योरेव अहं सहायभूतो भवामीत्यर्थः । अतो हेतोः भूतात् भूतग्रामात् पुरुषम् शत्रुं यमाय यमार्थं निर्याचम् निःशेषेण याचे प्रार्थये । तं मारयितव्यम् एनं शत्रुं ब्रह्मणा मन्त्रेण तपसा अनशनादिरूपेण मत्कृतेन श्रमेण शरीरदण्डेन च अनया आबध्यमानया मेखलया अहं सिनामि बध्नामि । अनेन मेखलाबन्धनेन शत्रुमेव निरुद्धगतिं बध्नामीत्यर्थः । ❀ षिञ बन्धने ❀ ॥

मैं वैवस्वत यमका कर्म करने वाला बनता हूँ, क्योंकि–मैं ब्रह्मचारी होता हूँ; अर्थात् तपोविशेष दीक्षादिनियम ब्रह्मचर्यसे युक्त होता हूँ। इस कारण अपने किये हुए अभिचारकर्मसे शत्रुका वध अवश्य होगा–इस प्रकार मृत्युका सहायक होता हूँ। अत एव मैं प्राणियोंके समूहमेंसे शत्रुकी यमदेवताके लिये याचना करता हूँ। मारने योग्य इस शत्रुको मैं मन्त्रके द्वारा, अपने किये हुए अनशन आदिरूप तपके द्वारा शरीरदण्डरूप बाँधी हुई इस मेखलाके द्वारा बाँधता हूँ। तात्पर्य यह है, कि–इस मेखलाबंधनसे मैं शत्रुकी गतिको रोक कर उसको बाँधता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

श्रद्धायाः । दुहिता । तपसः । अधि । जाता । स्वसा । ऋषीणाम् । भूतऽकृताम् । बभूव ।
सा । नः । मेखले । मतिम् । आ । धेहि । मेधाम् । अथो इति । नः । धेहि । तपः । इन्द्रियम् । च ॥ ४ ॥

श्रद्धाया दुहिता । श्रुतिस्मृत्युदितकर्मसु आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा । तस्या दुहिता पुत्री तपसोधि जाता सृष्ट्यादौ ब्रह्मणस्तपस उत्पन्ना । ❀ अधिशब्दः पञ्चम्यर्थानुवादी । उपर्यर्थो वा ❀ । भूतकृताम् भूतग्रामस्य कर्तृणाम् ऋषीणाम् मरीच्यत्रिप्रभृतीनां स्वसा भगिनी

येयं मेखला इत्थं बभूव हे मेखले सा तादृशी त्वं नः मतिम् आगामिगोचरां बुद्धिम् आ धेहि आभिमुख्येन कुरु । तथा मेधाम् श्रुतधारणसमर्थां बुद्धिम् आ धेहि । अथो अपि च तपः नियमविशेषम् इन्द्रियम् इन्द्रस्यात्मनो लिङ्गं वीर्यं च नः अस्माकं विधेहि ॥

श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए कर्मोंमें आस्तिक्यबुद्धिका नाम श्रद्धा है, उस श्रद्धाकी पुत्री, सृष्टिकी आदि में ब्रह्माजीके तपसे उत्पन्न हुई भूतोंको रचने वाले मरीचि अत्रि आदि ऋषियोंकी बहिन जो मेखला, इस प्रकार उत्पन्न हुई है, हे मेखले ! वह तू हममें आगामी बातको सुझाने वाली मतिको स्थापित कर। और श्रुत (सुनेहुए) को धारण करनेमें समर्थ बुद्धिको हममें स्थापित कर । और नियमरूप तप तथा आत्मबलको हममें स्थापित कर ४

पञ्चमी ॥

यां त्वां पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५॥

याम् । त्वा । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः । परिऽबेधिरे ।
सा । त्वम् । परि । स्वजस्व । माम् । दीर्घायुऽत्वाय । मेखले ५

हे मेखले यां त्वा त्वां भूतकृतः पृथिव्यादिभूतग्रामस्य कर्तारः पूर्वे पूर्वभाविन ऋषयः परिबेधिरे परिबद्धवन्तः सा तादृशी त्वं मां परिष्वजस्व आलिङ्ग । ❀ ष्वञ्ज परिष्वङ्गे ❀ । किमर्थम् । दीर्घायुत्वाय आयुषो दैर्घ्याय। अभिचारदोषपरिहारेण चिरकालजीवनायेत्यर्थः ॥

हे मेखले ! जिस तुझको पृथिवी आदि भूतोंके कर्ता पूर्वज ऋषियोंने बाँधा था, ऐसी तू अभिचारदोषको दूर कर चिरकाल तक जीवित रहनेके लिये मेरा आलिंगन कर ॥ ५ ॥

१५.२.३०

१९८१

षष्ठी ॥

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम्
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः

अयम् । वज्रः । तर्पयताम् । ऋतस्य । अव । अस्य । राष्ट्रम् ।
अप । हन्तु । जीवितम् ।
शृणातु । ग्रीवाः । प्र । शृणातु । उष्णिहा । वृत्रस्यऽइव । शचीऽपतिः ॥ १ ॥

अयं धार्यमाणो दण्डः वज्रः शत्रूणां वर्जयिता इन्द्रस्य वज्र इव सन् ऋतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा सामर्थ्येन तर्पयताम् तृप्तो भवतु । अप्रतिहतशक्तिर्भवतु इत्यर्थः । स वज्रः अस्य द्वेष्यस्य राज्ञो राष्ट्रम् राज्यम् अपहन्तु । अन्ततो जीवितम् जीवनं प्राणमपि अप हन्तु । तथा ग्रीवाः गलगतान्यस्थीनि शृणातु हिनस्तु छिनत्तु । उष्णिहाः उत्स्नातास्तत्रत्या धमनीः प्र शृणातु प्रच्छिनत्तु । ❀ शॄ हिंसायाम् । प्वादित्वाद् ह्रस्वः ❀ । वृत्रस्येव शचीपतिः यथा शचीपतिरिन्द्रः वृत्रस्य असुरस्य ग्रीवा उष्णिहाश्च अच्छैत्सीद् एवं छिनत्तु इत्यर्थः ॥

यह धारण किया हुआ दण्ड इन्द्र के वज्रकी समान शत्रुओं का वर्जन करता हुआ सत्य और यज्ञकी शक्तिसे तृप्त होवे–अप्रतिहत शक्ति वाला होवे । वह वज्रस्वरूप दण्ड इस शत्रु राजा के राज्यको नष्ट करे और क्या इसके जीवनका भी नाश करे और इसके गलेकी हड्डियोंको काट डाले, तहाँकी भीगी रहने वाली नसोंको नष्ट करे । जिस प्रकार शचीपति इन्द्रने वृत्रासुर की गरदन और नसोंको काटा था इसीप्रकार यह भी द्वेष्यराजा की गरदन और नसोंको काटे ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

अधरोधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत्।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥ २ ॥

अधरःऽअधरः। उत्तरेभ्यः। गूढः। पृथिव्याः। मा। उत्। सृपत्।
वज्रेण। अवऽहतः। शयाम् ॥ २ ॥

उत्तरेभ्यः उत्कृष्टतरेभ्यः अधरोधरः अतिशयेन अधरः अधोगतिर्निकृष्टतरः गूढः संवृतः पृथिव्याम् अन्तर्निमग्नः तस्याः पृथिव्याः सकाशात् मा उत्सृपत् मोत्सर्पतु उत्तिष्ठतु। अनेन वज्रेण अवहतः चूर्णीकृतः शयाम् शेताम्। म्रियताम् इत्यर्थः। ❀ शीङ् स्वप्ने। "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ❀ ॥

ऊँचोंसे नीचोंसे नीचा होता हुआ पृथिवीका आलिंगन करता हुआ यह फिर पृथ्वी परसे न उठे, अर्थात् इस वज्रसे चूर्ण होकर सोजावे–मर जावे ॥ २ ॥

अष्टमी ॥

यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥ ३ ॥

यः। जिनाति। तम्। अनु। इच्छ। यः। जिनाति। तम्।
इत्। जहि।

जिनतः। वज्र। त्वम्। सीमन्तम्। अन्वञ्चम्। अनु। पातय ३

यः शत्रुः जिनाति हानिं प्रापयति। ❀ ज्या वयोहानौ। "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् ❀। हे वज्र तं शत्रुम्

अन्विच्छ। तथा यो जिनाति तम् इत् तमेव जहि मारय। जिनतः हानिं प्रापयतः शत्रोः सीमन्तम्। सीम्नोरन्तः सीमन्तः तम्। ❀ "सीमन्तः केशेषु" इति शकन्ध्वादिषु पाठात् पररूपत्वम् ❀। शिरसो मध्यदेशम् अन्वञ्चम् अनुलोमम् अनुपातय। अनुक्रमेण विदारयेत्यर्थः ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥

जो शत्रु हानि पहुँचाता है, हे वज्र! तू उस शत्रुकी ही खोज कर और जो हानि पहुँचाना चाहता है उसको ही मार, हानि पहुँचाने वाले शत्रुके सीमन्त पर गिर–विदीर्ण कर ॥ ३ ॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (३०७) ॥

"यद् अश्नामि" "यद् गिरामि" इत्याभ्याम् अभिचारकर्मणि अन्नम् अभिमन्त्र्य भुञ्जीत ॥ [कौ० ६. १]॥

"यत् पिबामि" इत्यनया उदकम् अभिमन्त्र्य पिबेत् ॥ [कौ० ६. १]॥

"देवी देव्याम्" "यां जमदग्निः" इति तृचाभ्यां केशवृद्धिकरणकामः काचमाचीफलं जीवन्तीफलं भृङ्गराजं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि काचमाचीभृङ्गराजसहितोदकम् आभ्यां तृचाभ्याम् अभिमन्त्र्य उषःकाले अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि। "देवी देव्याम् [१३६] यां जमदग्निः [१३७] इति मन्त्रोक्ताफलं जीव्यलाकाभ्याम् अमावास्यायां कृष्णवसनः कृष्णभक्षः पुरा काकसंपाताद् अवनक्षत्रेऽवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ७]॥

"यद् अश्नामि" "यद् गिरामि" इन दोसे अभिचारकर्ममें अन्नको अभिमंत्रित करके भक्षण करे। (कौशिकसूत्र ६।१)

"यत् पिबामि" इस ऋचासे जलको अभिमन्त्रित करके पिये। (कौशिकसूत्र ६।१)।

"देवी देव्याम्" "यां जमदग्निः" इन दो तृचोंसे केशोंको बढ़ाने चाहने वाला काचमाचीफल जीवन्तीफल वा भँगरेको सम्पातित और अभिमंत्रित करके बाँधे।

तथा तहाँ ही कर्म में काचमाची भृङ्गराज पड़े जलको इन दोनों तृचोंसे अभिमंत्रित करके उषःकाल में अवसिञ्चन करे।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"देवी देव्यां (१३६) यां जमदग्निः (१३७) इति मन्त्रोक्ताफलं जीव्यलाकाभ्यां अमावास्यायां कृष्णवसनः कृष्णभक्तः पुरा काकसम्पाताद्व अवनक्षत्रेऽवसिञ्चति (कौशिकसूत्र ४। ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥

यत् । अश्नामि । बलम् । कुर्वे । इत्थम् । वज्रम् । आ । ददे ।
स्कन्धान् । अमुष्य । शातयन् । वृत्रस्यऽइव । शचीऽपतिः ॥१॥

अश्नामि भुञ्जे इति यत् तेन आत्मनो बलं कुर्वे करोमि। तेन च बलेन इत्थम् अनेन प्रकारेण वज्रम् वर्जकम् आयुधम् आ ददे गृह्णामि। इत्थम् इति इदमा आदानप्रकारस्य अभिनयः। ❀"आङो दोनास्यविहरणे" इति आत्मनेपदम् ❀। शचीपति इन्द्रः वृत्रस्येव अमुष्य एतन्नाम्नः अस्मच्छत्रोः स्कन्धान् स्कन्धोपलक्षितान् शरीरावयवान् शातयन् छिन्दन्। ❀ "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः। शद्लृ शातने इत्यस्मात् णिचि "शदेरगतौ तः" इति तकारादेशः ❀ ॥

जैसे शचीपति इन्द्र वृत्रासुरके कंधोंको (काटते हैं, इसी प्रकार) मैं अमुक शत्रुके कंधोंको काटनेके लिये जो खाता हूँ उससे अपने

में बल सम्पादन करता हूँ और उस बलसे वर्जक आयुधको धारण करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यत् पिबा॑मि॒ सं पि॑बामि स॒मुद्र इ॑व संपि॒बः ।
प्रा॒णान॒मुष्य॑ सं॒पाय॒ सं पि॑बामो अ॒मुं व॒यम् ॥ २ ॥

यत् । पिबा॑मि । सम् । पि॒बा॒मि॒ । स॒मु॒द्रःऽइ॑व । स॒म्ऽपि॒बः ।
प्रा॒णान् । अ॒मुष्य॑ । स॒म्ऽपाय॑ । सम् । पि॒बा॒मः॒ । अ॒मुम् । व॒यम् २

अहम् उदकं पिबामीति यत् तेन सं पिबामि शत्रुमेव संगृह्य तदीयं रसं पिबामि । समुद्र इव यथा समुद्रः नदीमुखात् सर्वं जलम् आदाय संपिबः सम्यक् पाता भवति । स्वात्मसात् करोतीत्यर्थः । ❀ "पाघ्राध्माधेट्दृशः शः" इति पिबतेः कर्तरि शप्रत्ययः । "पाघ्रा०" इत्यादिना पिबादेशः ❀ । सं पिबामीति उक्तम् अर्थं विवृणोति । अमुष्य शत्रोः प्राणान् प्राणापानव्यानादिकांश्चक्षुरादीन्द्रियाणि च प्रथमं संपाय रसीकृत्य सम्यक् पीत्वा अन्ततः अमुम् अवयविनं शत्रुमेव वयं सं पिबामः ॥

मैं जो जल पीता हूँ, सो उससे शत्रुको पकड़ कर उसके रसको ही पीता हूँ अर्थात् समुद्र जैसे नदीमुखसे सब जलको ग्रहण करके भली प्रकार पीता है अर्थात् उसको अधीन कर लेता है इसी प्रकार मैं भी करता हूँ । (स्पष्ट यह है, कि-) इस शत्रुके प्राण अपान व्यानआदिको और चक्षु आदि इन्द्रियोंको भी पहिले भली प्रकार रसरूपसे पीकरके अन्तमें इस शत्रुको ही पीता हूँ २

तृतीया ॥

यद् गिरा॑मि॒ सं गि॑रामि स॒मुद्र इ॑व संगि॒रः ।
प्रा॒णान॒मुष्य॑ सं॒गीर्य॒ सं गि॑रामो अ॒मुं व॒यम् ॥३॥

यत् । गिरामि । सम् । गिरामि । समुद्रःऽइव । सम्ऽगिरः ।

प्राणान् । अमुष्य । सम्ऽगीर्य । सम् । गिरामः । अमुम् । वयम् ३

पिबतेः स्थाने गिरतिरेव विशेषः । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् । यत् पलादिकं गिरामि निगिरामि निगरणव्यापारेण अन्तर्नयामि । ❀ गॄ निगरणे । तुदादित्वात् शः । "ॠत इद्धातोः" इति इत्त्वम् ❀ । संगिर इति सम्यङ् निगरिता । ❀ "इगुपधज्ञा०" इति किरते- र्विधीयमानः कप्रत्ययः गिरतेरपि द्रष्टव्यः । संगीर्येति । ॠत इत्त्वे "हलि च" इति दीर्घः ❀ ॥

मैं जो निगलता हूँ मैं जो पल निगलता हूँ, सो उससे शत्रुको पकड़ कर उसके रसको ही निगलता हूँ अर्थात् समुद्र जैसे नदीमुख से सब जलको ग्रहण करके भली प्रकार निगलता है अर्थात् उसको अधीन कर लेता है इसी प्रकार मैं भी करता हूँ, । (स्पष्ट यह कि–) इस शत्रुके प्राण अपान व्यान आदिको और चक्षु आदि इन्द्रियोंको भी पहिले भली प्रकार रसरूप निगल करके अंतमें इसशत्रुको ही निगलता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥१॥

देवी । देव्याम् । अधि । जाता । पृथिव्याम् । असि । ओषधे ।
ताम् । त्वा । निऽतत्नि । केशेभ्यः । दृंहणाय । खनामसि ॥१॥

हे ओषधे काचमाचीप्रभृतिके देवी द्योतमाना देव्याम् पृथिव्याम् अधि जाता उत्पन्ना असि भवसि । हे नितत्नि नितन्वाने न्यक्प्रसरणशीले ओषधे । ❀ "आदृगमन०" इति तनोतेश्छान्दसः

क्विप्प्रत्ययः । लिङ्वद्भावाद् द्विर्वचनम् । "तनिपत्योश्छन्दसि" इति उपधालोपः ❀ । तां पूर्वोक्तगुणविशिष्टां त्वा त्वां केशेभ्यः केशानाम् अर्थे दृंहणाय दृढीकरणाय खनामसि खनामः खननेन संगृह्णीमः ॥

हे काचमाची आदि दमकती हुई ओषधे ! तू देवी पृथिवीमें उत्पन्न हुई है। हे तिरछी होकर फैलनेके स्वभाव वाली ओषधे ! पूर्वोक्त गुण वाली तुझको हम केशोंके दृढ़ करनेके लिये खोदते हैं–खोद कर संग्रह करते हैं ॥ १ ॥

दृंह॑ प्र॒त्नान् ज॒नयाजा॑तान् जा॒तानु॒ वर्षी॑यसस्कृधि २

दृंह॑ । प्र॒त्नान् । ज॒न॑य । अजा॑तान् । जा॒तान् । ऊं॒ इति॑ । वर्षी॑यसः । कृ॒धि॒

यस्ते॒ केशो॑व॒पद्य॑ते॒ समू॑लो॒ यश्च॑ वृ॒श्चते॑ ।
इ॒दं तं वि॒श्वभे॑ष॒ज्याभि षि॑ञ्चामि वी॒रुधा॑ ॥ ३ ॥

यः । ते॒ । केश॑ः । अ॒व॒ऽपद्य॑ते । सऽमू॑लः । यः । च॒ । वृ॒श्चते॑ ।
इ॒दम् । तम् । वि॒श्व॒ऽभे॑षज्या । अ॒भि । सि॒ञ्चा॒मि॒ । वी॒रुधा॑ ॥ ३ ॥

पञ्चमी ॥ प्रत्नान् पुरातनान् केशान् हे ओषधे त्वं दृंह दृढीकुरु । अजातान् अनुत्पन्नान् केशान् जनय उत्पादय। जातान् उ उत्पन्नानपि केशान् वर्षीयसः प्रवृद्धतमान् आयततमान् कृधि कुरु । हे केशदृंहणान [दृंहण] काम ते तव यः केशः अवपद्यते मध्ये भग्नो भूमौ निपतति समूलः मूलसहितः सन् यः केशः वृश्चते छिद्यते। इदं तम् इति उत्तरत्र संबन्धः ॥

षष्ठी ॥ इदम् अनेन प्रयोगेण तं सर्वं केशं विश्वभेषज्या सर्वस्य केशाश्रितरोगजातस्य निवर्तयित्र्या वीरुधा ओषध्या अभि षिञ्चामि

अभितः सिञ्चामि आर्द्रीकरोमि। अस्माद् औषधप्रयोगाद् मन्त्रसामर्थ्याच्च सर्वं केशाश्रितरोगजातं निवर्तेत इत्यर्थः ॥

[इति] त्रयोदशेऽनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे औषधे ! तू पुरातन केशोंको दृढ़ कर, उत्पन्न न हुए केशोंको उत्पन्न कर। उत्पन्न हुए केशोंको भी बढ़े हुए कर। हे केशोंको बढ़ाना चाहने वाले ! तेरा जो केश भूमि पर गिर पड़ता है और जो केश मूलसहित होने पर भी काट डाला जाता है उन सब प्रकारके केशसमूहोंको मैं सबप्रकारके केशोंके रोगको निवारण करनेवाली औषधिसे सींचता हूँ। तात्पर्य यह है, कि—इस औषधके प्रयोग और मन्त्रशक्तिसे सब प्रकारके केशरोग दूर होते हैं ॥२॥

तेरहवें अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (३०९) ॥

“यां जमदग्निः” इति तृचस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रमपि तत्रैवोदाहृतम् ॥

“त्वं वीरुधाम्” इति पञ्चर्चेन अभिचारकर्मणि सूत्रोक्तप्रकारेण मूत्रपुरीषस्थानं बाधकेन काष्ठेन हन्यात् ॥

“यां जमदग्निः” इस तृचका पहिले तृचके साथ विनियोग कह दिया है। सूत्र भी तहाँ ही कहा है।

“त्वं वीरुधाम्” इस पञ्चर्चसे अभिचारकर्ममें सूत्रोक्तरीतिसे मूत्रपुरीषस्थानको बाधककाष्ठ से पीटे।

तत्र प्रथमा ॥

यां ज॒मद॑ग्नि॒रख॑नद् दुहि॒त्रे के॑श॒वर्ध॑नीम्।
तां वी॒तह॑व्य॒ आभ॑र॒दसि॑तस्य गृ॒हेभ्यः॑ ॥ १ ॥

याम्। ज॒मत्ऽअ॑ग्निः। अख॑नत्। दु॒हि॒त्रे। के॒श॒ऽवर्ध॑नीम्।
ताम्। वी॒तऽह॑व्यः। आ। अ॒भ॒र॒त्। असि॑तस्य। गृ॒हेभ्यः॑ ॥१॥

जमत् इति ज्वलतिकर्मसु पाठात् [निघ० १. १७] जमच्छब्दो दीप्तिवचनः । जमन्तः ज्वलन्तः अग्नयो यस्य स जमदग्निः महर्षिः दुहित्रे आत्मजाया अर्थे केशवर्धनीम् केशाभिवृद्धिकरीं याम् ओषधिम् अखनत् खननेन उद्धृतवान् ताम् ओषधिं वीतहव्याख्यो महर्षिः केशवृद्ध्यर्थम् असितस्य कृष्णकेशस्य एतत्संज्ञस्य मुनेर्गृहेभ्यः सकाशाद् आ अभरत् आहरत् । ❀ "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम् ❀ ॥

जिनके यहाँ प्रज्वलित अग्नियें रहती थी उन महर्षि जमदग्निने अपनी पुत्रीके लिये केशोंको बढ़ाने वाली जिस औषधिको खोदा था और उसी औषधिको वीतहव्य नाम वाले महर्षि कृष्णकेश नामक मुनिके घरसे लाये थे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अ॒भीशु॑ना॒ मेया॑ आसन् व्या॒मेना॑नु॒मेया॑ः ।
केशा॑ न॒डा इ॑व वर्धन्तां शी॒र्ष्णस्ते॑ असि॒ताः परि॑ २

अ॒भीशु॑ना । मेया॑ः । आ॒स॒न् । वि॒ऽआ॒मेन॑ । अ॒नु॒ऽमेयाः ।
केशा॑ः । न॒डाःऽइ॑व । व॒र्ध॒न्ता॒म् । शी॒र्ष्णः । ते॒ । अ॒सि॒ताः । परि॑ २

हे केशाभिवृद्धिकाम त्वदीयाः केशाः प्रथमम् अभीशुना । अंगुलिनामैतत् । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । अंगुलिभिः मेयाः मातव्याश्चतुरंगुलाः षडंगुला इत्येवं परिच्छेद्या आसन् । ततो व्यामेन प्रसारितहस्तद्वयपरिमाणेन अनु पश्चात् मेयाः मातव्या आसन् । चतुररत्निर्व्याम इति याज्ञिकाः । हे पुरुष ते तव शीर्ष्णः शिरसः परि परितः असिताः कृष्णवर्णाः केशाः नडा इव वर्धन्ताम् । नडास्तृणविशेषाः । ते यथा तटाकोदकप्रान्तेषु उत्पन्नाः संहताः सन्तः शीघ्रं वर्धमाना द्राघीयांसो भवन्ति तथा केशा अपि वर्धन्ताम् इत्यर्थः ॥

हे केशोंको बढ़ाना चाहने वाले ! पहिले तेरे केश अँगुलियों से नापने योग्य थे अर्थात् चार अँगुल या छः अंगुल थे । फिर व्याम (फैले हुए दो हाथों) से नापने योग्य हुए, हे पुरुष ! तेरे शिरके चारों ओर बाल नड नामक तृणोंकी समान बढ़ें वे जैसे किनारेके स्थानोंमें उत्पन्न हो एकत्रित हो शीघ्र ही बढ़कर बड़े होजाते हैं इसी प्रकार केश भी बड़े होजावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

दृं॒ह॒ मू॒लमाग्रं॑ यच्छ॒ वि मध्यं॑ यामयौ॑षधे ।
केशा॑ न॒डा इ॑व वर्धन्तां॑ शी॒र्ष्ण॑स्ते॑ अ॒सि॒ताः परि॑ ३

दृं॑ह । मूल॑म् । आ । अग्र॑म् । य॒च्छ॒ । वि । मध्य॑म् । य॒म॒य॒ । ओ॒ष॒धे॒ ।

केशा॑ः । न॒डाःऽइ॑व । व॒र्ध॒न्ता॒म् । शी॒र्ष्णः॑ । ते॒ । अ॒सि॒ताः । परि॑ ३

हे ओषधे केशानां मूलं दृंह दृढीकुरु । यथा नोत्खिद्यन्ते तथा कुर्वित्यर्थः । तथा केशानाम् अग्रम् आ यच्छ आयतम् आयामयुक्तं कुरु । एवं केशानां मध्यं वि यमय विविधं यमय नियमय स्थिरीकुरु । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः ॥

हे ओषधे ! तू केशोंकी जड़को मजबूत कर, जिस प्रकार यह न उखड़ें तैसा कर, तथा केशोंके अग्रभागको लम्बा कर । केशों के मध्यभागको भी स्थिर कर, जैसे नदियोंके किनारों पर उत्पन्न हुए नड (नल) बढ़ते हैं, ऐसे ही तेरे शिर परके काले केश बढ़ें ३

चतुर्थी ॥

त्वं वी॒रुधां॒ श्रेष्ठ॑तमाभिश्रु॒तास्यो॑षधे ।
इ॒मं मे॑ अ॒द्य पूरु॑षं क्ली॒बमो॑प॒शिनं॑ कृधि ॥ १ ॥

त्वम् । वीरुधाम् । श्रेष्ठऽतमा । अभिऽश्रुता । असि । ओषधे ।
इमम् । मे । अद्य । पुरुषम् । क्लीबम् । ओपशिनम् । कृधि ॥१॥

हे ओषधे निर्वीर्यकारिन् ओषधिविशेष वीरुधाम् अन्यासां लतानां त्वं श्रेष्ठतमा अतिशयेन प्रशस्या । ❀ प्रशस्य शब्दाद् इष्ठनि "प्रशस्यस्य श्रः" इति आदेशः । पुनः श्रैष्ठ्यप्रकर्षविवक्षायां तमप् ❀ । अत एव हे ओषधे त्वम् अभिश्रुता अभितः सर्वतः प्रख्याता अप्रतिहतवीर्यतया प्रसिद्धा असि भवसि । अद्य इदानीं मे मदीयम् इमं पुरुषम् द्वेष्यं पुरुषं क्लीबम् निर्वीर्यं सन्तम् ओपशिनम् । उपशेते अस्मिन् पुरुष इति ओपशः स्त्रीव्यञ्जनम् । तद्वन्तं कृधि कुरु । नपुंसकत्वे हि पुंस्त्वशङ्कापि स्यात् सापि अस्य मा भूद् इत्यर्थः ॥

हे ओषधे ! तू निर्वीर्य करने वाली है, अन्य लताओंमें तू श्रेष्ठ है, अत एव तू चारों ओर अप्रतिहत वीर्य वाली प्रसिद्ध है । तू इस समय मेरे द्वेष्य पुरुषको कि-जो निर्वीर्य होरहा है, उसको ओपशिन (जिसमें पुरुष उपशयन करता है ऐसी स्त्री-व्यञ्जन वाला) कर अर्थात् नपुंसकत्वमें तो पुंस्त्वकी शंका भी हो सकती है परंतु इसके पक्षमें वह भी न हो ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ २ ॥

क्लीबम् । कृधि । ओपशिनम् । अथो इति । कुरीरिणम् । कृधि ।
अथ । अस्य । इन्द्रः । ग्रावऽभ्याम् । उभे इति । भिनत्तु । आण्ड्यौ २

उक्त एवार्थः अनूद्य विव्रियते । हे ओषधे मदीयं

शत्रुं क्लीबम् नपुंसकम् ओपशिनम् स्त्रीत्वोपेतं कृधि कुरु । अथो अपि च कुरीरिणम् कुरीराः केशाः तद्वन्तं कृधि कुरु । पुंस्त्वापगमेन स्त्रीत्वापातात् तद्वत् प्रशस्तकेशयुक्तं कुर्वित्यर्थः ॥

स्तनकेशवती स्त्री स्यात् लोमशः पुरुषः स्मृतः

इति हि व्यक्तिविदः । अत एव सिनीवाल्याः प्रशंसार्थो मन्त्र इत्थम् आम्नातः । "सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा" इति [तै० सं० ४. १. ५. ३] । अथ अनन्तरम् अस्य द्वेष्यस्य उभे आण्ड्यौ वीर्यस्य आश्रयभूतौ अण्डौ इन्द्रः ग्रावभ्याम् पाषाणाभ्यां भिनत्तु मर्दयतु । यथासौ पुत्रोत्पादनक्षमो न भवेत् तथा करोत्वित्यर्थः ॥

(पूर्वमन्त्रमें कहे हुए अर्थको ही स्पष्ट करके कहते हैं, कि–) हे ओषधे ! तू हमारे शत्रुको नपुंसक और स्त्रीत्वसे युक्त कर और इसको केश वाला कर, अर्थात् इसमेंसे पुरुषत्वके दूर होनेसे इसमें श्रेष्ठ केशसम्पन्न होना आदि स्त्रीत्वको कर ‡ । तदनन्तर इस पुरुषके वीर्यके आश्रयभूत दोनों अण्डकोशोंको इन्द्रदेव पत्थरोंसे कुचल डालें अर्थात् जिस प्रकार यह पुत्रोत्पत्ति करनेमें असमर्थ रहे तैसा करें ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

क्लीब॑ क्ली॒बं त्वाक॒रं वध्रे॒ वध्रिं त्वाक॒रमरं॑सा॒रसं त्वा॑करम्

---

‡ व्यक्तिवेत्ता कहते हैं, कि–"स्तनकेशवती स्त्री लोमशः पुरुषः स्मृतः ॥–स्त्री स्तन और केश वाली होती है । और पुरुष लोम वाला होता है ॥" अत एव सिनीवालीकी प्रशंसाके लिये तैत्तिरीयसंहिता ४ । १ । ५ । ३ में कहा है, कि–"सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा ॥–सिनीवाली (अन्नवती बाला) सुन्दर जटाओं वाली, सुन्दर केशों वाली और सुन्दर औपश वाली ।"

कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

क्लीब । क्लीबम् । त्वा । अकरम् । वध्रे । वध्रिम् । त्वा । अकरम् ।

अरस । अरसम् । त्वा । अकरम् ।

कुरीरम् । अस्य । शीर्षणि । कुम्बम् । च । अधिऽनिदध्मसि ३

हे क्लीब द्वेष्य त्वा त्वाम् अनेन कर्मणा क्लीबम् अकरम् अकार्षम् । हे वध्रे । निसर्गपण्डको वध्रिः । हे तथाविध शत्रो त्वा त्वां वध्रिम् स्वभावतः षण्ढम् अकरम् अकार्षम् । हे अरस रसो रेतः । हे अरेतस्क शत्रो त्वा त्वाम् अरसम् अरेतस्कम् अकरम् अकार्षम् । यस्माद् एवं तस्माद् अस्य द्वेष्यस्य नपुंसकीभूतस्य शीर्षणि शिरसि कुरीरम् केशजालं कुम्बम् तदाभरणं च स्त्रीणाम् असाधारणम् अधिनिदध्मसि उपरि निक्षिपामः । यद् आह आपस्तम्बः । "अत्र पत्नीशिरसि कुम्बकुरीरम् अध्यूहते" इति [आप० १०. ९. ५] ॥

हे क्लीब शत्रो ! मैंने तुझको इस कर्मसे क्लीब कर दिया है । हे स्वाभाविक क्लीब–बध्रे ! मैंने तुझको स्वाभाविक क्लीब कर दिया है । हे अरस ! अर्थात् वीर्यशून्य ! मैंने तुझको वीर्यशून्य कर दिया है । ऐसा होगया है इस कारण इस नपुंसकीभूत शत्रु के शिर पर हम केशजालको और स्त्रियोंके असाधारण भूषण कुम्बको धरते हैं †॥ ३ ॥

---

† आपस्तबने १० । ९ । ५ में कहा है, कि–"अत्र पत्नीशिरसि कुम्बकुरीरं अध्यूहते ॥–यहाँ पत्नीके शिर पर कुम्ब और कुरीर रक्खा जाता है ॥"

सप्तमी ॥

ये ते॑ ना॒ड्यौ॑ दे॒वकृ॑ते॒ ययो॒स्तिष्ठ॑ति॒ वृष्ण्य॑म् ।
ते ते॑ भिनद्मि॒ शम्य॑यामुष्या॒ अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥४॥

ये इति॑ । ते॒ । ना॒ड्यौ॑ । दे॒वकृ॑ते इति॑ दे॒वऽकृ॑ते । ययोः॑ । तिष्ठ॑ति ।
वृष्ण्य॑म् ।
ते इति॑ । ते॒ । भि॒न॒द्मि॒ । शम्य॑या । अ॒मुष्याः॑ । अधि॑ । मु॒ष्कयोः॑ ४

देवकृते देवेन विधात्रा निर्मिते ते त्वदीये ये नाड्यौ रेतोवहे । ययोर्नाड्योः वृष्ण्यम् । वृषा सेचनसमर्थः पुरुषः । तत्संबन्धि वीर्यं वृष्ण्यम् तिष्ठति आश्रित्य वर्तते ते शुक्राधारभूते देवनिर्मिते नाड्यौ ते तत्र मुष्कयोः अण्डयोरुपरि स्थिते अमुष्याः प्रसिद्धायाः शिलाया अधि उपरि शम्यया लकुटेन भिनद्मि पेषयामि ॥

विधाताके द्वारा रची हुई जो तेरी वीर्यको बहाने वाली नाड़ियें हैं, कि-जिनमें पुरुषका वीर्य रहता है, उन वीर्यकी आधारभूत अण्डकोशोंके ऊपर स्थित तेरी दोनों नाड़ियोंको मैं इस शिलाके ऊपर लकड़ीसे कुचता हूँ ॥ ४ ॥

अष्टमी ॥

यथा॑ न॒डं क॒शिपुने॒ स्त्रियो॑ भि॒न्दन्त्यश्म॑ना ।
ए॒वा भिनद्मि ते॒ शेपो॒मुष्या॒ अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥५॥

यथा॑ । न॒डम् । क॒शिपुने । स्त्रियः॑ । भि॒न्दन्ति । अश्म॑ना ।
ए॒व । भि॒न॒द्मि॒ । ते॒ । शेपः॑ । अ॒मुष्याः॑ । अधि॑ । मु॒ष्कयोः॑ ॥५॥

स्त्रियः कशिपुने कटाय कटं निर्मातुं यथा येन प्रकारेण नडम्

कटोपादानं तृणविशेषम् अश्मना भिन्दन्ति आघ्नन्ति एव एवम् हे शत्रो ते तव मुष्कयोः अण्डयोः वर्तमानं शेपः अमुष्याः शिलाया अधि उपरि अश्मना भिनद्मि आहन्मि । अनेन कर्मणा त्वां निर्वीर्यं करोमीति तात्पर्यम् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

जैसे स्त्रियें चटाई बनानेके लिये चटाईके उपादान नडको पत्थर से कूटती है इसी प्रकार हे शत्रो ! तेरे अण्डशोशों पर वर्तमान उपस्थको हम इस शिलाके ऊपर पत्थरसे कुचलते हैं । तात्पर्य यह है, कि–इस कर्मसे हम तुझको निर्वीर्य करते हैं ॥ ५ ॥

तेरहवें अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (३११) ॥

"न्यस्तिका" इति सूक्तेन पञ्चर्चेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि "भगेन मा सम् [६. १२६] इत्यत्रोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं तु तत्रैव उदाहृतम् ॥

"यौ व्याघ्रौ" इति तृचेन कुमारस्य कुमार्या वा प्रथमम् उपरितनदंतजननिमित्तदोषपरिहारार्थं व्रीहियवतिलानाम् अन्यतमं जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि व्रीहियवमाषतिलान् एकीकृत्य अनेनाभिमन्त्र्य उपजातदन्ताभ्यां दंशयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन स्थालीपाकं संपाद्य अभिमन्त्र्य उक्तं शिशुम् आशयेत् ॥

सूत्रितं हि– "यस्योत्तमदन्तौ पूर्वौ जायेते यौ व्याघ्रावित्यावपति । मन्त्रोक्तान् दंशयति । शान्त्युदकमृतम् आदिष्टानम् आशयति । पितरौ च" इति [कौ० ५. १०] ॥

"न्यस्तिका" इस पाँच ऋचा वाले सूक्तसे स्त्रीवशीकरणकर्म में 'भगेन मा सम्' इस छटे काण्डके एकसौ उन्तीसवें सूक्तमें कहे हुए कर्म करे । सूत्र तहाँ ही कह दिया है ।

"यौ व्याघ्रौ" इस तृचसे कुमार वा कुमारीके पहिले ऊपरके

निकलने वाले दाँतोंकी दोषशान्तिके लिये धान जौं तिल इनमें से एककी आहुति देय ।

तथा तहाँ ही कर्ममें धान उड़द जौं और तिलोंको मिला कर इससे अभिमन्त्रित करके निकले हुए दो दाँतोंसे कटवावे । तथा तहाँ ही कर्ममें इससे स्थालीपाकको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके पूर्वोक्त बालकको खिलावे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—"यस्योत्तमदन्तौ पूर्वौ जायेते यौ व्याघ्रावित्यावपति । मन्त्रोक्तान् दंशयति । शान्त्युदकभृतं आदिष्टानां आशयति पितरौ च" (कौशिकसूत्र ५ । १०)॥

न्य॒स्ति॒का रु॑रोहिथ सुभ॒गंक॑र॒णी मम॑ ।
श॒तं तव॑ प्रता॒नास्त्रय॑स्त्रिंशन्निता॒नाः ।
तया॑ सहस्रप॒र्ण्या॑ हृद॑यं शोषयामि ते ॥ १ ॥

नि॒ऽअ॒स्ति॒का । रु॒रो॒हि॒थ॒ । सु॒भ॒ग॒म्ऽकरणी । मम॑ ।
श॒तम् । तव॑ । प्र॒ऽता॒नाः । त्रयः॑ऽत्रिंशत् । निऽता॒नाः ।
तया॑ । स॒ह॒स्र॒ऽप॒र्ण्या॑ । हृद॑यम् । शो॒ष॒या॒मि॒ । ते॒ ॥ १ ॥

शुष्य॑तु॒ मयि॑ ते॒ हृद॑य॒मथो॑ शुष्यत्वा॒स्य॑म् ।
अथो॒ नि शुष्य॒ मां॑ कामे॒नाथो॒ शुष्का॑स्या चर॑ ॥२॥

शुष्य॑तु । मयि॑ । ते॒ । हृद॑यम् । अथो॒ इति॑ । शु॒ष्य॒तु॒ । आ॒स्य॑म् ।
अथो॒ इति॑ । नि । शु॒ष्य॒ । माम् । कामे॑न । अथो॒ इति॑ । शुष्के॑ऽ
आस्या । च॒र॒ ॥ २ ॥

तत्र प्रथमा ॥ हे शङ्खपुष्पिके न्यस्तिका दौर्भाग्यलक्षणं नितराम् अस्यन्ती त्वम् । ❀ असु क्षेपणे इत्यस्माद् औणादिकस्तिकन् प्रत्ययः ❀ । रुरोहिथ प्रादुर्भूतासि उत्पन्ना भवसि । ❀ रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे । क्रादिनियमाद् इट् ❀ । किं कुर्वती । मम सुभगंकरणी सौभाग्यं कुर्वती । ❀ "आढ्यसुभग०" इत्यादिना करोतेः ख्युन् प्रत्ययः । "खित्यनव्ययस्य" इति पूर्वपदस्य मुम् । "टिड्ढाणञ्०" इति ङीप् ❀ । हे ओषधे तव शतम् शतसंख्याकाः प्रतानाः प्रतायन्ते विस्तार्यन्ते इति प्रतानाः शाखाः । ❀ "हलश्च" इति तनोतेर्घञ् प्रत्ययः ❀ । शतायुषः पुरुषस्य उपकाराय प्रताना अपि शतसंख्याका उत्पद्यन्त इत्यर्थः । नितानाः न्यग्विस्तार्यमाणाः प्ररोहा त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाः संभवन्ति । त्रयस्त्रिंशत्संख्यानां देवानाम् उपकारकत्वात् तत्संख्यया नितानाः प्ररोहन्तीत्यर्थः । त्रयश्च त्रिंशच्च त्रयस्त्रिंशत् । "त्रेस्त्रयः" इति पूर्वपदस्य त्रिशब्दस्य त्रयस् आदेशः स च आद्युदात्तः । "संख्या" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ ॥

द्वितीया ॥ हे कामिनि तया तथाविधया प्रागुदीरितमाहात्म्योपेतया सहस्रपर्ण्या सहस्रसंख्याकपत्रोपेतया ते त्वदीयं हृदयम् अहं शोषयामि कामाग्निना परितप्तं करोमि । ❀ शुष शोषणे ❀ । मयि मद्विषये ते तव हृद्यम् जीवायतनं हृदयस्थानं शुष्यतु शुष्कं परितप्तं भवतु । अथो अपि च आस्यम् त्वदीयं मुखमपि शुष्यतु शुष्कं द्रवरहितं भवतु । अथो अपि च माम् उद्दिश्य कामेन अभिलाषेण नि शुष्य नितरां परितप्यस्व । अथो अपि च सा त्वं शुष्कास्या द्रवरहितानना सती चर माम् अभिगच्छ ॥

हे शङ्खपुष्पिके ! तू दुर्भाग्यके लक्षणोंको दूर फेंकती हुई और मेरे सौभाग्यका उदय करती हुई उत्पन्न होती है । हे औषधे ! तेरी सैंकड़ों शाखायें फैलती हैं । अथात् शतायु पुरुषका उपकार

करनेके लिये तेरी सैंकड़ों शाखायें फैलती हैं और तिरछी नीचे को फैलने वाली तैंतीस शाखायें (तैंतीस देवताओंका उपकार करनेके लिये) फैलती हैं ॥ १ ॥

हे कामिनि ! पूर्वोक्त माहात्म्यसे सम्पन्न सहस्रों पत्ते वाली सहस्रपर्णीसे मैं तेरे हृदयको सन्तप्त करता हूँ, मेरे विषयमें तेरा हृदय सन्तप्त होवे और तेरा मुख भी सूख जाय–द्रवरहित होजावे और तू मेरी अभिलाषासे बहुत ही सन्तप्त हो-फिर ऐसी तू मेरे पास आ २

तृतीया ॥

सं॒वन॑नी समुष्प॒ला बभ्रु॒ कल्या॑णि॒ सं नु॑द ।
अ॒मूं च॒ मां च॒ सं नु॑द समा॒नं हृद॑यं कृधि ॥ ३ ॥

स॒म्ऽवन॑नी । स॒म्ऽउ॒ष्प॒ला । बभ्रु॑ । कल्या॑णि सम् । नु॒द॒ ।
अ॒मूम् । च॒ । माम् । च॒ । सम् । नु॒द॒ । स॒मा॒नम् । हृद॑यम् । कृ॒धि॒

हे बभ्रु बभ्रुवर्णे पीतवर्णे हे कल्याणि मङ्गलकारिणि ओषधे संवननी संवननं वशीकरणं तद्वती । ❀ संपूर्वाद् वनतेः करणे ल्युट् । टिड्ढाणञ्॰ङीप् ❀ । समुष्पला सम्यक् उप्तफला सती सं नुद मत्समीपं तां स्त्रियं नुद प्रेरय । तदनन्तरम् अमूं च कामिनीं मां कामुकं च सं नुद संयोजय सम्यग् मिथुनीभावय । आवयोः हृदयं समानम् एकं कृधि कुरु ॥

हे पीतवर्णवाली मंगलकारिणी औषधे ! तुझमें वशीकरण का गुण है, तू फलोंके आहुति देने पर उस स्त्रीको मेरे पास भेज। फिर उस कामिनीको और मुझ कामुकको भली प्रकार मिला, हम दोनोंके हृदयको एक कर ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

यथोदकमपपुषोपशुष्यत्यास्यम् ।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥४॥

यथा । उदकम् । अपपुषः । अपऽशुष्यति । आस्यम् ।
एव । नि । शुष्य । माम् । कामेन । अथो इति । शुष्कऽआस्या । चर

यथा येन प्रकारेण उदकम् अपपुषः जलम् अपीतवतस्तृषार्तस्य पुरुषस्य आस्यम् मुखं अप शुष्यति एव एवम् हे कामिनि माम् उद्दिश्य कामेन नि शुष्य परितप्ता भव । अन्यत् पूर्ववत् । ❀ अपपुष इति । पा पाने इत्यस्मात् लिटः क्वसुः । ङसि "वसोः संप्रसारणम्" इति संप्रसारणम् । "आतो लोप इटि च" इति आकारलोपः । न च तस्मिन् कर्तव्ये संप्रसारणस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धवद्भावः । अत्र ग्रहणं समानाश्रयप्रतिपत्त्यर्थम् इत्युक्तत्वात् । ङसि संप्रसारणं क्वसौ आल्लोप इति अनयोर्व्याश्रयत्वात् । "न लोकाव्यय०" इति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः ❀ ॥

जिस प्रकार जल न पीने वाले पुरुषका मुख सूख जाता है, इसी प्रकार हे कामिनि ! तू मुझको लक्ष्यमें रख कामसे सूखने लग । फिर शुष्क मुख वाली तू मेरे पास आ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५ ॥

यथा । नकुलः । विऽछिद्य । सम्ऽदधाति । अहिम् । पुनः ।
एव । कामस्य । विऽछिन्नम् । सम् । धेहि । वीर्यऽवति ॥ ५ ॥

नास्य कुलम् अस्तीति नकुलः प्राणी । ❀ "नभ्राण्नपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ । स यथा अहिम् सर्पं विच्छिद्य खण्डयित्वा पुनः संदधाति संयोजयति एव एवम् हे वीर्यावति अतिशयितवीर्ययुक्ते ओषधे कामस्य विच्छिन्नम् स्त्रियाः पराङ्मुखत्वेन कामकृतविकारेण अवखण्डितं मां सं धेहि पुनः संयोजय ॥

जिसके कुल नहीं है ऐसा नकुल प्राणी जिस प्रकार साँपको खण्डित कर फिरउसको जोड़ देता है, इसी प्रकार हे परमवीर्यसंपन्न ओषधे ! स्त्रीके पराङ्मुख होनेके कारण कामके द्वारा खण्डित हृदय वाले मुझको फिर जोड़ दे ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यौ व्या॒घ्राववरू॑ढौ॒ जिघ॑त्सतः पि॒त॑रं मा॒त॑रं च ।
तौ दन्तौ॑ ब्रह्मणस्पते शि॒वौ कृ॑णु जातवेदः ॥ १ ॥

यौ । व्या॒घ्रौ । अव॑ऽरूढौ । जिघ॑त्सतः । पि॒त॑रम् । मा॒त॑रम् । च॒ ।
तौ । दन्तौ॑ । ब्रह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । शि॒वौ । कृ॒णु॒ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ ॥ १ ॥

व्याघ्रौ व्याघ्रवत् हिंसकौ यौ दन्तौ उपरितनपङ्क्तिस्थौ अवरूढौ अवाङ्मुखं प्ररूढौ प्रथमत उत्पन्नौ पितरं मातरं च जिघत्सतः अत्तुं भक्षयितुम् इच्छतः । ❀ अद भक्षणे । "लुङ्सनोर्घस्लृ" इति घस्लृ आदेशः । "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम् ❀ । हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्याधिपते हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने तौ तथाविधौ दन्तौ शिवौ सुखकरौ मातापित्रोरहिंसकौ कृणु कुरु ॥

व्याघ्रकी समान हिंसक ऊपरकी पंक्तिके नीचेको मुख करके प्रथम उत्पन्न हुए दाँत माता पिताको खाना चाहते हैं, हे मन्त्रके अधिपति देव ! और हे अग्ने ! आप उनको माता पिताके अहिंसक सुखप्रद करिये ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

व्री॒हिम॑त्तं॒ यव॑मत्त॒मथो॒ माष॒मथो॒ तिल॑म् ।
ए॒ष वां॑ भा॒गो निहि॑तो रत्न॒धेया॑य॒ दन्तौ॒ मा हिं॑सिष्टं
पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥ २ ॥

व्री॒हिम् । अ॒त्त॒म् । यव॑म् । अ॒त्त॒म् । अथो॒ इति॑ । माष॑म् । अथो॒
इति॑ । तिल॑म् ।
ए॒षः । वा॒म् । भा॒गः । निऽहि॑तः । र॒त्न॒ऽधेया॑य । द॒न्तौ॒ । मा ।
हिं॒सि॒ष्ट॒म् । पि॒तर॑म् । मा॒तर॑म् । च॒ ॥ २ ॥

हे प्रथमोत्पन्नौ उपरितनदन्तौ व्रीहिम् अत्तम् भक्षयतं तथा यवम् अत्तम् भक्षयतम् । अथो अपि च माषम् अत्तम् । अथो अपि च तिलम् अत्तम् । हे दन्तौ रत्नधेयाय रमणीयफलाय वाम् युवयोः एषः व्रीहियवादिलक्षणो भागो निहितः निक्षिप्तः । तेन तृप्तौ युवाम् अस्य शिशोः पितरं मातरं च मा हिंसिष्टम् मा वधिष्टम् ॥

हे पहिले उत्पन्न हुए ऊपरके दाँतों ! तुम धानोंको खाओ जौंको खाओ उड़दको खाओ और तिलको खाओ हे दाँतों ! तुम्हें रमणीय फल देनेके लिये यह व्रीहियवादिका भाग रक्खा है। उससे तृप्त हुए तुम दोनों इस शिशुके माता पिताको मत मारो २

अष्टमी ॥

उप॑हूतौ स॒युजौ॑ स्यो॒नौ दन्तौ॑ सुम॒ङ्गलौ॑ ।
अ॒न्यत्र॑ वां घो॒रं त॒न्व॒१ः परै॑तु दन्तौ॒
मा हिं॑सिष्टं पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥ ३ ॥

उप॑ऽहूतौ । स॒ऽयुजौ॑ । स्यो॒नौ । द॑न्तौ । सु॒ऽम॒ङ्गलौ॑ ।

अ॒न्य॑त्र । वा॒म् । घो॒रम् । त॒न्व॑ः । प॑रा । ए॒तु । द॒न्तौ॒ ।

मा । हिं॒सि॒ष्ट॒म् । पि॒त॑रम् । मा॒त॑रम् । च॒ ॥ ३ ॥

उपहूतौ समीपम् आहूतौ देवेन अनुज्ञातौ वा सयुजौ समानं युञ्जानौ मित्रभूतौ स्योनौ सुखकरौ सुमङ्गलौ सुशोभनौ एवंगुणविशिष्टौ तौ दन्तौ भवताम् । हे दन्तौ वाम् युवयोः घोरम् क्रूरं कर्म मातापितृहननलक्षणम् अन्यत्र अन्यस्मिन् देशे तन्वाः शिशुशरीरात् परैतु परागच्छतु । गतम् अन्यत् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

वे दाँत समीपमें बुलाये हुए और देवके द्वारा अनुज्ञात-मित्ररूप सुखदायक और मंगलकारी हों, हे दाँतों ! माता पिताको मारनारूप तुम्हारा घोर कर्म इस शिशुके शरीरसे अन्यत्र चला जावे । इसके माता पिताकी तुम हिंसा न करो ॥ ३ ॥

तेरहवें अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त (३१२) ॥

“वायुरेनाः” इति तृचेन पुष्ट्यर्थंचित्राकर्मणि वृक्षशाखादिसंभारान् संपातयेत् ॥

तत्रैव कर्मणि “वायुरेनाः” इति ऋचा प्रभाते उदकधारोपेतया शाखया गां परिक्रामेत् ॥

तत्रैव कर्मणि “लोहितेन स्वधितिना” इति मन्त्रेण सूत्रोक्तरीत्या वत्सकर्णं छिन्द्यात् ॥

तत्रैव कर्मणि “यथा चक्रुः” इति ऋचा कर्णलोहितं दधिमधुघृतोदकमिश्रितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य वत्सं प्राशयेत् ॥

आह च कौशिकः । “वायुरेना इति युक्तयोश्चित्राकर्मनिशायां संभारान् संपातवतः करोति । अपरेद्युर्वायुरेना इति शाखयोदक-

धारयागाः परिक्रामति। प्रथमजस्य शकलम् अवधायौदुम्बरेणासिना लोहितेनेति मन्त्रोक्तम्। यथा चक्षुरितीक्षुकाशकांड्या लोहितं निर्मृज्य रसमिश्रम् अश्नाति। सर्वम् औदुम्बरम्" इति [कौ०३.६]

"उच्छ्रयस्व" इति तृचेन पुष्ट्यर्थबीजवापनकर्मणि व्रीह्यादिबीजम् आज्यमिश्रं कृत्वा अभिमन्त्र्य प्रत्यृचं तिस्रो मुष्टीर्लाङ्गलपद्धतौ निधाय पांसुभिराच्छादयेत्। तद् उक्तं कौशिकेन। "उच्छ्रयस्वेति बीजोपहरणम्। आज्यमिश्रान् यवान् उर्वरायां कृष्टे फालेन उदुह्य अन्वृचं काशीन् निनयति निवपति" इति [कौ० ३.७]॥

"वायुरेनाः" इस तृचसे पुष्ट्यर्थचित्राकर्ममें घृतादि सामग्रियों को सम्पातित करे।

. तहाँ ही कर्ममें "वायुरेनाः" इस ऋचासे प्रभातकालमें जलकी धारासे संयुक्त शाखासे गौकी परिक्रमा करे।

तहाँ ही कर्ममें "लोहितेन स्वधितिना" इस मन्त्रसें सूत्रोक्त-रीतिके अनुसार बछड़ेके कानको छेदे।

तहाँ ही कर्ममें "यथा चक्षुः" इस ऋचासे कानके रक्तको दही मधु घृत और जलसे मिला सम्पातित और अभिमन्त्रित करके बछड़ेको चटा देवे।

कौशिकने भी कहा है, कि–"वायुरेना इति युक्तयोश्चित्राकर्म-निशायां संभारान् सम्पातवतः करोति। अपरेद्युर्वायुरेना इति शाखोदकधारया गाः परिक्रामति। प्रथमजस्य शकलम् अवधायौदुम्बरेणासिना लोहितेनेति मन्त्रोक्तम्। यथा चक्षुरितिक्षुकाशकाण्ड्या लोहितं निर्मृज्य रसमिश्रं अश्नाति। सर्वं औदुम्बरम्।" (कौशिकसूत्र ३। ६)॥

"उच्छ्रयस्व" इस तृचसे पुष्ट्यर्थ वीजवापनकर्ममें धान आदि के बीजको घीमें मिलाकर अभिमंत्रित करके प्रत्येक ऋचासे तीन मुट्ठियोंको लांघल पद्धतिमें डाल धूलसे ढ़क देय। इसी बातको

कौशिकसूत्रमें कहा है, कि– ‘उच्छ्रयस्वेति बीजोपहरणम्। आज्यमिश्रान् यवान् उर्वरायां कृष्टे फालेन उदुह्य अन्वृचं काशीन् निनयति निर्वपति” (कौशिकसूत्र ३ । ७) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वा॒युरे॑नाः स॒माक॑रत् त्वष्टा॒ पोषा॑य ध्रियताम् ।
इन्द्र॑ आभ्यो॒ अधि॑ ब्रवद् रु॒द्रो भू॒म्ने चि॑कित्सतु　१

वा॒युः । ए॒ना॒ः । स॒म्ऽआकरत् । त्वष्टा॑ । पोषा॑य । ध्रि॒य॒ता॒म् ।
इन्द्रः । आ॒भ्य॒ः । अधि॑ । ब्र॒व॒त् । रु॒द्रः । भू॒म्ने । चि॒कि॒त्स॒तु॒ ॥१॥

एनाः अस्मदीया गाः वायुर्देवः समाकरत् समाकरोतु संघश आनयतु । वायुर्हि तेषां रक्षिता । तथा च तैत्तिरीयकम् । “वायव स्थेत्याह । वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । “वायव एवैनान् परिददाति” इति [तै० ब्रा० ३. २. १. ३] ॥ तथा त्वष्टा देवः पोषाय अभिवृद्धये इमा गाः ध्रियताम् धारयतु । स एव हि पशूनाम् अभिवृद्धेः कर्ता । “त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत्” इति श्रुतेः [तै० सं० १. ७. ४. ५] । ❀ धृङ् अवस्थाने । तुदादित्वात् शः । “रिङ् शयग्लिङ्क्षु” इति रिङ् आदेशः ❀ । आभ्यो गोभ्यः इन्द्रो देवानाम् अधिपतिः अधि ब्रवत् अधिब्रवीतु आधिक्यं वदतु । रुद्रः पशूनाम् अभिमन्ता पीडाकरो देवः भूम्ने बहुत्वाय चिकित्सतु । पादास्यादिरोगपरिहारेण बह्वीः करोतु इत्यर्थः । ❀ भूम्न इति । बहुशब्दाद् इमनिचि “बहोर्लोपो भू च बहोः” इति इमनिच आदिवर्णलोपो बहोर्भूभावश्च । चिकित्सतु । कित ज्ञाने । “गुप्तिज्किद्भ्यः सन्” इति व्याधिप्रतीकारलक्षणेर्थे कितेः सन् प्रत्ययः ❀ ॥

इन हमारी गौओंको वायुदेव झुण्डके झुण्ड लावें ‡ तथा त्वष्टा देवता पुष्टिके लिये इन गौओंको धारण करें † । इन्द्रदेवता इनके विषयमें स्नेही वचन कहें, पशुओंको पीड़ा देने वाले रुद्रदेव इन की अधिकताके लिये इनकी चिकित्सा करें अर्थात् इनके पैर और मुखके दोषोंको दूर कर इनको बढ़ावें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

लोहि॑तेन॒ स्वधि॑तिना मिथु॒नं कर्ण॑योः कृधि ।
अक॑र्ताम॒श्विना॒ लक्ष्म॒ तद॑स्तु प्र॒जया॑ ब॒हु ॥ २ ॥

लोहि॑तेन । स्वऽधि॑तिना । मि॒थु॒नम् । कर्ण॑योः । कृ॒धि॒ ।
अक॑र्ताम् । अ॒श्विना॑ । लक्ष्म॑ । तत् । अ॒स्तु॒ । प्र॒ऽजया॑ । ब॒हु २

हे गोपाल लोहितेन लोहितवर्णेन ताम्रविकारेण स्वधितिना शस्त्रेण कर्णयोः वत्ससंबन्धिनोः मिथुनम् स्त्रीपुंसात्मकम् चिह्नं कृधि कुरु । अश्विना अश्विनौ देवौ तादृशं लक्ष्म चिह्नम् अकर्ताम् कुरुताम् । ❀ करोतेश्छान्दसो लुङ् । "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक् ❀ । तत् तथाविधं लक्ष्म प्रजया पुत्रपौत्रादिरूपया बहु बहुलं समृद्धम् अस्तु ॥

---

‡ वायु इनके अधिपति हैं, इसका तैत्तिरीयब्राह्मण ३।२।२।३में वर्णन है, कि—"वायवः स्थेत्याह । वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । वायव एवैनान् परिददाति ॥—०वायु अन्तरिक्षके अधिपति हैं, जो अन्तरिक्षके देवता हैं वही पशुओंके देवता हैं ।०"

† त्वष्टा देवता ही पशुओंकी वृद्धि करने वाले हैं । "त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत् ॥—त्वष्टा देवता पशुओंके जोड़ोंके रूप को बनाने वाले हैं" (तैत्तिरीयसंहिता १ । ७ । ४ । ५) ॥

हे गोपाल ! लालवर्णके ताँबेके शस्त्र स्वधितिसे बछड़ोंके कानोंमें स्त्रीपुंसरूप चिह्नको कर। अश्विनीकुमार भी तैसा चिह्न करें। तैसा चिह्न पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजासे समृद्ध होवे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

यथा । चक्रुः । देवऽअसुराः । यथा । मनुष्याः । उत ।
एव । सहस्रऽपोषाय । कृणुतम् । लक्ष्म । अश्विना ॥ ३ ॥

देवाश्च असुराश्च देवासुराः । ते यथा पशूनां लक्ष्म लक्षणं कर्णयोः स्वधितिना चक्रुः कृतवन्तः । मनुष्या उत मानवा अपि यथा चक्रुः कृतवन्तः हे अश्विना अश्विनौ एव एवं सहस्रपोषाय गवाम् अपरिमिताभिवृद्धये लक्ष्म चिन्हं कृणुतम् कुरुताम् ॥

देवता और असुरोंने जिस प्रकार पशुओंके कानोंमें स्वधितिसे चिह्न (लक्षण) कर दिया है। और मनुष्योंने जिस प्रकार किया है, हे अश्विनीकुमारो ! इसी प्रकार तुम अपरिमित गौओंकी पुष्टिके लिये लक्षण करो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥

उत् । श्रयस्व । बहुः । भव । स्वेन । महसा । यव ।

मृणीहि । विश्वा । पात्राणि । मा । त्वा । दिव्या । अशनिः । वधीत् १

हे यव धान्य त्वम् उच्छ्रयस्व उत्तिष्ठ प्ररूढः सन् उन्नतो भव। तथा बहुः अनेकविधो भव । स्वेन आत्मीयेन महसा तेजसा रसवीर्येण सह विश्वा विश्वानि सर्वाणि पात्राणि कुसूलकोष्ठागारादीनि मृणीहि वर्णव्यत्ययः । पृणीहि पूरय । दिव्या दिवि भवा अशनिः त्वा त्वां मा वधीत् मा हिंसीत् ॥

हे यव ! तू उग कर ऊँचा हो, तथा अनेक प्रकारका हो, अपने रसवीर्यरूप तेजसे कुठिया कोठे आदि पात्रोंको भरदे । आकाशका वज्र तेरा संहार न करे ॥ १ ॥

पञ्चमी ॥

आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२ ॥

आऽशृण्वन्तम् । यवम् । देवम् । यत्र । त्वा । अच्छऽआवदामसि ।

तत् । उत् । श्रयस्व । द्यौःऽइव । समुद्रःऽइव । एधि । अक्षितः २

आशृण्वन्तम् आभिमुख्येन अस्मदुक्तम् आकर्णयन्तं यवम् यवधान्यरूपेण अवस्थितं देवं तत्र तस्यां भूमौ त्वा त्वाम् अच्छवदामसि आभिमुख्येन वदामः प्रार्थयामहे । तत् तत्र भूम्यां द्यौरिव आकाश इव उच्छ्रयस्व उन्नतो भव । सस्यावस्थायाम् उक्तम् । फलावस्थायामपि आह । समुद्र इव अक्षितः अक्षीणः क्षयरहितः एधि भव । ❀ अस्तेर्लोटि सिपो हिरादेशः । असोरल्लोपे "ध्वसोरेद्धौ०" इति एत्वम् । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति

असिद्धत्वात् झलन्तलक्षणं हेर्धित्वम् । अक्षित इति । क्षि क्षये । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदस्तत्वाद् दीर्घाभावात् "क्षियो दीर्घात्" इति नत्वस्यापि अभावः ❀ ॥

अभिमुख होकर हमारे वचनको सुनते हुए यव-धान्यरूपसे अवस्थित देवता ! हम तुझसे इस भूमिमें प्रार्थना करते हैं, कि-तू इस भूमिमें जिस प्रकार अन्तरिक्षमें बढ़ता है, तिस प्रकार (सस्यावस्थामें भी) बढ़ । (फलावस्थामें भी) समुद्रकी समान अक्षीणरूपसे बढ़ (रह) ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

अक्षि॑तास्त उप॒सदोक्षि॑ताः सन्तु रा॒शय॑ः ।
पृ॒णन्तो॒ अक्षि॑ताः सन्त्व॒त्तार॑ः स॒न्त्वक्षि॑ताः ॥ ३ ॥

अक्षि॑ताः । ते॒ । उ॒प॒ऽसद॑ः । अक्षि॑ताः । स॒न्तु॒ । रा॒शय॑ः ।
पृ॒णन्त॑ः । अक्षि॑ताः । स॒न्तु॒ । अ॒त्तार॑ः । स॒न्तु॒ । अक्षि॑ताः ॥ ३ ॥

हे यव ते तव उपसदः उपसत्तारः उपगन्तारः कर्मकरा अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु । राशयः धान्यसमूहा अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु । पृणन्तः गृहादिकं पूरयन्तः समाहर्तारो जना अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु । अत्तारः भोक्तारो जना अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु ॥

[इति] षष्ठकाण्डे त्रयोदशेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-श्रीवीरप्रतापहरिहरमहाराजसा-
म्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते अथर्वसंहिता-
भाष्ये षष्ठकाण्डे त्रयोदशोनुवाकः ॥

समाप्तः षष्ठः काण्डः ॥

हे यव ! तेरे पास जाने वाले–कर्मकर्ता–क्षयरहित होवें, धान्यके समूह क्षयरहित होवें। गृह आदिमें लाने वाले मनुष्य क्षयरहित होवें। भोक्ता पुरुष क्षयरहित होवें ॥ २ ॥

छठे काण्डके तेरहवें अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (३१५)॥
तेरहवाँ अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका छठाकाण्ड ऋषिकुमार
प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका
सम्पादक कु० ऋ० प० रामचन्द्र
शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल
भाषानुवाद सहित

वैदिक-संहिता

- ☆ **ऋग्वेद संहिता।** मूलमात्र (गुटका)
- ☆ **ऋग्वेद संहिता।** मूलमात्र।
- ☆ **ऋग्वेद संहिता।** भाषामात्र। रामगोविन्द त्रिवेदी
- ☆ **ऋग्वेद संहिता।** सायणाचार्य कृत भाष्य एव हिन्दी व्याख्या सहित 1-8 भाग सर्म्पूण
- ☆ **ऋग्वेद संहिता।** (प्रथम अध्याय, सूक्त 1-19) हिन्दी व्याख्या तथा हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद। सम्पादक-प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
- ☆ **शुक्लयजुर्वेद संहिता।** मूलमात्र (गुटका)
- ☆ **शुक्लयजुर्वेद संहिता।** सम्पा. श्री दौलतराम गौड़
- ☆ **शुक्लयजुर्वेद संहिता।** मूलमात्र। (निर्णयसागर संस्करण)
- ☆ **शुक्लयजुर्वेद संहिता।** पदपाठ-उव्वट-महीधरभाष्य-संवलित तत्त्वबोधिनी हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. रामकृष्ण शास्त्री
- ☆ **सामवेद संहिता।** मूलमात्र (गुटका)
- ☆ **सामवेद संहिता।** सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप शर्मा 'गौड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित।
- ☆ **अथर्ववेद संहिता।** मूलमात्र (गुटका)
- ☆ **अथर्ववेद संहिता।** सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप 'गौड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित। 1-8 भाग

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी